गुरुगंगेश्वर-ग्रंथमाला : प्रसून-२३

योगेश्वर गुरु गंगेश्वर

[भाग-३]

लेखिका

रतनबहन फोजदार

संपादक

गौतम वा. पटेल

: प्रकाशक :

योगेश्वर गुरु गंगेश्वर धर्मार्थ ट्रस्ट

प्रकाशक :
स्वामी गोविन्दानन्दजी, वेदान्ताचार्य, मेनेजिंग ट्रस्टी,
योगेश्वर गुरु गंगेश्वर धर्मार्थ ट्रस्ट, गंगेश्वरधाम,
१३—पार्क एरिया, करोलबाग,
नई दिल्ली-५.

श्रीमती रतनबहन फोजदार

प्रथम संस्करण
परम गुरुदेव **स्वामी रामानन्दजी महाराज** की जयन्ती,
फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी, २०३८
७, मार्च १९८२

मूल्य : पच्चीस रुपये

प्राप्तिस्थान :
१. उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, ढुण्ढिराज, वाराणसी
२. उदासीन सद्गुरु गंगेश्वर कल्याण ट्रस्ट
३१, तुलसी-निवास, डी रोड, चर्चगेट, बम्बई—२०
३. वेदमन्दिर, कांकरिया रोड, अहमदाबाद—२२
४. गंगेश्वर धाम, १३, पार्क एरिया, करोलबाग, नई दिल्ली-५
५. गंगेश्वर धाम, ॐप्रकाश बंगला, तिडके कॉलोनी, त्र्यंबक रोड, नई दिल्ली

मुद्रक :
सुरेन्द्र जे. शाह
पारिजात प्रिन्टरी, २८८/१ राणिप,
अहमदाबाद-३८० ००५.

प्राक्कथन।

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेव च।
यो न पुष्णाति पुरुषो यावज्जीवं च सोऽशुचिः॥
सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महागुरुः।
पितुः शतगुणामाता गर्भधारणपोषणात्॥
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी।
नास्ति मातुः परो बन्धुः सर्वेषां जगतीतले॥
विद्यामन्त्रप्रदं सत्यं मातुः परतरो गुरुः।
न हि तस्मात्परः कोऽपि वन्द्यः पूज्यश्च वेदतः॥

वस्तुतः माता-पिता एवं सद्‌गुरु के समान इस संसार में कोई श्रेष्ठ देवता नहीं है। माता-पिता ने यह अमूल्य मानव शरीर-जो मोक्ष का एकमात्र साधन है—दिया वह उनकी अनंत कृपा है। अतः इससे पूज्यतम भला कौन हो सकता है? पिता पूजनीय वंदनीय हितैषी प्रत्यक्ष देवता हैं, परंतु माता गर्भ में धारण एवं पोषण करती है, इसलिये पिता से भी सौगुनी श्रेष्ठ है। वह सदा पृथ्वी के समान क्षमाशीला एवं सबका समान रूप में हित चाहनेवाली है, अतः संसार में सबके लिये माता से बढ़कर बन्धु अन्य कोई नहीं है। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि विद्या तथा मन्त्रदाता गुरु माता से भी अत्यधिक आदर के योग्य हैं। वेद के अनुसार सद्‌गुरु से बढकर वंदनीय और पूजनीय दूसरा कोई नहीं है।

आप जैसी विश्व-वंद्य विभूति, साक्षात् वेद वाङ्मय की अनुपम चेतन-मूर्ति को सद्‌गुरुरूप में जिन महाभागी भक्त-प्रेमियों ने पाई है, उनके भाग्य की तुलना सराहना कौन कर सकता है! 'माया मनुष्यं हरिम्' के स्वांग में आप

विश्व–कल्याणार्थ भारत की इस पुण्यभूमि पर अवतीर्ण हुए हैं। आप परम तीर्थ हैं एवं आपकी सेवा, सान्निध्य तथा सत्संग निःशंक शीघ्र फलदायिनी एवं मोक्ष–प्रदायक हैं। जिन योगेश्वरों के दर्शन बड़े बड़े देवताओं के लिए भी अत्यंत दुर्लभ हैं, उन्हीं के दर्शन हमें चिरकाल से हो रहे हैं। केवल मूर्ति विशेष में ही जो जन अपने इष्टदेव का दर्शन करते हैं, उन्हें आपके दर्शन, स्पर्श, प्रणाम, पाद–पूजनादि का सुअवसर कहाँ संभव होता !

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्येंन तत्फलम् ।
देवानामपि दुष्प्राप्यं यद् योगेश्वरदर्शनम् ॥
किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।
दर्शन–स्पर्शन–प्रश्न–प्रह्व–पादार्चनादिकम् ॥
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥

यदि घड़ी–दो–घड़ी भी ज्ञानी महापुरुषों की सेवा की जाय, तो वे सारे पाप-ताप मिटाकर, अखंड सुख शान्ति प्रदान करते हैं। आपके अवतार का विशेष प्रयोजन तो वेदों का पुनरुद्धार कर, उनके प्रकाश द्वारा अज्ञान अंधकार से सुषुप्त संसार को जगाकर, **"उत्तिष्ठ जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत"** की मधुर ललकार है। शंकर ने स्वर्ग से उतरते हुए प्रचंड गंगाप्रवाह को अपनी जटा–जूट में धारण किया, यह उन्हीं की दिव्य अपरिमित शक्ति का प्रभाव था। मस्तक में चंद्रमा एवं सर्प से सदा विभूषित, उमा–शक्ति सुशोभित भगवान् शंकर या अनंत सौंदर्य माधुर्य ऐश्वर्ययुक्त, पूर्ण परात्पर पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ही अपनी विश्व–मोहिनी, अधरामृत वाहिनी वेद–वीणा को धारण किये, चिरकालीन तृषापीड़ित तड़पते जीवों को सुधा–रसपान कराने एवं अपने भक्त–प्रेमियों को रिझाने आये हैं। इसका निर्णय तो पाठकगण अपने-अपने भावनानुसार करेंगे। नाम–नामी, गुण–गुणी जैसे सर्वथा अभिन्न हैं, वैसे ही आपका नाम 'गंगेश्वर' दोनों शंकर–योगेश्वर में संयुक्त, पूर्ण–प्रकाशक है। यदि इसका वर्णन करने लगूँ, तो एक पुस्तक लिखी जा सके।

समस्त विश्व आज अधर्म, अनीति, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि के कारण उज्ज्वल–जीवन पथ से च्युत बन, पुनः हिंसावृत्ति एवं अमानुषी तत्त्वों का शिकार

बन रहा है, अंधकार के अगाध अर्णव में निःसहाय होकर डूब रहा है। उनका एकमात्र संरक्षक भगवान–वेद हैं, जो साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं। उसी वेद के अनंत बोधरूप कर–कमल, जीवों की प्राण–रक्षा करने में समर्थ है।

अतः '**योगेश्वर गुरु गंगेश्वर**' के दिव्य पावन चरित के दो भाग तो जनता–जनार्दन के कर–कमल में समर्पित हुए हैं एवं यह तीसरा भाग, आपके जन्म–शताब्दि–महोत्सव के अति मांगलिक अवसर के सुचारु वर्णन सहित प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

समस्त विश्व में आपकी वेद गिरारूपी गंगा का प्रवाह अनेक धाराओं में अस्खलित बहता हुआ जीवमात्र का अज्ञान दूर कर, ज्ञान–पथ पर अग्रसर करे; उनके जीवन नित्य उत्कर्षशील प्रेममय एवं आनंदमय बनें एवं स्वरूप–स्थित रह कर, मानव शरीरप्राप्ति का पूर्णतया लाभ उठाते जीवन–मुक्ति की अनुभूति करें, इसी एकमात्र उद्देश्य से आपका अनूठा दिव्यतम चरित लिख रही हूँ। जिन व्यक्तियों को कभी आपके दर्शन तक नहीं हुए, जिनको क्वचित् सौभाग्य मात्र से थोड़ा-सा संग मिला, जो बहुत चाहने पर भी संसार–व्यवहार में व्यस्त रहें, उन अगणित प्रेमियों की पिपासा एवं मन–हृदय–तृप्ति के लिये, यह गंगेश्वर–चरित–रस–रत्नाकर, सदा सर्वदा उपलब्ध है।

मेरा आधे से ऊपर जीवन आपके दिव्य सानिध्य–सेवामां बीता है, इसको मैं आपकी असीम कृपा मानती हूँ। इस काल दरम्यान आपके एक एक पूर्ण गुण–रत्न की झाँकी हुई, पूर्ण अनासक्ति, वैराग्य–विवेक, संयम, समदृष्टि, सहिष्णुता, सत्य, धीरता वीरता, क्षमाशीलता, औदार्य, ऋजुता, करुणा आदि असंख्य रत्नों के आप भण्डार हैं, धीरे धीरे आपके सुरम्य रंग–तरंगों ने, मुझे अंदर बाहर से शुद्ध कर, जन्म-जन्मों का कलुष दूरकर, मेरे क्षुब्ध विवेकहीन जोवन में सुख–शांति भर दी, मानों एक चतुर शिल्पकार ने संगमरमर को अपनी दिव्य कला द्वारा, एक मनोहर मूर्ति में परिवर्तित कर, अपनी गुण–रत्नावली से विभूषित कर दिया। इसमें जो कुछ आंतरिक सौन्दर्य–माधुर्य–रस–कला आदि दीखते हैं, वे निःसंदेह पूर्णतया उन अति उदार कृपालु गुरु का ही सर्वोत्तम प्रसाद है।

जिसको जो वस्तु प्रिय होती है, वह उसके विषय में बहुत कुछ कर सकता है। संसार–व्यवहार में ऐसे बहुत से संबंध मधुर होते हैं, जिनकी प्रशंसा–वर्णन करते हम अघाते ही नहीं। परंतु महापुरुषों का ज्ञान–प्रशंसा तथा गुण उल्लेख चाहें

कोई युगों तक करता रहे, पूर्णतया समाप्त न होगा। भगवान विष्णु का रूप-गुण वर्णन श्रीमद्भागवत के बारह बारह स्कन्धों में भी पूरा न हो सका, तो उसी तरह आप जैसे सगुण साकार ब्रह्म के स्वरूप के अनंत गुणों की गिनती मैं अनंत काल तक भी करती रहूँ, फिर भी उसे पूरा करना संभव नहीं।

अतः मेरे प्रेमी पाठकगण को भी, यथासंभव इस चरित-रत्न-कोष से, अमूल्य धन-राशि प्राप्ति हो, ताकि उनकी उज्ज्वल ज्ञान-दीप्ति से सबका जीवन पूर्णतया आनंदमय बन, मानव देह का मुख्य लक्ष्य, जो भगवद्-प्राप्ति या स्वरूप-दर्शन है, सार्थक हो।

गुरु-पद-पंकज-रज

रतन

अनुक्रम

परिशिष्ट

सः जनासः इन्द्रः ।

नहि नु अस्य प्रतिमानम् अस्ति अन्तः जातेषु उत ये जनित्वाः ।

ऋ. वे. ४–१८–४

ऋग्वेद के दिव्य मंत्रद्रष्टा ऋषियोंमें से अन्ययम माने गये महर्षि वामदेव के चतुर्थ मंडलमें उपर्युक्त मन्त्रार्थ प्राप्त होता है । देवाधिदेव इन्द्र याने परमेश्वर के संदर्भमें यहाँ कहा गया है कि–

'जो उत्पन्न हुए हैं और जो उत्पन्न होनेवाले हैं उनमें इसके समान कोई नहीं है ।'

यह वेदविधान हमारे वेदमूर्तिस्वरूप वेदनिष्ठार्थ वेदमय जीवन व्यतीत करनेवाले वेददर्शनाचार्य अनन्तश्रीविभूषित महामंडलेश्वर सद्गुरुभगवान **श्री गंगेश्वरानन्दजी महाराजमें** सर्वथा चरितार्थ होता है । यदा यदा वेद–धर्मकी हानि होती है, तदा तदा सर्वेश्वर इस भारत की भूमिमें स्वयं एक या दूसरे रूपमें पधार कर वेदविहित धर्म का प्रचार एवं प्रसार करते हैं । ऐसे अगणित संतमहंत या आचार्यप्रवरोंमें सद्गुरुदेव अन्यतम हैं ।

आप चतुर्वेद–भाष्यकार हैं । ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद एवं अथर्ववेद के मंत्रो पर आपने नवीनतम सात्वत–पक्ष प्रतिपादन करनेवाला भाष्य लिखा है । '**भगवान् वेदः**' का जो अद्वितीय भव्यातिभव्य अवतार चारों वेदों की संकलित आवृत्ति के रूपमें हुआ और विश्व के कोने कोनेमें उसकी स्थापना हुई, उसमें आप ही निमित्त हैं । आपके प्रेरणामृतके पियूषपान द्वारा ही प्राणिमात्र दिव्यज्ञान प्राप्त करके कह सकता है—

अपाम सोमम् अमृता अभूम्म
अगन्म ज्योतिः अविदाम देवान् । —ऋ. वे. ८–४८–३

हमने सोम का पान किया, हम अमर बन गये, हमें दिव्य ज्योति प्राप्त हुई, हम देवों को जान गये ।

हे अमृत के पुत्र ! हे मानव बन्धु ! मैं तो बस इतना ही कहूँगी कि संसार सागरसे सरलतम उपाय से पार उतरना है, तो इनका–सद्गुरुदेवका सहारा लो क्योंकि, 'भगवान् वेद' के शब्दोंमें **सः जनासः इन्द्रः** । ऋ. वे. २–१२–१
–हे मनुष्यो, वह इन्द्र है, वही परमात्मा है ।

—रतन फोजदार

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

१. तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

—य. वे. ३४-१

मन की शक्तियों का परिचायक शिवसंकल्पसूक्त यजुर्वेद के अध्याय ३४ में उपलब्ध होता है। वहाँ मन की गतिविधियों का वैज्ञानिक रूप से वर्णन तो है ही, लेकिन मानव का मन यदि अशिव बन जाय तो वह उसे संसाररूपी अंधेरे कूप में डाल देता है, अतः उसमें से मानव को ऊपर उठाने के लिये वहाँ प्रत्येक मंत्र के अंत में कामना की गई है कि **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु** । (य. वे. ३४-१) मेरा वह मन शिवसंकल्प-कल्याणकारी संकल्पों वाला हो।

जब तक मनुष्य संसार और सांसारिक कर्म एवं वासनाओं से पर नहीं होता है, तब तक मन में शिवतत्त्व अध्यारूढ नहीं होता है। यह निश्चित है, नितान्त सत्य है एवं अनुभवगम्य है कि जन्म जन्मान्तर के अगणित कर्म, वासना एवं संस्कारों से भरा हुआ मन सहसा शिवसंकल्प नहीं होता है। तो क्या करें ?

हमारे शास्त्रों ने एवं ऋषि-मुनियों ने इसका उपाय भी बताया है कि हम सतत तन, मन एवं धन से शिवपरायण रहें, जो भी कर्म करें शिवमय भावना से—ईश्वरार्पण बुद्धि से करें तो मन भी आप ही शिवसंकल्प हो जायेगा। जैसे कि एक स्तोत्र में कामना की गई है—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो
यद्यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम् ॥

हे प्रभु आप मेरी आत्मा हो, माता पार्वती मेरी मति है। मेरे प्राण आप के अनुचर है। मेरा शरीर आपका निवासस्थान और मेरो विषयोपभोग रचना आपकी पूजा है। मेरी निद्रा समाधि है, मेरे पैरों का संचार वह आपकी प्रदक्षिणा है और मेरी समग्र वाणी आपके स्तोत्र हैं। और तो क्या, मेरे नाथ ! जो जो कर्म मैं करूँ, हे शंभो—हे गुरो सब आपकी ही आराधना है।

शंभु—शिव और सद्गुरु में कोई अन्तर नहीं है। अतः मैं अपने मन को शिव-संकल्प बनाने के लिये अपने प्रभु—अपने गुरुदेव से निवेदन करती हूँ कि हे भगवन् ! मेरा बोलना आपका जप हो, सब प्रकार का शिल्प मुद्रा—रचना हो, चलना—फिरना

प्रदक्षिणा हो, भोजन करना हवनक्रिया हो और लेटना प्रणाम हो। इस प्रकार आत्मार्पण बुद्धि से किया गया मेरा संपूर्ण सुखभोग आपकी पूजा ही बन जाय।

प्रिय निजात्मन् वाचक ! यह कहना तो सरल है, परन्तु इसका आचरण असंभव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है। उसे सरल बनाने का सरलतम मार्ग है प्रभु की कथा का श्रवण, प्रभु के–सद्गुरु के चरित्र का मनन एवं उनकी सर्वग्राही –सर्वोपरि महत्ता का निदिध्यासन। इससे मन शिवसंकल्प होगा जैसे कृष्ण–चरित्र के बारंबार दर्शन, श्रवण एवं मनन से गोपियाँ तन्मय हो गई थीं। अतः यह मेरा स्वल्प प्रयास स्वान्तः सुखाय है, उसमें आप भी पढ़कर सहभागी बनें और मेरी तरह आपका भी मन शिवसंकल्प बनें। तो अब प्रभु के–गुरु के चरित्र का तृतीय भाग प्रारंभ होता है––

सन् १९७४–७५ में पचानवे वर्ष की परिपक्व अवस्था में आपने वेद-प्रचार–प्रसारार्थ दक्षिण-पूर्व एशिया, अफ्रिका, लन्दन, अमेरिका, केनेडा, इण्डोनेशिया एवं वेस्ट इण्डिझ की यात्रा की थी। इन सभी देशों में आपने विभिन्न विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, मन्दिरों एवं भक्तों के आवासों में **भगवान् वेद** के सनातन ग्रंथ-रत्न की स्थापना की, अनेक उच्च पदाधिकारियों, विद्वानों तथा संस्कृत–प्रेमियों से वार्तालाप करते हुए वेद–ग्रन्थ की महत्ता, गौरव एवं उपयोगिता पर आपने प्रचुर प्रकाश डाला। चार महीनों के सतत प्रवास के पश्चात आप ३१ जुलाई १९७५ में पुनः भारत पधारे। वेद और आप में इतना अभेद है कि यह तो जो देखे वही समझ सकता है, इस विषय में कुछ कह नहीं सकते। फलस्वरूप भारी भ्रमण के बाद भी आपका स्वास्थ्य विकृत नहीं हुआ, प्रत्युत और भी शक्तियुक्त, एवं प्रफुल्लित हुआ जिसे देखकर सब विस्मित और प्रसन्न हो गये।

इतनी भूमिका के साथ सन् १९७६ से ८० तक का आपका शेष चरित्र-दर्पण भक्त-प्रेमीगण के समक्ष गुरु-रूप दर्शनार्थ प्रस्तुत करने की अनुज्ञा चाहती हूँ।

स्वागत समारोह : ३ अगस्त

आप भारत से बाहर थे, अतः आपके भारत पधारने पर जनता आपके दर्शन के लिए उत्सुक थी। भारत लौटने पर दो दिन आपके आराम के छोड़कर, स्थानिक भक्तों ने आपके स्वागत के लिए, ३ अगस्त को चर्च गेट के के.सी. कालेज में एक समारम्भ नियोजित किया। कालेज के श्री होतचंद अडवानी अतिथि-विशेष के रूप में विराजित थे, तो पूज्यपाद स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी अध्यक्ष के पद पर आसीन थे। पूरा हॉल दर्शनार्थियों से भरा था। आपके मंच पर पधारने पर लोगों ने आपका हार्दिक सत्कार किया, आपके प्रति अपनी अटूट श्रद्धा एवं प्रसन्नता व्यक्त की। क्रमानुसार कार्यक्रम चला। मैंने

भी पूज्य गुरुदेव के साथ के भ्रमण का सुचारु वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत किया । श्री अखंडानन्दजी तथा श्री अडवानीजी आदि ने आपकी सोत्साह वेद-प्रचार-प्रसार प्रवृत्ति की भूरि–भूरि प्रशंसा की । पू. गुरुदेव ने अपने श्रीमुख से वहाँ के निवासियों के सुंदर आतिथ्य भाव, त्याग-वृत्ति, श्रद्धा तथा हार्दिक प्रेम आदि की प्रशंसा की । उपरांत विदेशियों के भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रति आदर-भाव आदि की सराहना की । आपके रसपूर्ण प्रवचन पर श्रोताजन मंत्रमुग्ध हुए ।

हमारी इस विदेश-यात्रा का पूरा प्रबंध चेनराय परिवार ने सहर्ष किया था। लन्दन तथा लागोस में श्री मुरलीधर श्री पीताम्बर तथा श्री गिरिधर भाई के यहाँ पू. गुरुदेव अपने साथियों के साथ ठहरे थे । इस समय इन सब महानुभावों ने अपनी सब वैयक्तिक प्रवृत्तियों को छोड़ कर आपके प्रतिदिन के सभी कार्यक्रमों में निष्ठापूर्वक सहकार दिया !

१२ अगस्त, १९७५ को बम्बई में श्री गिरिधर चेनराय के सुपुत्र पुरुषोत्तम के शुभ-विवाह में उपस्थित रहकर आपने आशीर्वाद दिया । दूसरे दिन परेल (बम्बई) के तुलसी मानस मंदिर में तुलसी जयन्ती के अवसर पर आप पधारे ।

१५ अगस्त स्वातंत्र्य–दिवस था। परम भक्त साधुसेवी श्री हरिभाई ड्रेसवाला, श्री अग्रवाल आदि आपके प्रेमियों ने भारतीय विद्याभवन में आपकी सफल विदेश-यात्रा के लिए अभिनंदन-समारोह आयोजित किया । इसमें बड़ी संख्या में जनता आपके दर्शन-श्रवण के हेतु एकत्र हुई । आपके प्रेमी भक्तों ने आपका सत्कार करते हुए प्रसंगोपात् शुभेच्छा-भाव अभिव्यक्त किये । आपके आशीर्वचन के पश्चात् सभा विसर्जित हुई ।

मनुर्भव—मानव बनो :

> **'तन्तु तन्वन् रजसो भानुमन्विहि**
> **ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।**
> **अनुल्बणं वयत जोगुवामपो**
> **मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥**

ऋ. वे. १०–५३–६.

हे मनुष्य, **तन्तुम्**–जीवन में कर्म रूपी तन्तु का **तन्वन्**–विस्तार करके **रजसः**–रंजनात्मक इस पृथ्वीलोक से **भानुम्**–सूर्य लोक में **अन्विहि**–प्रवेश कर विद्वानों या पूर्व पुरुषों की बुद्धि द्वारा **कृतान्**–तैयार किये हुए **ज्योतिष्मतः**–तेजस्वी, धर्म एवं ज्ञान से व्याप्त **पथ**–मार्गों की **रक्ष**–रक्षा कर **जोगुवाम्**–स्तुति करनेवाले, भगवान् की भक्ति करने वाले मनुष्यों के **अपः**–कर्मों को

अनुल्बणम्—पूर्णतया, अच्छी तरह **वयत**—बुन, कर्मरूपी वस्त्र को अच्छी तरह बुन ले अर्थात् तैयार कर **मनुः भव**—मननशील मानव बन और **दैव्यम् जनम् जनय**—दैवी जन को तैयार कर।

इस बार भगवान् वेद का उपर्युक्त मंत्र उद्धृत करके प्रभु ने विस्तृत प्रवचन किया था। इस समय आपने बताया कि "एक समय की बात है। एक पिता अपनी आराम कुर्सी में बैठकर पढ़ रहे थे। उनके पास एक छोटा लड़का बैठा था। वह था तो थोड़ा शरारती, कहीं से विश्व का नकशा उसके हाथ में आ गया। धुन में आकर उसने उसे फाड़ डाला। फिर उसके मन में इच्छा हुई कि इसे पूर्व-वत् जमा दूँ। सो वह कागज के उन टुकड़ों को जमाने के लिए बैठा। उसने बहुत देर तक दिमाग-पच्ची की, पर उससे कुछ बन पाया नहीं।

उसके पिताजी यह सब देख रहे थे। उन्होंने धीरे से कहा—'बेटा, विश्व के नकशे को पलट दे। उसके पीछे मनुष्य का चित्र है। मनुष्य को केन्द्र में रखकर यदि तू प्रयत्न करेगा, तो सारे विश्व का नकशा ठीक बैठ जायगा। और बालक ने मनुष्य को केन्द्र में रखकर सारे विश्व का नकशा ठीक कर दिया।"

कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को यदि केन्द्र में रखा जाय तो विश्व के सभी प्रश्नों का उत्तर हम सहज में प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन हमारी यह विडम्बना है कि मनुष्यों को हम आज सर्वथा भूल गये हैं। मानवता को हम बिसर बैठे हैं।

मनुष्य आज मनुष्य नहीं रहा, स्वार्थ-हिंसा आदि दुर्गुणों के कारण वह पशु बन गया है। हमारे वेद तो कहते हैं कि—"मनुर्भव।" भाई, मनु याने मनन-शील मनुष्य बन। मनु तो हमारे सर्व प्रथम या आदि पुरुष हैं। मनुष्य में अपेक्षित सर्व गुणों से श्री मनु सम्पन्न थे। अतः वे ही मनुष्य मात्र के लिए आदर्श हैं। और भगवान् वेद हमें मनु याने आदर्श मनुष्य बनने की प्रेरणा देते हैं।

'महाभारत' में भगवान् वेद व्यास कहते हैं—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्॥

महाभारत १२–२८८–२०

मनुष्य से बढ़कर कोई उत्तम नहीं है। मानव—जन्म सर्वोत्तम है। मनुष्य को छोड़कर शेष सृष्टि में कोई पदार्थ विशेष गुणसम्पन्न नहीं है। पर ऐसा मनुष्य यदि मनुष्यत्व ही खो दे तो? तो वह पशु बन जाता है। यदि मानव सच्चे अर्थ में मानव बन जाय तो वह दिव्यता को जन्म दे सकता है, दिव्य संतान को पैदा कर सकता है।

इसके लिए क्या-क्या करना चाहिये, यह बात हमें उपर्युक्त मंत्र के आरंभ में कही गई है। कर्म रूपी तन्तु का विस्तार करो। कर्म-निष्काम कर्म, लोक—संग्रहार्थ कर्म, यज्ञयाग, दान-पुण्य इत्यादि कर्मों का मनुष्य जीवन में विस्तार करें तो देहोत्सर्ग के बाद सूर्य की किरणों के द्वारा सीधे स्वर्गलोक में जाया जा सकता है। वेद भगवान् यहाँ यह भी बताते हैं कि हमारे, पूर्वजों ने बुद्धिपूर्वक जिस प्रकाशमय ज्ञान के मार्ग का निर्माण किया है, उसका भी रक्षण करना चाहिये। यह तो एक प्रकार से हमारा ऋषि-ऋण है।

आगे चलकर तृतीय पाद में काव्यमय भाषा में वेद भगवान् कहते हैं—भक्तों के लिए '**अनुल्बणम्**' याने पूर्णतया '**अपः**' अर्थात् कर्म का कपड़ा '**वयतः**' बुनो।

थोड़े ही शब्दों में कहा जाय तो मनुष्य पहले सही अर्थ में मनुष्य बने और अपने महनीय कर्मों से अन्य मनुष्यों के लिए कर्म के सुन्दर एवं आकर्षक कपड़े का निर्माण करे। पूर्वजों द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुकरण करके दिव्यता को जन्म दे। मानवता से दिव्यता के प्रति गति करने के लिए प्रथम पूर्वपुरुषों द्वारा प्रदर्शित पवित्र पथ पर पदार्पण करके अपने में परिपूर्ण मानवता का विकास करे, तो परिणामतः दिव्यता सहसा हस्तगत होगी।

श्रद्धा की महत्ता

जब से आपने सनातन धर्म एवं आर्य संस्कृति के आदि ग्रंथ **भगवान् वेद** की स्थापना का सुमंगल कार्य भारत में आरंभ किया, तब से जनता के हृदय भी ऐसे आकर्षित हुए जैसे पारस के प्रति लोहा या कमल के प्रति भ्रमर होते हैं। अतः अब गृहस्थों के परिवार-जनों के विवाह, जनेऊ, श्राद्ध, स्मृति-दिन आदि अवसरों पर श्रीमद् भागवत, गीता, गरुड़-पुराण आदि के पारायण का स्थान **भगवान् वेद** ने लिया। देखा गया कि लोग बड़ी श्रद्धा और आदरभाव से वेद-पारायण कराते हैं, तथा प्रसन्नचित्त ब्राह्मणों को यथोचित दक्षिणा देकर संतुष्ट करते हैं। ऋग्वेद के दशम् मण्डल का १५१ वाँ तथा तैतरीय ब्राह्मण का १-८-८ वाँ सूक्त श्रद्धासूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें श्रद्धा को मनुष्य की उन्नति का प्रधान कारण माना है। श्रद्धा के द्वारा ही अग्नि प्रज्ज्वलित होती है और श्रद्धा के द्वारा यज्ञ-सामग्री की आहुति दी जाती है। इतना ही नहीं, श्रद्धा संपूर्ण ज्ञान-वैराग्य, धन-ऐश्वर्य एवं धर्म-कीर्ति आदि से श्रेष्ठ है। वेद में ही कहा गया है—

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥

ऋ. १०-१५१-१

वेद-पारायण परंपरा

१६ तथा १७ अगस्त को तुलसी-निवास में लन्दन-निवासी आपके भक्त श्री भाईलाल भाई की ओर से तथा न्यूयोर्क (अमरीका) निवासी, आपके युवान प्रेमी भक्त श्री नारी पोहानी की ओर से वेद-पारायण आरंभ हुआ। ता. २५ अगस्त को पूर्णाहुति के पश्चात् प्रसाद-वितरण एवं संत-भोजन हुआ।

आपकी बम्बई-उपस्थिति दरम्यान वेदपारायण की सतत शृंखला चलती रही। २७ अगस्त को भक्त श्री शिव भगवान के घर वेद-पारायण आरंभ हुआ, जिसकी ४ सितम्बर को पूर्णाहुति हुई। उसी दिन श्री नरेशभाई सेकसरिया के निवास-स्थान में भगवान वेद की पावन गिरा-गंगा बहने लगी। ३० अगस्त को नंदनंदन श्री कृष्णचंद्र का प्राकट्य-दिन पूर्ण उत्साह से मनाया गया। कीर्तनकार श्रीराम पंजवानी, दलिलीजी आदि अतिमनोहर भावयुक्त कीर्तन द्वारा श्रोताओं के हृदयकमल को प्रेम-रस से आप्लावित करते रहे।

२ सितम्बर को आपकी परमभक्ता श्रीमती केटी बहन सिप्पी की ओर से तुलसी-निवास, बम्बई में वेद-पारायण आरंभ हुआ। वस्तुतः **भगवान् वेद** का दर्शन मात्र अनेक पापपुंज को भस्मसात् कर देता है। उनका नियमित रूप से पठन-पाठन करने से भी बहुत लाभ होता है, फिर भी यदि प्रतिदिन उनकी अति-गूढ़ समस्या भाषा को (अर्थ को) अपने सद्गुरु या अन्य किसी पवित्र वेद-विद्वान द्वारा शुद्ध, एकाग्रमन से समझने का प्रयास हम करें, तो गुरुकृपा से जीवन बहुत शीघ्र ही पावन एवं उन्नत बन सकता है। इसलिए वेद में **''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।'** (ऋ. ९-६३-५) के उपदेश से मनुष्य को श्रेष्ठ या सदाचारी बनने का ही संदेश दिया गया है। वेद के एक मंत्र में भी ऐसा बनने के लिए प्रार्थना की गई है:

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव।

शुक्ल यजुर्वेद ३०-३

हे सकल विश्व के सृष्टा, समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपाकर हमारे हृदय से सभी दुर्गुण-दुर्व्यसन तथा दुःखों को दूर कीजिये और जो हितकारी कल्याण करने वाले पदार्थ हैं, वे सब हमें प्राप्त हो, क्योंकि दुर्गुण एवं सद्गुण दोनों परस्पर विरोधी होने से कदापि एक साथ नहीं रह सकते।

महापुरुष के चरित्र

महापुरुषों के चरित्र भी इसी उद्देश्य से लिखे जाते हैं कि उनको पूर्ण श्रद्धा भाव से पढ़ने से हमारे मन-हृदय की कालिमा, विषाद, वैरवृत्ति आदि दुःखदायी भाव, आनंद, शांति और प्रेम में परिवर्तित होकर एक अनोखा प्रकाश मुरझाये हुए

हृदय—कमल को प्रफुल्ल—विकसित कर देता है और उस समय हम उस महान विभूति के अनुपम स्वरूप को अल्पांश में समझने लगते हैं । उनके सद्गुण रूपी सुमन की सुवास से जब हमारे प्राण नूतन चेतना और प्रकाश की अनुभूति करने लगते हैं, तब उनकी ज्ञान—कौमुदी की शीतलता हमारे रोम—रोम में प्रविष्ट होकर दिव्य शक्ति का संचार करती है । संसार—व्यवहार एवं बंधनों से मन सर्वथा उपरत होते, हमारी आत्मा किसी विलक्षण दशा में विहरती प्रतीत होती है । इस सुंदर उच्चतम स्थिति में संपूर्ण विश्वास, सतत अभ्यास, अटूट धैर्य, वैराग्य एवं मानसिक शांति आवश्यक है ।

मनिला (फिलिपाइन्स) निवासी भाई श्री दोलतराम तथा विमला बहन उत्तम-चंदानी के सुपुत्र हरीश, मुकेश एवं ईश्वर को यज्ञोपवित एवं दीक्षा आपने दी । दूसरे दिन उनकी सुपुत्री मधु के शुभ—विवाह में पधार कर नवदम्पती को आपने आशीर्वाद दिया ।

बारिया में भागवत् सप्ताह

जन्माष्टमी के पश्चात् कुछ दिन बम्बई ठहर कर आपके पुनः भ्रमण का क्रम आरम्भ हुआ । ता. २२ सितम्बर को देवगढ़बारिया में राजमाता के अनुरोध से उनके राधा—गोविंद मंदिर में भागवत्—सप्ताह की पूर्णाहुति करने के लिए आप पधारे । वहाँ भगवान बाँके बिहारी की पूर्ण लीलाओं का वर्णन किया । दूसरे दिन राधाष्टमी का उत्सव मंदिर में मनाया गया ।

संसार—नदी के पार उतर जायँ

"प्रभु ! मैं तो संसार की उपाधियों से तंग आ गया हूँ । कहीं भी सुख—शांति आराम नहीं मिलता ।" एक भक्त ने अपनी व्यथा सुनाई ।

"बेटा ! संसार—नदी तो विषम पत्थरों से भरी होती है । उस **अश्मन्वती** नदी को पार करना सहज नहीं है ।" प्रभु ने प्रत्युत्तर का आरंभ किया ।

"प्रभु ! कैसे पत्थर ?" भक्त ने प्रश्न किया ।

"काम—क्रोध—मोह तो पत्थर हैं ही । स्वजनों की ईर्ष्या या शत्रुओं का द्वेष भी इस संसाररूपी नदी को पार करने के मार्ग में पत्थरों की तरह अड़ जाते हैं । फिर मानव—जीवन की नौका संसार—नदी को सहज में, बिना आयास कैसे तैरेगी ?"

"तो क्या करना चाहिये ।"

"देखो बेटा, संसार रूपी नदी को पार करने के लिए पहले **उत्तिष्ठत**—अर्थात् उठो । मन ही मन संकल्प करके कमर कस लो ।"

"जो महाराज ।"

"और केवल उठने से काम नहीं बनेगा। **संरभध्वम् प्रतरत**—अर्थात् अपने मित्र, हितेच्छु या संबंधियों के साथ मिलकर संसाररूपी नदी को पार करो। अकेला आदमी उसे पार नहीं कर सकता। नाववाले की सहाय लेनी पड़ती है। बस उसी प्रकार पत्नी, पुत्र, भाई-बहन और संबंधी, मित्र जो भी हो, उसके साथ मित्रभाव रखो। हृदय से द्वेष को हटाओ और **मा भ्राता भ्रातरं द्विषन्**—भाई-भाई का द्वेष न करे, इस वेद-वाक्य का स्मरण करके सबके साथ प्रेममय व्यवहार करो।"

"प्रभु, हम प्यार करते हैं, पर वे नहीं करते।" भक्त ने शिकायत कर दी।

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आपके हृदय में सच्चा प्यार होगा, तो एक दिन उसका स्वीकार उनको भी करना ही पड़ेगा। जिस प्रकार पैसे से पैसे कमाये जाते हैं, वैसे ही प्यार से प्यार का अर्जन होता है। सामनेवाले के हृदय में, जो प्यार का सागर माना गया है, ऐसे परमात्मा का वास है। यदि आप उससे प्यार करेंगे, तो क्या प्रेमस्वरूप प्रभु उसको प्रतिध्वनित नहीं करेगा ?"

"करेगा, भगवन् अवश्य करेगा।" भक्त ने स्वीकार किया।

"एक बात यह भी है कि जब संबंधियों से मिलकर संसाररूपी नदी पार करने का यत्न करें, तब ये **अशिवाः असन्**—जो भी अकल्याणकारी चीजें, वस्तुएँ या रास्ते हैं, उन्हें **अत्र जहीमः**—हम यहीं छोड़ दें। नाव में बैठेंगे और जो जरूरी नहीं है, ऐसा सामान भी साथ चढ़ायेंगे, तो हमारी नाव डूबेगी और हमें भी डुबायेगी। अतः जो अशिव है, अमंगलमय है, अशुभ है, उसका तो यहीं—संसार में ही त्याग करना पड़ेगा।"

"जरूर करेंगे।" भक्त ने कहा।

"अब जानते हो, नतीजा क्या होगा ?" प्रभु ने पूछा।

"नहीं जी !" भक्त ने उत्तर दिया।

"तो वेद भगवान् के ही शब्दों में सुन लो—**वयं शिवान् वाजान् अभि उत्तरेम**—हम कल्याणमय स्वर्ग के लिए इस संसार-नदी से पार हो जायेंगे। **वाजो वै स्वर्गो लोकः**। (तै० ब्रा० १८।७।१२)। वाज नाम होता है स्वर्ग-लोक का। आप संसाररूपी नदी को पार करेंगे, तो कल्याणमय स्वर्ग की प्राप्ति होगी। हमें अज्ञान की घोर निद्रा से जागकर संसार-नदी को पार करने के लिए प्रेम से सबके साथ मंगलमय व्यवहार करने की आवश्यकता है, और कुछ नहीं।

प्रभु ने इस वार्तालाप में जिस मंत्र का विवेचन किया, वह मंत्र इस प्रकार है :

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम अशिवा ये असन् शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्॥

ऋ. वे. १०-५३-८, यजु. १५-११, अथर्व. १२-२-२६

अपने जन्म-शताब्दी महोत्सवमें आशीर्वचन देते हुए सद्गुरुदेव भगवान

अश्मन्वती–पत्थरों वाली, शिलायुक्त नदी **रीयते**–तेजी से बहती है **सखायः**–हे मित्रों **उत्तिष्ठत**–उठो, कमर कसो **संरभध्वम्**–आप एक हो जाओ **प्रतरत**–नदी को तैर जाओ **ये अशिवाः असन्**–जो भी अकल्याणकारी हैं, उसको **अत्र जहाम**–यहीं त्याग दें और **वयम् शिवान् वाजान् अभि उत्तरेम**–हम कल्याणमय स्वर्ग के लिए इस संसार से पार हो जायें।

नडियाद होकर अहमदाबाद

ता० १४ सितम्बर को बारिया के रणछोड़–मंदिर में महाराज जयदीप सिंह के हाथों वेद–स्थापना हुई। सायंकाल आप भाई अम्बालाल की मोटर से नड़ियाद संतराम मंदिर में पधारे। नड़ियाद से १६ सितम्बर को करमसद पधारे। यहाँ आपने सर्वप्रथम भारत के वीर नेता श्री वल्लभभाई पटेल की प्रतिमा को पुष्पमाला अर्पित की। इसके पश्चात् चाँदी की पालकी में शालीनता से सजाये हुए **भगवान् वेद** की शोभायात्रा निकाली गई। वल्लभ विद्यानगर विश्वविद्यालय के वाइस चान्सेलर (कुलपति) श्री चिमनभाई के हाथों संतराम मंदिर में वेद–स्थापना हुई। आपका मननीय प्रवचन भी हुआ था।

मयि धेहि–मुझे प्रदान करो

भगवान् वेद में अनेक कामनाओं का भाण्डार भरा है। यह अनन्तरत्नप्रभव हिमालय समान है। किन रत्नों को पसंद करें और किनको न करें, यह भी समस्या बन जाती है। मेरी दशा तो क्षीर सागर के किनारे बिठाये गये उपमन्यु जैसी हो गई है। किन्तु मेरे वाचक गुरुभाई एवं गुरुभगिनियों की आकांक्षा की पूर्ति हो इस भाव से यहाँ वेद भगवान् के ही शब्दों में प्रार्थना प्रस्तुत है—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

—य. वे. १९।९

प्रभु तू तेज, वीर्य, ओज, मन्यु (उत्साह) और सह (उत्तम बल) है और आपसे प्रार्थना है कि हमें भी वह सब प्रदान करें, फलतः हम इस संसार में सुख–शांति से जीवन व्यतीत करके अन्ततः आपके चरणों को प्राप्त हो जायँ। वीर्य, ओज, सह किसीको पर्यायरूप प्रतीत हो, लेकिन सह से उत्तमबल याने आध्यात्मिक शक्ति का ग्रहण करना चाहिये। फिर पर्याय नहीं रहेगा।

तत्पश्चात् सरदार पटेल के निवास में पदार्पण कर आप पुनः नड़ियाद लौट आये। १७ सितम्बर को नड़ियाद में आपके विदेशयात्रा से लौट आने के उपलक्ष्य में अभिनंदन एवं स्वागतार्थ एक बृहत् सभा का आयोजन हुआ। इसमें अनेक प्रतिष्ठित नागरिक, वेद-विद्वान एवं प्रेमी जनता उपस्थित थी। विभिन्न संस्थाओं की ओर से आपको सत्कारपूर्वक पुष्पमालाएँ समर्पित की गईं। ता. १८ को आप मोटर से अहमदाबाद पहुँचे।

पंचायत-भवन में भगवान् वेद

आपके वरद कर-कमलों से ता. २० सितम्बर को बलवंतराय मेहता राजपंचायत भवन गांधीनगर में **भगवान् वेद** की स्थापना हुई। भुवन के प्रमुख श्री गोवर्धनभाई ने आपका हार्दिक स्वागत किया। अतिथि विशेष के रूप में गुजरात राज्य विधान-सभा के अध्यक्ष श्री कुंदनलाल घोलकिया थे और समारोह के प्रमुख श्री माणिकलाल गाँधी थे। शिक्षामंत्री श्री नवलभाई शाह आदि उस समारोह में उपस्थित थे। आपने वेद विषयक अतीव मननीय प्रवचन किया। आभार-प्रदर्शन के पश्चाद् सभा समाप्त हुई।

ता. २१ को रायपुर संस्कृत पाठशाला में **भगवान् वेद** की स्थापना कर आपने प्रवचन किया। यहाँ ट्रस्टीमण्डल के सदस्यों में सेठ श्री महेन्द्रकुमार कन्हैयालाल तथा विद्वानों में से श्री बालकृष्ण पंचोलीजी उपस्थित थे। ता. २७ को आपके पुराने प्रेमी शिष्य स्वामी माधवानंदजी के साथ एक वेद-ग्रंथ आपने वल्लभगढ़ भेजा एवं एक ग्रंथ आपके परम भक्त संस्कृत साहित्य के रसिक विद्वान श्री वंशीधर साहनी, कार्षणीजी को प्रसाद रूप में दिया।

राग-स्वरूप भगवान् वेद

सन् १९७१ से लेकर आजतक **भगवान् वेद** के नामरूप गुणलीला का सर्वोत्कृष्ट प्रचार-प्रसार अत्यंत हर्ष-आश्चर्य से मुग्ध होकर मैं देखती रही हूँ। मेरी बुद्धि या हृदय वेद, गुरु और ईश्वर तीनों को अद्वैत-रूप से ही ग्रहण करते हैं। वेद ही ज्ञान, सूर्य-प्रकाश, प्रेम है, जो प्रायः एक ही ईश्वर के अनेक नाम **हैं**, जैसे वेद-वाणी ही है-**'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'** एक ही सत्य स्वरूप भगवान को गुणीजन विभिन्न नामों से पुकारते हैं। कई वर्षों से मैं गुरुदेव से प्रार्थना करती रही कि मुझे वेद के गुह्यतम स्वरूप की झाँकी करायें। प्राचीन काल में बड़े ऋषि-मुनि, द्रष्टा-स्रष्टा, तपस्वी, ज्ञानी, योगीजनों ने सनातन धर्म-स्तंभ **भगवान् वेद** को कहाँ, किन रूपों में अपने ध्यान-समाधि में देखा, उसके मूल रहस्य पर प्रकाश डालें। संगीत भी मुझे बहुत प्रिय है, साम-गान संगीत में क्यों किया जाता है, वेद की ऋचाएँ उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि अनेक भेदों से

कैसे गाई जाती हैं, एवं उसमें राग, ताल, स्वर एवं ग्राम की रचना की उत्पत्ति जानने के लिए मैं अधीर थी । आखिर एक दिन जब आप हरिद्वार में संध्या—समय पतित पावनी गंगाजी के तट पर साथ बैठे थे, तब आपने वेद के विषय में अतिरम्य, रस—सुधा—पूर्ण ज्ञान—प्रदायक जो बातें कहीं, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :

आपने कहा—"बेटी वेद का स्वरूप अकल्प्य, अनिर्वचनीय है, पूरी जीवन—अवधि भी उसका निरंतर अभ्यास किया जाय, तब भी उसके अपरिमित ज्ञान—प्रकाश को कोई नहीं पा सकता । फिर भी उसका पुराणोक्त इतिहास बहुत रुचिकर है । सुनों, देवताओं के निवास-स्थान, दीप्तिमान, स्वर्णमय, रत्नमय शिखरों से सुशोभित गिरिराज सुमेरु जहाँ है, उस ईलावृत्त वर्ष में प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण जम्बूद्वीप के एक सुंदर स्थान **वेदनगर** में गये । उस नगर में **भगवान् वेद** सदा साकार होकर विद्यमान रहते हैं । उनकी सभा में वीणा—पुस्तक-धारिणी वाणी (सरस्वती) त्रिभुवन के अधिष्ठानभूत श्रीकृष्ण—चरित का गान करती है । अप्सराएँ नृत्य करती हैं एवं नारदजी तम्बुरु बजाते हैं । सुदर्शन आदि गंधर्व—गण विविध वाद्यों एवं दुन्दुभि बजाते हुए उनको रिझाते हैं । यहाँ अठारह भेदों के साथ स्तुति—संगीत—लहरी बहती रहती है । आठों ताल, सप्त स्वर और तीनों ग्राम भी मूर्तिमान होकर बिराजते हैं ।"

"तो प्रभु, ताल—स्वर—ग्राम थे, तो विभिन्न रागों की उपस्थिति भी होगी ।" मैंने सहज भाव से प्रश्न किया ।

"हाँ, क्यों नहीं ! वेदनगर में राग-रागनियाँ, इनकी पाँच—पाँच स्त्रियाँ, एवं आठ—आठ पुत्र भी साकार बन कर निवास करते हैं । भैरव, मेघ-मल्हार, दीपक, मालकौंस, श्री राग, एवं हिंडोल, ये सब राग बताये जाते हैं । उनका रंग भी क्रमानुसार भूरा, हरा, मोर के समान कान्तिमय मेघमल्हार का, सुवर्ण के समान दीपक का, और अरुण रंग श्रीराग का है । हिंडोल हंस के समान धवल है ।" इन सब रंग तरंगों की आभा ने मेरे मानस—पटल पर एक अति मनोहर इन्द्र—धनुष को अंकित कर दिया । सामने शांत—गंभीर गंगा—प्रवाह के पार, भगवान् भुवन—भास्कर अस्ताचल पर अपनी लाल किरणें बिखेरते हुए पृथ्वी से विदा ले रहे थे । पक्षी—गण मधुर कलरव के साथ अपने नीड़ों की ओर जा रहे थे । यहाँ मेरा हृदय सूर्य—वेद की लालिमा में वेद—ऋचाओं के मधुर संगीत को सस्वर ताल देता हुआ गंगा-प्रवाह में एवं इन दोनों के संम्पूर्ण समन्वय स्वरूप दिव्य ज्ञानमूर्ति गुरुदेव में लीन था । यह एक अद्भुत अनुभूति थी ।

अब आश्रम में लौटने का समय हो चुका था । प्रभु के पाद-पद्मों में कृतज्ञ हृदय से मैं प्रणाम करके उठी । ऐसा सुअवसर भाग्य से ही प्राप्त होता है ।

यहाँ भाग्य की सराहना करते हुए मुझे परम कृष्णभक्त कवि जयदेव–रचित सुंदर स्तुति के अंतिम स्तबक का स्मरण अनायास हो आता है—

श्रीजयदेव–भणित–विभव–
द्विगुणीकृत–भूषण–भारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं
रुचिरं सुकृतोदय–सारम् ।

इन्दिरा गांधी से मुलाकात

आप अहमदाबाद से दिल्ली पधारे। ता. २९ सितम्बर को दिल्ली में प्रातःकाल भारत के प्रधान-मंत्री इंदिरा गांधी से आपकी मुलाकात हुई। कई विषयों पर बातचीत हुई। श्रीमती गांधी आपको पिता-तुल्य मानती हैं। अनेक प्रसंगों पर मैंने स्वयं सुना है और अन्य भक्तों द्वारा इस बात का अनुमोदन भो हुआ है। जब जब आप आश्रम में पूज्य गुरुदेव के पास पधारती हैं, तब तब पूर्ण श्रद्धा भक्ति से प्रणाम कर अपनी विनम्रता प्रदर्शित करती हैं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री नेहरू जी एवं शास्त्रीजी भी आपके प्रति स्नेह एवं समादर–भाव रखते थे। इसी प्रकार श्रीमती इंदिरा गांधी भी समय–समय पर आप से परामर्श करके भारतमाता एवं उनकी संतानों की प्रगति के विषय में अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने के लिए मार्ग-दर्शन भी प्राप्त करती है। हम जानते ही हैं कि भारत की भूमि में प्रभु के प्रत्यक्ष अवतार के रूप में संत घूमते रहते हैं और उनकी सहायता एवं प्रेरणा से अनेक बार वेद, धर्म, संस्कृति एवं भारतमाता की रक्षा होती रही है।

हरिद्वार में वेद–प्रतिष्ठा

२ अक्तूबर को आप दिल्ही से हरिद्वार पधारे। देहरादून के महन्त श्री इंद्रेशचरणदासजी के साथ आपका पुराना संबंध है। अतः कभी कभी एक–दूसरे से दर्शनार्थ मिलने चले जाते हैं। ता. ५ को देहरादून में उनसे मिलकर आप हरिद्वार लौट आये। दूसरे दिन नवरात्र का आरंभ हो गया। उस दिन प्रातः श्याम सुंदरजी की गरीबदासी धर्मशाला में एवं अपराह्न अवधूत मण्डल महेशजी के यहाँ **भगवान् वेद** की आपने प्रतिष्ठा की।

दिल्ही से बम्बई

ता. ७ अक्तूबर को आप पुनः दिल्ही आ गये और दूसरे दिन प्रातःकाल वृन्दावन पधारे। यहाँ दशहरा का उत्सव मनाकर ता. १७ को दिल्ही होते हुए आप अपने परम प्रेमी भक्त श्री गोविन्दराम सेउमल के सुपुत्र अशोक के शुभ–विवाह निमित्त बम्बई आये। उसके दूसरे दिन, ता. १८ अक्तूबर को आपके भक्त

श्री करमशी सोमैया के निवास पर आपके कर-कमलों से **भगवान् वेद** की स्थापना हुई । भगवान् का मंदिर बहुत सुंदर बनाया गया था । वेदपाठ और प्रवचन के पश्चात् आपने आशीर्वाद दिया । ता. १९ को धर्मदासजी के सुपुत्र अशोक के विवाहोत्सव में पधार कर आपने नवदम्पती को आशीर्वाद दिया । दूसरे दिन भाई गोविन्दराम के निवास स्थान में भगवान् वेद की पूजा एवं प्रवचन हुए ।

उत्तर भारत में

२१ अक्तूबर को आप प्लेन से दिल्ही आकर दूसरे ही दिन निर्मल रजत-जयन्ती उत्सव निमित्त आप अमृतसर पधारे । ता. २६ को उपर्युक्त अवसर का उद्घाटन कर आपने प्रवचन किया । इसके पश्चात् डॉक्टर साध्वी कृष्णाबहन के आश्रम में पधारकर, वहाँ भी आपने वेद-विषय पर मननीय प्रवचन किया था ।

बहनों को वेदाध्ययन की आज्ञा क्यों नहीं है ?

कांग्रेस की कतिपय महिला-कार्यकर्त्री पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ आईं । कुशल चर्चा के बाद एक बहन ने आपसे विनयपूर्वक कहा : 'प्रभु, हमारी संस्कृति में महिलाओं को पर्याप्त अन्याय हुआ है।'

"कैसे ?" प्रभु ने पूछा ।

"स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं, ऐसा क्यों ?" बहन ने पूछा ।

"देखो बेटा," प्रभु प्यार से बोले—"इस बात को जरा ध्यान से समझना चाहिये ।"

"कैसे प्रभु ?" नम्रता से बहन ने कहा ।

उत्तर में प्रभु ने एक उदाहरण दिया—"एक पिता था । उसके दो बालक थे । दो में से एक केवल अध्ययन में ही लगा रहता था, दूसरा कुटुम्ब-वत्सल था । वह सारा दिन घर का काम करता, अतिथि का सत्कार करता, बीमार-अशक्तों की सेवा करता और बहुत से कार्यों में अपने माता-पिता की सहायता करता था । एक दिन पिता ने दोनों बालकों को बुलाकर कह दिया कि तुम दोनों आज संध्या तक वेद के बीस-बीस मंत्रों का मुखपाठ करके ले आओ । वह बालक, जो केवल पढ़ाई में ही रत था, शाम तक निर्धारित मंत्रों का मुखपाठ करके आ गया । पर दूसरा लड़का दिन भर घर का काम करता रहा, वह मंत्र पाठ नहीं कर पाया । अब पिता अगर उसे डाँटने लग जाय, तो तुम्हीं बताओ, क्या वह योग्य होगा ?"

"नहीं, बिलकुल नहीं !" सभी महिलाएँ सहमत हो गईं ।

"ठीक उसी प्रकार समझना है । माता या महिला सारा दिन काम करती रहे । वैदिक काल में न तो पानी के नल थे, न आटा पीसने के यंत्र थे । मक्खन भी डेरी से तैयार होकर आज की तरह थोड़े आता था ? वहाँ तो मुँह अंधेरे

उठना, गौ माता को चारा–पानी करना, गो–दोहन करना। फिर नदी अथवा सरोवर पर जाकर स्वयं स्नान करना और पीने का पानी सिर पर उठाकर घर ले आना। यदि नदी न हो, तो कुँए से खींचकर पानी निकालना। घर में कोई वृद्ध, बालक, अपंग या अपाहिज हो, तो उनके लिए भी पानी ले आना। घर में दधि–मंथन करना, दाना पीसना, भोजन बनाना। मध्यान्ह को थोड़ा-सा विराम, फिर अपराह्न खेत से लाया गया अनाज साफ करना, रूई से सूत कातना, और सूत से वस्त्र बुनना, अतिथियों और मेहमानों का स्वागत–सत्कार करना, सायंकाल का भोजन बनाना—कितने सारे काम बहनों–महिलाओं को उस काल में करने पड़ते थे! अब तुम ही बताओ कि पुरुषों की तरह महिलाओं को भी वेद के मंत्रों का मुखपाठ करने को कह दिया जाता, तो उनपर काम का कितना बोझ पड़ता ?"

"हाँ प्रभु ! बोझ ता पड़ जाता और सभी माताएँ कर भी नहीं पातीं।" बहन ने स्वीकार किया।

"अतः हमारे पूर्वज ऋषियों ने सोच–समझकर ही वेदाध्ययन का भार बहनों पर नहीं डाला है।"

"तो क्या वेद के मन्त्र स्त्री पढ़ ही नहीं सकती ?" एक अन्य प्रश्न उपस्थित हो गया।

"क्यों नहीं बहन ? वेद में ही सत्ताइस ऐसी महिलाएं हैं, जिन्हें ऋषिका बताई गई हैं। ये सत्ताइस महिलाएं वेदमंत्रों की द्रष्ट्री थीं। उन्हें वेद–मंत्रों के दर्शन हुए थे। आप ही बताओ, जिनको वेद के दर्शन हुए हों, ऐसी बहनों को वेद–मन्त्रों से वंचित क्यों रखा जाय ? आप भी चाहें, तो वेद पढ़ सकती हैं।"

मुख्य मंत्री श्री बाबूभाई पटेल से मुलाकात :

३० अक्तूबर को आप दिल्ही होते हुए वल्लभविद्यानगर पधारे और कुलपति (वाइस चांसेलर) श्री रमणभाई पटेल के निवास–स्थान पर ठहरे। गुजरात के मुख्यमंत्री श्री बाबूभाई जसभाई पटेल आपके दर्शनार्थ आये। उनके साथ राजनीति विषयक वार्तालाप हुआ। उस दिन स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल के शताब्दि–समारोह के अवसर पर गुजरात राज्य के राज्यपाल श्री के. के. विश्वनाथन् द्वारा वल्लभ विद्यानगर में **भगवान् वेद** की स्थापना हुई। श्री चिमनभाई, श्री रमणभाई, श्री गुलाब बहन आदि ने प्रवचन किये। १ नवम्बर को आप वल्लभ विद्यानगर से वडोदा आये और अपने परम प्रेमी भक्त साधुसेवी श्री मगनभाई पटेल के दिनेश मिल स्थित आवास में विश्राम कर ता. २ को वृन्दावन पधारे।

वृन्दावन में दीपोत्सवी :

२ नवम्बर को दीपावली थी। दूसरे दिन अन्नकूट का उत्सव हुआ। ३१ अक्तूबर को पूज्य श्री मूलबिहारीजी द्वारा वृन्दावन में श्री दामोदर चेनराय,

श्री माधुरी माता, श्री मथुरादास एवं विश्वोबहन की ओर से आरम्भ किये गये भागवत सप्ताह की पूर्णाहुति हुई । जैसा कि पहले बताया जा चुका है, आपकी उपस्थिति में स्थान-स्थान पर वेद-पारायण की शृंखला भिन्न-भिन्न प्रेमियों की ओर से चलती रहती है । महापुरुषों के सिद्ध संकल्पों की ये अचूक अनुभूतियाँ हैं । नवम्बर में आप प्रायः वृन्दावन में ही निवास करते हैं । अतः वृन्दावन अनेकविध अध्यात्म-प्रवृत्तियों का केन्द्र बना रहता है ।

७ नवम्बर को श्रौतमुनि निवास में आपकी अध्यक्षता में अध्यापक-गण की सभा हुई एवं सबको यथोचित दक्षिणा के द्वारा संतुष्ट किया गया ।

भगवान से भगवान की कामना करो

वृन्दावन निवास दरम्यान एक बार सद्‌गुरुदेव से किसी भक्त को एकान्त में कुछ प्रश्नोत्तर करने का प्रसंग छिड़ गया । आपको उत्साह में आकर भक्त ने कह दिया कि 'मेरे पर भगवान को बहुत बड़ी कृपा है । मैं बचपन में गरीब था । मुझे आप जैसे सद्‌गुरु मिले । मुझे खिलाया-पिलाया और पढ़ाया भी । आगे चलकर नौकरी भी गुरुकृपा से अच्छी मिली । पत्नी भी सुशील एवं बच्चे भी यथाकाल मिले । घरबार भी बन गया । यश की भी प्राप्ति हुई । मतलब प्रभु ! मैंने जीवन में जो भी चीज माँगी वह मिली । जो भी पदार्थ की इच्छा की प्रभु ने मुझे दे दिया । ऐसा विस्तृत निवेदन करके धीरे से भक्त ने पूछा 'प्रभु ! इसका रहस्य क्या है ?'

गुरुदेव पहले तो मस्ती में आकर हँसने लगे । फिर बोले 'बेटा ! नन्द-नन्दन की लीला न्यारी है । आपकी ईश्वर भक्ति, गुरुश्रद्धा और संतसेवा बढ़ती रहे इसलिये प्रभु ने उत्तरोत्तर प्रगति प्रदान की । लेकिन एक बात मत भूलों कि यह सब माया के पदार्थ है । इससे संसार से मुक्ति नहीं है । '

'तो प्रभु क्यों यह सब देते हैं ? '

'बेटा! मैंने कहा कि नन्दनन्दन की लीला न्यारी है । वह माँगने वाले को यह सब देते हैं ताकि वह प्रभु को न माँगे । यदि भक्त सब छोड़कर प्रभु की ही कामना करे तो प्रभु स्वयं दौड़कर आ जाय । जैसे प्रहलाद के लिये पधारे थे ।'

'तो भगवान से क्या माँगना चाहिये ? ' भक्त ने सीधा सवाल किया ।

'बेटा !' गुरुदेव ने अत्यन्त स्वाभाविक स्वस्थता से उत्तर दिया, 'भगवान से भगवान की कामना करो । जब आप संसार के पदार्थों को छोड़कर प्रभु से प्रभु की कामना करोगे तो वह स्वयं दौड़कर चला आयेगा । जब तक सांसारिक वासना हृदय में रहेगी तब तक ईश्वर कोसों दूर रहेगा । अतः प्रभु से प्रेम की मस्ती में आकर प्रभु की ही कामना करो । और यह भी जान लो कि एक बार प्रभु की प्राप्ति हुई

तो फिर संसार की कोई भी चीज अप्राप्य नहीं है। सारा संसार हस्तामलकवत् सिद्ध हो जायेगा और अष्टसिद्धि नवनिधि तो दासियाँ बनकर चारो ओर घूमेंगी।'

श्रीकृष्ण–सर्व के आधार

इस वृन्दाबनभूमि के कर्णाधार भगवान श्री कृष्ण के बारे में बताते हुए आपने कहा कि श्रीकृष्ण तो सर्वाधार हैं, सर्व के आधार हैं। जो भी स्थावर एवं जंगम पदार्थ हैं, सब के आधार मेरे प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र भगवान है। जीवन में मनुष्य मात्र किसी न किसी की कामना करता रहता है। स्त्री, धन, पुत्र, वाहन, कीर्ति, स्थान–मान, विजय इत्यादि की इच्छा मानव के मन में बनी रहती है। प्रश्न यह है कि इन सभी की पूर्ति कहाँ हो सकती है ? तो उत्तर सहज है : श्रीकृष्ण में। गोपियाँ काम से, कंस भय से, शिशुपाल द्वेष से, या अन्य संतऋषिगण भक्ति से प्रभु की शरण में गये और सभी मुक्त हो गये।

आपको ज्ञात होगा कि प्रभु के हाथ में सुदर्शन चक्र घूमता है। यह चक्र भी हमें एक संदेश देता है। उसका नाम है सु-दर्शन, इसकी ओर देखो, भाई, यह सुंदर दर्शनवाला है। इसके दर्शन से हमें प्रेरणा मिलती है कि प्रभु भी चक्र की भाँति सदैव सु-दर्शन है और गतिशील रहकर प्राणी मात्र को गति प्रदान करते हैं। स्वयं विश्व के केन्द्र बने हुए हैं और चक्र की भाँति प्राणि मात्र को एवं समग्र पदार्थों को घूमाते रहते हैं। प्रभु की रासलीला में भी केन्द्र में आप हैं और गोपियाँ चारों ओर घूमती हैं। यह भी यही सूचित करता है कि प्रभु सबके केन्द्र हैं और चराचर विश्व उनकी इच्छा से चारों ओर घूमता रहता है। हम उसकी शरण में जायँ तो हमारा उद्धार हो जाय।

स्तुति से बन्धमुक्ति—[वेद कथा का आध्यात्मिक रहस्य] :

'क्या स्तुति से बन्धमुक्ति हो सकती है ?' एक दिन किसी भक्त ने प्रश्न किया।

'जरूर होती है बेटा' प्रभु ने प्यार से उत्तर दिया।

'कैसे ?'

'वेद में ही कथा आती है।' प्रभु बोले। 'एक बार रेभ नाम के ऋषि को असुरों ने पाश से बाँध लिया। और अंधेरे कुँएं में डाल दिया। वहाँ दस दिन तक और दस रात तक बेचारे ऋषि दु:खी होते रहे। अन्त में तंग आकर ऋषि ने हृदयपूर्वक अश्विनों की स्तुति की।

'फिर क्या हुआ ?'

'होना क्या था बेटा ?' प्रभु बोले, 'भगवान तो हमेशा अपनी संतान पर वात्सल्य ही रखता है। तूर्त ही उपस्थित हो गये और ऋषि के बंधन काट दिये। उन्हें मुक्त किया और अंधेरे कुँएं से बाहर निकाला।'

'भगवन् क्या इस कथा में कोई गहरा रहस्य है?' भक्त ने पूछा ।

'क्यों नहीं बेटा', दयालु प्रभु ने रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा, वेद के वचन तो रहस्यमय ही होते हैं । यहाँ रेभ ऋषि जीवात्मा का प्रतीक है । काम, क्रोध, लोभ ये सब असुर हैं । ये असुर अपने पाश में जीवात्मा को बाँध लेते हैं और उसे कुँए में याने यह संसार में डाल देते हैं । वह जब इस बंधन से मुक्त होने के लिये प्रभु को पुकारता है तो प्रभु सहसा पधारते हैं और उसे मुक्त कर देते हैं ।

'प्रभु इसमें दस दिन की जो बात है उसका भी कोई रहस्य है?' भक्त ने पूछा ।

'हाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं पाँच कर्मेन्द्रिय मिलकर दस होते हैं । यहाँ उपलक्षण से बताया गया है कि मानों जीव एक–एक इन्द्रिय और उनके विषय में एक-एक दिन रत रहता है । जब उसे दसों इन्द्रियों में वैराग्य होता है तब वह प्रभु की स्तुति करता है और अन्ततोगत्वा प्रभु नंदनंदन की कृपा से उसे मुक्ति मिलती है ।'

आपको वेद, गौ, ब्राह्मण एवं विद्वद्‌गण के प्रति बहुमान है । अतः आप निरंतर स्वाध्याय-रत रहनेवाले विद्वानों के प्रति असीम औदार्यपूर्ण व्यवहार करते हैं । **भगवान् वेद** जब से ग्रंथ रूप में साकार बने तब से वेदवेत्ता ब्राह्मणों का भी तप-तेज प्रकाशित हुआ है, यह निःसंदेह है । भारत की गोद में जो ये वेदज्ञ पुत्ररत्न धर्म–ऋषि के अभाव अञ्चल में ढके हुए थे, **भगवान् वेद** के दिव्य प्रकाश से जग उठे और आज ऐसे सुप्रसन्न हैं, जैसे किसी व्यक्ति का लुटा गया धन–भण्डार उनको सादर पुनः प्राप्त हो गया हो या मृत्यु की राह देखते मानव को सहसा संजीवनी प्राप्त हुई हो । अतः वेद विद्वान् मण्डल रूपी नक्षत्र-गण में आप पूर्णचंद्र समान सुशोभित-वंदित हैं । एक दिन मैं '**ब्रह्मवित्सूक्त–ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे**' का भगवान् वेद-ग्रंथ पढ़ रही थी, तब सहज ही हृदय में यही उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई कि हे वेदमूर्ति गुरो! जिस स्थान में ब्रह्मज्ञानी दीक्षा एवं तप के प्रभाव से जाते हैं, आप मुझे भी वहाँ ले जाकर ब्रह्मज्ञान प्रदान करो ।'

ता. ८ नवम्बर को श्रौत मुनि–निवास वृन्दावन में भाई भूरामल अग्रवाल एवं बजरंगजी तथा मणिबहन द्वारा नियोजित भागवत सप्ताह पंडित रासबिहारीजी ने शुरू किया । काशीजी से पंडित ऋषिशंकरजी आये एवं वेदशिबिर चालू हुआ । ११ नवम्बर गोपाष्टमी के शुभदिन बाँकेबिहारीजी का पूजन अर्चनादि हुआ तथा २१ दिन का वेद-पारायण भी रखा गया । १६ नवम्बर को श्री भूरामल योजित भागवत सप्ताह

की पूर्णाहुति की गई। ३० नवम्बर को वेद-शिबिर के सदस्य एवं अध्यापक गण की सभा हुई, जिसमें प्रवचन भी हुए। दूसरे दिन २१ दिनों का वेद पारायण पूर्ण हुआ। ३ दिसम्बर को वृन्दावन में सब छात्र तथा अध्यापक-गण श्री बाँकेबिहारी जी के मंदिर में दर्शनार्थ गये, प्रसाद एवं माला अर्पण कर वेद-मंत्रों द्वारा पूजन तथा सामवेद का मधुर गान हुआ।

ता. ८ दिसम्बर को आप प्रभुपाद भक्तिवेदान्त स्वामि के आश्रम में पधारे। सायंकाल श्री मुकुंदहरिजी के उत्सव में उपस्थित होकर जनता को दर्शन दिये।

कलकत्ता में

कलकत्ता निवासी श्री रामलुभाया आपके परमभक्त एवं सेवक हैं। उनके सुपुत्र की शादी के निमित्त आप ता. ९ दिसम्बर को वृन्दावन से कलकत्ता पधारे एवं अमर-भवन में ठहरे। ता. ११-१३ दिसम्बर को श्री रामलुभाया जी के दोनों सुपुत्रों प्रमोद एवं प्रवीण के विवाह क्रमशः निशा तथा रेणू के साथ हुए। आपने दोनों दम्पति को आशीर्वाद दिया। उसी दिन श्री भागराज के सुपुत्र योगेन्द्र का भी विवाह हुआ। अंत में ता. १८ दिसम्बर को गीता-जयंती के दिन, अमर भवन में गीता-पाठ, पूजा तथा आपका गीता-रहस्य विषयक मननीय प्रवचन हुआ।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः

गीता जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रवचन देते हुए आपने बताया कि—

"सज्जनो! वेद एवं गीता का संबन्ध माता एवं पुत्री के समान है। कभी-कभी संसार में भी आपने देखा होगा कि देहसौष्ठव में, रूपरंग में, कद एवं वर्तन में पुत्री माता का अनुकरण करती है, इतना ही नहीं कहीं-कहीं तो माता के ही शब्द लेकर थोड़ा-सा इधर उधर करके उसे ही बोलती रहती है। माता का दिया हुआ संस्कार-धन पुत्री की नस-नस में व्याप्त हो जाता है।

वेदमाता एवं गीता का भी वैसा ही समझ लो। वेद के ही शब्दों में गीता मानों बोल रही है। उदाहरण के तौर पर एक वेदमंत्र एवं एक गीता का श्लोक प्रस्तुत है—

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः॥

—ऋ. वे. १-२६-३

वरेण्यः–वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, **पिता**–(जिस प्रकार) पिता, **सूनवे**–पुत्र को, **या आपिः**–बन्धु, प्रिय व्यक्ति **आपये**–बन्धु को, अपने प्रिय व्यक्ति को तथा, **सखा**–मित्र, **सख्ये**–मित्र को, **हि ष्म**–सर्वथा, **आ यजति**–अभीष्ट, इच्छित प्रदान करता है, उसी प्रकार हे अग्निदेव, हे परमात्मन् तू हमें भी अभीष्ट प्रदान कर ।

यहाँ पिता पुत्र को, बन्धु बन्धु को और सखा सखा को जैसे प्रेम से सब कुछ देता है, उसी प्रकार हे परमात्मा तू भी हमारे लिये इष्ट कामनाओं की पूर्ति करनेवाला बन जा, ऐसी प्रार्थना की गई है ।

अब गीता में देखिये। अर्जुन प्रभु के विश्वरूप के दर्शन करके प्रभु के सच्चे स्वरूप का ज्ञाता हो गया है । अतः प्रभु से प्रार्थना करता है—

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

—श्रीमद्-भगवद्-गीता ११-४४

तस्मात्–इसलिये, **कायम्**–अपने शरीर को, **प्रणिधाय**–पृथ्वी पर, दण्डवत्-रखकर, **प्रणम्य**–नमस्कार करके, **ईड्यम्**–स्तुति योग्य, **ईशम्**–ईश्वर, ऐसे **त्वाम्**–आपको, **प्रसादये**–मैं प्रसन्न करता हूँ, **देव**–हे देव, **पुत्रस्य पिता इव**–पुत्र के अपराध को पिता की भाँति, **सख्युः सखा इव**—सखा के अपराध को सखा की भाँति, **प्रियायाः प्रियः इव**–प्रिय पत्नी के अपराध को प्रियतम की भाँति, **सोढुम् अर्हसि**–आप क्षमा करने योग्य है ।

विद्वान् लोग नोट कर ले कि कहाँ गीता-माता ने वेदमाता के शब्दों का प्रयोग करके अपना एवं वेद का सुदृढ़ संबंध हमें अवगत कराया है । वेद मंत्र के **पिता सूनवे, आपिः आपयेः** और **सखा सख्ये** शब्दों के स्थान पर गीता में पितेव पुत्रस्य प्रियः प्रियायाः शब्द श्लोक में दृष्टिगोचर होते हैं, उसमें अर्थ की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है । **भगवान् वेद** ईश्वर को **वरेण्यः**—वरण करने योग्य कहता है, गीता में प्रभु को **ईश** और **ईड्य** कहा है। वह भी एक रूप से अन्यत्र उपलब्ध वेद के मंत्रों का भाव ही प्रगट करता हैं ।

इस मंत्र एवं श्लोक में सर्वथा मननीय बात तो अब बताता हूँ। पिता अपने पुत्र का अपराध सहन करता है और उसे क्षमा करता है, इस प्रकार के कथन में

भक्तिमार्ग में प्रसिद्ध वैसी वात्सल्य भक्ति का निर्देश है। सखा सखा को क्षमा करता है, वहाँ सख्य भक्ति है। प्रियतम प्रिया के अपराध को क्षमा करता है यहाँ मधुरभक्ति या कान्ताभक्ति का भाव सुलभ होता है। इस प्रकार एक ही वेद मंत्र में या गीता के श्लोक में तीन-तीन प्रकार की भक्ति का द्योतन समुचित रूप से किया गया है। और आगे चलकर कहा जाय तो पुत्री हमेशा माता से थोड़ी बहुत विशेषता रखती हुई देखी गई है। गीताजी ने भी **प्रणिधाय कायम्**-शब्द का प्रयोग जोड़ कर वेदमाता से एक अधिक भाव यहाँ प्रदर्शित कर दिया है और वह है वन्दन भक्ति। या इसे दास्यभाव भी कह सकते हैं।

जयन्ती पर बम्बई में :

ता. २७ दिसम्बर को जन्म-जयंती उत्सव पर नियमानुसार आप बम्बई प्लेन से पधारे। ता. २५ को चि. भारती मनोहर के विवाह में उनको आशीर्वाद दिया। दूसरे दिन पूना के श्री शिवशंकर आप्टे को **भगवान् वेद** आपने प्रसाद रूप में दिया।

ता. २९ से नित्य क्रमानुसार हमारे पूज्य राम लक्ष्मण युगल रूप श्री कृष्णानंद-गोविंदानन्दजी ने, तुलसी निवास में रामायण की रस-प्रद कथा शुरू की। आप ऐसी सुंदर मनोहर शैली में रामायण की बोध-प्रदायक, प्रेम-स्रवित कथा करते हैं कि प्रातः से लेकर सायंकाल तक, जनता बहुत रुचि से इस कथामृत का पान करते अघाती नहीं। ता. ६ जनवरी को रामायण की पूर्णाहुति, आरति, प्रसाद वितरण तथा ब्रह्मभोज हुआ।

९५ वीं जन्म जयंती :

ता. ७ जनवरी, पौष शुक्ल सप्तमी के दिन आपका ९५ वां जन्म-दिन था। प्रतिवर्ष के क्रमानुसार आपके अति प्रेमी भक्त श्री बालचंद पमनानी के निवास-स्थान में आपका पूजन रखा गया था। प्रातः ६ बजे से लेकर १२ बजे तक भक्त-समुदाय सतत एकत्रित होकर, फल, पुष्पहार, उपहार आदि के साथ, आपकी पूजा करके, आरति कर आपके अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करते रहते हैं। शाम को तुलसी निवास में आप उत्सव-समय पर पधारे। संत-जन सब स्टेज पर आपके दोनों ओर प्रसन्न वदन बैठे थे, मानो नक्षत्र गण के मध्य सुशोभित चन्द्र विराजमान हो। जनता भी टकटकी लगाकर आपका मंगल दर्शन कर रही थी। परम भक्त, कीर्तन विशारद श्री राम पंजवानी, परम श्री कृष्ण-प्रेमी दलीलीजी आदि ने अपने-अपने सुरम्य संगीतयुक्त कीर्तन के द्वारा बम्बई को मानों वृन्दावन धाम ही बना दिया। सचमुच ही, अत्यंत भावपूर्ण कीर्तन, कृष्ण-प्रेमी रसिकों का रसामृत है, जो अपनी मधुर रसना द्वारा, श्रोताओं के चित्तरूपी

मलिन दर्पण को शुद्ध करता है, अपनी मंगल प्रदायिनी कैरव चन्द्रिका का वितरण कर हृदय सागर में सतत आनंद ऊर्मियों को बढ़ाता है। श्री कृष्ण संकीर्तन की महिमा कितने मधुर शब्द–सुमनावली में अंकित की गई है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ।

—श्री चैतन्य चरितावली

चित्त रूपी दर्पण का मार्जन करनेवाला, संसाररूपी महान दावाग्नि का शमन करनेवाला, कल्याणमय चन्द्रिका का वितरण करनेवाला, विद्यारूपी वधू का जीवन, आनन्द रूपी सागर का संवर्धन करनेवाला, पद-पद पर पूर्ण रूप से अमृत का आस्वादन करानेवाला सर्वरूप से आत्मा को स्नान करानेवाला श्री कृष्ण का संकीर्तन सर्वोत्कृष्ट रूप से विजयी होता है।

अन्त में आपके आशीर्वचन, आरति एवं प्रसाद ग्रहण के बाद उत्सव की समाप्ति हुई।

२. पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।

अ. वे. १०-८-३९

पूर्णं पूर्णेन सिच्यते अ. वे. १०-८-३९

भगवान् वेद का कथन है कि पूर्ण से पूर्ण का सिंचन होता है। यही वेद के दर्शन की विश्वसमस्त को अद्वितीय देन है कि सर्वोत्तम तत्त्व का स्वरूप-वर्णन अत्यंत सरलतम भाषा में दे दिया गया है। परमेश्वर स्वयं पूर्ण हैं और वह अपनी पूर्णता से सारे संसार का सिंचन करता है और संसार भी कैसा ? वह भी पूर्ण। क्योंकि आखिर संसार भी ईश्वर का ही स्वरूप है। **सर्वं खलु इदंब्रह्म** की भावना यही बताती है। **पूर्णमदः पूर्णमिदम्** यह सुप्रसिद्ध वेदमंत्र भी इसी तथ्य के प्रति अंगुलिनिर्देश करता है।

यह पूर्णपरात्पर ब्रह्म किस प्रकार और कैसे अपने स्वरूपान्तर रूपी संसार और प्राणीमात्र का सिंचन करता है यह सवाल तो हमारे मन में अवश्य पैदा होगा। जो प्रश्न पैदा कराता है, वही उत्तर भी देता है। ब्रह्म स्वयं संतरूप होकर संसार का चप्पा-चप्पा छान मारता है, कोने-कोने में घूमता है, ब्रह्मनाद की आहलेक जगाता है और अमृतस्य पुत्राः बने हुए जीवमात्र को वेद की निर्मल वाणी का रसास्वाद कराके घोर तमोमय निद्रा से प्रभात के सूर्य की प्रथम किरण के समान जगाता है। और गुरुदेव भी यही करते हैं। अतः उनके चरित्र के बारे में यही कहना, वह भी वेद के ही शब्दों में, उचित होगा कि **पूर्णं पूर्णेन सिच्यते**-पूर्ण से पूर्ण का सिंचन होता है।

सन्ति सन्तः कियन्तः

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगा॥

—नीतिशतकम्-७४

'बिना प्रार्थना ही भगवान् भास्कर कमल-समुदाय को प्रफुल्लित करते हैं, वैसे चन्द्र भी बिना प्रार्थना कैरवपुष्पसमूह को अपनी अमृत किरणावली से विकसित करता है;

बिना माँगे मेघ भी जल-वर्षा करते हैं और सत्पुरुष भी स्वेच्छा से ही परहितार्थ उत्सुक प्रयास करते हैं ।'

उपर्युक्त श्लोक में तो सूर्य, चन्द्र, मेघ की पृथक्-पृथक् महत्ता प्रदर्शित की है । सद्गुरु तो इन तीनों से अतिरिक्त और बहुत कुछ के रत्न भंडार हैं, अनंत, असीम, असमापेय औदार्य सागर हैं, उनकी महिमा-गरिमा का गान करने में तो साक्षात् देवता समूह भी समर्थ नहीं, तो हमारे जैसे तुच्छ जीव उनके सत्-स्वरूप को कैसे समझ सकते हैं ! फिर भी आपके अनंत उज्ज्वल गुणों की छायामात्र भक्त शिष्य के हृदय में कोई अचिंत्य आनंद-ऊर्मि उत्पन्न कर देती है । आपके प्रत्येक गुण पूर्ण हैं, उनकी अंशमात्र प्रतीति प्राणियों के मन-हृदय को परिवर्तित कर, जीवन को सुख-शांति एवं आनन्द से समृद्ध बनाकर निज स्वरूप की ओर आकर्षित करती है । सूर्य ज्ञान, प्रकाश तथा अग्नि स्वरूप है, तो चंद्रमा शांत शीतल, सोमामृत का सुन्दर घड़ा है, वेद-शास्त्ररूप ज्ञानवारिधि से, अपने प्रकाश द्वारा जल खींचकर, मेघ बन, अपनी अमृत धारा से समग्र पृथ्वी को आप्लावित करने का अनुपम सौजन्य-औदार्य महान् पुरुषों का ही स्वभाव है । इन मुख्य तीन स्वरूपों के तो आप साकार श्रीविग्रह हैं । इतना ही नहीं, वर्षों के सतत् सानिध्य से मुझे आपके अति दिव्य जीवन की झाँकी करने का सौभाग्य मिला है ।

विपत्ति में अटूट शांति एवं धैर्य, विद्वानों का सत्कार, वेद-वेत्ताओं का यथोचित सम्मान एवं दक्षिणा, दूसरे के गुणों में प्रीति, क्षमाशीलता, सभा में आपकी ज्ञानगिरा का अस्खलित प्रवाह, वेद-शास्त्रों का नित्य पठन-पाठन, अपने सद्गुरु के प्रति हार्दिक कृतज्ञता, परोपकार एवं समुद्र के समान-उपकारक एवं अपकारक दोनों को आश्रय देते-देखे हैं । आकाश के तारे एवं पृथ्वी की रजकण की गणना सभव है, परन्तु आप तो अनंत गुण-रत्न-गर्भित सागर हैं, जिसका न आदि है न अन्त ।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य
निजहृदि विकसन्तः सन्तिः सन्तः कियन्तः ॥

—नीतिशतकम्-७९

जिसके मन-वचन तथा शरीर पुण्यरूप अमृत से परिपूर्ण हैं, जो शरीर से सदा पुण्य कर्म करते हैं, जो अनेक उपकारों से विश्व को तुष्ट-पुष्ट रखते हैं एवं दूसरे के छोटे-से गुण को बहुत बड़ा बनाकर, मन ही मन प्रसन्न रहते हैं, ऐसे

आप-स्वरूप विरल महापुरुष के चरण कमल में मेरा मन-भ्रमर सदैव संलग्न रहे, ऐसे संत बहुत कम होते हैं।

सन् १९७४ तथा १९७५ की विस्तृत विश्वयात्रा में आपको पर्याप्त परिश्रम हुआ। पहले भी आपका स्वास्थ्य अवस्था के कारण कमजोर था, परन्तु आप इतने दृढ संकल्प थे कि आखिर **भगवान् वेद** को विश्व भर में व्याप्त कर, विदेशियों को भी अपनी ज्ञान-प्रभा से एवं मधुर-बोध चंद्रिका से आश्चर्यचकित एवं प्रसन्न कर दिया। तब से जहाँ-जहाँ भी आप **भगवान् वेद** को लेकर पधारे, वहाँ-वहाँ उनके पारायण की प्रथा भी चल पड़ी एवं आपका शुभ जन्म-दिन महोत्सव भी प्रेमी लोग बड़ी श्रद्धा-भावना से मनाने लगे हैं। बम्बई में भी आपकी जन्म-जयन्ति पर, विदेश-निवासी, लन्दन, आफ्रिका, अमेरिका, मनिला, सिंगापुर आदि के निवासीजन अपना सब धंधा-व्यवहार छोड़कर उपस्थित हो जाते हैं। अमेरिका से श्री नारी पोहानी, आफ्रिका से श्री दामोदर चेनराय, मनिला से श्री श्याम दासवानी, सिंगापुर से श्री दादलानी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भक्तों की श्रद्धा

बम्बई में आपके जन्मोत्सव के पश्चात् आप थोड़े दिन दिल्ली में ठहरकर, वृन्दावन गये। ता. २२ फरवरी १९७६ को आपके परम प्रेमी भक्त श्री अर्जनदास तथा राधा दासवानी के सुपुत्र, चि. श्याम की शादी बम्बई में निश्चित थी। मायामी निवासी आपके भक्त श्री साम सानी की बहन देवी की सुपुत्री बीना के साथ, दोनों परिवारों की सम्मति से विवाह होनेवाला था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि दोनों भावी पति-पत्नी ने पहले कभी एक-दूसरे को देखा नहीं था। शाम दासवानी, अपने मामा श्री जोहनी मीरचंदानी के साथ मनिला में, बड़े बंधु श्री सुरेश के साथ व्यवसाय में नियुक्त थे। अतः इतनी दूर से आना, देखना, पुनः वापस जाना यह कठिन समस्या थी। बीना अपनी माता देवी बहन के साथ बम्बई में स्थायी थी। श्री अर्जनदास दासवानी की गुरुभक्ति एवं तज्जनित श्रद्धा भाव अत्यन्त प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। गुरुदेव की आज्ञा या इच्छा उन दोनों को सदैव सहर्ष शिरोधार्य थी। अतः उन्होंने आपके पास अपनी उलझन रखी। आप तो सर्वान्तरयामि हैं। आपने कहा कि दोनों अच्छे कुटुम्ब के, उमर लायक समझदार एवं गुरु-भक्त हैं, बिना एक-दूसरे को देखे, गुरु-वचनों में पूर्ण विश्वास रखकर यदि लग्न-ग्रंथी से युक्त होने के लिये तैयार हो, तो प्रथम बीना के मन को भी देख लो, अगर उसकी पूर्ण सम्मति हो तो श्याम को १० दिन पहले, फोन कर यहाँ आने का आदेश दो। उसपर बीना ने कहा कि जो गुरुदेव

कहें मैं सहर्ष पालन करूँगी। तब श्री दासवानी ने अपने पुत्र श्याम से भी यही प्रश्न पूछा और वह भी परम गुरु-भक्त होने के कारण, सहर्ष प्रभु के प्रस्ताव को स्वीकार कर, ता. २१ फरवरी को, मनिला से बम्बई पहुँचा ।

ता. २२ को रात्रि के २ बजे प्लेन से श्याम उतरे । यहाँ से देवी बहन, उसकी दो बहनें, अर्जनदास, राधा आदि स्वजन बोना के साथ हवाई अड्डे पर लेने गये। दोनों एक-दूसरे को देखने के लिये उत्सुक थे, साथ हृदय में गुरु के प्रति श्रद्धा-दीप भी प्रज्ज्वलित था, उसके प्रकाश में दोनों की आँखें मिलीं, दोनों के हृदय-कमल प्रफुल्लित हो उठे ।

पश्चात् १० दिन मिलते-जुलते दोनों प्रसन्न थे। अपनी बहन की पुत्री को, भाई सामसानी अपना ही मानते हैं । अतः मायामी से वे भी कुछ दिन पहले बम्बई पहुँच कर, सब तैयारी करने लगे । मनिला से भी अर्जनदास के सुपुत्र सुरेश, किशु तथा राधा का भाई जोहनी मिरचंदानी उनकी माताजी (देवी बहन) तथा विद्या बहन आदि भी अपने पति के साथ, इस शुभ अवसर पर उपस्थित थे।

आपके शुभ संकल्प द्वारा ता. २२ फरवरी को बड़ी शान से दोनों परिवार ने लग्न-विधि समाप्त की एवं आपने उपस्थित होकर नव-दंपति को आशीर्वाद दिया ।

शादी के बाद दोनों श्री वृन्दावन धाम में, अपने इष्टदेव श्री बाँकेबिहारीजी के दर्शनार्थ गये एवं २० दिन वहाँ रहे । शादी के उपलक्ष्य में भँडारा किया तथा ब्राह्मणों को भी दक्षिणा द्वारा संतुष्ट कर आशीर्वाद प्राप्त किया । वहाँ से नंदगाँव, बरसाना, हरद्वार आदि तीर्थस्थानों की यात्रा कर आशीर्वाद लेकर बम्बई वापस आये ।

आजकी पाश्चात्य विचारधारा में बहते युवति-युवकों का मानस दयनीय है। केवल आपके आदेशों का सहर्ष श्रद्धा से अनुसरण कर, अपने जीवन-साथी को बिना ही देखे-मिले अपनाना एक अभूतपूर्व श्रद्धा है, जो जीवन के रण-संग्राम में कोई विरल वीर दिखा सकता है। आज दोनों का दांपत्य-जीवन पूर्णतया सुंदर सुखमय बीत रहा है एवं उसकी प्रतीतिरूप पुत्री 'प्रिया' भी अपनी निर्दोष-क्रीड़ा से उनका मनोरंजन करती है ।

दादा गुरुजी की जयन्ती वृन्दावन में

वृन्दावन में दादागुरु स्वामी रामानन्दजी का जन्म-दिन फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को प्रतिवर्ष मनाया जाता है । इस वर्ष भी भक्तगण ने सुंदर सुवासित सुमनों से सज्जित एक मंडप बनाकर, स्वामी रामानंदजी के चित्र को रखा । उस

समय सौभाग्यवश लेखिका भी उपस्थित थी। उन्होंने बहुत पूज्यभाव से अपने दादा गुरु की पूजा-अर्चना की। संत समाज एवं जनता काफी संख्या में सत्संग श्रवणार्थ आतुर बैठी थी। हमारे मस्त कीर्तनकार स्वामी चेतनजी ने भाववाही कीर्तन किया। पश्चात् संतों के प्रवचन तथा अंत में आपके आशीर्वचन के बाद उत्सव समाप्त हुआ।

हरिद्वार से आबू

होली उत्सव तक प्रायः आप वृन्दावन में निवास करते हैं। अतः होली के बाद आप कुछ दिन हरिद्वार के अपने रामधाम आश्रम में, पतितपावनी गंगा के तट पर, कुछ वेद विद्वानों के साथ लेखन कार्य करते रहे। अप्रैल में गर्मी होनी शुरू हो जाती है। अतः आप अप्रैल-मई और जून, ये तीन मास माउन्ट आबू में, 'अविनाशी धाम' आश्रम में व्यतीत करते हैं। विद्वद्गण श्री बैजापुरकर, जोधपुर कालेज के संस्कृत अध्यापक पू. स्वामी सुरजनदासजी, श्री शुक्लाजी आदि उस समय आपके वेद-भाषांतर कार्य में सहायक रहते हैं। मई में सबकी छुट्टियाँ होने पर, लोग बम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली अमृतसर से आपके दर्शनार्थ आबू आ जाते हैं। उन दिनों काफी भीड़ हो जाने से आसपास के कमरे किराये लेकर व्यवस्था करनी होती है। परंतु आश्रम के बाहर, थोड़ी भी दूरी पर भक्तगण रहना पसंद नहीं करते। मैं इसलिये जून के अन्तिम सप्ताह में प्रभु के पास जाती हूँ, ताकि शांति से स्वाध्याय हो सके एवं प्रश्नोत्तरी का भी अवकाश मिले। उन दिनों मुझे बहुत आनंद प्राप्त होता है।

अहमदाबाद में गुरु-पूर्णिमा

ता. ११ जुलाई को व्यास-पूर्णिमा थी। आप ७-८ दिन पहले ही, आबू से पूर्णिमा के लिये अहमदाबाद पहुँच जाते हैं, तब मैं भी मा आपके साथ ही जाती हूँ। जैसे पहले भी बता चुकी हूँ। गुरु-पूर्णिमा के उत्सव निमित्त, भिन्न-भिन्न शहरों से भक्त-शिष्यगण, आपके दर्शन, पूजन-सत्संग के लिये भारी संख्या में आ जाते हैं; कभी कभी तो इतना विशाल वेद-मंदिर का आश्रम भी इन सबका समावेश करने के लिए नितान्त छोटा पड़ता है। बम्बई से भाई मुरलीधर-गोविंद भाई सपत्नीक, परसोत्तम भाई पटेल, लोकुमल-लक्ष्मीबहन, नानुभाई झवेरी, केटीबहन सिप्पी, सूरत से चूनीलाल प्रभुदास रेशमवाले का बंधु परिवार, इन्दौर से श्री दूबे जी, अहल्याबहन, दिल्ली से श्री किशनचन्द वधवा, डॉ. माथुर, विमला बहन, आबू से श्री ठाकुर भाई पटेल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अहमदाबाद की जनता

की गणना क्या करें। अहमदाबाद तो अग्रगण्य है ही । इस नामावली में भूल से यदि किसी प्रेमी भक्त के नाम छूट गये हों, तो वे उदार चित्त मुझे क्षमा कर दें !

पूर्णिमा उत्सव का वर्णन तो पहले भी हो चुका है, अतः यहाँ पुनरुक्ति न करके आगे चलती हूँ ।

बम्बई में रक्षाबन्धन

ता. २६ जुलाई को आपके साथ मैं बम्बई आ गई। भाई बालचंद पमनानी के मेघराज-भवन में आप ठहरे । ता. २३ जुलाई को न्युयोर्क निवासी, आपके परम भक्त श्री नारी पोहानी की ओर से, तुलसी-निवास में वेदपारायण प्रारम्भ कर, ता. ३० जुलाई को उसको पूर्णाहुति की गई। ता. ३१ जुलाई से ता. ८ अगस्त तक श्री नरेश सेक्सरिया के निवास-स्थान में वेदपारायण किया गया । ता. ९ अगस्त को रक्षाबंधन का शुभ दिन था । भाई-बहन ने आपको रक्षा बाँधकर अपने मन-हृदय को प्रसन्न किया। जो समस्त विश्व के आधार स्तम्भ हैं, जो सब प्राणीमात्र के रक्षक पोषक हैं, उनको भी हम उस पवित्र दिन रक्षा बाँधते हैं। इसका कारण यह है कि सद्‌गुरु ही हमारे माता-पिता, मित्र, सुहृद, साक्षी सर्वस्व हैं । अतः शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य-भाव की सुकोमल डोर से हम उनको दीर्घायु चाहते हैं ।

माता-पिता के रूप में सद्‌गुरु शिष्य को अपनी वात्सल्यमयी दिव्य गोद में बिठाकर, अनंत असीम प्यार-दुलार करते हैं, बंधु के रूप में वे सदा हमारे निकट, समहृदयी तथा संगी रहते हैं, सखा के रूप में हास-विलास, हार्दिक प्रेम एवं अंतस्तल की दशा के साक्षी हैं; ऐसे निस्वार्थ, परोपकारी प्रेमी को, ऐसा कौन अभागी होगा जो उनको दीर्घायु नहीं चाहेगा ? इस विषय में वेद में क्या ही सुंदर प्रार्थना है—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा
नः
स्वस्तये ॥

(ऋ. १। १। ९॥)

हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर ! पुत्र को जैसे पिता प्राप्त होता है, उसी प्रकार आप हम को उत्तम रूप से प्राप्त हो । हमारे उत्तम कल्याणमय जीवन के लिये हमारे साथ रहो ।

परमात्मा हमारे पिता एवं हम उस परम पिता के "अमृत पुत्र" हैं । पुत्र का अधिकार है, कि वह पिता की गोद में बैठे और निर्भय बने। इसीलिये परम

पिता से प्रार्थना की जाती है कि वह हमें पिता के समान प्राप्त होकर सदा हमारे साथ रहकर हमें उन्नति के पथ पर चलायें। देखिये, कितनी हार्दिक प्रेमपूर्ण प्रार्थना है यह ! आगे इसी भावनायुक्त ऋग्वेद की एक प्रार्थना के प्रति ध्यान दें—

आहि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः॥

ऋ. वे. १-२६-३

भावार्थ : जिस प्रकार पिता पुत्र को सहायता देता है, बंधु बंधु की सहायता करता है और मित्र मित्र को सहायता देता है, इसी प्रकार हे ईश्वर ! तू मेरी सब प्रकार से सहायता कर।

जहाँ सच्चा प्रेम है, उसी की रक्षा-सहायता मानव निरंतर चाहता है। प्रेम का बंधन भी मधुर है यदि कामना और वासनासे रहित हो।

ता. १९ अगस्त को, तुलसी निवास में, श्रीमति लीलाबहन नागपाल का स्वर्गवास हुआ। आपकी ओर से संत-गृहस्थ-गण उनके परिवार को सांत्वना देने गये थे। आपने आश्वासन देते समय भी वेद की बात कही जो इस प्रकार थी:

मृत्यु प्रभु की छाया है

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—ऋ. वे. १०-१२१-२, य. वे. २५.१२, अ. वे. ४-२-१

यः-जो ईश्वर, **आत्मदा**-आत्मस्वरूप के ज्ञान को देनेवाला, **बलदा**-बल प्रदाता, **यस्य**-जिसकी, **विश्व उपासते**-सारा विश्व उपासना करता है, **यस्य प्रशिषं**-जिसके शासन की, **देवाः**-देवतागण, **उपासते**-उपासना करता है, **यस्य छाया अमृतम्**-जिसकी छाया अमृत है। और **यस्य**-जिसकी छाया मृत्यु है **कस्मै**-ऐसे, क नाम से वाच्य प्रजापति का हम, **हविषा**-हविसे, **विधेम**-पूजन करते हैं।

आज कुटुम्ब में अपने प्यारे स्वजन का देहान्त होने पर सब दुःखी हो रहे थे। प्रभु के पास आकर अपना दुःख रोने लगे। कमलसुकोमल हृदयवाले प्रभु ने एक के बाद एक की प्यार से पीठ थपथपायी। और तो क्या, केवल हस्तास्फालन एवं स्पर्श मात्र से ही आपने भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर भगा दिया। यही आपकी शैली है। बाद में बड़े ही प्यार से पहले तो व्यावहारिक

उदाहरणों से शोक एवं मोह से परे होने को कहा। अन्त में उपर्युक्त वेद मंत्र भी उसे समझाते हुए कहा :—

'अमृत और मृत्यु दोनों प्रभु की छाया है। हम ईश्वर का सच्चा स्वरूप नहीं जानते हैं। जिसने समग्र विश्व का निर्माण किया, उसीने मृत्यु भी बनाई। उसका हेतु तो मंगलमय था। सहज सोचो तो सही। सृष्टि के आदि काल से आज तक के आपके सभी पूर्वज आज जीवित हों, तो क्या होता ? बहुत से वृद्ध, अशक्त, अपंग, रुग्ण होने के कारण आपका सारा दिन उन लोगों की सेवा में ही चला जाता। और उनको दुःखी देखकर आप भी दुःखी होते। वृद्धत्व या जर्जरता से बचने के लिये या कहो वृद्धत्व से नव सर्जन-पुनर्जन्म की ओर बढ़ने का एक द्वार ही मृत्यु है। हम बालक से युवा होते हैं तो रोते नहीं हैं। युवान से वृद्ध होते हैं तो रोते नहीं है, तो फिर वृद्धत्व के बाद मृत्यु भी केवल अवश्यंभावि अवस्था विशेष है। उसमें रोना कैसा ?

प्रभु जिस प्रकार आत्मज्ञान और शारीरिक बल देता है, उसी प्रकार अमृत और मृत्यु भी देता है। आत्मज्ञान से अमरत्व सुलभ होता है, तो मृत्यु भी अमरता के प्रति गति करने में हमें एक कदम आगे ही ले जाती है। हमारे इस जन्माके ऋणानुबन्ध पूर्ण होने के बाद हम यह देह त्याग कर देते हैं। जैसे भोजन से तृप्त होने के बाद थाली हटा देते हैं या कुर्सी पर से उठ जाते हैं, वैसे ही मृत्यु की गति समझो।

मृत्यु तो, वेद के अनुसार प्रभु की छाया है। जिस प्रकार मनुष्य के पीछे उसकी छाया सदैव रहती ही है। उससे निवृत्त होना असंभव ही है। उसी प्रकार प्रभु से उसकी छाया रूप अमृत और मृत्यु कभी दूर नहीं होते हैं। हमें प्रभु के प्रति गति करनी है, तो प्रभु की छाया से क्यों ऊब जाते हैं ? मृत्यु को अमंगलमय कैसे माना जाय ? हम अपनी छाया को अमंगल, अशिव, अभद्र नहीं मानते, न तो हम अपनी छाया देखकर डरते हैं। फिर प्रभु की छाया से—मृत्यु से डरना क्या ? मृत्यु देखकर रोना क्यों ?

हां, आपको प्रश्न होगा कि अमृत और मृत्यु दोनों प्रभु की छाया कैसे हैं ? दोनों परस्पर विरोधी हैं। आपको ऐसा प्रश्न हो तो कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन प्रभु तो विरोधी गुणों के भी आश्रयरूप हैं। विरुद्धधर्माश्रयत्व प्रभु में ही शक्य है। सागर में जैसे सभी नदियां एक हो जाती है वैसे प्रभु में सृष्टि के सर्व प्रकार पदार्थ अपने-अपने नाम एवं रूप का त्याग करके एक हो जाते हैं। फिर उनके नाम या रूप अलग-अलग नहीं रहते हैं। प्रभु तो पूर्ण हैं। समग्रता का

दूसरा नाम ही ईश्वर है। उसमें न मृत्यु का भेद है, न अमृत का। अतः मृत्यु को भी प्रभु को छाया मानो, आशीर्वाद मानो और शोक एवं मोह से ऊँचे उठो।'

भाई तुलसी नागपाल बड़े उदार, धार्मिक एवं संत-सेवी थे। उन्होंने अपनी बिल्डींग के नीचे का महल बारह मास सत्संग चलाने के उद्देश्य से आपको विनम्र भाव से सुप्रत किया था। आज वर्षों से उनकी सदभावना से, उस हॉल में अनेक धार्मिक कार्यक्रम, एवं सतत् सत्संग चलता रहता है। अनेक वेदपारायण आपके वरदहस्त से स्थापित **भगवान् वेद** का पारायण भी अक्षुण्ण रूप में चलता है—तीव्र वेग से बढ़ रहा है। ता. १२ अगस्त को, सांताक्रुज में गोविंदधाम में भाई शंकर टीकम की ओर से शुरू किया हुआ वेद पारायण ता. २२ को पूर्ण हुआ। उसी दिन आपके प्रेमी भक्त श्री शिव भगवान के गृह में वेद-पारायण रखा गया। उनकी पूर्णाहुति ता. ३ सितम्बर को की गई। उस दिन आपके पुराने भक्त-शिष्य श्री आत्मासिंह बजाज का देहावसान हुआ।

सबके कल्याणार्थ ही हमें वेद-पारायण करना चाहिये। मात्र व्यष्टि के लिये ही नहीं, समष्टि के कल्याणार्थ, वेद में प्रायः बहुवचन का ही प्रयोग देखा जाता है। विश्व के प्रति यह पूर्ण समानता एवं सौदार्य का सूचक है, अतः निम्न लिखित वेद-ऋचा में यही भाव स्पष्ट है—

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।

अ. वे. २-३१-४

हमारे मात-पिता के लिये कल्याण प्राप्त हो। गौओं के लिये, मनुष्यों के लिए, हलचल करने वाले प्राणी मात्र के लिये आनंद प्राप्त हो। हमारे पास सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य तथा उत्तम ज्ञान हो, सूर्य को हम दीर्घकाल तक देखते रहें। यही शुभेच्छा हम सबको धारण करनी चाहिये।

माताजी केसरबाई (अम्मा) का स्वर्गवास

ता. ६ सितम्बर को, आपके अनन्य शरणागत परम उदार, पमनानी परिवार की वात्सल्य मूर्ति हमारी अति प्रिय माता, भाई बालचंद की धर्मपत्नी केसरबाई का सहसा हृदय-गति रुक जाने से देहांत हो गया। समस्त परिवार, स्नेहीजन भक्त-शिष्यगण अत्यंत शोकमग्न हो गये। मानो काल की इस असीम निष्ठुरता ने सबके हृदय पर वज्रपात कर विदीर्ण कर दिया। रात्रि को प्रतिदिन दोनों आपके श्री चरणों में कुछ समय बैठकर निद्राधीन होते थे। अगले दिन भी ऐसे ही सेवा रत रहकर, अपने शयन गृह में, समयानुसार तुलसी-माला हाथ में रखे, अम्मा

निद्राधीन हुई, परंतु यह उनकी सहज चिर समाधि-स्थिति थी । सूर्योदय पहले ही प्रभु ने अपनी प्रियात्मा को परमधाम में शांति से अपने चरणों में ले ली, बिना किसी कष्ट या यातना से । प्रातःकाल प्रभु की सेवा में नियमानुसार जगे नहीं, तब आवाज दी, परन्तु प्रत्युत्तर कौन दे ? धन्य हैं ऐसे सुभागी आत्मा, जैसे सर्प अपनी केंचुली उतार देता है, 'केसर' भी अपने भौतिक शरीर को इतनी ही सहजता से छोड़ कर अपने सद्गुरु, परमात्मा श्री कृष्ण के दिव्य साकार विग्रह में लीन हो गई ।

ऐसी सहज सुखद मृत्यु किसी विरल आत्मा को ही प्राप्त होती है । अपने जीवन के सुरम्य-उद्यान में, पतिदेव की छत्र छाया में, सद्गुरु की अंतिम श्वास तक सेवा कर, गोलोक-धाम जाना, यह अनेक जन्मों के अनंत सुकर्मों का सुफल है । अध्यात्म-दृष्टि से देखा जाय तो **भगवान् वेद** के दिव्य उद्यान में प्रवेश के लिये आपने सद्गुरु सेवा द्वारा कृपा-पत्री प्राप्त की, एवं वहाँ वेद के परिपक्व अमृत फल रूपी 'मोक्ष' को प्राप्त कर, गुरु 'गंगेश्वर' की अमर चरित गंगा को 'केसर' के सुवर्ण रंग-सुगंध में अधिकतर उज्जवल एवं आकर्षक बनाया ।

अम्मा का व्यक्तित्व

मेरे साथ मेरी प्रिय अम्मा का अति मधुर संबंध था । उनकी अटूट श्रद्धा भावना, औदार्य गुरुसेवा के आगे तो मैं नित्य नतमस्तक रहती थी । आपके पास दर्शनार्थ असंख्य संत-भक्त-शिष्य प्रेमी तथा विद्वद्जन आते रहते थे, उन सबके साथ यथोचित मधुर वात्सल्यपूर्ण व्यवहार इनका था, समभाव-समदृष्टि तो इतनी थी कि गरीब-तवंगर परिचित-अपरिचित, सबका पूर्ण रूप में सत्कार करती । मैं देखती रही हूँ और अम्मा का ऐसा अति प्रशंसनीय अनुकरणीय उत्कृष्ट सेवा-भाव सचमुच ही मेरे हृदय को मथ कर, लज्जित कर देता था ।

यहाँ तक मेरी आँखों से अश्रुधारा बह जाती थी । घर में कोई भी व्यक्ति कहाँ कैसे, क्यों बैठा हो, निःसंकोच अंदर तक चली जाती, आदि बातें अम्मा के अति विशाल उदार मन में कभी प्रवेश ही नहीं कर पाती थीं । वह तो बस, जो कोई प्रभु के घर आवे, जनता-जनार्दन के रूप में दिन-रात उनको तो सेवा ही करनी थी । अति संपन्न होने पर भी अम्मा में अभिमान, अपमान या कटुता का लेश भी मैंने इतने वर्षों में नहीं देखा । वास्तव में अम्मा योगभ्रष्ट आत्मा थी, जिसने आपकी अपूर्व सेवा द्वारा मोक्ष-प्राप्ति की । एक बात का उल्लेख करना रह गया उनका नाम था केसरबाई, परंतु सबको एवं मुझे भी, यह पता नहीं था । प्रायः सब उन्हें 'अम्मा' के प्रिय संबोधन से ही जानते थे । अंत में जब बताया गया

तब मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई । नाम के अनुसार ही उनके गुण थे। केसर को घीसने से ही उसका लाल-या सुवर्ण रंग एवं सुगंध का परिचय होता है न ! इतना ही नहीं हम उसका उपयोग भी केवल क्षीर या मिठाई में ही करते हैं। साधारण नमकीन वस्तुओं में या साग-सब्जी में तो सर्वथा नहीं । इससे निश्चय ही वह अपना 'केसर' नाम चरितार्थ कर जनता में अपनी प्रेम-माधुरी एवं लालिमा फैलाकर सद्गुरु रूपी क्षीर सागर में लीन हो गई । सब प्रेमियों की ओर से अम्मा को सादर श्रद्धाञ्जली देकर हम आगे चलेंगे ।

अम्मा को श्रद्धाञ्जलि

संत समागम हरि कथा, कीर्तन में अनुराग ।
वेद-गुरु-सेवा अनुप, 'केसर' कीर्ति पराग ॥

जनता जसोदा-लाल को, लीला लखत ललाम ।
प्रेम-सुधा-रस वाहिनी, उच्चरती श्री राम ॥

सस्मित सब सत्कारती अतिथि सर्व समान ।
सदैव सेवा सुख-निरत, लेश नहीं अभिमान ॥

परम सुभग शृंगार सज, सहसा त्यागी देह ।
नित्य-लीला में लीन तुम, तनिक नहीं संदेह ॥

'गुरु गंगेश्वर' ने दिया सर्वोत्तम सुख-धाम ।
सूर्य, शशि, पावक नहीं जहाँ है पूर्ण विराम ॥

अमर स्मृति-दीप हृदय में रहेगा नित ज्वलंत ।
भाव सुमन श्रद्धाञ्जली अर्पित अश्रु वहंत ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ता. १० सितम्बर को, अमर आत्मा मेरी अम्मा के निमित्त मेघराज-भवन में गुरु-ग्रंथ साहब का पारायण शुरु हुआ । तथा ता. १२ को वेद-पारायण प्रारम्भ किया । ता. १८ सितम्बर को स्वर्गीय माताजी की श्राद्धविधि क्रिया, तथा दोनों पारायण की पूर्णाहुति की गई । पश्चात् संत-भोजन करवाया गया ।

भाई बालचंद इस आकस्मिक दुःखद घटना से अति उदास थे, अतः आपने दिल्ली का कार्यक्रम कुछ दिन और स्थगित कर दिया था । अब सब कार्य पूर्ण कर, भाई एवं समस्त परिवार को बहुत सांत्वना देते हुए आपने ता. १९ सितम्बर को दिल्ली के लिये प्रस्थान किया ।

दिल्ली में नवरात्र

ता. २४ सितम्बर से नवरात्र आरम्भ हुए। अतः गंगेश्वर धाम में रामायण पारायण प्रारम्भ हुआ। दूसरे दिन सायंकाल आपके दर्शनार्थ श्री गुलजारीलाल नंदाजी आश्रम में आये। जब आप दिल्ली में होते हैं, तब राजकीय एवं सामाजिक 'कार्यकर्ताएं' आपके पास विभिन्न प्रश्नों के सुझाव के लिये आते हैं। ता. २९ को श्रीमन्नारायण तथा मदालसाबहन आपको मिलने आये। दोनों पति-पत्नी विद्वान, नम्र एवं धर्मप्रेमी हैं।

ता. ३ अक्तूबर को श्री मनोहरजी के घर आप पधारे, वेद-पारायण एवं यज्ञ की पूर्णाहुति की गई। सायंकाल आश्रम में सद्‌गुरु गंगेश्वर आध्यात्मिक ट्रस्ट की मिटिंग की गई। ता. ४ अक्तूबर को योगेश्वर गुरु गंगेश्वर चेरिटेबल ट्रस्ट के फ्री (निःशुल्क) औषधालय का उद्‌घाटन आपके वरदहस्त से हुआ। आपने इस अवसर पर दान का अपूर्व महिमा दिखाया।

जो देता है वह पाता है

भगवान् वेद मानते हैं कि जो भी व्यक्ति थोड़े में से भी थोड़ा देता है, उसको प्रभु अवश्य अपनी कृपा का भाजन बनाता है। यह हृदय में स्वर्णमय अक्षरों से लिख लेने की बात है कि देना याने प्राप्त करना। आज आप किसी को एक रुपया दोगे, तो प्रभु एक दिन आपको हजार देगा। धरती माता को हम पाँच दाना देते हैं तो वह हमें पाँच सौ करके लौटाती है। सूर्यनारायण पृथ्वी पर से अपनी किरणों द्वारा जल का ग्रहण करते हैं। क्यों? प्रजा को सहस्रगुना करके वापस लौटाने के लिए। प्रभु के घर का यही न्याय है। वेद के शब्दों में यदि सुनना चाहते हो तो सुनो—

यद् अङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः। —ऋ. वे. १-१-६

अङ्ग-हे प्यारे! **अङ्गिरः**-हे अङ्गिरा देव! **अग्ने**-हे अग्नि प्रभु! **यत् त्वम्**-जो आप **दाशुषे**-दान करनेवाले का **भद्रं करिष्यसि**-कल्याण करते रहते हो **तत्**-वह आपका **सत्यम् इत्**-निश्चय रूप से सत्य है याने कभी भी नाश नहीं होनेवाला व्रत है, नियम है।

जो भी मनुष्य विधिपूर्वक अग्नि में होम करता है, उसे आयुः, बल, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रव्य, ब्रह्मतेज इत्यादि अग्निदेव नियमपूर्वक देते हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ अग्निहोत्रादि शक्य न हो, वहाँ अतिथि, विद्यार्थी, भूखा, गरीब इत्यादि आये उसे देना चाहिये। और देते रहोगे तो प्रभु आपको देगा। क्योंकि द्रव्य

की शुद्धि दान से ही होती है। रात्रि को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री तिवारी जी आश्रम में आपके दर्शनार्थ आये।

हरिद्वार में

इस प्रकार १६–१७ दिन दिल्ली में ठहरकर, आप ता. ७ अक्तूबर को हरिद्वार, अपने रामधाम आश्रम में पधारे। ता. ९ को प्रातःकाल भारत–साधु समाज षड्दर्शन की एक मिटिंग हुई, जिसमें 'गोपालन' पर बल दिया गया एवं प्रधान मंत्री इंदिरा गाँधी को, वर्षों से रुका हुआ गो-वध बंदी का कार्य करने के लिये धन्यवाद दिया। वहाँ से आप ता. १० अक्तूबर को वृन्दावन गये। ता. २२ को दीपावली एवं २३ को अन्नकूट का उत्सव मनाया गया। दीपमाला के शुभ अवसर पर, वृन्दावन में आपके साथ मुझे रहने की इच्छा होती है अपितु आजतक कभी फलीभूत नहीं हुई। आपके संकल्प से मेरा कोई भिन्न संकल्प नहीं होता। ता. २७ अक्तूबर को—श्रौत–मुनि–निवास में वेद–शिविर शुरू हुआ। बनारस से श्री गजानन गोडसे आये। तीन विभिन्न भक्तों द्वारा नियोजित तीन वेद–पारायण प्रारम्भ हुए। (१) नरेन्द्र खोसला की ओर से (२) नारी पोहानी (की ओर से) (३) पदम (लंदन)। इन तीनों की पूर्णाहुति ता. २४ नवम्बर को हुई। ता. २२ नवम्बर को आपकी अध्यक्षता में, आश्रम में सायंकाल दो घण्टे तक एक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें संत–महंत तथा विद्वान पधारे एवं गो·संवर्धन तथा वेदों का प्रचार किस प्रकार सफल हो, उस विषय पर विचार किया गया। तथा सरकार के प्रति गो-वध बंदी पर कदम उठाने के लिये आभार प्रदर्शित किया गया। ता. २६ नवम्बर को वृन्दावन के लोहिया बाजार स्थित शोध–संस्थान में आचार्य बृहस्पति द्वारा आपका सुस्वागत हुआ तथा श्री वन महाराज के द्वारा **भगवान् वेद** की स्थापना हुई। १॥ महिने का वृन्दावन–वास कर, आप पुनः ता. २७ नवम्बर को दिल्ली आये।

३. इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।

ऋ. वे. १–१६४–४८; अ. वे. ९–१०–१६

इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ऋ. वे. १–१६४–४८; अ. वे. ९–१०–१६

मर्त्य–मरणशील मानवों में यह अमर ज्योति है । प्रभु–गुरुदेव सदैव हमारे बीच घूमते रहते हैं । 'थकान' जैसा शब्द न तो आपने कहीं मानो पढ़ा है न पाया है, क्या कहूँ मेरे प्रभु के शब्दकोश में थकान–थाक–परिश्रम आदि शब्द हैं ही नहीं। कार्य, कार्य, कार्य–सतत् कुछ न कुछ करते ही रहना जैसे स्वयं सूर्यनारायण करते हैं । उनका दिन है रविवार, समग्र विश्व रविवार को छुट्टी मनाता है लेकिन रवि ने स्वयं कभी रविवार नहीं मनाया; सूर्यनारायण ने कभी भी छुट्टी नहीं रखी । यही हाल है मेरे गुरुवर के । स्वयं सूर्य की भाँति सतत् ज्ञानप्रकाश से युक्त हैं, सततगति पवन की भाँति सदैव घूमते ही रहते हैं, अग्नि की तरह सदा सर्वभक्षी हैं शिष्य के सब दुर्गुणों का नाश करते हैं, इन्द्र की तरह असुरों का निराकरण करते हैं, क्या कहूँ सचमुच सर्वदेवमय ही हैं । उनके मन को भी कौन पहचान सकेगा ? महाकवि भवभूति ने सच ही कहा है—

लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।

महापुरुषों के मानस कुछ संसारी लोगों से विलक्षण ही होते हैं, उनके मनोगत भावों को पूर्णतया जानने में कौन समर्थ हो सकता है। आपके ज्ञान, प्रकाश, प्रेम, रक्षा, सहायता आदि की किस विपद-ग्रस्त प्राणी को कब कहाँ आवश्यकता होती है, यह तो आप ही जानते हैं। भ्रमण परहितार्थ के लक्ष्य से ही होता है । क्या ही सुन्दर महापुरुषों की परिचय है—

सदयं हृदयं यस्य भाषितं सत्यभूषितम् ।
काया परहिते यस्य कलिस्तस्य करोति किम् ॥

जिसके हृदय में प्राणिमात्र के प्रति दया–भाव है, वाणी मधुर एवं सत्य से भूषित है और शरीर परोपकार के लिये सदा समर्पित है, फिर उसका काल क्या बिगाड़ सकता है ? सत्पुरुषों के लिये तो सदैव सत्ययुग ही विद्यमान् है ।

प्रणयः पश्यति विपदं प्रतिपदम् ।

आपकी वृद्धावस्था एवं तज्जनित अशक्ति के कारण आपका इतना भारी परिश्रम मुझे चिंतायुक्त बना रखता है, कभी–कभी करबद्ध प्रार्थना भी करती हूँ

कि प्रभु ! आप थोड़ी प्रवृत्ति कम कीजिये, शरीर साथ नहीं देता। तब आप कह देते हैं कि तुम व्यर्थ चिंता मत किया करो, तुम्हारी सद्भावना से मैं सदैव स्वस्थ रहूँगा। तो कभी कहते हैं कि '**प्रणयः पश्यति विपदम् प्रतिपदं**।' और मैं मौन हो जाती, आगे क्या कहना था ! आपकी लीला आप ही जानें। कभी-कभी तो स्वास्थ्य इतना खराब हो जाता कि हम सब अत्यन्त उदास हो जाते थे। डाक्टर आकर आपकी शारीरिक जाँच करे तो कुछ पता ही न लगे, सब नॉर्मल ! फिर भी चिकित्सार्थ जशलोक अस्पताल में ले जाने का प्रस्ताव रखें तो आप दृढता से अस्वीकार ही करते रहे। अतः डाक्टर, भक्त, शिष्यगण सब निराश हो आपको स्वेच्छा पर ही छोड़ देते। यहाँ स्पष्ट देखी जाती है लीलामय की लीला ! बिना कोई अधिक औषधि अपने आप १-२ दिन में ऐसे स्वस्थ लगते कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं था ! परन्तु देखा, सब स्थिति में वही प्रसन्न मुखमुद्रा, वही शांति, वही स्थिरता ! मेरे जैसे अति साधारण जीवों में एवं आप समान महान् विभूतियों में यही तो फर्क है कि हमें पूरा देहाध्यास है एवं आप ज्ञानीजन पाँचों कामों से पर, निज स्वरूप स्थित, सच्चिदानंद स्वरूप ! मानव जैसा सब व्यवहार करते हुए भी, सदा-सर्वदा, सबसे पर, देखे गुरु गंगेश्वर।

भगवान विश्वेश्वर के दर्शन होते हैं।

गुरुदेव के विद्याभ्यास काल का एक प्रसंग है। आप माधुकरी द्वारा अपना गुजारा करते थे, काशी-आधुनिक वाराणसी में गली-गली में डंका लेकर घूमते थे, 'भिक्षां देहि' करते थे। लेकिन सच्चे अर्थ में संत थे। आज का खाना मिल गया, फिर कल की फिक्र नहीं करते थे।

एकबार काशी नरेश की महारानी ने सब को चार-चार आना भेंट किया। उस समय आप भी वहाँ से गुजरे। तो उनके आदमी ने आपको भी चवन्नी देनी चाही। आपने इन्कार कर दिया, क्योंकि अपरिग्रह आपका व्रत था। उसने सोचा कि इनको चार आने कम पड़ रहे हैं, तो सवा रुपया कर दिया। फिर भी आपने नम्रता के साथ उसे भी इन्कार दिया। महारानी ने स्वयं रस लेकर ग्यारह रुपये देने का प्रयास किया। तब त्यागमूर्ति गुरुदेव ने पूर्व से भी अधिक नम्रतापूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा कि 'माता जी ! मुझे पैसे की कोई जरूरत नहीं है। आप अब ग्यारह रुपये तो क्या ग्यारह हजार या एक लाख भी कर दें, उसमें मेरे लिए कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसे आप ही रख लें।'

यह बात सारे काशी में फैल गई। काशी विश्वनाथ भगवान के पूजारी तो अत्यन्त प्रसन्न हो गये। और जब गुरुदेव विश्वनाथजी के मन्दिर में पधारे तो

उनसे वे कहने लगे कि मुझे तो आपमें काशी विश्वनाथ भगवान के दर्शन होते हैं ।

इन्दौर में गीता जयन्ती

ता. २९ नवम्बर को आप दिल्ली से इन्दौर गीता–जयंती उत्सव पर प्लेन से पधारे । ता. १ दिसम्बर को उज्जैन में विश्व हितैषी आश्रम में वेद-विद्वानों द्वारा आपका स्वागत हुआ तथा आपके वरदहस्त से **भगवान् वेद** की स्थापना हुई । दूसरे दिन इन्दौर में गीता-जयंती का उत्सव मनाया गया ।

अब आपका जन्म-जयंती महोत्सव निकट आ रहा था । अतः ता. ४ दिसम्बर को आप प्लेन से बम्बई पधारे एवं मेघराज भवन में ठहरे । जैसे सूर्योदय होते ही कमल प्रफुल्लित हो जाता है, आपके दर्शन से प्रेमियों के मुख–हृदय–कमल भी सहसा खिल जाते हैं ।

१६ वीं जन्म–जयंती

बम्बई निवासी आपके भक्त–वृन्द आपके शुभ जन्मोत्सव के लिए, प्रतिवर्ष नूतन रंग–ढंग से आकर्षक सजावट के लिये सोचते रहते हैं । ता. ८ दिसम्बर को, जयंति-निमित्त, तुलसी निवास में वेद–पारायण प्रारम्भ किया । ता. १६ को चर्चगेट स्थित हॉकी ग्राउण्ड में, सिंगापोर निवासी श्री लघीराम के दो पौत्र, विवेक और तिलक का यज्ञोपवित सानंद संपन्न हुआ । सायंकाल तुलसी निवास में वेद–परायण हुआ एवं संतों के प्रवचन हुए ।

प्रतिवर्ष क्रमानुसार, हमारे पूज्यपाद स्वामी कृष्णानंद गोविंदानंदजी ने, जयंती के उपलक्ष्य में तुलसीनिवास हॉल में रामायण नवाह प्रारम्भ किया । आपके परमभक्त सिंगापुर निवासी श्री अर्जनदासवानी के सुपुत्र चि. विनोद एवं राजेश का यज्ञोपवित संस्कार, मेघराज भवन में आपकी अध्यक्षता में, वेद मंत्रों के साथ किया गया । ता. २२ दिसम्बर को बँगले में यजुर्वेद का पारायण हुआ । ता. २५ को सायं ब्रह्मलीन स्वामी प्रेमपुरीजी का, प्रेमपुरी अध्यात्म ट्रस्ट का आपने उद्घाटन किया । स्वामी के साथ आपका पुराना संबंध रहा है । ता. २६ दिसम्बर को शुक्ल-यजुर्वेद पारायण की पूर्णाहुति मेघराज भवन में की गई एवं तुलसी निवास में प्रारम्भिक रामायण नवाह पारायण भी पूर्ण हुआ ।

प्रतिवर्ष आपका मंगलोत्सव दो दिन मनाया जाता है । एक तो तुलसी निवास एवं दूसरे दिन होकी ग्राउण्ड में । परन्तु इस वर्ष आपकी इच्छानुसार, दोनों दिन तुलसी–निवास में ही रखे गये थे । ता. २७ दिसम्बर को प्रातःकाल मेघराज भवन में भक्त–संत समुदाय ने आपकी पूजन–आरती की । उस समय सतत गंगा

प्रवाह के समान लोगों का आना-जाना होता रहता है। प्रातःकाल से १२ बजे तक भीड़ लगी रहती है। १२ से ३ तक आप आराम करते, उठते तब से फिर लोग आते रहते हैं। सायंकाल तुलसी निवास में संतों का प्रवचन, कीर्तन, आपके आशीर्वचन तथा आरति के पश्चात् उत्सव पूर्ण हुआ। दूसरे दिन, ता. २८ दिसम्बर को पौष शुक्ल सप्तमी, आपका जन्म-दिन था। उस निमित्त तुलसी-निवास में प्रातः हनुमान चालीसा तथा सुन्दरकांड का पारायण किया गया। सायंकाल उत्सव में राज्य मंत्री बाबूराव कालेकरजी आपके दर्शनार्थ आये थे, उन्होंने भी अपने वक्तव्य में आपकी प्रशंसा की। उस दिन भी संतों ने एवं भक्तों ने थोड़े शब्दों में अपनी अपनी कृतज्ञता श्रद्धा प्रेम की उज्ज्वल दीपशिखा जलाई। इस प्रकार आपका ३६वां जन्म-दिन, जनता ने बड़े प्रेम और भक्तिभाव से मनाकर प्रसन्नता का अनुभव किया।

सन १९७७ का प्रारम्भ

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुद्धयन्ति वै गृहाः।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥

—श्रीमद्भा० १-१९-३३

अर्थात् जिन विरक्त महात्माओं के भक्तिभाव से स्मरण कर लेने मात्र से ही गृहस्थियों के गृह पवित्र हो जाते हैं, वे गुनिजन यदि किसी के घर पर आ जायँ और उस बड़भागी को उनके दर्शन, पादस्पर्श, पादप्रक्षालन और आसन आदि द्वारा सेवा करने का सुयोग प्राप्त हो जाय, तो फिर उसके भाग्य की क्या सराहना की जाय। आप ने तो कृपावश, अपने प्रेमी तथा भक्त शिष्यों की भावपूर्ण विनती को स्वीकार करते हुये, उनके गृह को अपनी पवित्र चरणधूलि से पावन किये।

बासी खाते हैं, उपवासी रहना

एक दिन ऐसे ही आप भक्त के घर में सत्संग के लिये बैठे, तब एक सुन्दर संस्कारी पुत्रवधू की बात सुनाई। आपने कहा—"एक बड़े श्रीमंत परिवार का पुत्र वैराग्य आ जाने से साधु बन चला गया। एक दिन जब वह एक बड़े नगर में जा रहा था, तब वहाँ के श्रीमंत व्यापारी की पुत्रवधू ने उसको देखा। वह बहुत समझदार, चतुर, विवेकी तथा विदुषी थी। जब उस साधु ने उसके गृह-आँगन में आकर 'भिक्षां देहि' कहा, तब उस बहन ने पूछा, महाराज! "देर से होना था, शीघ्र कैसे"! वह साधु भी बुद्धिमान था, अतः प्रत्युत्तर दिया, "देवी मैं जानता हूँ, परन्तु जानता नहीं"। फिर उस बहन ने कहा "हम तो बासी अन्न खाते हैं," इस पर साधु ने कहा "लो अब उपवासी रहना" और भिक्षा लेकर चला

गया। उनके श्वसुर ऊपरी मंजिल की खिड़की में बैठे थे, उन्होंने अपनी पुत्रवधू की उस युवक के साथ बातें सुनी। उनको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने यह अर्थ किया कि अभी तो मेरे श्वसुर बैठे हैं, थोड़ी देर ठहरके आना था; और वह तो प्रतिदिन ताजी रसोई खाते हैं और मैं बासी अन्न खाती हूँ। अर्थ का अनर्थ कर मनोमन उद्विग्न हो गये। जब पुत्र भोजन के लिये आया तब पिताने कहा, "ले भाई! यह चाभी ले, जितना चाहे उतना धन लेकर, तुम अलग हो जाओ, फिर भोजन होगा।" पुत्र अपनी पत्नी को अत्यंत निर्दोष एवं साध्वी समझता था। अतः उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा कि आज पिताजी ऐसी विचित्र बात क्यों कर रहे हैं! घर में आज कोई आया था? उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा, "हाँ देव, आज एक संत आये थे, उनके साथ मेरी बातचीत पर से पिताजी को शायद संशय हुआ होगा; परन्तु चिन्ता नहीं, चलो, मैं स्पष्टीकरण करती हूँ।" कहकर उसने अपने श्वसुर के पास जाकर, प्रणाम किया एवं कहा; "पिताजी! उस साधु को मैंने पूछा कि प्रथम इस जवानी में शादी कर, गृहस्थाश्रम को निभाकर, पिछली अवस्था में संन्यास लेना योग्य है, फिर भी आपने अब क्यों लिया! उन्होंने उत्तर दिया कि मरना है, यह तो मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ, परन्तु कब शरीर धोखा देगा यह मैं नहीं जानता; इसलिये देह को, नाशवंत जानकर, आवागमन के चक्र से छूटने के लिये मैं त्यागी बना हूँ। श्वसुरजी यह बात सुनकर प्रसन्न हो गये एवं पुत्रवधू को पूछा, आप ने ऐसा क्यों कहा कि आप नित्य ताजी रसोई खाते हैं और हम वासी अन्न खाते हैं। बहू ने खुलासा किया, पिताजी क्षमा करना, मैंने वह सत्य ही कहा है। पूर्व के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप यह जो वैभव-सुख हम भोगते हैं, वह तो बासी ही कहा जायेगा, इस स्थिति में रहकर भी हम लोग कोई पुण्यदान या गरीबों को अन्न-वस्त्र की सहायता तो करते नहीं, इसलिये संत ने कहा कि 'अब उपवासी रहना' अर्थात् पुण्यक्षय के पश्चात् देह विलय के बाद, पुण्य तो पास होंगे नहीं, अतः उपवास करना होगा; वैभव आदि सुखरूप भोजन के अभाव में दुःखभोगरूप उपवास करना"। ऐसी रहस्यपूर्ण ज्ञान की बात सुनकर, वह वृद्धपुरुष अति विस्मित एवं प्रसन्न हो उठे एवं हाथ में चाभी पकड़ाते हुए बहू को कहा कि मैं आपको पूर्ण स्वतंत्रता देता हूँ, जाइये, प्रचुर मात्रा में दान पुण्यकर्म कर सुख-ऐश्वर्य में रहो। बहू! तुम धन्य हो, तुम दोनों कुल के तारक एवं रत्नदीप हो, मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। यह सब ध्यान से श्रोता सुनते रहें। आपने कहा कि वस्तुतः गृहस्थियों का संसार सुख मुख्यतया सुसंस्कारी, गुणवान् मधुभाषिणी नारी पर ही निर्भर है। नारियों का सच्चा शृंगार ही वात्सल्य, सेवा-शुश्रूषा, विवेक, करुणा-सरलता, सहनशीलता, व्यवहार-पटुता एवं माधुर्य है, सच कहो तो सन्नारी ही गृहस्थ जीवन की

नैया है, तारक दीपिका है, वे हमारी भारतीय संस्कृति, साहित्य-कला की चेतन प्रतिमा हैं।

आपके वचनामृत से श्रोता वर्ग के मन हृदय प्रफुल्लित हो उठते हैं।

नूतनवर्ष प्रारम्भ

ता. २ जनवरी को नूतन वर्ष बम्बई में मेघराज भवन में मनाया गया। अमरीका के आपके भक्त श्री नारी पोहानी की मँगनी का कार्यक्रम आपकी उपस्थिति में हुआ। स्वर्गस्थ अम्मा के निमित्त रखे हुए वेद-पारायण की पूर्णाहुति बँगले में हुई। सायंकाल श्री लघीराम तथा जमनाबहन के सुपुत्र सुरेश की शादी में आप पधारे एवं दम्पत्ति को आशीर्वाद दिया। दूसरे दिन ता. ८ जनवरी को भाई पेशुमल श्यामलाल के सुपुत्र अशोक तथा कुमार की शादी में उपस्थित होकर आशीर्वाद दिया।

सांताक्रुज में कलामाता के गोविंदधाम में भी प्रतिदिन वर्षों से सत्संग चलता है। धर्म प्रेमी, साधु-संत-सेवी परम गुरुभक्ता हमारी कलामाता परिश्रमी एवं उदार हैं। उनका सारा जीवन जनता-जनार्दन की सेवा में ही संलग्न रहा है। ता. ९ जनवरी को सांताक्रुज गये, प्रवचन एवं भोजन कर वापस बम्बई आ गये। यहाँ आपने प्रवचन में बताया था कि:—

ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।

दुष्कर्मी सत्य का मार्ग कभी तर नहीं सकते। यह वेदविहित सत्य त्रिकालाबाधित है। भूत, भावि और वर्तमान में यह बात सत्य ही है कि मनुष्य दुष्ट कर्म करे और सत्य के मार्ग को प्राप्त करके संसार सागर तैर जाय यह असंभव है। सत्य एवं दुष्कर्म प्रकाश तथा अंधकार की तरह परस्पर भिन्न हैं।

सत्य का मुख तो सुवर्णमय पात्र से ढका हुआ है। हम ऋत या सत्य का मार्ग सहसा बिना कोई प्रयास कभी नहीं पा सकते। उस्तरे की धार पर चलने का मार्ग जिस तरह दुर्गम है, वैसे ही सत्य का मार्ग भी दुर्गम है। उस पर ज्ञानी विद्वान या सत्कर्मों के आग्रही लोग ही चल सकते हैं।

आजकल तो फैशन हो गई है बुरे कर्म करते रहने की, पैसे के लिये एक दूसरे के गले काटना, अपने ही नौकरों का खून पीना, उसके लहू पसीने की कमाई स्वयं हजम कर जाना, और उन बेचारों को दुःख में ही रहने देना। ये सब बुरे कर्म हैं। यह तो ठीक, कभी-कभी तो अपने माता, पिता, भाई, बहन या मित्र का भी द्रोह करना यह तो बहुतों का जीवन क्रम हो गया है।

विद्यार्थी परिश्रम बिना ही परीक्षा पास करना चाहता है। शिक्षक पूरा पढ़ाना/

नहीं चाहता है। नौकर आलस्य कर लेता है। कारकून काम करने से पहले रिश्वत चाहता है। मिनीस्टर अपने ही घर भरने को तुले हुए हैं। संन्यासी में भी पूरा त्याग या वैराग्य नहीं है। और फिर भी यदि सब चाहें कि हमें सत्य का मार्ग उपलब्ध हो जाय, तो यह कैसे बनेगा !

जीवन में आपाततः दुष्कर्म करते रहें और हमको सत्य की प्राप्ति के रूप में फल प्राप्त हो यह कैसे बनेगा ? खेती तो करें कांटे की और चाहें कि हमें कुसुम मिल जायँ ? क्यारी में लहसून बो दिया और अब खुशबू चाहते हैं केसर की ! हमें अपने कार्यों पर तरस आना चाहिये। **भगवान् वेद** तो स्पष्ट रूप से विधान करता है कि—

ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।

ऋ. वे. ९-७३-६

मकर संक्रांति

भगवान वेद ग्रंथ की प्रतिष्ठा स्थान-स्थान पर होती ही रहती है। ता. १४ जनवरी को उपराष्ट्रपति श्री यतिजी द्वारा उड़ीसा वेदभवन में **भगवान् वेद** की स्थापना हुई। उड़ीसा के मुख्यमंत्री उपस्थित थे। मकर संक्रांति के पुण्यकाल में प्रयागराज में कुंभ-पर्व का मेला लगता है, शोभायात्रा निकलती है तथा हजारों भाविक गंगा स्नान करते हैं। पहले तो आप भी चारों पूर्ण कुम्भ पर्व पर, अपनी विस्तृत छावनी लगाते थे, अलाहाबाद, उज्जैन, नासिक एवं हरद्वार में वर्षों तक आपके अथक परिश्रम द्वारा भारत की धर्मप्रेमी जनता को महान् संतों, मुनियों, तपस्वियों का दर्शन, विद्वानों का सत्संग, पतितपावनी गंगा-जमना सरस्वती का स्नान एवं आपके दर्शन का अनुपम अलभ्य लाभ प्राप्त कराया। मैंने भी आपकी असीम कृपा से चारों अर्ध-पूर्ण कुंभ का अपूर्व दर्शन किया है।

प्रेम वात्सल्य का केन्द्र गुरुदेव

एक बार अलाहाबाद के कुंभ पर्व पर मैं सहसा ठण्डी से बीमार हो गई। शरीर में सर्दी इतनी प्रबल जम गई कि बुखार के साथ सिर में असह्य दर्द उठा। अपने टेन्ट में मैं और मेरा एक सेवक साथ था। रात्रि को १ बजे मैं दर्द से व्याकुल हो उठी एवं सेवक गणपत को उठाकर कहा कि तुम अभी स्वामी ईश्वर मुनि के पास जाओ और औषधालय से मेरे लिये दवाई शीघ्र ले आओ। अब रात्रि का समय, सब सुनसान, निंद्राधीन थे, रेती में से धीरे-धीरे चलता हुआ वह आपके टेन्ट के पास पहुँचा, क्योंकि बाजू में ही ईश्वरमुनि सोये थे। आप जागते ही थे। जैसे ही गणपत ने धीरे से मुनिजी को आवाज दी, आपने स्वयं उठकर

गणपत को पूछा क्या बहन की तबियत ठीक नहीं है! मानों अंतर्यामिरूप में आपको पता ही था। उन्होंने कहा कि माँ ने मुझे सिरदर्द की दवाई के लिये भेजा है। बस, सुनते ही गणपत के साथ रात्रि को आप मेरे पास पहुँच गये। उस समय मुझे पूरा होश नहीं था। आप कब आये, क्या पूछा मुझे, कुछ ज्ञान नहीं। आपने सद्य छावनी में से अपने परमभक्त वैद्यराज रामदासजी को मेरे उपचार के लिये बुलाया, वे भी बड़े नम्र एवं सेवाभावी थे, फौरन आपके पास आ गये। उन्होंने कुछ औषधि तैयार की, मुझे पिलाई और ३ घंटे जब तक मैं पूरे होश में न आई तब तक आप और वैद्यजी बैठे रहे। जब आप गये, तब प्रातःकाल ४ बज चुके थे। गणपत भी बेचारा घबरा गया था। आज ऐसा भाविक एकनिष्ठ सेवक मिलना भी दुर्लभ है। उन्होंने बाद में मुझे सब बताया तब मेरा हृदय कृतज्ञतावश भर गया। रो पड़ी मैं! सचमुच ही, संसार का संगठित प्रेम, वात्सल्य का केन्द्रस्थान एक मात्र गुरु ही हैं, जिनकी प्रतिपद दिव्य वात्सल्यप्रेम की पवित्र गंगाधारा में भक्त शिशु सतत प्रतिपद शांति, शीतलता एवं निर्भयता का अनुभव करता है।

ता. १७ जनवरी को प्रयागराज के कुंभ-पर्व पर ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य स्वामी शांतानंदजी के आश्रम में **भगवान् वेद** की स्थापना शोभायात्रा के साथ हुई। फिर बम्बई में भी बोरिवली में श्री माधवराव के निवास-स्थान में अन्नकूट यज्ञ हवनादि के साथ शास्त्रोक्त विधि से वेद स्थापना की गई।

अंबाजी में वेद स्थापना

ता. २४ जनवरी को वसंत पंचमी के शुभ दिन अम्बा माता के मंदिर के संस्कृत विद्यालय में, उनके अध्यक्ष की उपस्थिति में **भगवान् वेद** की आपने स्थापना की। बनासकांठा (गुजरात) स्थित अंबाजी के श्री अंबा माता के मंदिर में ता. २९ जनवरी को गुजरात के राज्यपाल श्री के.के. विश्वनाथन्, राज्य के कानून मंत्री श्री विजयकुमार त्रिवेदी तथा वेद वेत्ता विद्वानों की उपस्थिति में जयघोष के साथ **भगवान् वेद** की स्थापना हुई।

गुरु गोपाल की व्याख्या

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही गोपाल हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् वेद-विग्रह हैं, गोपाल उनका नाम वैसे तो अति सरल दीखता, परंतु है अति गहन, जिसे साधारण मनुष्य नहीं समझ पाते। देखिये गुरु-गोपाल की कितनी सुंदर भावपूर्ण व्याख्या की है संतों ने! शास्त्र वेद उपनिषद् स्मृति पुराणादि ग्रंथरूप गौ—भैंसों को गुरु खरीदते हैं, उनके अध्ययन रूप, वे गौओं की सेवा करते हैं, उनके गूढ़भाव, हेतु

अर्थरूप दोहन करते हैं, फिर दूध का दधि—छाछ बनाकर, मक्खन तथा शुद्ध घी रूप सत्त्व सार निकालते अर्थात् अनुभव करते हैं। गुरुसेवा के प्रसादरूप, श्रोता या शिष्य गण उस तैयार घी रूप सत्त्व को खाते-पीते या अनुभव कर पुष्ट बनते हैं, निर्भय सुखरूप होकर बलवान् बनते हैं। इस साररूप उपदेश के मनन से अविद्या रूप ग्रंथि या आवरण दूर होते ही यह स्वरूप स्थित हो जाता है। अर्थात् गुरु गोपाल ही हमारे **भगवान् वेद** के रूप में जगदोद्धार के लिये, अपना दिव्य रत्न भंडार संतानों में बाँटने के लिये मूर्तिमान हुए हैं।

साधनानामपि सर्वेषां वरिष्ठा साधुसंगतिः ।
एतया सिद्धया सिद्ध्यद् ज्ञानं संसारतारकम् ॥
साधूनामटनं धन्यं गृहिणां शांतये स्मृतम् ।
नृणामन्तमोहारी साधुरेव न भास्करः ॥

अर्थात् सर्व साधनों में भी साधु संगति ही श्रेष्ठ मानी है। यदि यह एक ही अच्छी तरह हो सके तो अन्य साधन सहज सिद्ध होकर संसार सागर से उद्धारक ज्ञान भी प्राप्त होता है। संतजन वस्तुतः गृहस्थियों की शांति प्राप्ति के लिये ही भ्रमण करते हैं, अतः उनको अनेक धन्यवाद हैं। सूर्य तो बाह्य अंधकार का नाश करता है, परंतु गुरुजन मानव हृदय के अज्ञान तिमिर का ध्वंस करते हैं। भवरोग मिटानेवाले गुरुदेव सर्व समर्थ वैद हैं। तभी तो भक्ति मति साध्वी मीरांबाई ने गाया है न कि—

दर्द की मारी बन बन भटकूँ, वैद मिलो नहीं कोय ।
मीरां के प्रभु पीर मिटे, जब वैद साँवरिया होय ।
सखि री मैं तो प्रेम दिवानी ।।

दिल्ली में

ता. ३ फरवरी को आप बम्बई का कार्यक्रम पूरा कर देहली पधारे। वहाँ से ता. ८ को विठण्डा में चेतन सिंह के पास ठहरे। आपके साथ वेदवेत्ता श्रीकृष्णदेव, विश्वनाथजी, वंशीधरजी, गजानन गोडसे, ऋषिशंकरजी, देवकृष्णाजी नारायण रराटे इत्यादि थे। वहाँ वेद पारायण प्रारम्भ किया। सातवें दिन ता. १४ फरवरी को पूर्णाहुति की गई। दरम्यान आपकी अध्यक्षता में वेद विद्वानों की मननीय प्रवचन माला भी चलती रही।

ता. १५ फरवरी को आप विद्वानों के साथ देहली पधारे। दूसरे दिन महाशिवरात्रि थी। अतः सद्गुरु गंगेश्वर धाम आश्रम में प्रातःकाल से शाम तक व्रतोत्सव चलता रहा। उपस्थित विद्वानों ने प्रातः वेद पाठकर ९ से १२ बजे तक

रुद्री-पाठ, हवन किया एवं पश्चात् जमना स्नान कर लौटे। रात्रि में चारों प्रहर की वेद विधियुक्त पूजा उन्होंने संपन्न कर व्रत पूर्ण किया। ता. १७ फरवरी को आप देहली से वृन्दावन गये।

वृन्दावन में

श्री वृन्दावनधाम तो भगवान श्रीकृष्ण का गोलोकधाम ही माना गया है, अतः **भगवान् वेद** का अस्खलित पारायण प्रवाह अति सहज एवं सुलभ है।

आपके साथ विद्वद्‌गण थे, पू. श्री अनंतरामजी, हरिरामजी, गजानन गोडसे, जुगलकोशोरजी, वंशीधरजो, धीरजलाल, देवकृष्णजी, नारायण रराटे तथा किशोरीजी आदि। श्रौतमुनि निवास में श्री बख्तावरसिंहजी की ओर से ता. १९ फरवरी को वेद-पारायण शुरू किया। दूसरा वेद पारायण पुष्पाबहन भाण्डुक की ओर से जुगल किशोरजी ने प्रारंभ किया। साथ साथ बम्बई निवासी होराबहन की ओर से भागवत सप्ताह भगवद् रसरागी पूज्य श्री मूलबिहारीजी ने शुरू किया। ता. २१ फरवरी को उपस्थित विद्वानों द्वारा विष्णु याग प्रारंभ हुआ। ता. २३ को एक ओर वेद पारायण सत्यभामा बहन को बहन की ओर से शुरू हुआ। वृन्दावन आश्रम को चारों दिशा से **भगवान् वेद** की दिव्य ध्वनि एवं यज्ञ द्रव्य को सुवास से व्याप्त थीं। ऋषि-मुनि तपस्वियों की प्राचीन वनदृश्य की स्मृति श्रौतमुनि निवास दिला रहे हैं।

ता. २४ फरवरी को काशी के विद्वानों द्वारा श्री शरदाचार्य के घर वृन्दावन वाटिका में **भगवान् वेद** की स्थापना हुई। श्रौतमुनि आश्रम में प्रारंभित विष्णु याग की एवं दोनों वेद पारायण की पूर्णाहुति की गई। ता. १ मार्च से ४ मार्च तक, आश्रम में अखंड कोर्तन हुआ। रामलीला रास-लीला तथा सत्संग भी होता रहा।

दादा गुरु रामानन्दजी की जयंती

ता. ३ मार्च, फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को हमारे पूज्य दादागुरु ब्रह्मलीन स्वामी रामानंदजी की जन्म जयंती थी। प्रतिवर्ष आपकी उपस्थिति में उनकी जयंती भक्तशिष्य गण बहुत श्रद्धा प्रेम से मनाते हैं। उस दिन भी प्रतिमा का पूजन-अर्चन, संतों का प्रवचन, कोर्तन, आरति एवं प्रसाद वितरण के पश्चात् उत्सव समाप्त हुआ। ता. ५ मार्च को जमुना स्नान लोगों ने किया। आश्रम में सत्यनारायण भगवान की कथा एवं रात्रि को महारास हुआ। अपने गुरुदेव की जयन्ती के शुभ अवसर पर आपने वेद में गुरुतत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला।

वेद में गुरुतत्त्व

गुरुतत्त्व परब्रह्म की भाँति सर्वत्र व्यापक है। अतः गुरु का निर्देश वेद में हो यह अत्यन्त स्वाभाविक है। ऋग्वेद १-१४७-४ में कहा गया है **मंत्रो**

गुरुः याने गुरु ही मन्त्र हैं। और प्रतिपाद्य प्रतिपादक के अमेद से मंत्र गुरु है। गुरु और मंत्र में याने वेद के वचन में कोई भेद नहीं है।

वेद की वाणी की निर्व्याज रमणीयता तो यह है कि वह सदा निगूढ़ है। कहा गया है **परोक्षप्रिया हि देवाः** देवों को या देव समान दिव्य एवं प्रकाशमान ऋषियों को परोक्षप्रिय है याने वे सभी बात सीधी नहीं करेंगे। उनकी वाणी सागर की तरह गंभीर एवं अनेकानेक अर्थ तरंग से परिपूर्ण होगी। अतः जब वेद का ऋषि अग्नि शब्द का प्रयोग करेगा तब उसमें अग्नि देवता के साथ साथ विष्णु, सूर्य, कृष्ण, राम एवं गुरु ऐसे महान तत्त्वों की भी गर्भित स्तुति होगी। हमारे प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार की अर्थ संघटना का आविष्कार करके दिखाया है। उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है—

कोऽयमग्निः, आत्मा इति आत्मविदः 'एकं सद्' विप्राः बहुधा वदन्ति' इति मन्त्रदर्शनात् ।

—निरुक्त ७-१४ पर दुर्गाचार्य की टीका

अर्थात् यह अग्नि कौन है ? वह आत्मा है ऐसा आत्मविदों का मत है। क्योंकि 'एक ही सत् तत्त्व का विद्वन बहु प्रकार से वर्णन करते हैं, ऐसा वेद मंत्र उपलब्ध होता है। इसी परिपाटी पर पदार्पण करके हम भी कह सकते हैं कि अग्नि शब्द गुरु का वाचक है।

अग्नि शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ शास्त्रकार बताते हैं—

अग्निः कस्मात् ?

(१) अग्रणीर्भवति ।

(२) अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते ।

(३) अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीवि । न क्नोपेयति न स्नेहयति ।

(४) त्रिभ्य अख्यातेभ्यो जायते इति शाकपूणिः ।

यहाँ ठीक ध्यान से देखा जाय तो ये व्युत्पत्तियाँ 'गुरु' की द्योतक है। गुरुदेव हमेशा अग्रणी होते हैं। हमारे जीवन में एवं शिष्य के प्रत्येक कार्य में गुरु आगे ही होते हैं। यज्ञ शब्द का एक अर्थ पूजा है। प्रत्येक पूजा कार्य में गुरुदेव प्रथम ही होते हैं, अतः उन्हें अग्निः कहा गया है। यज्ञ-योगादि के आरम्भ में जो देवादि का स्मरण होता है, वहाँ भी सद्गुरु का स्मरण करना नितान्त उपादेय है।

स्थौलष्ठिवी नाम के आचार्य का मत है कि अग्नि 'न स्नेहयति' कोई भी प्रकार की चिकनाहट नहीं रहने देता है। अग्नि में कितना ही घी या तेल डालो सब भस्म हो जाता है। उसी प्रकार गुरुदेव भी शिष्य के हृदय में

जो भी संसार के राग–द्वेष या स्नेह एवं मोह है उसको ज्ञानाग्नि से जलाकर भस्मावशेष करते हैं। अतः **भगवान् वेद** गुरु को अग्नि कहते हैं।

शाकपूणि नाम के प्राचीन आचार्य का मत है अग्नि शब्द तीन धातु से बनता है।

(१) इ पते (२) अनक्ति दहते (३) नी नयति—पति व्यनक्ति च पदार्थानाम् ज्ञानमयानि रूपाणि अथवा दहति च अविद्याजालं नयति च शिष्यान् सन्मार्गे इति अग्निः सद्गुरुरित्यर्थः।

जो पदार्थों के ज्ञानमय रूप को व्यक्त करता है अथवा अविद्याजाल को जला देता है तथा शिष्यों को सन्मार्ग पर ले जाता है, वह अग्नि है अर्थात् सद्गुरु है।

कौषितकी, ब्राह्मण के अनुसार '**अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता।**' अग्नि राक्षसों का संहारक है। आप सब जानते ही हैं कि काम, क्रोध, मद, मोह आदि जो आन्तरिक शत्रु हैं वह एक प्रकार के राक्षस ही हैं। और सद्गुरुदेव अपने उपदेश रूपी आयुध से उन सबका नाश करते हैं। अतः गुरुदेव ही अग्नि हैं।

अग्नि का एक नाम वैश्वानर है। और उसकी व्युत्पत्ति है **विश्वान् नरान् नयति इति वैश्वानरः**—नि. ७–२१ अर्थात् वह सब मनुष्यों को नेतृत्व प्रदान करते हैं सच्चे मार्ग पर ले जाते हैं, अतः वैश्वानर कहलाते हैं। सद्गुरु का भी यही जीवन–कार्य होता है।

अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर देख लिया कि अग्नि और गुरु में कोई अन्तर नहीं है। अब गुरु शब्द की व्युत्पत्ति करके भी देखा जाय तो वही अर्थ मिलेगा कि गुरु और अग्नि में अभेद है। जैसे कि—**गिरति सविलासाविद्यां ग्रसते इति गुरुः**—जो कार्य सहित अविद्या का भक्षण करता है वह गुरु है। अग्नि भी सर्वभक्षी है, यह बात सुविदित है अथवा **गारयते विजानाति स्वयं परान् विज्ञापयति इति गुरुः**—जो स्वयं ब्रह्म को जानता है और शिष्य को ज्ञात करता है वह गुरु है। अग्नि स्वयं देवरूप से सबको जानता है और प्रकाश द्वारा सब पदार्थों का ज्ञान कराता है, अतः गुरु और अग्नि में कोई खास अन्तर नहीं है।

गुरु शब्द की एक प्रचलित व्याख्या भी इसी संदर्भ में विचारणीय है। कहा गया है—

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्
रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार—निरोधित्वाद्
गुरुरित्यभिधीयते॥

'गु' शब्द अन्धकार का वाचक है और 'रु' शब्द उसका निरोधक है। अतः अन्धकार के—अविद्या रूपी अन्धकार के निरोध करने वाले होने के

कारण 'गुरु' कहलाते हैं । अब अग्नि की व्याख्या लीजिये। वह है—दाहप्रकाशात्मकोऽग्निः । प्रकाशात्मक होने से अग्नि अन्धकार का निरोध करनेवाला है ही । इस प्रकार गुरु एवं अग्नि में कोई अन्तर नहीं अर्थात् गुरु ही अग्निदेव है और वेद में जहाँ जहाँ अग्नि कि स्तुति है वहाँ निगूढ़ रूप से सद्गुरुदेव की भी स्तुति है । अपनी परम्परा तो बताती है कि गुरुदेव मर्त्य नहीं दिव्य होते हैं । जो उसे मर्त्य मानवी मान लेता है उसको मंत्रों द्वारा या देवताओं के पूजन करने पर भी कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती है—

गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्य हि ।
न च कश्चिद् भवेत् सिद्धिः मन्त्रैर्वा देवतार्चनैः ॥

दूसरे दिन ता. ७ मार्च को मथुरा के गर्ल्स डिग्री कालेज, गाँधी पार्क में, जुलूस एवं विद्वानों के मंत्रोच्चार के साथ **भगवान् वेद** की स्थापना सायं ५ बजे की गई ।

अमृतसर में

इस प्रकार वृंदावन में करीब १७ दिन का कार्यक्रम समाप्त कर आप कार से, ता. ८ मार्च को देहली होते हुए ता. १२ मार्च को अमृतसर पधारे । अमृतसर के तो आप अमृत-सर ही हैं । वहाँ पदार्पण करते ही विविध कार्यक्रम शुरू हो जाते हैं । दूसरे दिन सत्य नारायण मंदिर में एवं ता. १४ को दुर्गेमाता मंदिर में प्रातःकाल आपने प्रवचन किये । रामधाम आश्रम में भागवत सप्ताह का प्रारंभ हुआ । ता. २० मार्च को भागवत-सप्ताह की पूर्णाहुति सायं ५ बजे की गई तथा नवरात्रि आरंभ होने से नित्य पूजन अर्चन का क्रम रहा ।

ता. २२ मार्च को कृष्णाबहन संचालित योगेश्वर गुरु गंगेश्वर महिलाश्रम में आप सत्संग के लिये पधारे । मैं भी साथ थी । बहन स्वयं डाक्टर होने पर भी अति विनीत, प्रेमी, त्यागी तथा परदुःखभंजन हैं । उनके आश्रम में भी बहनें रह कर योग साधना करती हैं । वहाँ आपके प्रवचन में आपने नारी संबंधी एक बड़ी रोचक कहानी सुनाई । आपने कहा कि—

एक समय सब रानियों ने श्रीकृष्ण से पूछा कि 'मैं आपको कैसी प्रिय हूँ ? तब प्रत्येक के अधिकार अनुसार श्रीकृष्ण ने तुम पेड़े जैसी, तुम बरफी जैसी, तुम शक्कर जैसी, तो किसी को गुड़, मिश्री, घी दूध मख्खन दधी, चावल जैसी, तो किसी को साग, चटनी पापड़ पूड़ी आदि आदि जैसी बताई । पीछे मानिनी रुक्मिणीजी पधारे, उन्होंने जब पूछा तब प्रभु ने कहा आप तो नमक-सी प्यारी हो । यह सुनकर अन्य सब स्त्रियाँ उनको चिढ़ाने लगीं । देखो आपको तो प्रभु ने नमकीन कहा ! इससे रुक्मिणीजी उदास हो गईं । देवकी माता ने यह देखकर दूसरे दिन उन सबको भोजनार्थ आमंत्रित किया । विभिन्न स्वादिष्ट भोजन सामग्री

बनाई, परन्तु उसमें लेश भी नमक डाला ही नहीं ! सब भोजन करने बैठी तो नमक दो, नमक लाओ ऐसी मांग करने लगीं। देवकीबी ने कहा 'नमक किसी को भी नहीं मिलेगा, वह तो खारा है, इसलिये आपको किस काम का ! आप पेड़े, बरफी पकवान खाइये। परंतु खाय कैसे ! नमक बिना तो भोजन स्वाद रहित लगता लगे। बहुत अनुनय विनय के पश्चात्, देवकी ने रुक्मिणी जी के हाथ से ही नमक दिलाया। जैसे बिना नमक सब सामग्री रस-हीन है, वैसे ही रुक्मिणी के बिना आप सब निकम्मे हैं। अतः प्रभु ने उनको सर्वोत्तम कहा था। यह विनोदपूर्ण दृष्टांत देकर आपने बताया कि जैसे बिना नमक के बिना भोजन नीरस है, ठीक वैसे ही भक्ति बिना सारी क्रियाएं निष्फल हैं। विद्वता, सौंदर्य एवं लक्ष्मी कितने भी हों, परंतु भक्ति के बिना कुछ शोभा नहीं देता। भक्ति रूप अंजन आँखों में लगाने से ही ज्ञान रूप गुप्त-धन प्रकट होता है। योग सूत्र भी यही कहता है कि
'यथा ज्ञानं विना मुक्तिस्तथा भक्ति विना न तत् ।'

आश्रम में बहन ने सबको अल्पाहार कराया। पश्चात् हम आश्रम में लौट आये। ता. २४ को हम लोग लुधियाना गये। श्री यशपाल के यहाँ ठहरे। अमृतसर जब आप जाते हैं तब आप राजवान में सद्गुरु-स्वामी रामानंदजी की समाधि पर दर्शनार्थ अवश्य जाते हैं। मैं भी आपके साथ थी। लुधियाना से २०-२६ भक्तों सहित ता. २६ मार्च को आप राजवाना गये। सभी ग्रामों की पञ्चायतें तथा छोटे बड़े राजवाना की संगत भी वहाँ आपके दर्शनार्थ उपस्थित थीं। श्री यशपाल, बलदेव, डा. कृष्णाबहन, गुरुदेवसिंह, महेन्द्र तथा निर्मलाबहन के नाम उल्लेखनीय हैं।

ता-२७ मार्च को, लुधियाना में वैशाखीराम की यज्ञशाला में **भगवान् वेद** की स्थापना एवं प्रवचन हुए। चीमासाहब की गीता का उद्घाटन किया। इसके पश्चात् चीमाबहन, किशोरीलाल, शास्त्री मदनगोपाल के प्रवचन हुए। २८ मार्च का लुधियाना से प्रातःकाल आप दिल्ली गंगेश्वर धाम पधारे।

परिवार कल्याण की कामना

आज बहनों के समक्ष किये गये प्रवचनों में आपने अथर्ववेद के तृतीय कांड के तीसवे सांमनस्यम् नामक सूक्त का आधार लिया और बताया कि वेद भगवान प्रत्येक परिवार के पूर्णतया हितचिंतक हैं। वेद तो चाहता है कि कुटुम्ब के सभी सभ्यों के हृदय और मन समान हों। हममें आपस में वैरभाव या द्वेष न हो। जैसे नवजात बछड़े के प्रति गौ प्यार करती है, वैसे हम भी एक दूसरे को प्रेम करें। **अन्यो अन्यम भि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।**

—अथर्व. ३-३०-१

पूज्य सद्गुरुदेव के जन्म शताब्दी महोत्सवमें माता आनन्दमयी
एवं पूज्य डोंगरेजी महाराज

परम पूज्य सद्गुरुदेव महाराज को माल्यार्पण करते हुए
पूज्य डोंगरेजी महाराज

रामधाम, हरिद्वार

गंगेश्वर धाम, हरिद्वार

भगवान् वेद आगे चल कर कहते हैं कि **'अनुव्रतः पितुः पुत्रः'**— पुत्र अपने पिता के व्रत का अनुसरण करनेवाला हो । और माता के प्रति समान मनवाला बने । पत्नी भी पति के प्रति शांतिपूर्ण मधुर वाणी का प्रयोग करे । **'जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्'** । (मंत्र २) भाई--भाई का द्वेष न करे' बहन बहन का द्वेष न करे । समान व्रत वाले बनकर सब कोई कल्याणमय वाणी बोलते रहे । जिस घर में छोटे बड़े का बहुमान करे, परस्पर एक होकर कार्य करे और प्रेमपूर्ण औदार्यमय वाणी का व्यवहार करे वहाँ स्वर्ग ही पृथ्वी पर उतर आयेगा । याद रखें कि परिवार प्रेम ही विश्व प्रेम का प्रथम सोपान है । जो व्यक्ति अपने परिवार को सच्चा प्यार देता है और परिवार से पूर्णतया प्यार प्राप्त करता है, वही एक दिन संसार के सभी जीवों के प्रति प्रेम-मय व्यवहार द्वारा प्रभु का साक्षात्कार कर सकता है । अतः घर में और सर्वत्र प्रेम को प्रभु का स्वरूप मान कर प्रत्यक्ष करो ।

स्वामी सर्वानन्दजी की जयन्ती

ता. २९ को रामनवमी थी। ब्रह्मलीन स्वामी सर्वानंदजी महाराज की जयन्ती मनाई गई । १०८ रामायण—पाठ, दुर्गा सप्तशती पाठ तथा हनुमान चालीसा का पाठ हुआ। स्वामी सर्वानंदजी एवं आपकी मूर्तियाँ स्थापित की गईं तथा रात में कीर्तन प्रवचन होते रहे । ४—५ दिन देहली में ठहर कर, आप २ अप्रैल को हरिद्वार, रामधाम आश्रम में मोटर से आ गये। ता. ४ अप्रैल को हृषिकेश के शंकराचार्य नगर स्थित महेश योगी के आश्रम में वेद भगवान की प्रतिष्ठा आपके वरद कर—कमलों से हुई । महेश योगी का नाम तथा धार्मिक प्रवृत्ति, योग—साधना आदि से केवल भारत में ही नहीं, विश्व—विख्यात हैं । पू. श्री शंकराचार्य, शांतानन्दजी, गुरुमंडल आश्रम के महंत गरीबदासजी, चेतनानन्दजी एवं सभी मंडलेश्वर उस शुभ अवसर पर उपस्थित। थे वहाँ वेद विषयक प्रवचन हुए। सायंकाल हरिद्वार आप लौट आये ।

हरिद्वार में

हरिद्वार का रामधाम आश्रम आज तो बहुत विशाल रूप में खड़ा है एवं सामने गंगेश्वरधाम भी काफी बड़ा, आपकी कीर्ति—पताका फहराता खड़ा है । सन् १९५१—'५२ में जब मैं प्रथम बार संयोगवश आपकी उपस्थित में हरिद्वार रहने गई, तब रामधाम की केवल एक ही मंजिल तैयार थी । आज से २८ साल पहले हरिद्वार सर्वथा शांत वातावरण से युक्त था । विभाजन के बाद, जब

सिंध-करांची की जनता जगह-जगह विस्तारपूर्वक बस गई, तबसे हरिद्वार में भी बस्ती अत्यधिक बढ़ गई है। उस समय मुझे वह स्थान बहुत अनुकूल था। प्राकृतिक सौंदर्य और कला के प्रति मुझे बचपन से ही स्वाभाविक आकर्षण रहा है। अतः गंगा मैया का पावन शान्त प्रवाह, उदित भगवान-भास्कर की लालिमा, पक्षियों का मधुर कलरव, शीतल वायु-लहरी का स्पर्श, सामने के किनारे वृक्षों की घन घटा आदि इधर की अनुपम सर्जन-कला का सुंदर चित्र मेरे हृदय में अंकित कर देते थे। अपनी संतान के सुख-उपभोग के लिए, सृष्टि-पुष्टि के लिये इस समग्र समृद्धि का भंडार उनके आगे रख दिया है। और तो क्या, ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ दिव्य कृति तो हमारा यह मानव-शरीर ही है, जिसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। कभी-कभी सोचती हूँ कि इतनी अगाध कृपा परमेश्वर ने प्राणिमात्र पर की है, पल-पल वे हमारी रक्षा करते हैं, फिर भी हमारा यह हृदय इतना कृतघ्न है कि हम संसार-व्यवहार में स्थूल उपभोगों में, विषय-वासना के कीचड़ में फँस कर उस महान दाता की स्तुति-प्रार्थना, स्मृति तक नहीं करते! अमूल्य मानव-जीवन का यह कैसा हास-उपहास! आप जैसी विभूतियाँ इसीलिये तो समय समय पर प्रकट होती हैं मानव कल्याणार्थ; जो रजो-तमो गुण से आवृत्त ईश्वर विमुख प्राणियों को, सत्संग द्वारा, ईश्वराभिमुख कर सत्पथगामी, उत्कर्षशील बनाती है। सद्गुरु ही सत् हैं, एवं उनका संग ही सत्संग है। मुझे तो आपकी असीम कृपा से, आपका सानिध्य-सत्संग सेवा आदि यद्यपि बहुत वर्षों से प्राप्त हुए हैं, फिर भी लोभी का मन कभी तृप्त नहीं हो सकता। हाँ इतना अन्तर जरूर है कि लोभी को तो दाम चाहिये, पर मुझे आपके समान वेद रत्नाकर से सारे ही रत्न प्राप्त करने हैं। उसी को अपना कण्ठहार बनाते, उनकी दीप्ति से दीप्तमान् होना चाहती हूँ। फिर भी आप तो परिपूर्ण रस-रत्नाकर हैं, मुझे इतना थोड़ा दान देने से उस भंडार से लेश भी कम नहीं होता। मैं जानती हूँ प्रभु! जगत् में आपके समान उदार दाता की जोड़ नहीं। अस्तु। रतन गुरु-रत्न-दीप ज्योति में लीन हो जाय तो रतन का नाम-रूप दोनों चरितार्थ हो सके।

तारीख ९ अप्रैल को रामधाम में गंगा बहन की ओर से भगवद्भक्त श्री मूलबिहारी जी ने श्रीमद्भागवत सप्ताह प्रारम्भ किया। दूसरे दिन, **हंसाश्रम** मंडल में अर्जुन भाई के द्वारा वेद-स्थापना की गई। ता. २३ अप्रैल को भागवत्-सप्ताह की पूर्णाहुति की गई। ता २८ अप्रैल को अमावस्या थी। आश्रम के निवासियों ने तथा संत मंडल ने गंगा स्नान किया। तथा उदासीन पञ्चायती अखाड़े में जाकर पूजन किया।

अप्रैल तथा मई में हरिद्वार में बहुत गर्मी होती है । अतः प्रायः आप अप्रैल से जून तक माउण्ट—आबू के शांत शीतल वातावरण में ही बिताना अधिक पसंद करते हैं । ता. १९ अप्रैल को हरद्वार से देहली होते हुये, आबू जाना था । ४ दिन आपके देहली के निवास में भी, छोटे—छोटे कार्यक्रम चालू ही रहे । ता. २० अप्रैल को डेन्मार्क ले जाने के लिए **भगवान् वेद** ग्रंथ को एक नकल प्रोफेसर रामसिंहजी को सुपुर्द की । दूसरे दिन अक्षय तृतीया थी । उस दिन प्रातः बाबा महेश सिंह आपको आश्रम में मिलने आये । आपकी परम भक्ता श्रीमती कौसल्या बहन खन्ना के घर पधारे तथा सुपुत्री विभा के शुभ विवाह पर आशीर्वाद दिया । शाम को श्री जयदेवी बहन के यहाँ लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा की स्थापना के प्रसंग पर आपने यथोचित प्रवचन किया ।

इस प्रकार हरिद्वार—देहली का कार्यक्रम पूरा कर, आप ता. २३ अप्रैल को माउण्ट आबू, 'अविनाशी धाम' पहुँचे ।

कल्याणमय काम को कामना

दिल्ली में एक समय कुछ विद्वान लोग प्रभु के दर्शनार्थ पधारे थे । किसी ने काम के बारे में प्रश्न कर दिया । चर्चा तो ठीक चली । उसका सार भाग यहाँ प्रस्तुत है । प्रभु ने चर्चा के दौरान बताया कि हम लोग योरोप के सम्पर्क में आकर काम के बारे में केवल एक ही दिशा में सोचना सीख गये हैं । और उसे कई लोग घृणा से देखते हैं या कोई उसे वर्ज्य मानता है । वास्तव में हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस विषय में वैज्ञानिक ढंग से विचार विमर्श किया है ।

मनसि वै सर्वे कामाः श्रिताः ।—(ऐ. आ. १-३-२) सब कामनाओं की जन्मभूमि मन है । मन में ही वे सब रहते हैं । मर्त्य—मानवी भूरि—भूरि कामनाओं से भरा रहता है । **पुलुकामो हि मर्त्यः**—यह ऋग्वेद का विधान है । ये कामनायें दो चार, पाँच—पचास या लाख—दो—लाख नहीं किन्तु अगणित हैं । **तैत्तिरीय संहिता** २-५-५-६ के अनुसार—**समुद्रः इव हि कामः । नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य** । काम समुद्र के समान है । न काम का कोई अंत है न समुद्र का । अर्थात् जैसे सागर का विस्तार या गहराई कोई पूर्णतया नाप नहीं सकता, वैसे ही काम का समझना चाहिये । काम तो आकाश के समान अनन्त है, ब्रह्म के समान व्याप्त है और पवन के समान सतत गतिशील है । अधिक तो क्या श्रुति भगवती काम को वैश्वानर बताती है ।

कामो वैश्वानरः—मै. ३-१-१० वैश्वानर नाम अग्नि का है । हमारी परम्परा ने काम को अग्नि बताया है । कामाग्नि यह सूचक प्रयोग है । काम या

वासना एक प्रकार से अग्नि समान है। उसमें आप कितनी ही विषय रूप समीध डालते रहो, वह शान्त नहीं होगी, प्रत्युत बढ़ती हो जायेगी। ययाति का कथन तो हम जानते ही हैं कि—

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

अतः उपभोग वह काम-शान्ति का नहीं, काम-वृद्धि का उपाय है। काम की शान्ति विषयों के त्याग से होगी।

यहाँ वेद भगवान ने काम को वैश्वानर बताया है, उसका एक अन्य रहस्य भी है। वैश्वानर शब्द की व्युत्पत्ति निरुक्त बताता है **विश्वे नरान् नयति** जो सर्व मनुष्यों को मार्ग बताता है, मनुष्यों को कर्म में प्रवृत्त करता है वह वैश्वानर है। यह स्पष्ट बात है कि यदि हृदय में काम ही न हो तो कोई भी मानव प्रवृत्ति ही नहीं करेगा। प्रवृत्तियों का प्रेरक काम ही है। वेद का एक कथन यहाँ उल्लेख्य है कि **सर्वे वै कामा मधु**—ऐ. आ. १-१-३ सब काम मधुर-आकर्षक होते हैं। और फलतः मानवी काम के जाल में फँस जाता है। अतः कई विचारक काम को त्याज्य-वर्ज्य बताते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है।

इसको समझने के लिये एक दृष्टान्त प्रस्तुत है। एक समय कोई युवान संसार से भागकर एक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध, तपोवृद्ध संत के पास पहुँच गया और कहने लगा, 'भगवन्! मुझे संन्यास-दीक्षा दो।'

'क्यों?' संन्यासी ने पूछा।

'बस, मेरे मन में कोई कामना नहीं है। न मुझे माता-पिता से प्यार है, न बाल-बच्चों से। न मुझे धन की कामना है, न सुख की। वास्तव में कोई कामना मेरे मन में नहीं है।' युवक ने उत्साह में निवेदन किया।

'तब तो मैं तुझे संत नहीं बना सकता' संत ने कहा, 'जिस नाले में पानी ही नहीं है, उसे नदी तक कहाँ से बहाया जाय?

'मैं नहीं समझा,' युवक बोला।

'बेटा, मन में कोई कामना की नदी होनी चाहिये, भले ही वह संसार के प्रति बहती हो, उसको संत मोड़ कर प्रभु के प्रति बहा सकते हैं। लेकिन नदी में पानी ही नहीं हो तो क्या करेंगे?' युवक चुप हो गया।

दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि काम सर्वथा बुरी चीज नहीं है, आपाततः वर्ज्य नहीं है। काम तो प्रभु के पास पहुँचाने का साधन भी बन सकता है। **गोप्यः कामात्**—इत्यादि श्रीमद् भागवत् के कथनानुसार काम को साधन बना के गोपियाँ प्रभु को प्राप्त हो गईं। यही कारण है कि प्राचीन ऋषियों ने काम को

चतुर्विध पुरुषार्थ में स्थान दिया है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में काम का समावेश करने का यही रहस्य है ।

भगवान् वेद ने तो दो प्रकार के काम का निर्देश किया है । (१) कल्याणमय काम (२) अकल्याणमय ! काम को तो भगवान का स्वरूप मानकर उसे सीधी प्रार्थना की है कि हे प्रभो । आपका जो मंगलमय एवं कल्याणकारी स्वरूप है उसके साथ हम में प्रविष्ट हों और जो पापी काम है उसे हमसे दूर करो ।

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्राः
याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्व
अन्यत्र पापीरपवेशया धियः ॥

—अथर्व० ९-२-२५

काम– हे कामदेव ! **या**–जो, **ते**–आपके, **शिवाः**–कल्याणकारी, और **भद्राः**–मंगलमय, **तन्वः**–स्वरूप है **याभिः**–जो स्वरूपों से आप **यद्**–जो **वृणीषे**–पसंद करते हैं वह **सत्यम्**–सत्य **भवति**–हो जाता है **ताभिः**–उन मंगलमय स्वरूपों से **अस्मान्**–हममें, हमारे हृदय में **अभि संविशस्व**–चारों ओर से प्रवेश करो और **पापीः धियः**–जो पापमय संकल्प या बुद्धियाँ हैं, उनको **अन्यत्र**–अन्य स्थान पर **अपवेशय**–हमसे जुदा कर दो ।

४. एको विभूः अथितिर्जनानाम् ।

—अ. ७-२१-१

अथर्ववेद ७-२१-१ का कथन है **एको विभूः अतिथिर्जनानाम्** । अर्थात् एक सर्व समर्थ ईश्वर मनुष्यों का अतिथि बना है । आज इस श्रुतिवाक्य को ठीक समझा जाय तो अवश्य अवगत होगा कि प्रभु-गुरुदेव मनुष्य मात्र के द्वार पर अतिथि बनकर पधारते हैं । उनको सूर्य की भाँति सतत प्रकाशित रहने की और वायु की तरह सतत गतिशील रहने की क्या जरूरत है ? यदि स्वयं कोई एयर कण्डीशण्ड कमरे में बैठ जाय और शेष जीवन आराम से व्यतीत करे तो क्या फर्क पड़ता है ? नहीं, प्रभु-गुरुदेवतो स्वयं विभु हैं, सर्व व्यापक और सर्वेश्वर हैं । अतः स्वयं सर्वत्र घूमते रहते हैं । नगरी-नगरी, गाँव-गाँव एवं द्वारे-द्वारे मनुष्य के अतिथि बनते हैं, जन-समाज को दर्शनमात्र से पवित्र करते हैं, उपदेश से सर्व का उद्धार करते हैं । इनको मनुष्य मानने की भूल नहीं करना ।

उसको मनुष्य मत मानो

इस विषय में भक्तों की भावना कैसी भव्य होती है, उसका उदाहरण सेठ श्री बालचन्द्रजी के सुपुत्र भाऊ से बात करने पर प्राप्त हुआ । भाऊ ने आनन्द में आकर सुनाया कि मुझे एक बार सिलोन जाने का अवसर उपस्थित हुआ । मैंने गुरुदेव से अनुज्ञा एवं आशीर्वाद माँगा । परम पूज्य गुरुदेव ने मुझे आशीर्वाद देकर कहा, 'बेटा सिलोन जाते हो तो वहाँ तपस्वीजी महाराज के पास ठहरना । तेरा सब कार्य सिद्ध हो जायेगा। वे बड़े चमत्कारिक संत एवं महान तपस्वी हैं ।'

मैंने गुरुदेव से रजा लेकर सिलोन की ओर प्रयाण किया । वहाँ जाकर एक अच्छी सी होटल में पहुँचा और मेरा सामान वहाँ कमरे में ठीक जमाया । बाद में स्नानादि से निवृत्त होकर चाय-वाय पीकर मैं बाजार में निकला । किसी सिन्धी भाई को पूछकर बाबा तपस्वीजी महाराज का स्थान ढूँढ लिया । मैंने वहाँ पहुँचकर बाबा के चरणों में प्रणाम किया । बाबा बोले, 'बेटा, आ गया । अच्छा हुआ । लेकिन कहाँ ठहरे हो ? तुमको तो यहाँ मेरे पास ठहरना था ।'

मैं तो यह सुनकर चकित हो गया । जो बात पूज्य गुरुदेव ने मुझे कही थी, वह बात शब्दशः बाबाजी जानते ही हैं । और वहीं मुझे चमत्कार दिखाई पड़ा । दस मिनट में एक सज्जन मेरा सब सामान लेकर वहाँ उपस्थित हो गया । मैं हैरान रह गया । रूम की चाभी मेरे पास है और मेरा सारा सामान यह यहाँ

कैसे ले आया ? मैंने पूछा तक नहीं लेकिन वह सज्जन बोले, 'आपके कमरे की चाभी तो आपके पास ही है लेकिन हमने बाबा के नाम से होटलवाले को बात की । उसने अपनी मास्टर की चाभी से आपका कमरा खोलकर सारा सामान मुझे दे दिया । आप अपना सामान संभालो और मुझे होटल के कमरे की चाभी पकड़ा दो । मैं उसे पहुँचा दूँगा । आपका बिल भर दिया गया है ।'

यह सब सुनकर मैं तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । बाबा ने बहुत-सी अच्छी अच्छी बातें करके मुझे आनन्द में ला दिया । फिर बोले, 'देख बेटा ! तेरे गुरुदेव कोई सामान्य संत नहीं हैं । साक्षात ईश्वर हैं ईश्वर । उसे कहीं मनुष्य मानने की भूल नहीं करना । उसे तू मनुष्य मानेगा तो तेरा उद्धार नहीं होगा । और बड़े ही श्रद्धा भक्ति भावपूर्ण मन से भाऊ ने बताया कि उस दिन से आज तक मैं और मेरे परिवार के सभी सदस्य गुरुदेव को मनुष्य नहीं ईश्वर ही मानते हैं ।

माउण्ट आबू में

माउण्ट आबू प्राचीन ऋषि—मुनि एवं तपस्विओं की तपोभूमि है । हमारे उदासीन संप्रदाय के सर्वप्रथम आचार्य जगद्गुरु श्री श्रीचन्द्राचार्य ने अविनाशी मुनि से यहाँ पर दीक्षा ली थी । उस प्राचीन स्मृति को ऐतिहासिक एवं अध्यात्म दृष्टि से मूर्तिमंत बनाने के उद्देश्य से, आपने इस कैलास—भवन नामक आश्रम को 'अविनाशी धाम' में परिवर्तित किया, उसका उल्लेख मैं पहले भी कर चुकी हूँ । अपने आराध्य देवता के नाम स्मरण अति सुखदायी होने के कारण पुनरुक्ति भूषण रूप ही होगी ।

माउण्ट आबू में आप पूरे तीन महीने बिताते हैं । प्रतिवर्ष संत-भक्त शिष्य गण आते—जाते रहते हैं । वहाँ आपका अधिकतर समय विद्वानों के साथ वेद-विषयक हिन्दी भाष्य आदि संस्कृत साहित्य-लेखन में व्यतीत होता है । बड़े-बड़े ग्रंथों के संशोधन कार्य में आपको अधिक आनन्द तथा प्रसन्नता रहती है ।

यद्यपि आप ज्ञान के अपरिमित रसार्णव हैं और मैं कई बार आपको कहती भी कि "गुरुदेव ! आप क्या नहीं जानते कि बारबार भिन्न—भिन्न पुस्तकों को देखते रहते हैं । देखती हूँ कहीं सभा में प्रवचन भी करना हो तब भी आप वेदविषयक पुस्तक देखे बिना नहीं रहते हैं । तब प्रभु कहते "बेटी ! आवश्यकता तो नहीं, परन्तु थोड़ा-सा देख लेने पर विषय दर्पण की तरह स्पष्ट हो जाता है, सोचना नहीं पड़ता ।"

आजकल के विद्यार्थियों को इससे शतांश भी लगन नहीं, ज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य दूर रहा, केवल परीक्षा में जैसे-तैसे उत्तीर्ण हो जाने की मनोवृत्ति रहती है। आँखें होने पर भी उनका सदुपयोग नहीं करते। आपने तो अपना समस्त जीवन बिना नयन, ज्ञान वेदी पर निछावर कर, विश्व में लाखों सूर्यों का अमित प्रकाश फैलाते हुए अपने प्राणप्रिय सद्गुरु रामानंदजी की कीर्ति को बढाया, इतना ही नहीं, उदासीन संप्रदाय के संत-कुल-कमल के आप दिवाकर हैं। समस्त विद्याओं में आत्मज्ञान द्वारा मोक्ष प्रदायिनी वेद-विद्या आप ही हैं।

प्रतिवर्ष आपके दर्शन-सानिध्य के लिये आनेवाले मुख्य भक्त प्रेमियों में दिल्ली से डा. माथुर तथा विमलाबहन, बम्बई से भाई गोविंदराम तथा मुरलीधर सपत्नीक, श्री लोकुमल-लक्ष्मी बहन, नरेश भाई-इंद्राबहन सेक्सरिया, अहमदाबाद से डां. गौतम पटेल का नाम उल्लेखनीय है। मैं भी जून में कुछ दिनों के लिये आ जाती हूँ एवं गुरु-पूर्णिमा-उत्सव पर अहमदाबाद साथ ही आती हूँ। ये थोड़े दिन भी मेरे नित्य तृषातुर प्राणों के लिये सोमरस समान हैं।

ता. १९ जून को गुजरात के मुख्यमंत्री श्री बाबूभाई आपके दर्शनार्थ आये। १ घण्टे तक राष्ट्र-भक्ति विषयक चर्चा चली। एक दिन ८-८।। बजे मैं आपके श्री चरणों में बैठकर भगवत्कृपा का अनुभव और तज्जनित आनंद की अनुभूति करती हुई आपकी मनहर वचनावली सुन रही थी, तब महिला-मण्डल की १० जिज्ञासु बहनें आपके दर्शन-सतसंग के लिये अविनाशी आश्रम में आईं। एक तो भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी. वी. गिरि की सुपुत्री थी। साथ में भक्त वत्सलम् की पुत्री हीरा बहन अनुसूया बहन एवं अन्य बहनें थीं। इनकी प्रार्थना पर आपने **भक्ति की सर्व सुलभता** पर संक्षेप में बातें कहीं।

भक्ति की सर्वसुलभता

आपने गीताजी का श्लोक सुनाया--

"वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

—गीता ८-२८

अर्थात् गीता के अनुसार वेद, यज्ञ, तप और दान के अनुष्ठानादि से जो पुण्य-राशि संचित होती है, उसका अतिक्रमण कर योगी सर्वश्रेष्ठ स्थान या ब्रह्म को प्राप्त करता है—यह सब सत्य है, परन्तु फिर भी गीता में भक्ति का स्थान सर्वोच्च है। भगवत्कृपा का प्रत्यय जिस सुगमता से भक्ति द्वारा होता है, वैसा

और किसी अन्य साधन द्वारा नहीं हो सकता । उनका मार्ग अत्यंत, जटिल प्रतीत होता है । सकाम भावयुक्त कर्म थोड़ी-सी असावधानी होने पर अनिष्ट हो सकता है और वहाँ अनेक वर्षों की साधना—तपस्या अपना फल देकर नष्ट हो जाती है । इससे विपरीत, भगवद्भक्तों की स्थिति कुछ और ही होती है । वे राजमार्ग के पथिक हैं, अतः वहाँ किसी प्रकार का भय नहीं । उनके सिर पर सदैव भगवान गुरु के वरद हस्त की छाया बनी रहती है । भक्तों को तो निरंतर प्रभु का गुणगान करना है । उनकी पावन लीला-चरित का श्रवण करना-कराना है एवं भगवत्संबंधी विभिन्न प्रासंगिक चर्चा द्वारा उनकी सतत स्मृति बनाये रखनी है । अर्थात् अहंभाव को दूर कर अपने को सर्वथा प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना है । उनके लिये ही जीना और मरना है । अपना कुछ भी नहीं, सब कुछ प्रभु तेरा ही तेरा ! ऐसे अनन्य भक्तों के लिए भगवान् अभय वचन देकर, उनका अहर्निश योगक्षेम वहन करते हैं ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ —गीता. ९-२८

भगवान् श्री कृष्ण का यह उद्देश्य भक्तों का जीवन और प्राण है—जो भक्त अनन्य भाव से मेरा चिंतन करते, उपासना करते हैं, मैं सदा उनके योगक्षेम वहन करता हूँ । वस्तुतः भगवान श्री कृष्ण का यह अत्यंत सर्वतोमुखी उपदेश, अर्जुन को एक निमित्त मात्र बनाकर, समस्त विश्व के प्रति था । अर्जुन नर एवं श्रीकृष्ण नारायण हैं । अर्जुन कोई साधारण पुरुष तो थे नहीं, वह बड़े कृष्ण प्रेमी, उनके सखा, जिज्ञासुभक्त, शूरवीर योद्धा थे । तभी तो प्रभु की अमृतवाणी से उनका मोह नष्ट हुआ, सारे संदेह टल गये, अति नम्रभाव से प्रसन्न हृदय से भगवान के चरण कमल में गिर कर कहता है '**करिष्ये वचनं तव**' (गी. २८।०३) बस यही मानव मात्र के उद्धार का सर्वोत्तम साधन है ।"

बहनें बहुत भाव से आपके अति माननीय उपदेश सुनती रहीं । आपने सबको प्रसाद दिया एवं दूसरे दिन भी सब प्रातः आईं । तब आपका टेप किया हुआ प्रवचन उनको सुनाया । दो दिन सुनने से उनको इतना आनंद आया कि पुनः तीसरे दिन भी प्रातः आने पर उनको टेप किया हुआ दूसरा प्रवचन सुनाया ।

अद्वैत होत द्वैत रूप

मैंने देखा कि बहनों का हृदय प्रकृति से ही कोमल एवं प्रेमी होता है; जब आप जैसे विभूतियों के दर्शन मात्र से उनके हृदय सागर तरंगित होकर, किसी अद्भुत आनंद का अनुभव करते हैं । फिर मेरे प्रभु तो हैं ही श्रीचंद्र ! चंद्र के उदय

होते ही सागर तरंगित होता है, कुमुदिनी प्रफुल्लित हो उठती है, वनस्पतियाँ सोमरस से समृद्ध होती हैं, चकोर (भक्त-प्रेमी) अपने प्रियतम के दर्शन में मग्न हो जाता है एवं समस्त विश्व शीतल चन्द्र-कला-कौमुदी का आल्हाद लूटता है। इसी में दादागुरुजी एवं उदासीनों के आदि गुरु श्रीचन्द्र की प्रतीति निःसंदेह है। एकरूप ही, परंतु सौंदर्य माधुर्य का रस द्वैत में ही प्राप्त होता है; हमारा हृदय कमल, सहस्र दल-कमल बन जाता है; रोम-रोम, नाडी-नाडी आपके कृपामृत सोम से भर जाती है; नयनों की कोठरी में हम आपको कैद करना चाहते हैं एवं हमारे पाँचों कोषों में (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय) अपने प्रकाश फैलाते, अंतः स्थित आत्मस्वरूप को प्रगट कर देते हैं। भावना-राज्य के अनंत आकाश में उड्डयन करना प्रेमियों को प्रभु का वरदान ही है। इसलिये पाठकों को कुछ विचित्र भी लगे तो क्षमा-प्रार्थी हूँ। अस्तु।

अहमदाबाद में गुरु-पूर्णिमा

अब गुरु-पूर्णिमा १ जुलाई को आ रही थी। अतः आपके साथ मैं आबू से ता. २५ जून को अहमदाबाद आ गई। आपकी परम गुरुभक्ता प्रभाबहन पटेल, श्री हरिभाई देसाई, डाही बहन पटेल, गौतम पटेल आदि अनेक प्रेमी-भक्त गण आपकी प्रतीक्षा में ही होते हैं। क्योंकि अहमदाबाद आप इस पूर्णिमा-उत्सव के अतिरिक्त अधिक आते-जाते नहीं। कोई खास कार्यक्रम बने तो जाना होता है। मुझे भी इस शुभ अवसर के निमित्त, अपने प्रेमियों को वर्ष में एक ही बार मिलना होता है, इसलिये अधिक प्रसन्नता रहती है। आपकी मुझ पर महती कृपा है, जो आज २२ वर्षों से सतत् निर्विघ्न, गुरु-पूर्णिमा पर उपस्थित रहकर, आपके अनंत उपकारों का स्मरण रखती हुई अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। सचमुच यह महान सौभाग्य मुझ दीन को आप परमोदार दाता ने दिया। नहीं तो प्रायः देखा जाता है कि संसार व्यवहार निरत व्यक्तियों को शुभ कामों में कोई न कोई छोटा-मोटा विघ्न आता ही है। परंतु मेरे लिए ऐसा कोई विघ्न कभी बाधक नहीं हुआ।

किसी ने कहा है—

नित्य नियमानुसार, सब भक्त-सब-मंडल ने भावपूर्ण गुरु-पूजन, अर्चन आरति कर, प्रसाद पाया। आपका स्वास्थ्य भी कुछ कमजोर रहने से, आप गद्दी पर विराजमान नहीं होते। सामने ही वेदनारायण की अति सुंदर मधुर-मूर्ति के वारबार दर्शन से भी मेरी आँखों को तृप्ति नहीं होती। मंद-मंद मुस्कराती, आँखों से अमृत झरती, सूर्य के समान तेजस्वी इस मूर्ति में भी मुझे तो आपकी झाँकी

कई बार हुई है । भगवान को रो रो कर प्रार्थना करती हूँ कि हे दयानिधान ! तू मेरे सामने खड़ा मौन ही रहे, कुछ बोले नहीं तो मेरा मन कैसे लगे ! तू तो करुणा–सागर है, भक्तों के प्रेमाश्रु से तू सत्वर पिघल जाता है, दर्शन देता है, मीठी बातें भी करते सुना है, मेरे साथ ही क्यों अडकर बैठा है, जरा बता भी तो ! पर नहीं, उसको तो जितना रुलाने में आनंद है, इतना खुश करने में नहीं ।

जिस पर तुम हो रीझते क्या देते यदुवीर ।
रोना धोना सिसकना आहों की जागीर ॥

बार-बार बिनती करने पर, कितने आँसू बहाने पर भी जब तुझे मेरी ओर देखना ही नहीं, तो फिर मैं समझ लूँगी कि या तो तुम पत्थर हो या मैं कथीर हूँ । नहीं नहीं, मेरे प्रभु ! यह मेरी त्रुटि हो है, जो मैं तुझे उलाहना दे रही हूँ । जो भी हो देव ! सुवर्ण की परीक्षा हो सकती है, कथीर—काँच की नहीं । मुझे एक अबोध बालिका मानकर, तेरी अमृतमयी गोद में बिठाकर, ऐसा स्नेह वात्सल्य का रस—पान करा कि बस और किसी को न देखूँ, न कुछ चाहूँ ।

५. न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ।

—ऋ. वे. १०–४८–५

अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद् धनं
न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन ।
सोममिन्मा सुन्वतो याचता वसु
न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥

—ऋ. वे. १०–४८–५

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर यह मंत्र उद्धृत करके आपने बताया कि **मन्त्रो गुरुः** । अर्थात् मंत्र ही गुरु है। जिस प्रकार गुरु ज्ञानाञ्जन–शलाका से शिष्य के चक्षु खोल देते हैं और उसे सत्यधर्म का ज्ञान कराते हैं, उसी प्रकार मन्त्र भी ज्ञानान्धकार का नाश करने में समर्थं है । अतः मन्त्र को भी गुरु कहा जा सकता है । और ऐसे एक गुरुस्थानीय मन्त्र का सिंहनाद यहाँ हमें सुनाई पड़ता है कि—

अहं—मैं मन्त्र या गुरु ही **इन्द्र**–इष्टदेव हूँ **धनं न पराजिग्ये इत्**—निश्चित रूप से मैं धन को ज्ञान, गुण, ऐश्वर्य को कभी नहीं हार जाता । **कदाचन**—कभी भी **मृत्यवे न अवतस्थे**—मृत्यु को मैं वश नहीं होता हूँ । हे **पूरवः**—मानवो **सोमं सुन्वतः**—सोमरस को संपादन करते हुए मुझसे **मा**—मुझसे **इत्**—निश्चित रूप से **वसु**–दैवी संपत्ति **याचत**—माँगो **मे**—मेरी **सख्ये**—सम्बन्ध में **न रिषाथन**—आप कभी नष्ट नहीं हो जायेंगे ।

गुरु मानों शिष्य से सिंहनाद पूर्वक कह रहे हैं कि बेटा मुझे ही इन्द्र याने इष्टदेव मानों । शिष्य का तो गुरु ही इष्ट देव होता है । **अहं ब्रह्मास्मि** इस श्रुति वचन के अनुसार जिसे ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार हुआ है, वही श्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ ही सच्चा गुरु है । ऐसे ब्रह्मनिष्ठ गुरु यदि कहें भी कि मैं ही तेरा ईश्वर हूँ तो यह भूतार्थ कथन है । सामान्य मनुष्यों की समझ में न आये, लेकिन ईश्वर और गुरु में कोई भेद नहीं है ।

वेदमंत्र के माध्यम से गुरु बताते हैं कि मैं कभी धन, ज्ञान, ऐश्वर्यादि को नहीं हारता । मंत्र में धन शब्द ईश्वर के ज्ञान, ऐश्वर्यादि गुणों का उपलक्षण है । जो गुण ईश्वर में है वही गुरु में है । इसीलिये तो गुरुदेव को अनन्त—श्री–विभूषित कहते हैं । ईश्वर से ईश्वर्यादि कभी वियुक्त नहीं होते हैं, उसी प्रकार सद्गुरुदेव से भी

वे कभी दूर नहीं होते हैं। ब्रह्मनिष्ठ गुरु के सामने सिद्धियाँ तो दासी बनकर खड़ी रहती हैं।

ऐसे गुरु को मृत्यु भी स्पर्श नहीं कर सकता है। गुरु सदैव अजर अमर हैं। जिसे हमने गुरु माना हो उनका भौतिक देह यदि विलीन हो जाय तो भी गुरु के गुरुतत्त्व का कभी नाश नहीं होता है। और अपने चर्मचक्षु से कभी गुरु ओझल हो जाय तो भी वे शिष्य का कल्याण करते हैं। छोटी–मोटी आपत्तियों से उसका रक्षण करते हैं। इस अर्थ में यहाँ कहा गया है कि **मृत्यवे न कदाचन अवतस्थे।** मैं कभी भी मृत्यु को वश नहीं होता हूँ।

आगे चलकर कहा गया है कि **सोमं सुन्वतः इत् मा वसु याचत** यहाँ सामं सुन्वतः ये शब्द क्रिया के उपलक्षण हैं, अतः कर्म करनेवाले ऐसा इनका अर्थ होगा। सोमरस का जब संपादन करना होता है, तब अनेक क्रियाओं का आश्रय लेना पड़ता है। गुरु भी जीवन में अनेक क्रिया करते रहते हैं। एक अर्थ में गीता के निष्काम कर्मयोग की वह साक्षात मूर्ति होते हैं। ऐसे कर्मयोगी गुरु से हमेश वसु याने धन की कामना करनी चाहिये। वसु का अर्थ भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का धन हो सकता है। गुरु से केवल भौतिक धन माँगने वाले तो आत्मवंचक हैं। मणि के स्थान में काँच को प्राप्त करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। गुरु से दैवी संपत्ति का ही वरण एवं धारण करना चाहिये। और जो इस प्रकार की दैवी संपत्ति देनेवाले गुरु से जीवनभर संबंध रखता है, उसका कभी नाश नहीं होता है। वह प्रतिदिन तो क्या प्रतिपल उन्नति की ओर आगे तीर की तरह बढ़ता ही रहता है।

बम्बई में गुरुदेव

ता. ५ जुलाई को गुरु-पूर्णिमा का उत्सव पूर्ण कर, हम साथ साथ बम्बई आये। उसी दिन शाम को मेघराज–भवन में, देवीबहन की सुपुत्री गीता की मंगनी, सावित्री बहन के पुत्र ऋषि के साथ आपकी उपस्थिति में हुई एवं आपने आशीर्वाद दिये।

ता. १२ जुलाई को बंगले में सायंकाल एक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें चारों वेदों की रेकोर्ड की हुई टेप, आपके परम भक्त, मायामि (अमरीका) निवासी श्री साम सानी को प्रसाद रूप में भेजी गई। ता. १५ को भाई बालचन्द की दौहित्री एवं श्यामसुंदर तथा भगवती की सुपुत्री रेखा के शुभ विवाह के उपलक्ष्य में, तुलसी–निवास में एक यज्ञ एवं **भगवान् वेद** का पारायण शुरू किया। दूसरे दिन सिंगापुर निवासी राधा बहन मिरपुरी के स्वर्गस्थ पति श्री मंघाराम के

निमित्त, काशी-निवासी वेद-विद्वान् श्री गजानन गोडसे द्वारा वेद-पारायण प्रारम्भ हुआ।

स्वामी श्री ब्रह्मानंद की पुण्यतिथि

ता. २२ जुलाई को, तुलसी-निवास में सायंकाल ब्रह्मलीन स्वामी श्री ब्रह्मानंदजी की पुण्य-स्मृति में एक सभा का आयोजन किया था, जिसमें स्वामी शुकदेवजी, स्वामी सूरजनदासजी, स्वामी प्रितममुनि तथा श्री मुरलीधर अस्वानी ने अपनी-अपनी श्रद्धांजली दी। पश्चात् आपने भी प्रवचन किया। ता. २३ से ३१ जुलाई तक आपके भक्त श्री चरणदास के निवास-स्थान में वेद-पारायण हुआ, बाद में पूजन, एवं संत-भक्तों ने प्रसाद लिया। दूसरे दिन श्री गिरधारीलाल मेवानी के घर में यज्ञ तथा संतों का प्रवचन हुआ। अब वेद-पारायण की परंपरा ही चल रही थी। पुनः ता. २६ जुलाई को, तुलसी-निवास में, श्री गजानन गोडसेजी ने स्वर्गस्थ पुष्पा बहन निमित्त, कलाबहन गोपालदास, ज्योति बहन तथा डोली बहन नियोजित वेद-पारायण शुरू किया। और ३ अगस्त को पूर्णाहुति हुई। ता. १ अगस्त से ९ अगस्त तक इन्द्राबहन-नरेशभाई सेक्सरिया के घर वेद-पारायण हुआ। ऐसे और भी ४-५ वेद-पारायण तुलसी-निवास में हुए।

१. स्वर्गीय श्री लच्छीराम रोहिरा की पुण्य-स्मृति में गोडसे द्वारा
२. ,, ,, सीरुमल नागपाल की ,, ,, रराटे ,,
३. श्री गोविंदराम सेउमल के पौत्र कपिल के जन्मोत्सव निमित्त।

४. मथुरावासी श्री धीरजलाल द्वारा नाशाबहन झुनझुनवाले के घर वेद-पारायण ता. १९ अगस्त को पूर्ण हुआ। ता. १४ अगस्त को अधिक मास के सत्संग वेदों के पारायण साथ पूर्ण हुए।

देह दैवी नाव है

इस समय प्रवचन में पूज्य प्रभु ने मानव के देह के बारे में पर्याप्त प्रकाश डाला। जैसे कि हम इस संसार में देखते हैं कि बहुत से लोग देह का अतिशय लालन-पालन करते हैं। अनेक सोने-चाँदी के गहनों से उसे सजाते हैं। कभी कभी युवान रहने के लिये या सौंदर्यवान दिखाई देने के लिये हजारों रुपये का खर्च भी करते हैं। यह तो हुआ एक चित्र। अन्यत्र देह को अतिशय कष्ट देनेवाले भी हैं। जो व्रत, नियम, उपवास, तप इत्यादि द्वारा देह को कष्ट देकर कृश भी करते हैं। तो सच्ची परिस्थिति क्या है? हमें क्या करना होगा? देह का लालन-पालन या देह को कष्ट द्वारा नष्ट-भ्रष्ट?

उपर्युक्त ये दोनों प्रकार उन्नति के पथ नहीं बन सकते। **भगवान-वेद** तो देह को दैवी नाव बताते हैं । जैसे कि—

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं
सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो
अस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥

ऋ. वे. १०—६३—१०, यजु. २१—५, अथर्व. ७—६—३

सुत्रामाणम्—अच्छी तरह से रक्षण वाली, **पृथिवीम्**—विस्तृत, काफी बड़ी, **द्याम्**—प्रकाशयुक्त, **अनेहसम्**—हानि से रहित, कभी भी चोट न लगाये ऐसी **सुशर्माणम्**—उत्तम सुखों से भरी हुई, **सुप्रणीतिम्**—योग्य मार्ग से आगे ले जानेवाली, **स्वरित्राम्**—उत्तम पतवारों वाली, **अस्रवन्तीम्**—छिद्र-रहित, कभी न चूनेवाली, **अदितिम्**—अखण्डित, **दैवीं**—दिव्य, **नावम्**—नाव में, **अनागसः**—निष्पाप होकर, **स्वस्तये**—आत्म-कल्याणार्थ, **आरुहेम**—हम चढ़ते हैं ।

यहाँ पर इस मानव-देह को नाव का रूपक दिया गया है। संसार सागर से पार उतरने के लिए प्रभु ने यह देहरूपी नाव प्रदान की है । इस नाव के द्वारा हम महान संसार सागर के पार उतर कर आवागमन के चक्कर से मुक्त हो सकते हैं। अतः **भगवान् वेद** उसको दैवीम् याने दैवी नाव कहते हैं । सामान्य नाव छोटे-मोटे नाले या नदियाँ पार करने में उपयुक्त है, लेकिन संसार सागर को पार करने में समस्त कर्मों के आधार रूप यह देहरूपी नाव ही काम आयेगी। अतः उसका दैवी विशेषण भी सार्थक है ।

इस नाव के विशिष्ट लक्षण विस्तार से यहाँ बताये गये हैं। यह **सुत्रामाणम्** अच्छी तरह से रक्षी गई है । प्रभु जन्म के पहले और बाद में भी मानव के देह का अच्छी तरह रक्षण करते हैं। इसीलिये वह सुरक्षित है । और विस्तृत एवं प्रकाशयुक्त भी है। प्रभु आत्मा के रूप में अन्तर में बैठा हुआ अपना प्रकाश अवश्य फैलाता है । उससे ही बाह्य पदार्थों का भी योग्य ज्ञान होता है । यही नाव सुखों से भरी हुई और योग्य मार्ग से चलनेवाली भी है। उसमें अनेक गुण समूहरूपी पतवारें लगी हैं । यदि उसका ठीक उपयोग किया जाय तो संसार पार करना सहज है । इस नाव में बैठने की सबसे बड़ी एक ही शर्त है कि हमें **अनागसः**—निष्पाप होना चाहिये। यदि हम तन, मन एवं धन से निष्पाप बनेंगे तो हमारा बेड़ा पार लग जायेगा । यदि पाप का संचय किया तो नाव पापों के भार से डूब जायेगी । अतः आप समझ गये होंगे कि **भगवान् वेद** इस देह

रूपी दिव्य नाव का वर्णन करते हुए कहीं भी इसके लालन-पालन का या इसे कष्ट देने का अनुरोध नहीं करते हैं।

सन्तकृपा

आज वालकेश्वर मन्दिर में १७ ब्राह्मणों द्वारा जप-यज्ञ शुरू किया गया, जो ४ सितम्बर को पूर्ण होगा। सायंकाल टोडरमल कंपनी के मालिक चंद्राबहन के सुपुत्र हरीश की शादी में पधार कर आपने आशीर्वाद दिया।

ता. २१ अगस्त, को सिंगापुर निवासी श्री सीरूमल दादलानी के सुपुत्र नारायण का एवं श्री किसनचंद दादलानी के पुत्र जेकी का यज्ञोपवीत, मंत्र-दीक्षा, हवन एवं संत-भोजन उनके निवास-स्थान में आपकी अध्यक्षता में हुआ। उस समय मैं भी उपस्थित थी। पश्चात् संत-स्वजनों का भोजन हुआ।

आपकी उपस्थिति नित्य उत्सवमयी ही रहती है। सदा सर्वदा आनंद प्रदायक श्री स्वामिनारायण संप्रदाय के संत श्री निष्कुलानन्द ने लिखा है—

संत कृपा से पाइये, पूर्ण पुरुषोत्तम धाम।

× × ×

कामदुधा अरु कल्पतरु, पारस चिंतामणि चार।
संत समान कोई नहीं, मैंने किये विचार॥

अर्थात् कामधेनु कल्पतरु, पारस और चिंतामणि द्वारा जो वाञ्छित पदार्थ प्राप्त होते हैं, वे कालान्तर में नष्ट हो जाते हैं परन्तु, संत तो कृपा करके पूर्ण पुरुषोत्तम नंदनंदन श्री कृष्ण से ही मिला देते हैं। इतना औदार्य इतनी असीम कृपा संत के अतिरिक्त कौन कर सकता है।

वेद-पारायण अभी भी चलता रहा। तुलसी निवास में ता. २३ को मेघराज भवन में सद्गुरु गंगेश्वर जयन्ती-उत्सव की एक मीटिंग हुई, जिसमें सब मुख्य भक्त-कार्यकर्त्ता उपस्थित थे। इसमें यह निश्चय हुआ कि जयंती होकी-ग्राउन्ड में मनाई जायँ। ता. २३ अगस्त को श्री रराटेजी द्वारा, सती बहन परसराम की ओर से पारायण प्रारम्भ हुआ। दूसरा पारायण अर्जनदास पंजाबी का ता. ३० अगस्त से ७ सितम्बर को पूर्ण हुआ। ता. ३१ को सतीबहन का वेद-पारायण की पूर्णाहुति की गई एवं श्री होतचंद्र के सुपुत्र जगदीश को आपने यज्ञोपवीत एवं मन्त्र दिया। असंख्य लोगों ने, भारत के ही नहीं, विदेश-निवासियों ने भी आपसे मन्त्र-दीक्षा ली है, उसकी गणना नहीं हो सकती।

तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वं स्यात्साधनाभ्यासपाकतः॥

—गीता १८/६६ की गूढार्थ दी[illegible]

मैं उनका ही हूँ, प्रभु मेरे हैं और मैं वही हूँ, ये तीन पर्याय केवल पूर्वजन्मान्तरीय संस्कारों के भेद से विभिन्न प्रतीत होते हैं, परंतु वस्तुतः तीनों साध्य के अभेद से परस्पर प्रायः अभिन्न ही हैं ।

हमारी प्रिय 'अम्मा' केशरबाई का भी आपमें उपर्युक्त सर्वोत्तम ममत्व—भाव था । उनकी आदि से अंत तक यही दिव्य लगन रही कि मैं सपरिवार सद्गुरु की ही हूँ और गुरुदेव मेरे हैं । सोचिये कि इसमें कितनी सुंदर संपूर्ण शरणागति, अपूर्व ममता, स्वार्थ—त्याग एवं निरभिमानता या दासत्व था । ऐसी एक उज्जवल—चरित्र भक्त सन्नारी के निमित्त, मेघराज—भवन में ता. २ सितम्बर को भागवत—सप्ताह प्रारम्भ किया गया । ता. ८ सितम्बर को पूर्णाहुति के पश्चात् सब स्वजनों ने उनके चित्र का सादर पूजन—आरति आदि किया । ता. ६ सितम्बर को प्रतिवर्षानुसार जन्माष्टमि का उत्सव भक्त—प्रेमियों ने बहुत उत्साह से मनाया ।

बम्बई से दिल्ली में

ता. ९ सितम्बर को आप बम्बई से देहली प्लेन से गये । उस समय आप कुछ अस्वस्थ थे । परन्तु वहाँ का पूरा कार्यक्रम निश्चित हो चुका था, अतः आपने अब उसको पलटा नहीं । महापुरुषों को देहाध्यास होता ही नहीं ।

देहली में १ ही दिन ता. १० सितम्बर को आप ठहरें । आपकी शिष्या राजबहन के पति मदनलाल का स्वर्गवास हो गया था, इसलिए उनको सान्त्वना देने उनके घर गये । ऐसे आपके दर्शन एवं उपदेश रूप दो शब्द मात्र से ही, कितना भी दुःखित उद्विग्न हृदय क्यों न हो, धैर्य, शांति तथा विवेक उदय हो जाते हैं ।

कश्मीर में

ता. १२ सितम्बर को प्लेन से आप कश्मीर पहुँचे । वहां एरोड्रोम पर सनातन धर्म, आर्य समाज तथा अन्य संस्था के सदस्यों ने उपस्थित होकर आपका भव्य स्वागत किया । आपके साथ वेद—विद्वान पंडित विश्वनाथजी, गजानन गोडसे, पं. नारायण रटाटे भी **भगवान् वेद** के पारायण निमित्त आये थे । स्वामी कृष्णानंदजी (प्रज्ञाचक्षु), सुरजनदासजी, राघवानंदजी, गोविंदानंदजी, दिनकरानंदजी तथा सुरेश शर्मा भी थे । **भगवान् वेद** सूर्य के उदित होने पर, जैसे देवगण, ऋषि मुनि—जन, द्विज, कवि, गंधर्व आदि सहर्ष पूजन सामग्री सह स्तुति—गान करते हैं, वही रम्य मनोहर दिव्य दृश्य मेरे सामने अंकित होता है, यद्यपि मैं साथ नहीं थी । आप काश्मीर में अपने परम गुरुभक्त श्री विश्वनाथ सहगल के पास पधारे । सहगल परिवार आपके अति पुराने सेवकों में से एक है, जिन्होंने अपने तन—मन—

घन से, अत्यंत भाव-प्रेम से सेवा की है और करते रहते हैं। जब जब भी आप कश्मीर पधारते, तब तब आप उनके पास ही ठहरते हैं एवं अपना व्यापार व्यवहार छोड़कर वे सतत आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं। अपने स्नेही मित्रवर्ग एवं आम जनता को आपके आने की सूचना देकर, घर के बगीचे में, आपके प्रतिदिन सत्संग के कार्यक्रम का अमूल्य लाभ सबको प्रदान करते हैं। दो बार मुझे भी आपके साथ पू. माताजी एवं मेरे प्रेमी बंधुओं तथा उनको गृहिणी सौ. मल्का तथा उर्मिला का अति स्नेहपूर्ण सत्कार प्राप्त हुआ था, जिसको मैं भूल ही नहीं सकती। संयोग वशात् मेरे प्रभु प्रतिपल के प्राकट्य दिन के सुवर्ण अवसर पर आपके साथ नहीं आ सकी, उसको भी आपकी ही इच्छा मानकर संतोष से हर एक परिस्थिति में समान-दृष्टि रखने को सदैव प्रयत्नशील हूँ। सच्ची शरणागति में फिर अपनापन शेष नहीं रहता।

कश्मीर में सत्संग

ता. १४ सितम्बर को, वज़ीर बाग में, **भगवान् वेद** का पारायण, हमारे प्रसिद्ध वेद-विद्वान् पं. विश्वनाथ वामदेव, गजानन गोडसे तथा नारायण रटाटेजी द्वारा प्रारंभ किया गया।

सायंकाल शीतलनाथजी के मंदिर में युवक-सभा के आयोजन द्वारा सभा हुई, जिसमें राज्यपाल झा ने जो सपत्नीक उपस्थित थे, आपको मान-पत्र दिया तथा स्वामी कृष्णानंदजी ने तथा अन्य उपस्थित संतों ने वेद के आधार पर मन की शक्तियों पर प्रवचन किया।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

मन की शक्तियाँ अपार हैं। आज मनोवैज्ञानिक भी कहने लगे हैं कि मन तो समुद्र में तैरनेवाले बर्फ के पहाड़ की तरह है। उसका दसवाँ भाग बाहर दिखाई देता है, बाकी नव भाग सागर में छिपे होते हैं। मन की शक्तियों का स्मरण करानेवाला निरतिशय सुन्दर सूक्त यजुर्वेद के ३४ वें अध्याय में प्राप्त होता है। जागृत हो या सोया हुआ व्यक्ति हो, लेकिन उसका मन दूर-दूर तक पहुँच जाता है। अभी यहाँ है, दो सेकन्ड में ही मन अमरिका का विचार करने लग जायेगा, बस अमरिका ही पहुँच गया। अरे, भाई स्वर्ग, नरक या वैकुण्ठ अथवा गो-लोक का भी संकल्प करने में मन को कहाँ देर लगती है? यह मन तो ज्योतियों की भी ज्योति है। हमारी इन्द्रियाँ, विशेष करके ज्ञानेन्द्रियाँ एक प्रकार की दिव्य ज्योति हैं। उससे पदार्थों का—संसार के समस्त विषयों का ज्ञान होता है। लेकिन उसके पीछे यदि मन न हो तो बेचारी ज्योतिरूप इन्द्रियाँ भी निष्प्राण

एवं निष्क्रीय बन जाती हैं । पढ़ने में मन नहीं लगता है, तो फिर कितना भी अच्छा पढ़ानेवाला हो या पढ़ने के सर्व आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण भी क्यों न हो, पढ़ाई होती ही नहीं । अतः सर्व इन्द्रियों का भी इन्द्रिय-चालक बल तो मन ही है । अतः प्रजामात्र के मन को हम दिव्य ज्योति कह सकते हैं ।

यह मन की एक विशेषता नोट करने योग्य है । यह मन भूत, भावि एवं वर्तमान तीनों का साक्षी है । आज कल तो प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि मनुष्य के अन्तर-मन में बचपन के सभी संस्कार छिपे हुए हैं । लेकिन हमारा शास्त्र तो यहाँ तक बताता है कि मानवी का मन इसी जन्म क्यों, जन्मजन्मान्तर के संस्कार लेकर आता है । **मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्**—इस बात तक अब भी विज्ञान को पहुँचने में कुछ समय लगेगा । लेकिन इस भूतार्थ का दर्शन वेद के ऋषि ने सदियों पूर्व किया है । मन वर्तमान का तो साक्षी है ही, लेकिन वेद नारायण तो बताते हैं कि मन भविष्य को भी अपने में छिपाये रखता है । मानव मात्र की अल्प या अधिक मात्रा में स्वशक्त्यानुसार यह अनुभूति होगी कि यदि कहीं बुरा होनेवाला हो, तो मन में पहले से ही उदासी-सी छा जाती है । शून्यता मन को घेर लेती है । दुःख या विषाद की छाया उसके आने से पहले ही मन में पड़ जाती है । यही सबूत है कि मन भावि का भी साक्षी है ।

रथ के चक्र की नाभि में जिस प्रकार आरा लगा हुआ होता है, उसी प्रकार मन में ऋचा, यजुस् एवं साम भी ओतप्रोत हैं । जैसे कोई अच्छा सारथि अश्वों को अपने वश में रखता है, उसी प्रकार मन इन्द्रियों को अपने वश में रखता है । और जिसके जीवन रथ में इन्द्रियरूपी अश्व मनरूपी लगाम से ठीक बँधे हुए हैं, वश में रहते हैं उसके जीवन में अकस्मात या विनाश नहीं है । अन्यथा मन गिरा तो सब कुछ गया । ऐसे मन के लिये **भगवान् वेद** की तो सतत प्रार्थना है कि **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**—वह मेरा मन शिव याने कल्याणकारी संकल्पवाला हो ।

ता. १५ सितंबर को सायंकाल, वजीरबाग में सत्संग हुआ । श्री सुरेश शर्मा, स्वामी कृष्णानंदजी, सुरजनदासजी, स्वामी गोविंदानन्दजी के प्रवचन के पश्चात् आपका प्रवचन हुआ । आरति-प्रसाद के वितरण बाद सत्संग पूर्ण हुआ । प्रतिदिन विशेष अतिथि रूप में कोई न कोई विद्वान् उपस्थित रहे । ता. १६ सितंबर के दिन सत्संग में श्री हरिवंश आजाद थे । दूसरे दिन श्री गोपालकृष्णजी थे, जिन्होंने कुंडलिनी पर प्रवचन किया । ता. १८ को श्री मोहनकृष्ण टिकू विशेष अतिथि थे । उन्होंने भी वेद विषयक मननीय प्रवचन किया । शाम को विश्वभारती संस्कृत विद्यालय में आपका अपूर्व स्वागत हुआ । फूलों की वर्षा की गई । संस्कृत में ही आपका स्वागत किया गया एवं मान-पत्र दिया गया । आरति के बाद कार्यक्रम पूरा हुआ ।

ता. १९ सितंबर को प्रातःकाल आप दुर्गनाग गये। श्री श्यामलाल सराफ ने आपका हार्दिक स्वागत किया। सायंकाल वजीरबाग में चलते सत्संग की आज समाप्ति हुई। उस समय सभी संप्रदाय के संत–महात्मा पधारे थे। स्वर्ग में देवताओं की सभा का यह एक प्रतिबिंब था।

कश्मीर में 'भगवान् वेद' की शोभायात्रा

दूसरे दिन राधाष्टमी थी। **भगवान् वेद** का पारायण, जो चल रहा था, उसकी पूर्णाहुति की गई। जब से **भगवान् वेद** ग्रंथ १९७१ में आपके अथक परिश्रम द्वारा प्रकाशित हुआ तबसे सतत प्रतिष्ठा, परायण, शोभायात्रा आदि का रम्य क्रम सुचारु रूप में चलता ही आया है। उनके स्थान–काल–नाम आदि की गणना करने लगें, तो एक पुस्तक ही लिखी जाय। सचमुच **भगवान् वेद** की शोभायात्रा का मानों एक राजकुमार हाथी पर विराजित होकर शहनाई, मृदंग आदि मधुर वाद्यों के स्वर, ताल–तरंग से मिश्रित, उत्साही नगरजनों के जय जय नाद से हर्षान्वित, अपनी प्रेयसी के मनोहर सुमन सज्जित लग्न–मंडप में जा रहा हो, ऐसा अनुपम भावनामय चित्र मेरे मानस–पटल पर दृश्यमान होता है। ब्रह्म–विद्यारूप वधू–वल्लभ **भगवान् वेद** गुरु तो हैं ही, इसलिये मैं यह कोई अति-शयोक्ति नहीं कर रही हूँ।

ता. २० सितम्बर को, श्री विश्वनाथ सहगल के निवास स्थान, वजीर बाग से भगवान् वेद दुल्हा के रूप में निकले। भारी संख्या में भक्त प्रेमी उपस्थित थे। शोभा–यात्रा हजूरी बाग, महाराज बाजार, मीरा कदल, लाल चौक, रीगलचौक होती हुई श्रीचंद्र–चूनार 'कोठी बाग' पहुँची। यह समस्त मार्ग स्थान स्थान पर मंडप तथा फूलों की झालरों से सजे हुए थे; लोगों ने सतत सुमनों की वर्षा कर भगवान् का अद्‌भुत स्वागत किया। श्रीचंद्र–चूनार में कश्मीर के मुख्य–मंत्री शेख साहब पधारे। संत महात्मा एवं विद्वानों के वेद विषयक प्रवचन हुए।

श्रीचंद्र—नवमी उत्सव

ता. २१ सितम्बर को भाद्रपद शुक्ला नवमी, बुधवार का दिन था। आज श्रीचंद्र चूनार में भारी हलचल थी। प्रातःकाल ८॥ से १०॥ बजे तक यज्ञ–हवन हुए। शिखर की ध्वजा को नदी–पट पर पूजनार्थ ले गये। पश्चात् कोठी में वापस आकर ध्वजा आरोहण किया। छवि (चित्र) बनाकर आचार्यश्री की प्रतिमा–पूजन–आरति के पश्चात् आपने **भगवान् वेद** ग्रंथरत्न की स्थापना की। कश्मीर के राज्यपाल श्री झा, श्री विश्वनाथ सहगल, श्री गिरधारीलाल डोगरा तथा डॉ. करणसिंह जी भी उस सुअवसर पर उपस्थित थे। आपने वेद विषयक अति मननीय प्रवचन किया। आपने श्री वेद के चिरकालीन ज्ञान गरिमा तथा समस्त

विश्व-धर्मों का जनक बताया । आपका वक्तव्य टेलिविज़न तथा रेडियो पर भी प्रसारित किया गया । अंत में भगवान् श्रीचंद्र के महोत्सव निमित्त बहुत बड़ा भंडारा हुआ ।

वस्तुतः नामस्मरण और सेवा में प्रवृत्त होने के लिये प्रथम करुणावरुणालय सदगुरु की शरण में जाने की नितान्त आवश्यकता है । गुरु बिना भक्ति ज्ञान पथ में प्रवेश असंभव है ।

'गुरुद्वारा भजनं निरूपितं तदेव फलपर्यवसायि ।'
'गुरुसेवायां हि ज्ञानं सिद्ध्यति ।' (सुबोधिनी)

अर्थात् गुरु ही अज्ञान तिमिरान्ध के नयनों को ज्ञानाञ्जन शलाका से प्रकाशित करते हैं । अपने वक्तव्य में आपने समस्त मानव जाति को ऐक्यबद्ध होने के लिये आह्वान किया और इस संदर्भ में ऋग्वेद की अंतिम ऋचा का अर्थ समझाया—

ॐ समानो मंत्र समितिः समानी
समानं मनः सहचित्तमेषाम् ॥
समानं मंत्रमभि मंत्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

ॐ समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

—ऋ. वे. १०-१९१-३, ४

हमारा मंत्र, मन, प्राण तथा हृदय संपूर्णतया एक हो, समस्त मानव-समाज हो, एक समिति-एक समाज । श्रीचंद्र-चूनार को, सबने संगठित होकर, तन-मन-धन तथा अथाग परिश्रम एवं प्रेम से भव्य स्वरूप में परिवर्तित किया है । यह निःसंदेह हमारे त्यागी तपस्वी औदार्यमूर्ति महंत श्री कृष्णदास का तपोबल एवं श्री विश्वनाथ सहगल और अन्य भक्त प्रेमियों का आचार्य श्री चंद्र के प्रति अनन्यता का प्रत्यक्ष परिणाम है । आप सबको आचार्य श्री के आशीर्वाद हो ।

जम्मू में वेद स्थापना

अब जम्मू में भी आपके भक्त श्री दयालसिंहजी की प्रार्थना पर, उनके आवास में आप काश्मीर से ता. २३ सितम्बर को पधारे । साथ में काशी के विद्वान् तथा १५ संत थे । ता. २३ को वहाँ के रघुनाथजी के मंदिर में प्रातः काल आपने प्रवचन किया ।

यहाँ प्रवचन में आपने बताया कि—

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे । —य. वे. ३६-१८

यह वैदिक प्रजा की महती कामना है। हमारे ऋषिगण मित्रभाव से समग्र सृष्टि को देखते थे। सर्वत्र नन्दनन्दन आनन्दकन्द कोटिकन्दर्पदर्पहा परमपरमेश्वर का दर्शन करते और सर्वत्र मित्र की दृष्टि से देखते थे। और मनुष्य तो क्या देवों के साथ भी मैत्रीपूर्ण व्यवहार ही ऋषियों की आकांक्षा रहती थी।

अग्नेः सख्यं वृणीमहे। —ऋ. वे. ४४–२०
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयम्। —ऋ. वे. १–८९–२

वेद भी कहता है कि—

इन्द्रो मुनिनां सखा। —ऋ. वे. ८–१७–१४

इन्द्र याने परमात्मा ऋषियों का मननशील मनुष्यों का मित्र है।

वेद में मित्रता की महिमा भी महनीय शब्दों में बतायी गयी है—

यस्तित्याज सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति
न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ ऋ. वे. १०–७१–६

सचिविदम्–मित्रता को जाननेवाले, पहचाननेवाले **सखायम्**–मित्र का **यः**–जो मनुष्य **तित्याज**–त्याग कर देता है **तस्य**–उसको तो **वाचि भागो न अस्ति**–बोलने तक का अधिकार नहीं रहता है। **यत् ईम्**–जो यह पुरुष **शृणोति**–सुनता है वह **अलकम्**–असत्य ही **शृणोति**–सुनता है वह **सुकृतस्य**–सत्कर्मों का **पन्थाम्**–मार्ग को **न हि प्रवेद**–जानता ही नहीं है।

मित्र मित्र के हृदय को, मित्र हृदय में स्थित सख्य भाव को ठीक तरह जानता है। वास्तव में मित्रता का भाव ही दैवी है। उसमें प्रभु का वास है। प्रभु ही समग्र विश्व का सुहृद् या मित्र है। ऐसे दिव्य गुण मित्रता में हम यदि छल–कपट को स्थान दें, स्वार्थवश मित्र का त्याग कर दें तो ? वेद भगवान मित्रता की पहचानवाले सच्चे सुहृद का जो त्याग करता है, उसके लिये स्पष्ट शब्दों में ही कहते हैं कि ऐसा मनुष्य जीवन में सत्कर्मों का मार्ग नहीं जान पायेगा। अतः हमें जीवन में मित्रता रखनी चाहिये।

आप कहेंगे किससे मित्रता रखें। **सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु**—अथर्व. १९–१५–६। सभी दिशाएँ मेरी मित्र हों अर्थात् सभी दिशाओं में रहनेवाले विश्व के कोने कोने में बसनेवाले प्राणी मात्र मेरे मित्र हों। **वसुधैव कुटुंबकम्** का भाव यहाँ भरा पड़ा है। प्रभु मुझे सर्व का मित्र बनाए।

सज्जनो, यदि **भगवान् वेद** की सर्वत्र मित्रदृष्टि की कामना हम अपने हृदय मंदिर में मूर्ति की तरह बैठा लेंगे, तो हम विश्व में मित्रता की मूर्ति ही बन जायेंगे और हमारा बेड़ा पार करने में प्रभु भी हमारे मित्र हो जायेंगे। जिसका मित्र प्रभु हो गया, उसको फिर जीवन में दुःख ही कहाँ है? अतः सबको मित्र की दृष्टि से ही देखो।

शाम को श्री दयालसिंह के निवास स्थान से **भगवान् वेद** को सुसज्जित रथ में विराजमान कर रघुनाथ मंदिर में ले जाये गये, जहाँ डॉ. करणसिंहजी एवं उनकी धर्म पत्नी के हाथ से वेद पाठ सहित वेद ग्रंथ की स्थापना की गई। संतों के प्रवचन भी हुए। ता. २४ सितंबर को दयालसिंहजी के आवास में में कीर्तन हुआ।

सोलन में

अब आप प्लेन से जम्मु से चंडीगढ होते हुये सोलन पधारे एवं भक्ता लज्जा बहन ग्रोवर के पास ठहरे। प्रतिदिन २६ सितम्बर से लेकर ६ अक्टूबर तक शाम को संतों की कथा होती रही। ता. २ अक्टूबर को गांधी जयंती मनाकर, चंडीगढ में श्री रामप्रसाद खोसला के वहाँ आप गये। भोजन के पश्चात् संत वडेलवाले चंद्रभानु के मंदिर में आप पधारे, जहाँ वडेल के सरपञ्च, नंबरदार, ग्राम्य जनता, एवं वहाँ के अग्रगण्य व्यक्तियों ने आपका सुंदर स्वागत किया। वेद की महिमा पर आपने छोटा-सा प्रवचन किया तथा रात्रि को सोलन लौट आये। ता. ४ अक्टूबर को, सोलन के निर्गुण बालक आश्रम में आप पधारे। वहाँ भी कीर्तन तथा प्रवचन हुआ। ता. ७ अक्टूबर को उसी आश्रम में **भगवान् वेद** की स्थापना आपके करकमल से हुई। उपस्थित महानुभावों में हिमाचल प्रदेश के शिक्षा-मंत्री श्री दोलतराम चौहान तथा पंजाब-हरियाना के न्यायाधीश रणजीत सिंहजी आदि थे। इस प्रकार आपकी पंजाब की यह यात्रा पूरी हुई।

अहमदाबाद में सेवारामजी का अवसान

ता. ७ अक्टूबर को, अहमदाबाद में वेद-मंदिर के महंत स्वामी सेवारामजी का देहावसान हो गया। संदेश मिलने पर, आप सोलन से प्लेन द्वारा सायं अहमदाबाद पहुँच गये। शव-यात्रा वहाँ के मुख्य मार्ग पर होती हुई नर्मदा-तट पर पहुँची एवं उसे जल प्रवाह में बहाया गया। सेवारामजी के शिष्य, श्री रविमुनि जी के संचालन में पूर्ण सहकार देते एवं स्वयं बड़े पुरुषार्थी, नम्र तथा व्यवहार कुशल कार्यकर्ता हैं। उन्होंने सेवारामजी की बहुत सेवा की और पश्चात् उपस्थित विषम परिस्थिति को भी भली प्रकार संभाल लिया। उस समय मैं भी आप के साथ रही थी।

वेद मंदिर में हनुमानजी का चमत्कार

अवधूत स्वामी सेवारामजी कतिपय दिनों से अस्वस्थ थे। स्वयं अवधूत थे। देहाध्यास से पर एवं तपस्पी थे। शरीर के कष्टों को सहर्ष हँसते मुँह सहन करनेवाले ऐसे महात्मा कलियुग में तो अति दुर्लभ हैं। छोटी-मोटी बीमारी का तो इलाज स्वयं कर लेते थे। शरीर आखिर में शरीर है। एक दिन क्षीण होकर उसे जाना ही है।

अवधूतजो की बीमारी लम्बी चली। शरीर में कष्ट की मात्रा बढ़ गई। आपके सुशिष्य एवं आज कल के विवेकी एवं व्यवहार कुशल वेद मंदिर के व्यवस्थापक स्वामी रविमुनि ने आग्रहपूर्वक स्वामी श्री सेवारामजी को अस्पताल में दाखिल करवाया। भक्त भी भगवान को अधीन करता है, फिर गुरु शिष्य की इच्छा की पूर्ति करें उसमें क्या आश्चर्य ? शरीर को नष्ट होना ही था। अतः अस्पताल में भी दवाइयों का कुछ विशिष्ट असर नहीं हो पाया। श्री रविमहाराजजी ने मंदिर के पुराने सेवक श्री आनन्दी लाल फडियाजी से परामर्श करके अवधूतजी को बम्बई ले जाने का प्रबन्ध किया। और रेलगाड़ी से आप एवं श्री फडियाजी अवधूतजी को लेकर बम्बई की ओर रवाना हुए।

प्रभु की इच्छा का क्या पता चल सके ? गाड़ी बोरीवली पहुँचो, तब तक तो अवधूतजी बातें करते थे और दादर पहुँचने से पहले तो आपने इस नश्वर दुनिया का त्याग कर दिया। आपत्ति आ गिरी। लेकिन व्यवहार कुशल एवं लोकवृतान्त के ज्ञाता श्री आनन्दीलाल फडियाजी साथ थे। स्वामी श्री रविमुनिजी ने भी धैर्य एवं युक्ति से काम लिया। नश्वर देह को गाडी से उतारा। और बम्बई के सुप्रसिद्ध गुरुभक्तों को टेलिफोन से खबर की। सर्व श्री गोविंद भाई, मुरलीधरभाई, एवं पुरुषोत्तमभाई आदि गुरुभक्त वहाँ पहुँच गये और वैधानिक विधि को परिसमाप्त करके अवधूतजी के नश्वर देह को ट्रक में चढ़ाकर अहमदाबाद की ओर रवाना किया।

अवधूतजी के ब्रह्मलीन होने का समाचार वायुवेग से शहर में प्रसरित हो गया। फिर तो कहना ही क्या ? हजारों की संख्या में जनता दर्शनार्थ पधारी। इस समय एक अद्‌भुत चमत्कार हुआ। वेद मंदिर के प्रांगण में श्री संकट मोचन महावीरजी का मंदिर है। उसमें श्री हनुमानजी महाराज साक्षात् बिराजमान हैं। श्री अवधूतजी के तो वे अराध्यदेव थे। जब अवधूतजी ने देहत्याग किया तो श्री हनुमानजी की मूर्ति के नेत्रों से अश्रुबिन्दु बहने लगे। और यह प्रक्रिया एक दो क्षण नहीं बल्कि घण्टों तक चलती रही। अब तो इस चमत्कार को प्रत्यक्ष करने के लिये हजारों एवं लाखों लोग पधारे, सारी रात एवं सारा दिन जनता

का सागर उमड़ता रहा । अहमदाबाद के सुप्रद्धि दैनिक पत्रों के प्रेस रिपोर्टर भी आये और सबने स्वयं देखा । दूसरे दिन जनसत्ता, संदेश जैसे सुप्रसिद्ध वर्तमान पत्रों में इस चमत्कार की बात छप गई । अब तो कहना ही क्या । लाखों लोग दूर दूर के गाँव एवं शहर से दौड़ते आये । मानों एक छोटा-सा कुंभ ही लग गया । और चमत्कार की बात सारे गुजरात में फैल गई ।

तीसरे दिन अवधूतजी की मृत देह के साथ नगर में शोभा यात्रा निकाली गई । पश्चात् नर्मदा नदी पर ले जाकर नश्वर देह को माता नर्मदा की गोद में विधिपूर्वक बहा दिया गया । अवधूतजी का शरीर चला गया, उनके चरित्र एवं चमत्कार की सुवास शाश्वत बन गई । अवधूतजी सच्चे गुरुभक्त थे । उन्होंने अपनी युवानी में गुरु वेदरत्न वेदालंकार महामंडलेश्वर स्वामी श्री सर्वानन्दजी महाराज एवं दादागुरु चरित्रनायक हमारे अनन्त श्री विभूषित स्वामी गंगेश्वरानंदजो महाराज की निष्ठापूर्वक सेवा की थी । श्री वेद मंदिर के प्रबन्धक के रूप में रहकर हजारों लोगों एवं आने-जाने वाले संतों को प्रसन्न रखा था । उदार चित्त, दानप्रिय, खाने-खिलाने के शौकीन एवं बातें करने में अतिप्रेमी अवधूतजी एक सच्चे संत एवं विभूति थे इसीलिये तो भगवान श्री हनुमानजी ने भी उनकी मौत पर आँसू बहाये । आजकल उनके स्थान पर उनके ही शिष्य एवं उनसे भी अधिक विनय विवेक तथा व्यवस्था सम्पन्न स्वामी श्री रविमहाराज कार्यरत हैं । श्री रविमहाराजजी ने भी अथक परिश्रम से विविध आयोजनों द्वारा मंदिर की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिये हैं ।

ता. १० को अवधूत सेवारामजी की पुण्य स्मृति में, वेद-मंदिर में भागवत सप्ताह शुरू हुआ । ता. २७ अक्टूबर को, मंदिर में वेद-वेत्ता विद्वानों के वेद-पाठ हुए । पश्चात् पूजन कर, दक्षिणा दी गई । वल्लभ संप्रदाय के आचार्य भी पधारे थे । ता. १८ अक्तूबर को, अहमदाबाद के प्रेमाबाई होल में, प्रातः ९।। बजे, प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने वेद परिषद का उद्घाटन किया तथा वेद-ग्रन्थ पर पुष्पहार चढ़ाया । वहाँ आपका वेद विषयक प्रवचन हुआ । शाम को चार बजे श्रीमन्नारायणजी आपके दर्शनार्थ वेद-मंदिर में आये ।

वेद-मंदिर में महंत सेवारामजी के निमित्त भँडारे में स्वामी विद्यानंदजो आशुकवि, कृष्णानंदजी (प्रज्ञाचक्षु) सुवेद मुनिजी, ब्रह्मानंदजी, माधवानंदजो, राघवानंदजी, सुरजमदासजी, विमलमुनिजी, चिदानंदजी, दिनकरजी एवं स्वामी गोविंदानंदजी उपस्थित थे । ता २२ अक्तूबर को भागवत की पूर्णाहुति हुई ।

ता. २३ को महंतजी के निमित्त वेद-मंदिर में एक भारी भँडारा हुआ, जिसमें करीबन २००० संत एवं ३००० गृहस्थी होंगे । स्वामी रविमुनिजी ने अत्यन्त परिश्रम किया और उनकी व्यवस्था तथा व्यवहार कुशलता से कार्यक्रम सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ ।

आप संसार की प्रत्येक अच्छी-बुरी घटना या स्थिति में कितना असंग एवं निर्लेप रहते हैं, यह वर्षों से मैं अनुभव करती आई हूँ । आपके प्राणस्वरूप सद्‌गुरु स्वामी रामानंदजी, जो आपके सर्वस्व ही थे, उनके ब्रह्मलीन होने पर आप कैसे तटस्थ एवं शान्त रहे यह बात आपने स्वयं मुझे बताई थी । आपके संत-समाज में अपने मित्र-साथी, जैसे पूज्य स्वामी कृष्णानंदजी, असंगानंदजी, सर्वानंदजी, तपस्वी पूरणदासजी, नडियाद के जानकीदास महाराज, अर्जुनदासजी रतनदेवजी आदि एवं कई एक परम भक्त-शिष्य भी स्वर्गवासी हुए हैं, अपितु आप महासागर के समान सदैव स्थिर एवं गम्भीर रहे । कभी क्षणिक दुःख या उद्वेग की छाया आपके सदैव प्रसन्न मुख-कमल पर मैंने नहीं देखी । हाँ, बाद में जो लोक-व्यवहार-क्रिया आदि करना होता है, वह सब आप पूर्णरूप में करते रहते हैं, उसमें कोई त्रुटि नहीं आने देते । आप तो उत्तम विरक्त महापुरुष होने पर भी अजीब व्यवहार-कुशल हैं । आपके पास अनेक स्त्री-पुरुष अपने सांसारिक प्रश्नों के समाधान के लिए, कोई अपनी हार्दिक असह्य-व्यथा के उपाय के लिए, कोई अपने स्वजन के विरह से कातर हो, आपके पास आते हैं । उन सबको आप यथोचित उपदेश एवं सांत्वना द्वारा, शान्ति सुख प्रदान करते हैं । परंतु उनका दुःख आपको लेशमात्र भी स्पर्श नहीं करता । यही आपके सत्य स्वरूप की एक झाँको मात्र है । मेरे पास भी ऐसे बहुत भाई-बहन अपने संसारिक व्यवहारिक-उलझनों को लेकर आते हैं, मैं धैर्य से सुनकर अपनी नम्र मति अनुसार, प्रेम से शिक्षा भी देती हूँ, परंतु मेरे मन-हृदय आंशिक रूप में, कुछ क्षणों तक, उदास अवश्य हो जाते हैं । आप मुझे लोगों की ऐसी दुःखद करनियाँ सुनने से रोकते भी हैं कि तुम किसी को दुःख-कथा सुनो ही नहीं, तुम्हारे अति कोमल स्वभाव पर ये अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहेंगी । कहाँ मेरा इतना छोटा अविवेकी मन और कहाँ आपकी सर्वोच्च स्थिति, सचमुच आज तक मैं आपसे, आपके असीम रत्न-भंडार से कुछ पा नहीं सकी । आपकी अति उदार कृपा-दृष्टि ने ही, मेरे जैसे काँच को भी अपने चरणों में रखा है, इसलिये स्तुति-गान न करने केवल नतमस्तक हूँ ।

संतराम मंदिर में

ता. २८ अक्टूबर को आप मोटर से संतराम मंदिर नड़ियाद पधारे । समाधि के दर्शन कर, महंतजी से मिले । एवं शाम को पुनः अहमदाबाद आ गये ।

महन्त सेवारामजी के स्थान पर अब किसी की नियुक्ति आवश्यक थी, अतः अखंडानंद आश्रम तथा वेद-मंदिर के ट्रस्ट की मिटींग में यह निश्चय किया कि स्वामी सुवेद मुनि तथा रविमुनिजी, दोनों के सहयोग से वेद-मंदिर का संचालन हो । स्वामी श्री गोविंदानन्द जी को मेनेजिंग ट्रस्टी रखा गया ।

राजस्थान का दौरा

इस प्रकार अहमदाबाद में अपना कार्य व्यवस्थित कर, २५ अक्तूबर को आप ब्रियावर पधारे । स्टेशन पर आपका सुन्दर स्वागत हुआ । वहाँ आप दुर्गाप्रसाद के बगीचे में ठहरे । स्नानादि के बाद, प्रातःकाल ही शोभायात्रा के साथ **भगवान् वेद** की प्रतिष्ठा, वहाँ के गीता भवन में एवं सायंकाल सनातन धर्म कोलेज में, आपके वरद करकमल से की गई । स्वामी फलहारी सोहंमुनि, शुकदेव मुनिजी, ब्रह्मानंदजो आदि संत उपस्थित थे । दूसरे दिन ता. २८ अक्तूबर की रात को आर्य समाज में वेद स्थापना की गई ।

अब ब्रियावर में भी वेद स्थापना की लहर चली । ता. २९ को भीलवाड़ा में हरिसेवा धर्मशाला के उद्घाटनार्थ आप गये एवं वहीं ठहरे । महंत बाबा सेवाराम जी, पं. चंद्रशेखरजी आदि ने आपका सुस्वागत किया । दूसरे दिन धर्मशाला में **भगवान् वेद** ग्रंथ का पूजन कर उनकी स्थापना की गई । आपने प्रवचन किया । उसी दिन राजकीय संस्कृत विद्यालय में एवं विश्वनाथ मानसका के घर पर **भगवान् वेद** की स्थापना हुई, प्रवचन पूजन आरती तथा अन्त में प्रसाद वितरण का क्रम समाप्त हुआ । ता. ३१ अक्तूबर को भीलवाडा के लक्ष्मीनारायण मंदिर में वेद-ग्रंथ की स्थापना एवं आपका प्रवचन हुआ । ४ बजे रामधाम में आपका भाषण था । रात्रि में आजाद मैदान में एक बृहद् सभा का आयोजन किया था, जिसमें आपने वेदविषयक भाषण किया ।

यह आपको तीर्थयात्रा काफी लम्बी रही । ता. १ नवम्बर को आप भीलवाड़ा से उदेपुर गये, तो वहाँ के अनेक सज्जनों ने आपका स्वागत किया । उदेपुर में (१) जगदीश मंदिर, (२) विद्यापीठ (३) भूपाल नोबल कोलेज, (४) आयुर्वेद सेवाश्रम तथा (५) गीता-रामायण सोसायटी में पाँचों स्थानों पर वेद-प्रतिष्ठा आपके वरद हस्तों से हुई । जगदीश मंदिर में आपको मानपत्र दिया गया एवं आपने प्रवचन किया । सायंकाल एकलिङ्गजी की आरतो के दर्शन कर आप श्रीनाथ द्वारा पहुँचे । देहली से मोतियाबहन वधवा, वीणा, चंद्रा तथा अमृतसर से रेशमाबहन साथ थीं । आबू से ठाकोरभाई पटेल भी थे ।

वाचं वदत भद्रया

एक बार आपने कल्याणमय वाणी के बारे में बताया कि मनुष्य जो वाणी बोलता है या सुनता है, उसे ही पहचानता है। वास्तव में वह वाणी के सच्चे स्वरूप को नहीं जानता है। वाणी के तो चार प्रकार हैं : (१) परा (२) पश्यन्ती (३) मध्यमा और (४) वैखरी। इनमें से **भगवान् वेद** के कथनानुसार **तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति** (ऋ. वे. १-१६४-४५) मनुष्य चतुर्थ वाणी को याने वैखरी को बोलते हैं।

परा वह एक प्रकार से वाणी का निराकार निर्विकार स्वरूप है। वह परब्रह्म स्वरूपा है। इसमें जब सागर में तरंग की तरह प्रथम वाणी का अविर्भाव होता है, तो वह धीमे-धीमे साकार रूप धारण करती है। इसे **पश्यन्ती** नाम से पुकारा जाता है। मन में धीरे-धीरे इस सकार रूप वाणी का बाह्य शाब्दिक कलेवर तैयार होता है। वह बनती है **मध्यमा**। और जब हम मन में निहित वाणी को मुख द्वारा शब्दों से व्यक्त करते हैं तब वह वाणी **वैखरी** कहलाती है।

इस वैखरी वाणी के भी प्रत्यक्ष रूप से दो भेद दृष्टिगोचर होते हैं। (१) शिवा याने कल्याणकारी (२) अशिवा अर्थात् अकल्याणकारी। आप जानते ही हैं कि **सत्यम् शिवम् सुन्दरम्** यह परमात्मा का ही स्वरूप है। अतः जो वाणी शिवस्वरूप होगी, वह तो सदा मंगलमय, पावन एवं सबको सुख देनेवाली होगी। क्योंकि वही परमात्मा का स्वरूप है। और वाणी कर्कश, असत्य और अमंगल होगी वह परमात्मा का स्वरूप कभी नहीं बन पायेगी।

यदि हमें प्रभु के प्यारे बनने की आकांक्षा है, हम प्रभुमय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं या हमारे रोम-रोम में प्रभु का वास हो, ऐसी सद्भावना हृदय में भरी है तो हमारी वाणी भी परमात्मस्वरूप शिवा याने मंगलमयी बनेगी। हम प्रभु से प्यार करें और हमारी वाणी में कठोरता, कटुता, कुटिलता, या कुधर्म का आविर्भाव हो, यह कैसे बन सकता है। मृदु मंगलमय वाणी तो प्रभु-प्रेम की पाराशीशी है। यदि हृदय में प्रभु का वास है, तो वाणी में शिवतत्त्व की सुवास अवश्य होगी। आप जितनी कटुवाणी का विस्तार करेंगे, उतना ही आप प्रभु से दूर-दूर चले जायेंगे और जितनी शिवा वाचा व्यवहृत होगी, इतना ही आप शिवमय बन जायेंगे। इससे विपरीत अमंगलमय वाणी एवं व्यवहार तो अशिव तत्त्व का द्योतक है। आसुरी प्रकृतिवाले मानवी में अशिवा वाणी रहेगी। जो प्रभु से कोसों दूर होगा, वही अमंगलमय वाणी से अपने को प्रफुल्लित एवं आनन्दी मानेगा। और इस प्रकार के आसुरी लोग होते भी हैं लेकिन पसंदगी

अब आप की है। आप चाहे शिवा वाणी के व्यवहार से शिवमय बनें या अशिवा वाणी के द्वारा प्रभु से दूर ही दूर रहें।

जीवन में थोड़ा-सा विवेक एवं धैर्य रखकर चारों ओर दृष्टिपात करेंगे तो स्पष्ट नजर आयेगा कि जगत के बहुत से छोटे-बड़े युद्धों का कारण कर्कश या अनृत वाणी है। द्रौपदी ने दुर्योधन की हँसी उड़ाई। लेकिन उस कटु वाणी का परिणाम तो यह आया कि कुरुक्षेत्र के मैदान में असंख्य वीर धराशायी हो गये। भाभी-ननंद या भाई-भाई, पिता-पुत्र या माता-पुत्री बहुत से सम्बन्धी में वाणी का अशिव व्यवहार कटुता पैदा करता है। कहीं-कहीं तो कटुता को मात्रा यहाँ तक बढ़ती देखी है कि जिस पिता की गोद में स्वयं बड़ा हुआ है उस पिता की मृत्युशय्या के सामने उसे दर्शनमात्र से पावन होने का भी मनुष्य इनकार कर देता है। माता पुत्र के सामने या भाई भाई के सामने कचहरी-कोर्ट तक चला जाता है। यह अशिवा वाणी से होता है। अतः **भगवान् वेद** की स्पष्ट आज्ञा है कि **वाचं वदत भद्रया**—कल्याणमय वाणी बोलो।

आज जिस मंत्र का विवेचन किया, वह इस प्रकार है :—

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम्॥

—अ. वे. ७-४३-१

ते—तेरी **एका**—एक **शिवाः**—कल्याणकारी और **ते एकाः अशिवाः**—तेरी एक अकल्याणकारी वाणी है। तू **सर्वा**—उन सबको **सुमनस्यमानः**—प्रसन्न मनवाला होकर हँसता हँसता **बिभर्षि**—धारण करता है। **वाचः तिस्रः**—उस वाणी के तीन भाग **अस्मिन् अन्तः निहिता**—तेरे अन्दर गुप्तरूप से रखे गये हैं **तासां**—उसका **एका**—एक अन्य-चतुर्थ भाग ही **घोषं अनु**—शब्द के रूप में **विपपात**—बाहर आता है।

ता. ४ नवंबर को श्रीनाथद्वारा में, मंदिर के अधिकारी श्री संतोष कुमार ने वेद-ग्रंथ का पूजन किया। जुलूस निकाला तथा पुस्तकालय में **भगवान् वेद** की स्थापना आपने की। सायंकाल आप कांकरोली पहुँचे। वहाँ भी शोभा-यात्रा के साथ, कांकरोली मंदिर में **भगवान् वेद** स्थापित किये गये। कोई महापुरुष जब मंदिर में दर्शनार्थ जाते हैं तब मूर्ति का उपवस्त्र उनके सिर पर 'सरोफा' देने की प्रथा प्रायः सब मंदिर में प्रचलित है। वहाँ के पूजारी ने आपको सरोफा दिया, प्रवचन भी हुआ। सायंकाल आपने चित्तौड़गढ में गुरुकुल में निवास किया। स्वामी व्रतानंदजी यज्ञदेव आदि ने आपका स्वागत किया। दूसरे दिन एक यज्ञ के बाद गुरुकुल में एवं मुरली मनोहर के मंदिर में वेद-प्रतिष्ठा आपने की तथा वेद

के भिन्न-भिन्न मंत्रों की व्याख्या की। वहाँ से आप ७ नवम्बर को छोटी सादडी गये तथा शोभा-यात्रा के साथ प्रातःकाल चारभूजा मंदिर में वेद-ग्रंथ की आपने प्रतिष्ठा की। आगे निमच में, स्वामी शांतानंदजी के सत्संग-मंडल शिव-भंडार में **भगवान् वेद** की स्थापना हुई। सायंकाल आप मंदसौर पधारे एवं रात्रि को केशव-सत्संग भवन में आपने प्रवचन किया। ता. ९ नवम्बर को मंदसौर में पशुपतिनाथ के सामने मंदिर में वेद-भगवान की स्थापना तथा प्रवचन कर, आप सायंकाल रतलाम पहुँचे। ता. १० नवम्बर को दीपावली के दिन वृन्दावन पधार कर, सानंद उत्सव मनाया गया।

बियावर, भीलवाडा, उदेपुर, श्रीनाथद्वारा, काँकरोली, चितौडगढ, छोटी सादडी, चारभूजा, निमच, मंदसौर आदि की लंबी यात्रा के पश्चात् आपको स्वाभाविक थकावट लगी होगी। उदेपुर निवासी मेरे गुरुबंधु मानसिंहजी का भी हार्दिक आमंत्रण था। मुझे भी इस यात्रा में आना था। आपको सर्वत्र वेद-ग्रंथ की स्थापना करते, सुंदर वेद-विषयक प्रवचन सुनते, स्वागत होते देखकर मेरे प्राण प्रफुल्लित हो जाते हैं। **भगवान-वेद** कहो कि भुवन-भास्कर, श्रीकृष्ण कहिये या सदगुरु, सब पूर्णतया एकं अद्वितीयम् हैं। अतः वेद-ग्रंथ की प्रतिष्ठा करते समय, श्रीकृष्ण की रस-माधुरी, भुवन-भास्कर का अद्वितीय ज्ञान-प्रकाश तथा सदगुरु का दिव्य प्रेम, इन तीनों का एकत्रित आनंद मानव-हृदय-वीणा के तारों को झंकृत कर देते हैं; हृदयाकाश में मानों वेद-सूर्य का प्रकाश, श्रीकृष्ण-सदगुरु की गुण-गरिमा रूप रम्य सप्तवर्ण इन्द्रधनुष का दर्शन कराता है। आपने अपने **'वेदोपदेश-चंद्रिका'** में वेद के प्रत्यक्ष महान् देव अग्नि की प्रार्थना का यह श्लोक लिखा है—

बन्धुं मेधां यशो ब्रह्म वेदान् रत्नं भगं व्रतम्।
आहराग्ने धनान्यष्टौ नत्वा त्वा प्रार्थयामहे॥

अर्थात् हे अग्निदेव! हम प्रणाम कर आपसे प्रार्थना करते हैं कि बंधु, मेधा, यश, ब्रह्म, चारों वेद, रत्न, भग तथा व्रतरूप आठ प्रकार का धन हमें दें। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वेदान् शब्द में चारों वेद रूप **भगवान् वेद** हैं; बंधु रूप में मेधायुक्त साकार सदगुरु ही ब्रह्म हैं एवं भगं अथवा ऐश्वर्य, यश रत्न रूप श्रीकृष्ण को एक ही स्वरूप में पाना यह हमारा व्रत-धर्म है। जैसे अपनी धन-राशि को हम गुप्त ही रखते हैं, सर्व सार रूप श्रीकृष्ण धन को अमोघ, अचल, रत्न-भंडार को भी प्रेमी-जन अपनी हृदय गुहा में छिपाकर रखते हैं। फिर भी यह दिव्य रत्न-राशि इतनी देदीप्यमान है कि उनके अंग प्रत्यंग से वह ज्योति भासमान होती रहती है। यही कारण है कि आप जैसे विभूतियों की ओर समस्त विश्व सतत आकर्षित रहता है।

६. देवा न आयुः प्रतरन्तु जीवसे ।

ऋ. वे. १-८९-२

नूतन वर्ष में कामना

ता. ११ नवम्बर को नूतनवर्षारम्भ था । इस नूतनवर्ष के उपलक्ष्य में हम प्रभु को वेदमंत्र से प्रार्थना करते हैं—

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां
देवानां रातिरभि नो निवर्तताम् ।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं
देवा न आयुः प्रतरन्तु जीवसे ॥

—ऋ. वे. १-८९-२; यजु. २५-१५

हे प्रभो ! **ऋजूयताम्**—सीधी सरल बुद्धिवाले अर्थात् शंका विचिकित्सारहित होकर नित्य अनुष्ठान करनेवाले यजमान की कामना करनेवाले, **देवानाम्**—देवताओं की, **भद्रा**—कल्याणकारी, **सुमतिः**—सारी मति याने अनुग्रहात्मिका बुद्धि हम पर रहे । हम जानते हैं कि जिसकी बुद्धि सरल होती है, उसपर प्रभु दया करता है । हम भी शास्त्र वचन में या महापुरुषों के वचन में कभी शंका न करें, किन्तु श्रद्धा रखें और प्रभु की जो भक्तों पर सद्गुरु के समान अनुग्रह करनेवाली कल्याणमय बुद्धि है, उसके हम भाजन बनें । प्रभु सदैव हमारा कल्याण करें ।

हे प्रभो ! **देवानां**—देवों का, **रतिः**—दान, **नः**—हमारे प्रति, **अभिनिवर्तताम्**—चारों तरफ से सतत बहता रहे । देवों के पास अनेक प्रकार की धन-संपत्तियाँ हैं । देवतागण उस संपत्ति का सदैव हमें दान करें । सूर्यनारायण प्रकाश, मरुत देव पवन, वरुण देव पानी, इन्द्र देव वृष्टि इस प्रकार सर्व देव हमारे पृथ्वी पर के जीवन को सुख-शान्ति रूप बनाने के लिये अपनी-अपनी संपत्ति का हमें निरन्तर दान करें ।

वयं—हम, **देवानां**—देवताओं के, **सख्यं**—मित्रभाव को, **उपसेदिम**—प्राप्त हों । देवतागण हमारा सदा कल्याण करते हैं । अतः वे हमारे मित्र याने हितचिन्तक हैं । हम भी देवों के साथ मित्रतापूर्ण हृदय से व्यवहार करें । हम भी यज्ञादि में हवि प्रदान करें । और इनसे देव हम पर प्रसन्न रहें, हम देवों को प्रसन्न करें और देव वृष्टि इत्यादि द्वारा हमें प्रसन्न रखें । परस्परं **भावयन्तः** हम परम कल्याण को प्राप्त करें ।

देवाः—देवता, **नः आयुः**—हमारी आयु, हमारी उमर, **जीवसे**—जीवन सुख से जीने के लिये, **प्रतिरन्तु**—बढ़ावें। यदि हमारा सुखमय जीवन रहेगा तो हम स्थिर अंगों से देवों के यज्ञादि कार्य करते रहेंगे। अतः हम देवों से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! आप हमारा जीवन बढ़ावें, हमें लम्बी दीर्घायु प्रदान करें।

इस प्रकार सरलबुद्धि होकर श्रद्धापूर्वक नित्य, नैमित्तिक अनुष्ठान करते हुए देवों की कृपा प्राप्त करें और देव हमें दीर्घ और स्वस्थ जीवन प्रदान करें, ताकि हम वेद, देव, गुरु एवं संतों की सेवा करने में समर्थ हों। यही नूतनवर्ष की कामना है।

वृन्दावन में निवास

नवंबर ता. ११ को वृंदावन में श्रौत-मुनि निवास में राधा मीरपुरी की ओर से भागवत सप्ताह शुरू हुआ। श्री लछमनदास तथा कांता बहन पमनानी, किसनचंद, कृष्णाबहन आदि साथ थे। ता. १७ को स्वर्गीय मीरपुरी निमित्त भागवत-सप्ताह समाप्त हुआ।

ता. १८ को गोपाष्टमी के दिन, आश्रम में भागवत का हवन, गौमाता का पूजन हुआ। पश्चात् आपने गुरु गंगेश्वर निरालचंद मीरपुरी औषधालय का उद्घाटन किया। ता. १९ नवंबर को देहली तीन दिन ठहरकर, आप बनारस पधारे। आपके भक्त शिष्य स्वामी भास्करानंदजी की देखरेख में हो रहे वेदों के हिन्दी अनुवाद के निरीक्षण करने तथा वेद-पारायण के लिये आपको जाना जरूरी था। रात्रि में **ज्ञान व्यापी** पर चल रहे मानस-सम्मेलन में रामायण वेद-मूलक है, इस विषय पर प्रचुर प्रकाश डाला। आपने बताया कि—

शिवं स तनुतां रामो यस्य दूतं महाबलम्।
स्तौति वायुसुतं वीरमग्निमीळ इति श्रुतिः॥

अर्थात् भगवान राम सब का कल्याण करें, जिसके महाबलशाली दूत महावीर वायुपुत्र हनुमानजी की 'अग्निमीळे' यह श्रुति स्तुति करती है।

वेद के आरम्भ में शाश्वत मर्यादा पालक और साक्षात् अवतार रूप भगवान राम की स्तुति व्यञ्जना द्वारा की गई है। यहाँ साहित्यिकों के यहाँ ध्वनि की सर्वोत्कृष्ट काव्यता सुस्पष्ट है। ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।
—ऋ. वे. १-१-१
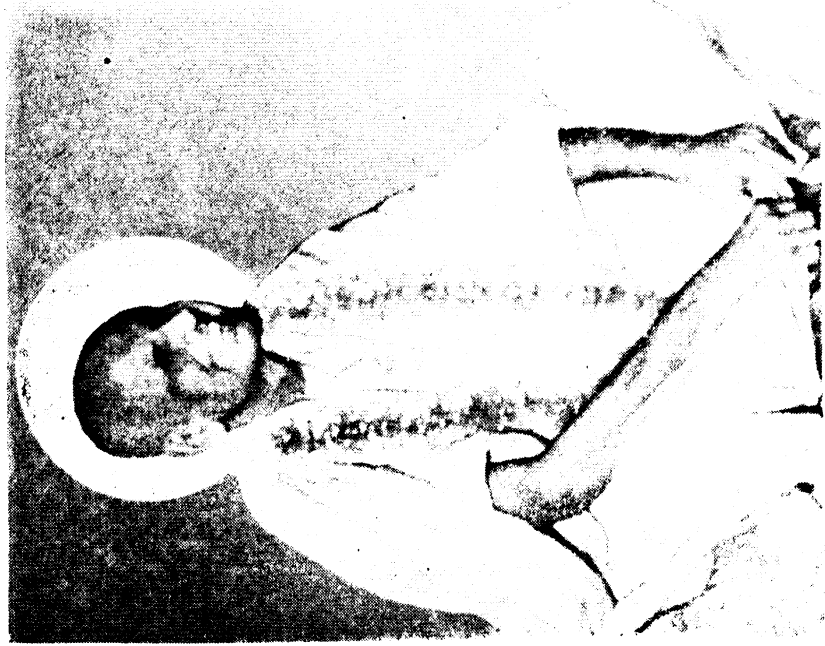
परम पूज्य सद्गुरुदेव और परम पूज्य आनन्दमयी माँ

यहाँ अग्नि का अर्थ है वायुपुत्र। श्रुति में कहा है **आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः......** अर्थात् आत्मा से आकाश, आकाश से वायु और वायु से अग्नि उत्पन्न हुई। अतः अग्नि को वायुपुत्र कहना उचित है। फिर **अग्नि ईळे** का अर्थ हुआ कि मैं वायुपुत्र अर्थात् हनुमान की स्तुति करता हूँ। वे पुरोहित याने सुग्रीव द्वारा मैत्री या संगति करने के लिए राम के पास प्रथम भेजे गये थे। यज् धातु संगतीकरण के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। **देवम्** याने प्रकाशमान हनुमानजी सर्वत्र प्रकाशमान हैं, विजयी होते हैं। **ऋत्विजम्** याने जो छलांग मारकर सागर पार करके अपनी गर्जनाओं से दैत्य नर-नारियों के हृदय को प्रकम्पित करते हैं। **होतारम्**—युद्ध में शत्रुओं को आह्वान देते हैं। और **रत्नधातम्**—रत्न याने सीता को देने के लिये राम भगवान ने जो अंगूठी दी थी उसको अपने पास रखी थी और अशोक वाटिका में पहुँच कर सीता माता को स्वयं समर्पित की थी। अतः इस प्रथम मंत्र में रामयण की कथा का गर्भित निर्देश है।

वेद विद्या

ता. २७ नवम्बर को बनारस में श्री श्यामसुंदर के घर पर आपने भक्तिभाव पर प्रवचन किया। वहाँ के विद्वान श्री वंशीधरजी, गजानन गोडसे, श्री पंत, विश्वनाथ वामदेव, शिवराम त्रिपाठी, कृष्णमूर्ति, नारायण रराटे, मनोहर द्विवेदी तथा सुब्रह्मण्यं शास्त्री उपस्थित थे। उदासीन विद्यालय में वेद-विद्वानों द्वारा चारों वेदों का पारायण प्रारम्भ हुआ। शाम को रोशनलाल के घर पर आपने प्रवचन किया। ता. ५ दिसम्बर को वेद-पारायण पूर्ण हुआ। भण्डारा एवं दक्षिणा देकर सबको संतुष्ट किया। जैसे कि मैंने आगे भी बताया कि आपका यह अद्भुत **भगवान् वेद** ग्रंथ का प्रकाशन वेद-वेत्ताओं की संजीवनी बन गया है। वेद-विद्या तो उनके जीवन का स्तंभ या प्राण था, उसका प्रवाह अगर रोक दिया जाय तो वह कुंठित होकर, मृतप्राय हो जाती। जैसे वृक्ष-लता को प्रकाश एवं वृक्ष का अवलंबन आवश्यक है, संगीतकार को उनके सुमधुर स्वर-ताल-लय गान को, कोई रसिक, संगीत-प्रेमी सुननेवाले, वाह-वाह कर उत्तेजित करनेवाले सामने न हो तो क्या परिणाम होगा? वह निरुत्साही, निराश एवं दीन हो जायेगा। कोई भी कलाकार, चित्रकार शिल्पकार हो, सबकी यही दयनीय दशा होनी स्वाभाविक ही है, 'सर्व वेदात् प्रसिद्धयति' के अनुसार, वेद विद्यारूप ये छोटी-छोटी रश्मियाँ, बिना प्रोत्साहन निस्तेज हो जाती हैं। भला वेद-वेत्ताओं की दीप्ति-चेतना कहाँ टिक सकती। आप तो स्वयं जगज्जननी वेद-माता गायत्री के रूप में अवतीर्ण होकर, अपनी दीन तेज हीन संतान को अपनी वात्सल्यमयी गोद में बिठाकर वेद

का अमृतपान कराते पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। विश्व के प्रति आपके अनंत उपकारों की महिमा–गरिमा गाने में यह रसना समर्थ नहीं।

ता. ६ दिसम्बर को उदासीन विद्यालय में वसंत–पूजन के मंगल अवसर पर ८५ वेदपाठी पधारे। दूसरे दिन विद्यालय में विद्वानों की सभा मिली एवं शास्त्रार्थ हुआ।

जन्म–जयंता बम्बई में

आपकी जन्म जयन्ती के कुछ दिन पहले ही, आप बम्बई आ जाते हैं। ता. १० दिसम्बर को आप काशीजी से बम्बई में मेघराज–भवन में पधारे।

ता. १२ को श्री सिरूमल दादलानी के सुपुत्र नारायण की शादी में एवं लक्ष्मीचंद के सुपुत्र महादेव तथा पुत्री राज की शादी में आपने उपस्थित होकर आशीर्वाद दिये। पुत्र नारायण को मैंने स्वरचित राधा–कृष्ण का चित्र गुरुदेव की ओर से प्रसादरूप में दिया। बहुत प्रसन्न हुए।

पूना में वेद स्थापना

एक ही वर्ष में आप हजारों मीलों का प्रवास करते हैं, परन्तु थकते नहीं, यह बड़ा आश्चर्य है! पूना में आपकी भक्त–शिष्या विश्नी बहन भगवानदास नागपाल के सुपुत्र का ता. २२ दिसम्बर को यज्ञोपवीत था। अतः आप ता. १३ को मोटर से पुना पधारे। उसी दिन आनन्दमयी के आश्रम में आपका स्वागत हुआ तथा वेद–पारायण प्रारम्भ हुआ। ता. २८–२९ को आप नासिक में ओम प्रकाश आश्रम में ठहरे। वहाँ से त्र्यंबक में बाबा श्रीचंद्र मंदिर ट्रस्ट के वार्षिकोत्सव में पधारे। वहाँ के ब्रह्मणों को सपरिवार भोजन–दक्षिणा देकर, पुनः नासिक आ गये। ता. २० दिसम्बर को पूना लौट आये।

ता. २१ को गीता जयंती के शुभ अवसर पर विद्वानों का वेद–शाखा संमेलन एवं वेद–पारायण की पूर्णाहुति हुई। दूसरे दिन, आनन्दमयी माता के आश्रम में श्री भगवानदास नागपाल के सुपुत्र गोपाल का मुंडन संस्कार और हवन हुए तथा **भगवान वेद** की स्थापना की गई। सायंकाल श्री वसंत गाडगील के द्वारा ज्ञान–प्रबोधनी उपासना मंदिर में आपका ११ संस्थाओं द्वारा सम्मान हुआ।

अनन्त गुणरूप ईश्वर

पूना में एक स्थान पर प्रवचन करते हुए आपने बताया कि ईश्वर के अनंत गुण एवं रूप होते हैं। जैसे कि वेदमंत्र उद्घोषित करता है—

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुः
वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः
किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये॥

—ऋ. वे. ६–९–६

(**वैश्वानरम्**—परमेश्वर के बारे में **श्रोतुकामस्य**—सुनने की इच्छा वाले) **मे**—मेरे **कर्णा**—दोनों कान **वि पतयतः**—(प्रभु के गुणों की अनन्तता के कारण) अनेक स्थानों पर पड़ते हैं, जाते हैं । **चक्षुः**—मेरी आँख—प्रभु के स्वरूपों की अनन्तता के कारण **वि**—अनेक स्थानों पर पड़ती हैं **हृदये आहितं यत् इदम् ज्योतिः**—हृदय में विद्यमान यह ज्योति (याने बुद्धिरूप तत्त्व) **वि**—विविध स्थानों पर भटकती है । **दूरे**—दूर दूर तक **आधि**—जिसके विषय निहित हैं, ऐसा **मे मनः**—मेरा मन **वि चरति**—विविध स्थानों पर विचरण करता है । इस प्रकार विविध स्थानों में जिसके इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि भटकता है ऐसा मैं **किं स्वित् वक्ष्यामि**—प्रभु के बारे में क्या कह सकूँगा ? **किम् उ नु मनिष्ये**—निश्चितरूप से किस प्रकार मनन करूँगा ।

भरद्वाज ऋषि भगवान के वैश्वानर स्वरूप की स्तुति करते हैं । वैश्वानर का अर्थ है **विश्वान् नरान् नयति**—विरक्त ७-२१ जो ईश्वर नेता बनकर सभी मनुष्यों का नेतृत्व करता है, उनको सन्मार्ग पर ले जाता है । प्रभु का वैश्वानररूप अनन्त है । यहाँ ऋषि कहते हैं कि हे प्रभो ! मैं आप के गुणों के बारे में सुनना चाहता हूँ, लेकिन आपके गुण अनन्त हैं, अतः मेरे कान बेचारे विवश होकर इधर-उधर भटकते हैं । आपके रूप भी अनन्त हैं, अतः मेरी आँख भी निःसहाय बनकर किसको देखूँ और किसे न देखूँ, इस प्रकार की द्विधा में फँसी हुई है और यत्रतत्र सर्वत्र भटकती रहती है । और तो क्या हे प्रभो ! मेरे हृदय में एक ज्योतिमय ज्ञानमय तत्त्व निहित है, जिसे बुद्धि कहते हैं । वह भी आपके अनन्त रूप गुण कीर्ति के कारण आपके स्वरूप के ज्ञान का पार नहीं पा सकता है । क्या करें ? मेरे मन की गतियाँ अनेक हैं, लेकिन गन्तव्य विषय भी आपके समान अनन्त हैं । अतः बेचारा मन भी विवश है ।

इसे अवगत होता है कि इन्द्रिय, मन और बुद्धि प्रभु के अगणित गुणों के कारण कुण्ठित हो जाते हैं । अनन्त रूप, गुण, क्रिया आदि से युक्त भगवान का पार सीमित एवं नाशवंत शक्तिवाले मन, बुद्धि या इन्द्रिय कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? अतः भारद्वाज ऋषि यहाँ पर कहते हैं कि मैं प्रभु के बारे में क्या कह सकता हूँ । यही बात प्रकारान्तर से उपनिषदों में **'नेति नेति'** या **यतो वाचो निवर्तन्ते** आदि मंत्रों द्वारा व्यक्त की गई है ।

पुनः बम्बई में

पूना से आप ता. २३ को बम्बई पधारे । आपके बम्बई पहुँचते ही पुनः **भगवान् वेद** का पारायण प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है । सांताक्रुज निवासी परमेश्वरी बहन पंजाबी के घर वेद-पारायण शुरू किया । दूसरे दिन, ता. २५ दिसम्बर को तुलसी-निवास में केटीबहन सिप्पी की बहन सावित्री द्वारा वेद पारायण प्रारम्भ

किया गया एवं ता. ३१ को उसकी पूर्णाहुति हुई। ता. ३० दिसम्बर को, मोरिशियस के श्री किशनचंद कलाचंद की सुपुत्री शोभा के शुभ–विवाह पर आपने आशीर्वाद दिया। सन् १९७५ की, हमारी विदेश–यात्रा में मोरिशियस में हम उनके अतिथि थे। उन्होंने बहुत प्रेम–सम्मान से अपने घर में पूरी सुविधा के साथ रखे थे।

सन् १९७८ नया वर्ष प्रारम्भ

आपेदिरेऽम्बरपथं परितः पतङ्गाः
भृङ्गाः रसालमुकुलानि समाश्रयन्ते।
संकोचमञ्चति सरस्त्वयि दीनदीनो
मीनो नु हन्त कतमां गतिमभ्युपैतु॥

कितना मधुर एवं भाववाही श्लोक है। भावार्थ है : हे सरोवर, जब तू सूख जायेगा तब पक्षी सब चारों ओर से आकाश में उड़ जायेंगे। भ्रमर कमलों को छोड़कर आम्रमंजरी पर मँडरायेंगे। लेकिन यह अत्यन्त दीन बेचारी मछली कहाँ जायेगी? वह तो तेरे बिना जी भी नहीं सकती है। जल बिन मछली का तो जीवन ही संभव नहीं है।

एक भक्तिकालीन हिंदी कवि ने इस भाव को इस प्रकार शब्दबद्ध किया है—

"सर सूखे पंछी उड़े, औरन सरन समाहि
दीन मीन बिन पच्छके, कहुँ रहीम कहँ जाहि?"

कहने का भाव है कि हे प्रभु! परमेश्वर! दया के सागर! यदि तूने दया करनी छोड़ दी, तो ज्ञानी लोग तो ज्ञान के बल से उड़ जायेंगे, संसार पार कर लेंगे। कर्मी लोग कर्म में रत हो जायेंगे, लेकिन जिनका जीवन ही तू है, वे बेचारे भक्त लोग किसकी शरण में जायेंगे? हमारा प्रभुमय जीवन मछली जैसा होना चाहिये। मछली जल बिन जीना नहीं ही सकती। एक क्षण भी उसे जल से बाहर कर लो, वह छटपटाने लगती है, उसका जीवन नष्ट होने लगता है। उसी प्रकार जीवन में एक क्षण भी प्रभु के स्मरण चिंतन या कीर्तन बिना चला जाय तो सच्चे भक्त का हृदय भी आकुल व्याकुल हो जाता है। प्रभु आज नूतनवर्ष के आरम्भ में हम भी चाहते हैं कि हम आपके प्रति दीन अति दीन मीन की भाँति श्रद्धा प्रेम भक्ति एवं विश्वास पूर्वक आचरण करें, आपके सहारे ही आपके लिये जीना सीखें।

बम्बई में आज नूतन वर्ष मनाया गया। जब आप बम्बई में होते हैं तब मेरा प्रत्येक दिन नूतन आनंदयुक्त बना रहता है। गुरु रूप सूर्य दर्शन से हृदय-

कमल सहस्रदल कमल में परिणत होकर, दिव्यानंद की अनुभूति करता है। प्रेमियों के भीतर की बात तो प्रभु ही जाने! अस्तु ता. १ जनवरी को, तुलसी-निवास में इंद्राबहन नागपाल की ओर से वेद-पारायण शुरू हुआ। दूसरे दिन सांताक्रुज, गोविंदधाम में **भगवान्-वेद** का पारायण प्रारम्भ हुआ। अमरिका निवासी, आप के परमभक्त, श्री नारी पोहानी ने वेद-पूजन किया। ता. ७ जनवरी को तुलसी निवास में इंद्राबहन नागपाल का वेद-पारायण पूर्ण हुआ। ता. ८ जनवरी को गोविंदधाम में नियोजित नारी पोहानी के वेद-परायण की समाप्ति हुई। उस दिन मेघराज भवन में सिंधियों की सभा हुई। स्वामी शांतिप्रकाशजी बंगले में आपके दर्शनार्थ आये। ता. ९ जनवरी को पदमा हाथीरामानी के निवास-स्थान में वेद-पारायण शुरू किया। ता. १० जनवरी को देवकी माता की पौत्री के शुभ विवाह पर आपने आशीर्वाद दिया। ता. ११ को प्रिय पुत्री केटीबहन सिप्पी के घर, सायंकाल सत्संग में आप पधारे, वहाँ पर प्रवचन, कीर्तन एवं आरति के पश्चात् प्रसाद पाकर घर आ गये। बहनों का एक महिला-मंडल स्थापित किया है, एवं हरेक बहन के घर, प्रतिमास सत्संग-कीर्तन होता रहता है। ता. १२ जनवरी को गंगाबहन टीकमदास के सुपुत्रों मधुसूदन तथा किशोर के यज्ञोपवीत उनके घर में किये गये।

बम्बई में ९७ वीं जयंती-उत्सव

तुलसी निवास में जयन्ती-उत्सव के उपलक्ष्य में चलते रामायण-नवाह की आज पूर्णाहुति की गई। दूसरे दिन, प्रतिवर्ष क्रमानुसार सुंदरकांड, हनुमान चालिसा तथा गीता-पारायण के पश्चात् ब्रह्म-भोजन एवं दक्षिणा का क्रम पूरा हुआ। ता. १४ जनवरी को हॉकी ग्राउण्ड में आपका बहुत शानदार महोत्सव मनाया गया। इस वर्ष मैंने चार श्वेत अश्वयुक्त, एक अति सुंदर, छत्र सहित रथ बनाया था। जब शाम को आप बंगले से ग्राउण्ड पर पधारे एवं रथ में विराजमान हुए तब तो रथ की अधिकतर शोभा बढ़ गई। ऐसा प्रतीत होता था कि त्रिभुवन भास्कर **भगवान् वेद** नारायण ही अपनी ललित लालिमा चारों ओर प्रसरित कर रहे हैं, या भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने अनन्य भक्त प्रेमियों के जीवन-रथ की बागडोर (रास) अपने हाथ में पकड़कर, अध्यात्म-पथ पर चलाने के लिये आये हैं। बाह्यदृष्टि से इतना अवश्य था कि प्रेक्षक-वर्ग तो विस्मित एवं प्रसन्न था ही, इस कला की कमनीय कृति से युक्त मेरी प्रपत्ति ने मेरे हृदय-पटल पर भी एक विलक्षण दिव्य-दृश्य अंकित कर दिया। निःशंक ही, उसके बनाने वाले को ही बहुत धन्यवाद है, मेरा कभी कुछ भी नहीं होता, मानव के विभिन्न भाव, प्रकृति, संस्कार एवं अधिकार होने से, प्रत्येक कलाकृति में दर्शन भी अलग-अलग

होते हैं। उत्सव में श्री होतचंद अडवानी, गुरु सहानी, महाराष्ट्र के मिनिस्टर बाबूराव काले एवं मंडलेश्वरों के प्रवचन हुए।

ता. १२ जनवरी १९८१ के दिन आप शतायु होंगे, पर हम सब आपकी संतान प्रभु से करबद्ध यही प्रार्थना करते हैं कि आप आचार्य चंद्र की १२५ वर्ष की स्वस्थ आयु को प्राप्त हों। ता. १५ जनवरी को पौष शुक्ला सप्तमी का आपका जन्म-दिन था। नित्यक्रमानुसार, मेघराज-भवन में, प्रातः काल उत्सव मनाया गया। सब भक्तजनों ने बड़े प्रेमभाव से आपका पूजन-अर्चन और आरती कर, प्रसाद ग्रहण किया।

सायं को, तुलसी-निवास में मैंने एक सुंदर सुमनों की नाव सजाई थी, जिसमें आसन पर आपने विराजमान होकर, जनता को दर्शन दिये। नित्य क्रमानुसार, राम पंजवानी का कीर्तन तथा संतों के प्रासंगिक प्रवचन हुए एवं आरति के पश्चात् आपने आशीर्वाद दिया। इस प्रकार यह ज्योति-उत्सव समाप्त हुआ।

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको
भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे।
भवनमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन
सुदृढ सुपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम्॥

हे गुरुदेव! मेरा चित्त-चञ्चरिक आपके चरणारविंद में निरंतर प्रेम-भक्तिपूर्वक भ्रमण करता रहे। शांतिरूपी औषधि देकर मेरी जन्म-मरण के रोग से रक्षा कीजिये तथा मुझे सुदृढ एवं अत्यन्त परिपक्व भक्ति तथा दयाभाव दीजिये। बस इसी प्रार्थना के साथ इस वर्ष की जयंती का चित्र-लेखन समाप्त कर आगे चलती हूँ। अब नया वर्ष प्रारम्भ हो गया और आपका आगे भ्रमण का क्रम भी निश्चित ही रहता है। जयंती के पश्चात् ३-४ दिन बम्बई रुककर, पुनः प्रवास शुरू हो जाता है। ता. १६ जनवरी को, प्रातःकाल प्रेमपुरी विद्या ट्रस्ट आश्रम में आपका जयंती-उत्सव मनाया गया। प्रतिवर्षानुसार प्रेमकुटीर में भी आपकी जयंती मनाई गई। वापस आते आप जसलोक अस्पताल में श्री गोवर्धनभाई को देखने गये। सायंकाल पदमाबहन हाथीरामानी के घर वेद-पारायण की पूर्णाहुति के अवसर पर आप पधारे।

बनारस में

ता. १९ जनवरी को आप बम्बई से प्लेन से देहली गये। बनारस में वेदों के हिंदी-भाष्य तथा प्रकाशन के कार्य-निरीक्षणार्थ आप ता. २२ जनवरी को बनारस पहुँचे। वहाँ पर वेद-विद्वानों से मिलकर, उपयोगी सूचना आप देते रहे। ता. ३० जनवरी को काशीविश्वनाथ में मंदिर रुद्राभिषेक तथा लघुरुद्री

कराई गई। उस दिन उदासीन संस्कृत विद्यालय में अमरिका निवासी मायाबहन की ओर से वेद-पारायण शुरू किया गया। ता. ७ फरवरी को मकर अमावस्या के दिन, गंगाजी में लोगों ने स्नान किया। ता. ९ फरवरी को माया बहन के वेद-पारायण की पूर्णाहुति हुई। ता. १२ फरवरी को वसंत पंचमी का उत्सव मनाया गया। सरस्वती पूजन-प्रवचन एवं विद्यार्थियों को पारितोषिक दिया।

देवकीबहन भोजराज उत्तमचंदानी जो आपकी परम भक्ता थी, उनकी ओर से विद्यालय में वेद-पारायण प्रारम्भ हुआ एवं ता. २२ फरवरी को पूर्ण किया गया। ता. २० फरवरी को काशी विश्वनाथ भगवान का ११ विद्वानों द्वारा अभिषेक, लघुरुद्राभिषेक तथा पारायण हुआ। आपके परम प्रेमी शिष्य अर्जनदास दासवानी के सुपुत्र किशु के विवाह निमित्त काशी में भंडारा हुआ। ता. ७ मार्च को महाशिवरात्री के दिन, प्रातः ८ से १२ तक रुद्राभिषेक हुआ, उसके पश्चात् संत-ब्राह्मणों का फलाहार एवं रात्रिभर महादेव का पूजन हुआ। काशीजी की यात्रा आज १॥ मास के पश्चात् पूरी कर, आप वृन्दावन जाने के लिये देहली ता. ९ मार्च को पहुँचे। २ दिन देहली रहकर, आप मोटर से ता. १२ मार्च को श्री वृन्दावनधाम पधारे, जो आपकी दिव्यलीला भूमि है।

अमायी सदा अप्रत्यक्ष

एक भक्त का कथन है श्रीकृष्ण के लिये—

कोमल सरस, सु-ज्योतिर्मय, अलख अचिन्त्य अनूप।
नीलकमल घन-मनि सदृश चिदानन्दमय रूप॥

कितना मनोहर चित्रांकन है यह! श्रीकृष्ण कलारूप से जो विभूति या महापुरुष विश्व कल्याणार्थ अवतरित होते हैं, लोग उन्हें पहचान नहीं सकते, क्योंकि उनके दिव्य भगवदेह के दर्शन के लिये दिव्य दृष्टि चाहिये। वे कृपा करके जिन भाग्यशाली आत्मा को अपना परिचय प्रदान करना चाहते हैं, उन्हीं के लिये योगमाया का आवरण हटा देते हैं। इस आवरण हटाने में भी अधिकार-भेद से बड़ा भारी तारतम्य रहता है। इस योगमाया से समावृत होने के कारण ही हमारे भगवान् या महापुरुषों की देह मायिक या भौतिक-सी प्रतीत होती है, एवं ऐसा होना ही ठीक है। क्योंकि हमारी मायामयी स्थूल-दृष्टि, उस अमायिक को प्रत्यक्ष कर ही नहीं सकती। उसमें मुख्य पाँच विशेषताएँ हैं—

(१) उनकी देह पाञ्चभौतिक नहीं है, अतः जन्म-मरणाधीन नहीं हैं; भगवत्स्वरूप एवं नित्य है।

(२) जिसके दर्शन मात्र से, हमारा विषय-विकारी चित्त सर्वथा पवित्र होकर दिव्य प्रकाश से आलोकित हो जाता है; स्मरण मात्र से ही धारणा या भावना होते ही, विकार रहित बन जाता है।

(३) जिसको देखते–देखते कभी अरुचि तो होती ही नहीं, कभी तृप्ति भी नहीं होती। देखते–देखते चाहे युगों बीत जायँ, परन्तु देखने की लालसा अचल बनी रहेगी।

(४) जिसकी तुलना में समस्त विश्व–वैभव भी तुच्छ प्रतीत होता है।

(५) जिनकी स्मृति सब कुछ को भुला देनेवाली होती है। और तो क्या, भोग–मोक्ष से भी सहज विरक्ति हो जाती है। जब अन्य कोई वस्तु ही शेष न रहे, वहाँ वस्तु में चित्ताकर्षण तो कैसे रहेगा! यह सर्वथा सत्य है कि जिसका मन सांसारिक सौन्दर्य एवं भोग–पदार्थों में आकर्षित रहता है, उनको भगवान् के दिव्य सौंदर्य–माधुर्य की कल्पना तक छू नहीं सकती। आप 'सर्वस्य शरणं सुहृत्' हैं। मैंने बहुत बार देख लिया कि आप सब के साथ समान ही व्यवहार करते हैं। आशुतोष होने के कारण भक्ति मात्र से प्रसन्न, आप सभी भक्त–प्रेमियों के द्वारा समान रूप में आश्रयणीय हैं और उनकी रक्षा में सदैव तत्पर रहते हैं। कई एक आपके भक्त–शिष्यों ने आपके द्वारा की जानेवाली रक्षा की अचूक प्रतीति पाई है, जिसमें मैं प्रथम हूँ। जितना भी आपका गुण–गरिमा–गान करती हूँ, मन–हृदय अघाता ही नहीं! जैसे कोई शराब पीनेवाले को पीते–पीते कभी तृप्ति नहीं होती, और पी–पीकर अंत में सुध–बुध खो बैठता है, वैसे ही भगवत्प्रेमिओं की दशा है; फर्क इतना है कि शराबी को होश आने के बाद वह निःस्तेज–शक्तिहीन बन जाता है, जहाँ दूसरी ओर भक्त उस रस–सागर की तरंगों में डूबता–उतरता दिव्यानंद की अनुभूति करता है। आइये प्रिय पाठक! हम सब गुरु–गंगेश्वर रूप गंगा–सागर में स्नान कर, पावन बनें। और हमारे हृदय–कमल में नित्य विराजित आप परमेश्वर को निम्न–लिखित अर्घ्य–पुष्प अर्पण करते आगे बढ़ें—

मम न भजनशक्तिः पादयोस्ते न भक्ति-
र्न च विषयविरक्तिर्ध्यानयोगे न सक्तिः।
इति मनसि सदाहं चिन्तयाम्याद्यरूप
रुचिरवचनपुष्पैरर्चनं संचिनोमि॥

अर्थात् 'हे आदिदेव! मुझमें न तो आराधना–शक्ति है, न आपके चरणों में भक्ति है, न विषय–वैराग्य है न तो ध्यान में ही अनुराग है—मनमें यह सोचकर मैं सदैव मधुर शब्द–सुमनों से आपकी पूजा करती हूँ।'

वृन्दावन में भागवत सप्ताह

वृन्दावन के श्रौत–मुनि आश्रम में एक भक्त द्वारा भागवत–सप्ताह शुरू हुआ। २० मार्च को ७२ घंटे के अखंड कीर्तन बाद, भागवत–सप्ताह पूर्ण हुआ। आज

से होली—उत्सव प्रारंभ हुआ । वृन्दावन में फाल्गुन शुक्ला २३ को ब्रह्मलीन पू. दादागुरू स्वामी रामानंदजी की जयंती वर्षों से मनाई जाती है । २२ मार्च को यह अति भाव से पू. स्वामी अखंडानन्दजी की उपस्थिति में मनाई गई । ता. २४ मार्च को खग्रास ग्रहण था । सत्यनारायण भगवान की कथा तथा कीर्तन—प्रवचन हुए । ता. २५ को वसंतोत्सव के शुभ दिन आश्रम निवासियों ने जमुना—स्नान पूजनादि किया । रात्रि को आश्रम में रासलीला हुई । दूसरे दिन आप स्वामी अखंडानन्दजी एवं आनंदमयी माता को मिलने पधारे । यहाँ भागवत सप्ताह के अवसर पर प्रभु ने बताया था कि——

निगमकल्पतरोः रसं पिबत

आज यह श्रीमद् भागवत महापुराण के पारायण की समाप्ति का दिन था । हमारे गुरुदेव ने इस शुभ अवसर पर वेद—भागवत समन्वय पर अति मननीय प्रवचन किया और वेद एवं भागवत का समन्वय युक्तिपूर्वक उपादेय ढंग से सिद्ध किया । जैसे कि श्रीमद् भागवत महापुराण के कर्ता ने स्वयं भागवत को **'निगमकल्पतरोगलितं फलम्'** बताया है । निगम याने वेद, तथा वेदरूपी कल्पवृक्ष का भागवत तो सुपक्व फल है । वेदव्यास भगवान की क्या ही अद्भुत कल्पना है । वेद तो कल्पवृक्ष है कल्पवृक्ष । आप जो भी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर कल्पना करो अवश्य परिपूर्ण होगी । वेद भी कल्पवृक्ष है । भगवान मनु का तो कथन है सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति—सब वेद से सिद्ध होता है । वेद में ही भागवत की अनेकानेक कथाओं का निर्देश गूढ रूप से है । **परोक्षप्रिया हि देवाः** यह वेदवचनानुसार वेद में बहुत सी बातें सीधी नहीं कह कर निगूढ रूप से रखी गई हैं ।

श्रीमद् भागवत की ही बात करें तो मत्स्य पुराण में कहा गया है कि——

यत्राधिकृत्य गायत्री वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद् भागवतमुच्यते ॥
अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।

—मत्स्यपुराण, ५३-२०-२२

जहाँ गायत्री का अवलम्बन कर धर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है, जहाँ वृत्रासुर—वध की कथा है और जिसकी श्लोक संख्या १८००० है, उसे भागवत कहते हैं ।

श्रीमद् भागवत का उपक्रम देखा जाय, दूसरे शब्दों में प्रथम स्कंध के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक को लिया जाय तो वहाँ स्पष्ट रूप से **सत्यं परं धीमहि** कहा है । गायत्री मन्त्र में **भर्गो देवस्य धीमहि** शब्द है । उसी प्रकार भागवत के उपसंहार में १२-१३-१९ श्लोक में **सत्यं परं धीमहि** लिखा ही है । कोई

कहे कि भागवत में प्रायः कृष्ण चरित्र है। तो भाई नोट कर लिया जाय कि वेद का गायत्री मन्त्र भी मेरे नन्दनन्दन आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र की लीला का द्योतक है। जैसे—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

—ऋ. वे. ३–६२–१०, साम. १४६२, वा. य. ३–३५, २२–९, ३०–२, ३६–३, तै. सं. १–५–६–४, ४–१–१०–१, तै. आ. १–२१–२

सवितुः=जगत को जन्म देनेवाले भगवान सूर्यनारायण के लिये **वरेण्यम्** पसंद करने योग्य सूर्यनारायण ने अपनी कन्या यमुना के लिये वर के रूप में भगवान श्री कृष्ण को पसन्द किया, यह इतिहास भागवत में प्रसिद्ध है। **भर्गः**–भर्जक याने नरकासुर इत्यादि महापातकी दैत्यों रूपी वन के विनाशक तेजरूप भगवान श्रीकृष्ण का **धीमहि**–हम ध्यान करते हैं। **यः**–वह श्रीकृष्ण **नः धियः**–हमारी बुद्धि को **प्रचोदयात्**–प्रेरणा देते हैं। गीता के अमृतमय उपदेश से भगवान श्री कृष्ण आज भी हमें कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग के प्रति प्रेरणा देते हैं। अतः गायत्री प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण चरित्र ही भागवत में वर्णित है। और गायत्री तो वेदमाता है।

दूसरी युक्ति से सोचा जाय तो भी भागवत एवं वेद के बीच सुवर्णमय कड़ी बंधी हुई है। ऋग्वेद के मण्डल दस हैं और प्रभु के प्रमुख अवतार भी दस हैं। भगवान की भागवत में वर्णित सर्ग, विसर्गादि लीलाएँ भी दस ही हैं। यदि प्रभु के दस अवतार एवं दस लीलाओं का संकलन करें, तो २० की संख्या होती है, वह अथर्ववेद के २० काण्डों का हमें सहज में स्मरण कराती है। भगवान की लीलाएं तीन प्रकार की हैं। (१) वास्तविकी (२) व्यावहारिकी (३) प्रतिभासिकी। अब दस अवतारों की तीन प्रकार की लीलाएं एकत्रित करने से ३० हो जायेंगी। उसमें दस अवतार मिलाने पर ४० की संख्या होगी, जो यर्जुवेद के ४० अध्यायों का स्मरण कराती हैं। सामवेद के पूर्वार्चिक में ६ प्रपाठक हैं, महानाम्नी आर्चिक को ७ वां प्रपाठक मानना होगा। और उत्तरार्चिक में ९ प्रपाठक हैं सब मिलाकर १६ हो गये। यह भगवान की १६ कलाओं का संकेत है, अतः इससे पूर्णावतार का सूचन हुआ। तब तो भगवान ने गीता में **वेदानां सामवेदोऽस्मि** कहा है। सामवेद की अध्याय संख्या भी प्रभु चरित्र की द्योतक है। उसके पूर्वार्चिक में ५ अध्याय, महानाम्नी का एक अध्याय एवं उत्तरार्चिक के २१ अध्याय मिलकर २७ की संख्या बनाते हैं। भगवान के ६ गुण हैं, ऐश्वर्य, वीर्य, यश इत्यादि। ६ गुणों के साथ गुणी मिलने पर गुण एवं गुणी का संकलन ७ की संख्या देता है। प्रभु के दस अवतार, दस लीलाएं एवं गुण तथा गुणी मिलकर ७, इन सबका

संकलन करने पर हमें २७ की संख्या प्राप्त होती है, जो सहसा सामवेद के अध्यायों की संख्या को स्मृत्यारूढ करती है । इस प्रकार वेदों में प्राप्त संख्या भी भगवान के अवतार, लीला, या गुणों के प्रति स्पष्ट निर्देश करती है । और यह सब अवतारादि भागवत में वर्णित हैं । वेद एवं भागवत का एक अद्भुत समन्वय है । अतः आप सब श्रोताओं से अनुरोध है कि वेदरूपी कल्पवृक्ष के सुपक्व फलरूप भागवत का रस आजीवन भोगते रहें यह रस सांसारिक रसों से विलक्षण है, क्योंकि अन्य सर्व रस भोग द्वारा क्षीण होते हैं, किन्तु भागवत कथामृत रस उपभोग से अत्यधिक बढ़ता रहता है, क्योंकि आखिर वह वेदवृक्ष का फल है ।

हरिद्वार में

ता. २७ मार्च को आप वृन्दावन से देहली गंगेश्वर धाम में आये । ८-९ दिन देहली ठहरकर, ता. ९ अप्रिल को लक्ष्मी नारायण भगवान की प्राण-प्रतिष्ठा के लिये आप हरिद्वार गये । हरिद्वार तो हरि के राजमहल का द्वार ही है । मुनि तपस्वियों की तपोभूमि एवं परम-धाम है । हरिद्वार के आपके आश्रम का नाम भी, राम-धाम, अपने आराध्य गुरुदेव स्वामी रामानंदजी की पुण्य स्मृति में रखा; हरिद्वार हो नहीं, अमृतसर आश्रम का नाम भी वही रख दिया । आप मुझे कहते थे कि गुरुदेव प्रायः अमृतसर में ही छिपे रहते थे, कहीं अधिक जाना-आना एवं प्रख्याति पसंद न होने पर, मेरे साथ भी रहते ही नहीं थे । अति नम्र, विरक्त-तपस्वी एवं ज्ञानी थे । वे १९४३ में ब्रह्मलीन हुए और मैंने गुरु-रत्न की प्राप्ति सन् १९४७ में की; ४ वर्ष पहले आप मिल जाते तो मुझे स्वामीजी के भी दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त होते । परन्तु जब जो भाग्य में लिखा होता है, इतना ही मिलता है । यहाँ पर मेरे सौभाग्य की एक बात लिखे बिना मन नहीं मानता । सिर्फ मेरे लिये ही नहीं, मेरे प्रेमी पाठक वृन्द के आनन्द के लिये भी । मेरे मन में स्वामी के दर्शन का अभाव काँटे की तरह चूभता था । आपके श्रीमुख से कृतज्ञतापूर्ण हृदय से जो स्वामीजी के गुण-गान सुने, कितना कष्ट उठाते अनूप असीम प्रेम वात्सल्य से उन्होंने आपको वेद-शास्त्रादि सिखाया, एवं अपनी कृपा-दृष्टि से आपको विश्ववंद्य विभूति बनाया, मेरा मन-प्राण और भी विह्वल हो उठा । रो रो कर कहती रही कि प्रभु ! मेरे कृपानाथ ! जब आपका पुत्र-रत्न सद्‌गुरुरूप में मुझे प्राप्त कराया, तब थोड़ा समय पूर्व ही, आपके रहते हो क्यों नहीं किया । एक अबाध बालक जैसा हठ पकड़ कर मैं आँसू गिराती रही । आखिर देखिये ! अपनी संतान का संताप सांसारिक जननी भी नहीं सह सकती, जो माँगे सो देकर ही प्रसन्न होती है । स्वामीजी जैसी महान आत्मा कैसे मेरा रुदन सह सकती थी । संक्षेप में कहना होगा कि गुरुदेव ! आपके माध्यम से उन्होंने मुझे अपना

चित्र बनाने का आदेश दिया। मैंने अति प्रसन्न होकर, उनका चित्र बनाया। यह जो मेरे कमरे में रखा है, इतना चेतन दीप्तिपूर्ण है कि निःसंदेह मेरे कृपालु देव उसमें साक्षात् रूप में मुझे दृष्टिगोचर होते हैं। उनके मुख पर वही तपस्या की ज्योति, वही प्रसन्न शांत मुखमुद्रा, और आँखों में से तो मानो कृपा–प्रसाद कण की किरणें बिखर रही हैं। ऐसी नित्य प्रतीति कराते हैं कि ले बेटी! अब मैं सदा के लिये यहाँ तेरे पास ही हूँ, निर्भय रहना। आप मेरे हृदय स्थित सर्वान्तरयामि के रूप में विराजमान हैं ही। इसको भले ही कोई अतिशयोक्ति या आत्म–श्लाघा के रूप में लें, मुझे कोई परवाह नहीं। मैं तो जैसे सुवर्णकार अपने मन पसंद विभिन्न अलंकार बनाकर, अपने आराध्य देवता को उनसे विभूषित देखकर आनन्द प्राप्त करता है, वैसी मेरी दशा है।

कल्याणमय रस के भाजन बनें।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥

—ऋ. य. वे. ११–५१

हे आपो देवि! **उशतीः मातरः इव**–पुत्र के हित की कामना करनेवाली माता की तरह **यः**–जो **वः**–आपका **शिवतमः**–अत्यन्त कल्याणकारी **रसः**–रस है **तस्य**–उसके **इह**–यहाँ, इस संसार में **नः**–हमें **भाजयत**–भाजन बनायें।

एक बार हरिद्वार में माता गंगा के किनारे मैं विचरती थी। माता के निर्मल नीर में दृष्टिपात मात्र से मन में आह्लाद की तरंगें उठती थीं। माता के जल कणों का वहन करने वाली वायु मेरे गात्र में मानों सोमपान की मस्ती भर देती थी। दूर दूर तक प्रसरी हुई प्रकृति माता की विशाल गोद में नाचते हरे भरे खेत या लहराते वृक्षों का दृश्य तो आज भी नयनों से ओझल नहीं होता है, मेरे मन के चक्षु समक्ष बारंबार खड़ा हो जाता है। मेरे मनमें आया कि क्या **भगवान् वेद** ने माता का सहनीय स्वरूप पहचाना है या नहीं।

मैं तो पहुँची, मेरे सर्वाधार गुरुदेव के पास और प्रभु के सामने मन के भाव प्रगट किये। प्रभु हँसकर कहने लगे कि 'मेरी बेटी को तो सभी बात वेद में से ही चाहिये।'

'जी हाँ! **भगवान् वेद** से ही तो सब सिद्ध होता है। यह तो आप भी कहते हैं।'

'हाँ, हाँ, बिलकुल ठीक है। वेद भगवान ने आपो देवी की–जल की देवी की मनोहर स्तुति की है और उसमें प्रत्येक नदी की स्तुति आ गई है।' 'मुझे कोई सुंदर मन्त्र भी तो बता दें।' मैंने बिनती की और मेरी कामना की पूर्ति

करते हुए आपने उपर्युक्त मंत्र बताया। साथ में विवेचन भी कर दिया, 'बच्चे के भले के लिये जिस प्रकार माता सतत सचिन्त रहती है, उसी प्रकार आपोदेवी जल की अधिष्ठात्री देवी समग्र प्रजा की भलाई के लिये हमेश हृदय में सोचती रहती है। सतत नदी, नाले या वृष्टि के रूप में बहती रहती है और प्रजा उनसे जल का ग्रहण करके अपने जीवन को नित्य नवजीवन प्रदान करती है। वेद के ऋषि की तो कामना है कि हे आपोदेवी ! जो आपका अत्यन्त कल्याणमय रस है, वह हमें प्रदान करें।

ता. ११ एप्रिल को देवीबहन राजानी की ओर से वेद-पारायण शुरू हुआ। १३ को मेष संक्रांति का स्नान भारी संख्या में यात्रियों ने किया। उस दिन प्रातः आप उदासीन पञ्चायती बड़े अखाड़े में गये एवं भगवान् श्रीचंद्र का दर्शन पूजन किया। ता. १४ एप्रिल को मेष संक्रांति के पुण्यकाल में लक्ष्मीनारायण भगवान की प्राण—प्रतिष्ठा के लिये पूजन प्रारम्भ हुआ। दूसरे दिन, स्वामी कृष्णानंद—गोविंदानंदजी के भगवद्धाम में आपकी अध्यक्षता में सत्संग हुआ तथा आपने प्रवचन किया।

लक्ष्मी नारायण की प्रतिष्ठा

ता. १६ एप्रिल को रामनवमी के दिन, गंगेश्वरधाम में लक्ष्मी—नारायण की मूर्ति की प्राण—प्रतिष्ठा पंडित ऋषिशंकर ने की। दूसरे दिन आप अनंदमयी माता के आश्रम में पधारे। राम—धाम आश्रम में, जाकर्ता निवासी पार्वतीबहन फुलवानी के पुत्र जय का यज्ञोपवीत कराया। मैं भी देहली से आपके साथ ही थी। ता. १९ को देवीबहन का वेद—पारायण पूर्ण हुआ।

अमृतसर में

द्वारका का इतना कार्यक्रम समाप्त कर आप ता. २१ एप्रिल को अमृतसर पधारे। उसी दिन से सत्संग शुरू हो गया। अमृतसर के शिव—मन्दिर में, वीणा—वादिनी सरस्वती देवी की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा। आपके वरद हस्त से हुई। आपके परम भक्त—शिष्य श्री शिवप्रकाशजी की ओर से यह मूर्ति स्थापित थी। बड़े सुन्दर वस्त्र—आभूषण सज्जित, माता की यह प्रतिमा मुझे आकर्षक लगी। श्री पन्नालाल शालिग्राम, दिवानचंदजी, अरुण, विजय एवं राजेन्द्र उपस्थित थे। एक छोटा—सा हवन भी मन्दिर प्रांगण में किया गया।

इस अवसर पर प्रभु ने बताया कि—

यथार्थ ज्ञान का उपाय ईश्वर को आराधना है ।

अभि प्र गोपतिं गिरा इन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥

—ऋ. वे. ८-६९-४

यथाविदे—यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये (हे मानव) तू **गोपतिम्**—इंद्रियों के स्वामी **इन्द्रम्**—ईश्वर का **गिरा**—वाणी द्वारा **अभि प्र अर्च**—अच्छी तरह पूजन कर, स्तुति कर यह ईश्वर **सत्यस्य सूनुं**—सत्य की संतान एवं **सत्पतिम्**—सत् का पालक है ।

इस मंत्र में अति गंभीर बात का गांभीर्यपूर्ण प्रतिपादन है । यथार्थ ज्ञान चाहते हो तो ईश्वर की आराधना अच्छो तरह करो । ईश्वर को आगे चलकर यहाँ इन्द्रियों का स्वामी, सत्य की संतान एवं सत् का पालक बताया है । यह ठीक से सोचने की समझने की बात है ।

योगमार्ग का एक सिद्धान्त है कि जब ध्याता, ध्येय और ध्यान एक हो जाता है, तब समाधि की—एक अर्थ में सिद्धि की उपलब्धि होती है । आराध्य—एवं आराधक की एकता—अभेद का प्रतिपादन—अद्वैत की सिद्धि ही भारतीय दर्शनों का अन्तिम ध्येय है । इसकी पूर्ति के मार्ग विभिन्न भले ही हों, लेकिन लक्ष्य में गन्तव्य स्थान में, प्रतिपाद्य तत्त्व में कोई विशेष अन्तर नहीं है । तो जब भक्त गुणों से भगवान के समान नहीं होता है, तब तक भक्त की साधना अपूर्ण रहती है । वेद भगवान भी चाहते हैं कि भक्त भी भगवान की तरह गुणवान बने, अतः इस मन्त्र में ज्ञान के मार्ग का उपदेश करते समय प्रभु के गुणों का वर्णन किया है ।

यहाँ प्रभु को गोपति कहा है, गो का अर्थ है इन्द्रिय और उनका पति याने स्वामी । जो इन्द्रिय का स्वामी है वह गोपति कहलाता है । यदि ज्ञानोपार्जन करना है तो इन्द्रिय—निग्रह आवश्यक है । संयतेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रिय—निग्रह करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है, ऐसा गीता कहती है ।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

श्रीमद्-भगवद्-गीता ४-३९

तदुपरान्त ईश्वर को यहाँ सत्यस्य सूनुः और सत्पतिः कहा है । ज्ञान को एक अर्थ में हम सत्य की संतान कह सकते हैं । जो व्यक्ति अपनी ज्ञानोपासना में सत्य को ही ध्येय रखेगा उसको ज्ञान प्राप्त होगा । जो अपूर्ण जानकारी या असत्य बात को मान लेगा उसे ज्ञान कहाँ से होगा ? अतः **भगवान् वेद** ज्ञान

स्वरूप ईश्वर को सत्य की संतान बताता है। ज्ञान प्राप्ति के बाद मानवी सत्य का स्वामी बन जाता है। वह सत्य–ज्ञान उसकी निजी संपत्ति बन जायेगी। उसका न चोर अपहरण कर सकेगा, न राजा उस पर कर डाल सकेगा।

इस ज्ञान की प्राप्ति सरलरूप से कैसे हो ? **भगवान् वेद** इसके लिये ईश्वर की शरण में जाने का विधान करते हैं। अवश्य याद रखें कि जब मेरे नन्दनन्दन प्रभु को कृपा होती है, तब ज्ञान दुर्लभ नहीं रहता है। प्रभु की कृपा से स्मृति, और ज्ञान प्राप्त होता है। अरे ! स्मृति और ज्ञान का अपोहन–नष्ट हो जाना विलुप्त होना भी प्रभु के वश है, प्राणी के नहीं। इसमें प्रमाण चाहिये तो प्रस्तुत है गीता की वाणी—

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

श्रीमद्–भगवद्–गीता १५–१५

प्रभु अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन, स्मृति, ज्ञान तथा अपोहन–विस्मृति भी मेरे से ही होती है। तो वेद भगवान् भी जो ज्ञान प्राप्त्यर्थ भगवद् शरण का संकेत कर रहे हैं, उस पर गीतामाता प्रकारान्तरेण अपनी सम्मति की मुहर लगाती है। अतः ज्ञान के लिये–चाहे वह सांसारिक हो या आत्मज्ञान–प्रभु की शरण ही सर्व सुलभ, सरल एवं सहज मार्ग है।

ता. २४ एप्रिल को दुर्गेयाना वेद–मंदिर में आप पधारे तब राम कथाचल रही थी। बहुत संत–विद्वान् वहाँ बैठे थे। स्वामी अमरमुनिजी ने भी रामायण पर विद्वतापूर्ण प्रवचन किया। डॉ. कृष्णाबहन की प्रार्थना पर, ता. २६ एप्रिल को उनके गंगेश्वर योग महिला आश्रम में सायंकाल पधारे एवं प्रवचन किया। ता. १ मई को आप अमृतसर से लुधियाना, श्री यशपाल के गुलमुहर निवास में दो दिन ठहरे। वहाँ भी आपने थोड़ा सत्संग किया। वहाँ से दूसरे गुरु बंधुओं की मोटर से दिनकरजी के साथ, मैं, दादागुरु स्वामी रामानन्दजी की राजवाना–समाधि मंदिर का दर्शन कर रात्रि को लुधियाना लौट आई। ता. ३ मई को हम देहली गये।

देहली में

भगवान्–वेद का विस्तृत प्रसार–प्रचार, समस्त विश्व में आसानी से हो, इस संकल्प ने मूर्त स्वरूप धारण किया एवं आपने चारों वेदों का टेप रेकोर्ड करवाया। आबू में आपके ३ महिने के निवास दरम्यान, आपने भारत के वेद–पाठियों को आश्रम में आमंत्रित किया। आपके परम भक्त साधु–सेवी, श्री ठाकोर भाई पटेल ने, अपने ही आबू के निवास–स्थान में, पाठियों का पूर्ण सुविधा एवं

अनुकूलता सहित, टेप–रिकॉंड किया। उनके ही प्रबल पुरुषार्थ एवं गुरु–भक्ति द्वारा यह कठिन कार्य सहज में सिद्ध हुआ। थोड़ी टेप–रेकॉर्ड बम्बई में भी की गई थी। गृहस्थियों की मौन–सेवा हरेक को अनुकरणीय एवं अत्यन्त प्रशंसापात्र है। आप किसी भी समय, किसी भी सेवा के लिये ठाकोरभाई को संदेश भेजें, तो तुरंत ही सेवा में उपस्थित हो जाते हैं।

चारों वेदों को टेप का उद्घाटन

ता. ५ मई को देहली के गुरुगंगेश्वर धाम में सायंकाल ६ बजे, उपराष्ट्र-पतिजी के द्वारा, ऋग्वेद की टेप–रेकोर्डिंग का उद्घाटन हुआ। पश्चात् आपने भी **प्रवचन** किया। दूसरे दिन प्रातः देहली के उपराज्यपाल श्री दीलिपराय कोहली द्वारा, यजुर्वेद की टेपों का उद्घाटन हुआ, पश्चात् सुप्रिम कोर्ट के मान्य न्यायाधीश श्री चन्द्रचूड ने अथर्व वेद की टेपों का उद्घाटन किया। इतने ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी वे अति नम्र धर्म–प्रेमी तथा संत–महात्माओं का सम्मान करने वाले थे। उनका सेक्रेटरी भी साथ था। उनको तो आपके वैदुष्य पूर्ण भाषण से ऐसा आकर्षण हुआ कि वह दूसरी बार भी आपके दर्शनार्थ आये थे। मैं भी बैठी थी। उन्होंने आपसे कहा कि न्यायमूर्ति आपके इस भगीरथ कार्य से बहुत ही प्रभावित हुए हैं एवं उन्होंने यह भी अपनी इच्छा प्रदर्शित की है कि जब उनको थोड़ी छुट्टी मिलेगी, तब वे अपनी पत्नी के साथ आपके आश्रम में रहकर सत्संग करना चाहते हैं। मुझे उनकी पत्नी मिलना चाहती थी, परंतु चंद्रचूडजी को सहसा बाहर जाना पड़ा, इसलिये वह आ नहीं सकी। पुनः सायंकाल शिक्षामंत्री प्रतापचंद्र द्वारा, मथुरा के हीरालाल के मुख से तैयार किया गया उत्तर भारत की पद्धति के सामवेद का उद्घाटन हुआ। ता. ७ मई को प्रातःकाल कार्यकारि परिषद के मुख्य श्री केदारनाथ साहनी द्वारा दक्षिण भारतीय पद्धति के सामवेद की टेपों का उद्घाटन हुआ। श्री विजय कुमार मल्होत्रा भी आये एवं उन्होंने भी वेद पर प्रवचन किया। तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय आरण्यक की एवं सामवेद की टेप मद्रास के तात्कालीन राज्यपाल श्री प्रभुदास पटवारी के सहयोग से तैयार हो सकी थी। सायंकाल श्री मदनलाल खुरानाने अध्यक्षपद से भाषण किया। इस प्रकार टेपों का उद्घाटन कार्य, विभिन्न प्रसिद्ध माननीय पुरुषों से सुसम्पन्न हुआ। वर्तमान पत्रों में भी ये प्रकाशित किये जाने पर अच्छी प्रसिद्धि हो गई। वस्तुतः दादागुरु स्वामी रामानन्दजी की यह तीव्र इच्छा थी कि आप समस्त विश्व में **भगवान्–वेद** की विजय-पताका फहरायें और अपना ज्ञान रत्न भंडार प्रचुर मात्रा में सबके लिये सुलभ बनाकर, विश्व में वेद रूप ज्ञान सूर्य के प्रकाश से, पथ भूली हुई समस्त

मानव जाति का अमूल्य जीवन, संपूर्ण सुख-शांति एवं शाश्वत आनन्द से सभर कर दें। देखिए सिद्ध महान् पुरुषों का संकल्प कभी न कभी फलीभूत हुए बिना नहीं रहता। आपने पूरे नब्बे वर्ष की आयु में चारों वेद-प्रकाशन का भगीरथ कार्य हाथ में लिया एवं तीन वर्ष के सतत् परिश्रम के बाद, सन् १९७१ में उसका पूर्ण शुद्ध प्रकाशन हुआ। आपके भक्त शिष्य स्वामी आनंद भास्कर ने भी अपने 'भास्कर' नाम को भुवन भास्कर (वेद) में लीन कर, शेष 'आनन्द' अकेले उपभोग न करते, समस्त विश्व में बाँटने का औदार्य बताया। वेद का यह सिद्धांत ही है कि कोई भी वस्तु का उपभोग व्यष्टि के लिये नहीं, समष्टि के लिये ही होना चाहिये, इसलिये वेदों में प्रायः बहुवचन का ही प्रयोग किया गया है। यही विश्व भावना भारतीय संस्कृति की शोभा है।

सर्वेत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ऐसे उद्दात्त भावयुक्त शांति-पाठ भारतीय परंपरा में में संगृहित हैं।

प्रभु क्या करता है ?

'भगवन् सारा दिन हम प्रयत्न करते हैं। मजदूरी करते हैं। थक जायँ, तब तक काम करते हैं। और भगवान तो बंसी लेकर केवल मन्दिर में खड़ा रहता है। हम भोग लगाते हैं, आरती, धूप-दीप करते हैं और प्रभु बस खड़ा-खड़ा वहाँ पर हँसता है और तो कुछ भी नहीं करता है।' एक अर्ध-नास्तिक-से व्यक्ति ने दिल्ली में गुरुदेव से निवेदन किया। इस व्यक्ति के विचार नास्तिक से थे और स्वयं पूजा-पाठ बे-समझ-सा होकर करता रहता था। अतः उसे अर्ध-नास्तिक ही कहना उचित है। गुरुदेव का तो स्वभाव ही है कि किसी की भी जिज्ञासा का सहसा सस्नेह समुचित उत्तर देना। आप यह सुनकर कहने लगे—

'बेटा ! हमें प्रभु के कार्य को देखने की दृष्टि सुलभ नहीं हुई है, अतः ऐसा कहते हैं।'

'वह कैसे सुलभ हो ?' सीधा ही सवाल उसने कर दिया।

'पहले हम अपनी मर्यादा समझ लें।' गुरुदेव समझाने लगे, 'हमने जो मूर्ति मन्दिर में रखी है, उसमें ही भगवान् को सीमित मान लिया है। यह हमारी प्रथम भूल है। घर में या मन्दिर में जो प्रभु का विग्रह विराजमान होता है, वह एक अर्थ में सर्वव्यापी विश्वात्मा का जो विश्वव्यापी रूप है उसका एक प्रतीक मात्र

है । सामान्य मानवी ईश्वर को सर्वत्र नहीं देख पाता है । ऐसे प्रारंभ के साधक का मन मनमोहक नन्दनन्दन की मधुर मुखाकृति में आकृष्ट हो जाय एवं प्रभु से प्यार करना ही आरंभ कर दे, ऐसे प्राथमिक हेतु से मूर्ति का निर्माण होता है । प्रभु की धूप, दीप, आरती, पूजा, प्रसाद द्वारा यह साधक उसमें धीरे-धीरे तन्मय होता जाय । यह तो हुई प्रारंभिक अवस्था । और बहुत से साधक यहाँ से आगे नहीं बढ़ते हैं । ईश्वर केवल मन्दिर में या मूर्ति में ही है, अन्यत्र नहीं, ऐसा मानते हैं और आपके समान भ्रम में पड़ जाते हैं कि भगवान कुछ नहीं करता है । लेकिन यही वास्तविक स्थिति नहीं है ।'

'तो प्रभु ! वास्तविकता क्या है ।' अर्ध-नास्तिक ने पूछा ।

प्रभु का वास सर्वत्र है । **ईशावास्यमिदं सर्वम्** (ईश० उप० १) यह जो कुछ दृश्यमान जगत है, उसमें अत्रतत्र सर्वत्र ईश्वर का वास है ।'

'वह दीखे कैसे ?'

'देखने को दृष्टि चाहिए ! कभी देखा है कली से कैसे फूल बनता है । फूल को कौन फल बनाता है ? पानी की छोटी-सी बूँद मोती बन जाती है । एक ही धान का दाना अनेक हो जाता है । पहाड़ से निकलता नन्हा-सा झरना धीरे-धीरे बढ़ता हुआ सागर तक पहुँच जाता है । सूर्य नियमित उगता है । अग्नि सदैव गर्म रहता है । बारीश नवजीवन देती है । बताइये यह सब कौन करता है ?'

'कौन करता है महाराज !' बीच में वह बोला ।

'भाई ! यही सब कार्य हैं, जो ईश्वर करते हैं । समग्र विश्व का सुचारु रूप से संपादन प्रभु ही तो करता है । दूर या बाहर देखने जाने की भी जरूरत नहीं है । आप अपनी ओर दृष्टिपात करें । माता के गर्भ में किसने रक्षा की । बचपन में गिरते पड़ते बड़े हुए । वहाँ आँख फूटने की या हाथ-पैर टूटने की कितनी संभावना है । फिर भी वह आज तक सुरक्षित है । हजारों दुर्घटनाएँ रास्ते में होती हैं, फिर भी हम घर पहुँचते हैं, हम बच जाते हैं । कभी-कभी तो दुर्घटना में फँसने पर भी हम बाल बाल बच जाते हैं । यह सब कौन करता है । मेरे प्रभु ही सब कुछ करते हैं । हम सही दृष्टि के अभाव में, समुचित श्रद्धा एवं भक्ति न होने से देख नहीं पाते हैं । यदि एक बार कृतज्ञतापूर्वक प्रभु के कार्यों को देखना सीख लोगे तो फिर आप उसे कभी भी नहीं भूल सकोगे । जो कुछ होता है वह प्रभु ही करता है यह विश्वास दृढ़ हो जायेगा तो संसार के कार्यों से अहंभाव नष्ट हो जायेगा । बाद में मुक्ति तो दासी बन कर हाथ जोड़ सामने खड़ी रहेगी ।'

माउण्ट आबू में

ता. ९ मई को देहली का कार्यक्रम समाप्त कर माऊन्ट आबू के अविनाशी धाम में पधारे । मैं भी साथ थी । आबू का आपका निवास कुछ अधिक शांत स्वास्थ्य-वर्धक रहता है । इतनी परिपक्व अवस्था में, सारा दिन जनता के साथ बोलना, बड़ी थकावट लाता है । परंतु महापुरुष कितना दुःख सहन करके भी अन्य को प्रसन्न रखने में मानते हैं । ता. २० मई को गुजरात के मुख्य मंत्री श्री बाबूभाई आश्रम में आपके दर्शनार्थ आये थे । ता. १ जून को सिमला में मुख्य मंत्री शांतिकुमारजी तथा वित्तमंत्री दौलतरायजी के द्वारा **भगवान् वेद** स्थापना **सनातन-धर्म** सभायें में हुई । ता. ६ जून को गुजरात के शिक्षा-मंत्री श्री नवलभाई आश्रम में आपसे मिलने आये । ऐसे क्वचित ही कोई आते । शेष समय आपका स्वाध्याय, वेद-विद्वानों का कार्य देखने में, निर्देश देने में एवं स्वरूप-चिंतन में हो व्यतीत होता है । कभी-कभी मुझे भी ज्ञान-प्रदायक बातें सुनाते हैं । आबू में शाम को घूम कर आने के बाद प्रभु ने एक दिन बताया कि—

पापी लक्ष्मी नहीं पवित्र वसु चाहिये

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा
अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा
हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥

अथर्व. ७-१२०-२

पतयालूः—पतन करनेवाली, दुर्गति देनेवाली **अजुष्टा**—अप्रिय, निन्दनीय **या**—जो **लक्ष्मीः** वह **मा**—मुझे **वन्दनेव वृक्षम्**—वृक्ष को सूखा देनेवाली वन्दना नाम की वेल की तरह **अभिचस्कन्द**—चारों बाजू से चिपट गई है । **सवितः**—हे सविता देव, जगत को उत्पन्न करनेवाले प्रभु **ताम्**—वह लक्ष्मी को **इतः**—यहाँ **अस्मत्**—मेरे पास से **अन्यत्र**—अन्य स्थान पर **धाः**—स्थापित करो, रख दो **हिरण्यहस्तः**—सुवर्णपाणि देव **नः**—हमें **वसु**—धन, पवित्र धन **रराणः**—देते हुए ।

यह मंत्र जीवन में अत्यधिक उपयुक्त है । लक्ष्मी दो प्रकार की होती है (१) शुद्ध (२) अशुद्ध । शास्त्रसंमत मार्गों से प्राप्त की गई लक्ष्मी हमेशा पवित्र होती है और उसके द्वारा मनुष्य की यह लोक एवं परलोक में भी उन्नति होती है और जो लक्ष्मी पाप से कमाई जाती है, वह **भगवान् वेद** के शब्दों में **पतयालूः**—

होती है, पतन करानेवाली और दुर्गति प्रदान करने वाली होती है। और यह लक्ष्मी अजुष्टा—अप्रिय एवं निन्दायोग्य बन जाती है। वेद का ऋषि तो प्रभु को स्पष्ट शब्दों में कहता है कि हे प्रभो। यह पापी लक्ष्मी चारों ओर से घेर कर मुझे चूस लेती है। यहाँ सुन्दर उदाहरण भी प्रस्तुत है। वन्दना नाम की एक लता आती है। यह वन्दना लता जिस पेड़ को घेर लेती है, उसका सारा रस—कस चूस लेती है और पेड़ सूख जाता है। यही दशा पापी लक्ष्मी से व्याप्त मनुष्यों की है। हम देखते ही हैं कि कई धनी लोग न रात को चैन की निद्रा ले सकते हैं, न दिन को अपने स्वाद का भोजन खा सकते हैं। केवल लक्ष्मी की चिन्ता में फँसकर आधि, व्याधि एवं उपाधि के भोग बनते जाते हैं। लक्ष्मी उसको अप्रिय बनती जाती है और समाज में लक्ष्मी-वान भी अप्रिय बनता है। ऐसी लक्ष्मी से तो बचना ही अच्छा। अतः वेद में प्रभु की स्तुति है कि ऐसी पापी लक्ष्मी को हमसे दूर कर दो।

तो क्या लक्ष्मी के बिना जीवन रहेगा ? पद पद पर हमें उसकी आवश्यकता रहती है। तो वेद भगवान चाहते हैं कि हमें पवित्र वसु प्राप्त हो। अतः सविता देव को—कि जिनके हाथ सुवर्णमय या प्रकाशमय हैं—उनको प्रार्थना की है कि हमें वसु प्रदान करें। यहाँ वसु शब्द का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। वसु शब्द वस् धातु से बनता है। जिसमें पवित्रता का वास हो, इसे वसु कहते हैं, या जो द्रव्य हमारा पतन न करें बल्कि हमारा घर बसाये, उसे वसु कह सकते हैं। जो हमें शान्ति प्रदान करे और हमारे संग में आये सबको शान्ति एवं उन्नति दे, उसे वसु कहते हैं। आप जानते ही होंगे कि पृथ्वी को वसुधा या वसुमती कहते हैं। लक्ष्मीवती नहीं कहते। तो यह पवित्र धन याने वसु हमें प्राप्त हो ऐसा यहाँ कहा गया है।

आपको प्रश्न होगा कि वसु की प्राप्ति के लिये इन्द्रादि देव को छोड़कर सविता की स्तुति क्यों की गई। इसका समाधान हमें ऋग्वेद का एक मन्त्र देता रहा है कि—

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये—ऋ. वे. १-२२-५ **ऊतये** हम हमारे कल्याण के लिये, उन्नति या ऐश्वर्य के लिये हिरण्यपाणि सविता देव का आह्वान करते हैं।

हौंसला मत हारो

माउन्ट आबू में प्रभु के पास अनेक विद्वान वेद कार्य में व्यस्त होते हैं। एक दिन की बात है। एक बहुश्रुत विद्वान ने कह दिया, 'महाराज ! पहले के ऋषि तो साक्षात्कृतधर्मा थे। आजकल तो कोई ऐसा नहीं है।'

'पंडितजी ! हौसला मत हारो', प्रभु ने उत्तर देना प्रारम्भ किया, 'समय के अनुसार बदलता रहता है । पहले पंडित लोग सिद्धान्तकौमुदी, परिभाषेन्दुशेखर, महाभाष्य इत्यादि कण्ठाग्र रखते थे । अब वह कोई नहीं रखता है । फिर भी काम चल जाता है । सब छपा छपाया मिल जाता है । जब चाहा पुस्तक उठा ली और देख लिया' ।

'जी महराज'

'कहीं चित्र अन्य-सा भी प्रतीत होता है ।' प्रभु आगे कहने लगे, 'हमारे दादा गुरुजी थे, वह केवल विचारसागर, वृत्तिप्रभाकर, रामचरितमानस ऐसे भाषा ग्रन्थ पढ़ाते थे । हमारे गुरुजी संस्कृत के विद्वान थे । संस्कृत पढ़ाते थे । उनकी इच्छा थी कि संप्रदाय में कोई अंग्रेजी का भी विद्वान हो तो आज सर्वज्ञ मुनी जैसे अंग्रेजी एवं संस्कृत के विद्वान भी हैं । अतः प्रगति भी होती रहती है ।'[1]

'जी महराज'

'अब रही साक्षात्कृतधर्मा की बात । उसको भी आजकल के विद्यार्थियों के लिए आप साक्षात्कृतधर्मा हैं । आपके लिये दयानन्द सातवलेकर आदि । दयानन्दजी के लिये व्यास इत्यादि साक्षात्कृतधर्मा थे और व्यास के लिये वेद के ऋषिगण । अतः आप कभी भी हौंसला न हारे । काम करते रहें ।'

अहमदाबाद में गुरु–पूर्णिमा

अहमदाबाद के भक्तगण भी बड़ो आतुरता से आपके आगमन की राह देखते हैं । वेद मन्दिर में शास्त्री भवसुखलालजी द्वारा भागवत–सप्ताह प्रारंभ हुआ । ता. १३ एवं १९ को पूर्णाहुति की गई । ता. २० जुलाई को गुरु–पूर्णिमा का उत्सव, प्रतिवर्षानुसार, भक्त जनता ने बहुत भाव से मनाया । मैं तो सदा ही इस शुभ अवसर पर साथ होती ही हूँ, एवं बम्बई, बड़ौदा, सुरत, इन्दौर, देहली अमृतसर वृन्दावन से भक्त–मंडल उपस्थित होकर, गुरु–पूजन का अमूल्य लाभ उठाते हैं, उसकी पुनरुक्ति आवश्यक नहीं । ता. २३ जुलाई को अमृत ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सामवेद के गुजराती भाष्य का उद्घाटन वेद–मन्दिर में आपके कर कमल से हुआ । इसका अनुवाद आचार्य श्री विष्णुदेव पण्डित ने किया था ।

---

१. यहाँ पर मेरे प्रभु की नम्रता का दर्शन होता है । स्वयं विश्व–वंद्य गुरु परंपरा में उत्कृष्ट विद्वान हैं : फिर भी वह बात ऐसी आसानी से टाल दी है कि पता ही न चले । साधु मुख से नहीं अपने कार्यों से ही बोलते हैं ।—कहा गया है न : "हीरा मुखसे न कहे लाख हमारा मोल" ।

अब गुरुदेव वेदों का हिंदी–भाष्य लिख रहे हैं ताकि संस्कृत नहीं जाननेवाले को रहस्यपूर्ण वेद–ऋचाओं का अर्थ सरल हो सके, तो पढ़ने में भी रुचि रहे एवं रुचि युक्त कोई भी कार्य आनंद प्रदायक होता है। सिंधी जनता हिंदी भाषा बहुत ही अल्प रूप में पढ़–लिख सकती है, इसीलिए वह चाहती है कि आपका जीवन–चरित्र भी अगर आङ्गल भाषा में छापा जाय तो हम लोगों को पढ़ने में आनंद रहे। अब धीरे धीरे शायद आपके शताब्दि महोत्सव के बाद यह अनुवाद का कार्य भी हाथ धरने का सोच रही हूँ।

जे. बी. मंघाराम का बंगला

ता. २५ जुलाई को आप बम्बई पधारे और जे. बी. मंघाराम के बंगले में ठहरे। इस बंगले के बारे में एक रोचक इतिहास है। महापुरुष जो भी कहते हैं, वह कभी मिथ्या नहीं होता है। कभी कभी प्रेमवश दिल्लगी में या हँसते हँसते भी गुरुदेव जो कहते हैं, उसे आज नहीं तो कल सत्य होना ही पड़ता है। एक बार भाऊ ने बताया कि प्रभु प्रायः बम्बई में हमारे बंगले पर ठहरते हैं। वास्तव में यह बंगला कंपनी का था और हमारी बिस्कीट की कम्पनी में अनेक भागीदार थे। अतः वह बंगला केवल हमारा तो न कहा जाय। फिर भी ईश्वर स्वरूप हमारे गुरुदेव सर्वत्र ऐसा ही कहें कि जे. बी. मंघाराम कम्पनी के मालिक श्री बालचन्दजी के बंगले में मैं ठहरा हूँ।

हमारी अम्मा जिसे हम श्रीराम अम्मा कहते थे, उसे यह कम पसन्द आता था। कमी कभी वह प्रभु से शिकायत भी कर लेती कि भगवन्! बंगला हमारे अकेले का नहीं है। कम्पनी में मी बहुत पार्टनर हैं, फिर भी आप हमारे बंगले में ठहरते हैं, ऐसा कहते हैं। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

लेकिन प्रभु तो प्रभु ही ठहरे। हँस पड़े और अम्मा की पीठ पर प्रेम से आशीर्वाद देकर बोले, 'अम्मा! मैं भी क्या करूँ। मेरे मुख से हो ऐसा वचन निकल जाता है। कभी-कभी ऐसी बात भी निकलती है जो मैं स्वयं कहना नहीं चाहता। फिर भी देखो प्रभु की मरजी।

स्वयं प्रभु होते हुए भी प्रभु की मरजी ऐसा कहते हैं, इससे हमें तो आश्चर्य होता है। और आप जानकर हैरान हो जायेंगे कि धीरे धीरे करके सभी पार्टनर अलग हो गये और प्रभु के वचन अनुसार जे. बी. मंघाराम की कम्पनी के मालिक केवल बाबा (याने भाई बालचन्दजी) ही रह गये। और बंगला भी जे. बी. मंघाराम का हो गया यह प्रभु की लीला न्यारी है। जो समझे उसे भव पार करनेवाली है।

मेघराज भवन में सायंकाल ६ बजे लक्ष्मणदास पमनानी की सुपुत्री मधु की मंगनी इन्द्राबहन नागपाल के सुपुत्र रामू से आपकी उपस्थिति में सुसंपन्न हुई। ता. ५ अगस्त का आपके परमभक्त श्री दामोदर चेनराय की ओर से **भगवान् वेद** का पारायण शुरू किया। तथा ता. ११ को पूर्णाहुति की गई। पुनः अब **भगवान् वेद** आपके आते ही अधिक उत्साही हो गये। ता. १२ को श्री मोतीलाल बुबना के घर पर वेद-पारायण शुरू किया। ता. १३ को तुलसी निवास में श्री कन्हैयालाल की ओर से वेद-पारायण चालू किया। ता. १८ अगस्त को रक्षा-बंधन का दिन था। श्री बूबना के घर आज पारायण की पूर्णाहुति हुई। ता. २०-२१ अगस्त को श्री रमेश अग्रवाल की ओर से वेद पारायण प्रारम्भ हुआ तथा श्री कन्हैयालाल के पारायण की समाप्ति की गई। आपके उत्सव के पहले जयंति उत्सव का कार्यक्रम निश्चित करने के लिये, एक मिटिंग का आयोजन किया, जिसमें यह प्रस्ताव रखा कि तीन वर्षों तक आपका शताब्दि महोत्सव मनाया जाय। ता. १२ जनवरी १९८१ के अति मंगल दिन आप शतायु होंगे, उस समय १०८ वेद पारायण, पञ्चदेव यज्ञ, भागवत-सप्ताह आदि किये जायँ।

सब सदस्य सहर्ष सहमत हुए एवं तदनुसार तैयारी धीरे धीरे होती रहेगी। ता. २२ को तुलसी निवास में श्री गोविंदराम सेउमल के पौत्र करण को जन्म की खुशी में वेद-पारायण शुरू किया। वह ता. ३० को पूर्ण हुआ।

श्री चतुर्भुज आपके बहुत पुराने सेवक प्रेमी हैं। आपके परम भक्त श्रीहशमत राय थडानी की पुत्रवधू मीरां के यह पिताश्री हैं। ब्रह्मलीन स्वामी पूरनदासजो की श्री चतुर्भुज परिवार पर बहुत कृपा थी, उनके वहाँ २-३ महिने जाकर रहे थे। आपका स्वामी पुरनदासजी के साथ गाढ़ परिचय एवं प्रेम था। अतः श्री चतुर्भुज आपको बहुत समय से लंका पधारने की विनंती करते रहे। इस समय **भगवान् वेद** को साथ लेकर आप उनके घर पधारे यह और भी सौभाग्य का विषय था।

कामना करें या नहीं

'स्वामीजो! जीवन में कामना करें या न करें?' आपके बम्बई निवास दरम्यान दो चार मातायें दर्शनार्थ पधारी थीं, उनमें से किसीने प्रश्न कर दिया।

'बेटा! आपका जैसा प्रश्न है, वैसा ही उत्तर दूँ!' गुरुदेव बोले।

'अवश्य महाराज!' बहन ने कहा।

'तो लीजिये हमारा उत्तर है कामना करो और न करो!' प्रभुने कहा। अब बहनें चकित हो गईं। कुछ समझ में न आया। आपस आपस में एक दूसरे का मुँह ताकने लगीं।

'क्यों ? कुछ समझ में न आया क्या ?' मेरे अन्तर्यामि प्रभु ने धीरे से प्रश्न किया। अब तो सहसा बुद्धि चातुर्य छोड़कर प्रभु की शरण में जाना ही उचित है, यह मानकर चारों मातायें बोल पड़ीं, 'हाँ जी गुरुदेव, कृपया आप हमें समझायें।'

'अच्छा, तो सुनो' कृपालु गुरुदेव ने कहने का प्रारम्भ किया। बहनें स्वस्थ होकर सुनने लगीं।

'हम कामना मात्र को बुरी मानते हैं, यह हमारा भ्रम है। उपनिषद् तो कहती है कि प्रभु ने कामना की और संसार का सर्जन हुआ। यदि कामना खराब ही होती तो प्रभु सर्वप्रथम कामना क्यों करते ? जो चीज आमूलाग्र दुष्ट एवं त्याज्य होती है उसको प्रभु कहीं भी किसी भी स्वरूप में नहीं अपनाते हैं। किसी भी शास्त्र में 'प्रभु ने पाप किया' ऐसा नहीं लिखा है। अतः सर्वप्रथम इस भ्रम का निरसन होना जरूरी है कि कामना मात्र वर्ज्य है।'

'जी महाराज' एक बहन ने सब बहनों की ओर से बात का स्वीकार किया।

'कामना दो प्रकार की होती है।' प्रभु ने आगे बताना आरम्भ किया, 'एक शुभ दूसरी अशुभ। एक अच्छी, दूसरी बूरी। एक शिवमय कामना है वह हमारी उन्नति करती है, जो अशिव है वह अधोगति। अतः अच्छी कामना करो और बूरी कामना न करो। गांधीजी ने भारत को विदेशी बन्धन से मुक्त करने की कामना की, अथक प्रयत्न भी किया, सारे भारत के कोने कोने से बच्चे बच्चे ने उसमें साथ दिया और भारत स्वतन्त्र भी हो गया। तो कामना मात्र बूरी नहीं है। जो कामना स्वार्थमय मोहवश या दुर्बुद्धि से होती है वह आत्मा का अकल्याण करती है। उसे तो मन में उठने से पहले ही कुचल डालो। और जो सुन्दर मंगलमय परमार्थ की भावना से भरी हुई है, ऐसी कामना के अनुसार जीवन बनाओ। अच्छी वासना का सतत प्रवाह सबको सुखी करता हुआ गंगा माता की तरह मनुष्य को आगे ही बढ़ाता है और एक दिन गंगामैया सागर में जैसे अपने नाम एवं रूप को छोड़ कर एक हो जाती है, उसी प्रकार शुभकामनामय मनुष्य एक दिन प्रभु को मिलकर उसमें लीन हो जायेगा।

भौतिकता से नैतिकता तक

'प्रभु ! वेद में तो केवल वृत्रादि शत्रुओं का वध करने की या सोमपान आदि भौतिक कामनाओं की बातें ही आती हैं क्या ?' एक पढ़े भूत जैसे प्राध्यापक ने प्रश्न कर दिया। प्रभु तो दयालु हैं। और पृथ्वी पर वेद के बारे में प्रचलित निस्सार वादविवाद का निरसन करना ही आपका लक्ष्य है। अतः बहुत ही

शांति से जैसे ममतामयी माँ समझाये उसी प्रकार समझाने लगे। आपने कहा, 'देखो प्रोफेसर साहब ! आपने कभी सारे वेदों का ध्यान से पारायण किया है ?'

'नहीं प्रभु !' प्रोफेसर ने अपनी मर्यादा का स्वीकार कर लिया ।

'विश्वविद्यालयों में पढ़ने पढ़ानेवाले हमारे प्राध्यापक बन्धुओं की यह एक कठिनाई है कि जो कुछ हमारे विदेशी मित्र कह गये, वह पढ़ लिया, लेकिन जो हमारे आचार्यों ने कहा है उन विचारों के प्रति थोड़ी उपेक्षा रखते हैं ।'

'कैसे ?'

'आप ही बतायें। आपने सायण, माधव, स्कन्द, दयानन्द आदि भारतीय विद्वानों के भाष्य पूरे ध्यान से पढ़े हैं ?'

"नहीं जी ।"

'आप लोग व्हिटनी, रोथ, ब्लूमफिलड या मेकसमूलर के मत रट लेकर उसकी बातें या चर्चा विचारणा करते हैं, तो सायण, माधव, महीधर-उवट या मध्वाचार्य-दयानन्द आदि के मतों की सर्वथा उपेक्षा क्यों ? कमसे कम यह भी एक मत है, ऐसा मानकर इसे पढ़ो और पढ़ाओ। ठीक है न ?'

'जी, महाराज !'

'और तो जाने दो, हमारे वेद के ही ऋषियों ने उदात्त भावों का जो दर्शन किया है उसे जानने की भी कोशिश करनी चाहिये ।'

'करनी तो चाहिये', प्रोफेसर बोले ।

देखो, जीवन के भौतिक पदार्थों से प्रारंभ करके ब्रह्मज्ञान तक की कामना ऋग्वेद का ऋषि करता है। और वह भी केवल एक ही सूक्त में आपको मिलेगी ।

'कहाँ पर प्रभु ?' प्रोफेसर ने जिज्ञासा व्यक्त की ।

'ऋग्वेद के दशम मण्डल में १२८ वाँ सूक्त है। वहाँ ऋषि का दर्शन अति अद्भुत है ।

(१) मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः—(मं. १) मुझे चारों दिशा याने उसमें रहनेवाले लोग प्रणाम करें ।

(२) ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु—(मं. २) मेरे लिये अन्तरिक्ष उरुलोकम् अत्यंत प्रकाशमय बनो ।

(३) मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन्—(मं २) मेरी कामना इच्छानुसार पवन चले ।

(४) **मय्याशारस्तु**—(मं. ३) मुझे आशीर्वाद प्राप्त हो।

(५) **आकुतिः सत्या लनसो मे अस्तु** (मं. ४) मेरे मन के संकल्प सत्य हो, सिद्ध हो।

(६) **विश्वे दिवासो अधि वोचता नः** (मं. ४)—सर्व देव वादविवाद में मेरे पक्ष में ही बोलें।

(७) **अमा पषां चितं प्रबुधां वि नेशत्**—(मं. ६) हमारे प्रबुद्ध होते हुए शत्रुओं के चित्त याने ज्ञान–साधन रूप मन का सहसा नाश हो।

(८) **ये नः सपत्ना अप ते भवन्तु**—(मं. ९) हमारे जो शत्रु हैं, वह दूर दूर चले जायँ।

(९) **उपरिस्पृशं मोग्रं चेतारमधिराजमक्रन्**—(मं. ९) मुझे सर्वोत्तम पद को प्राप्त करनेवाला याने ईश्वर या ब्रह्मपद को प्राप्त करनेवाला बनावें और उग्रबल याने ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बना दें।

'आप तो विद्वान हैं प्रोफेसर साहब!' गुरुदेव ने कहा, 'अतः इन सबका विशेष विवेचन आवश्यक नहीं। फिर भी हमारी वैदिक संस्कृति की जिन विशेषताओं का यहाँ पर निहित अंगुलिनिर्देश करना चाहता हूँ।'

'प्रभु! हम पर उपकार होगा' प्रोफेसर बोले।

तो नोट कर लीजिये। पहला तो यहाँ ऋषि के दर्शन में जो आत्मगौरव की झाँकी होती है, वह व्यास, जयदेव श्रीहर्ष या पंडितराज जगन्नाथ जैसी है। दूसरा यहाँ कहीं भी शत्रुओं के भौतिक नाश की आकांक्षा नहीं है। शत्रु के ज्ञान–साधन नष्ट हो जायँ। हम उसे जीत कर जिन्दा छोड़ देंगे। या हमारे शत्रु दूर चले जायँ। ऐसा कहा है, वहाँ आंतरिक शत्रु काम, क्रोध, मोह आदि की बात है, यह नहीं भूलना चाहिये।

ऋषि हृदय की अन्तिम इच्छा तो ईश्वर प्राप्ति या ब्रह्मपद की आकांक्षा है। उसके लिए उग्र बलरूप ज्ञान की तमन्ना है। ज्ञान ही तो शक्ति है। (**ज्ञानमेव शक्तिः**) जो संसार में सुखरूप जीने के साधनों को संपादित करती है और अन्त में मनुष्य को सर्वोत्तम ब्रह्मपद तक पहुँचाती है। ब्रह्म भी आखिर में ज्ञानमय ही है। प्रज्ञानं ब्रह्म। अब आपकी समझ में आया होगा कि वेद में केवल भौतिक सुख चैन की ही कामनायें नहीं हैं। वहाँ तो ऐहिक सुख एवं पारलौकिक निःश्रेयस मुक्ति की भी कामना है।

'जी महाराज!' कहकर स्वीकार करके प्रणाम पूर्वक प्रोफेसर ने प्रभु से विदा ली।

ता. २६ अगस्त को आप झूलेलाल के उत्सव में पधारे एवं प्रवचन किया। श्री हसु तथा प्रहलाद आडवानी आदि उपस्थित थे। उस दिन जन्माष्टमी का शुभ दिन था, अतः प्रतिवर्ष के क्रमानुसार तुलसी निवास में संतों का सत्संग, कीर्तन, पूजन हुआ। रात्रि के कृष्ण जन्म के बाद आरति एवं प्रसाद वितरण के पश्चात् उत्सव समाप्त हुआ।

इस अवसर पर प्रभु ने भक्ति में अद्वैत भावना का प्रतिपादन किया।

स्वस्वरूपानुसंधान भक्ति है।

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते॥

ज्ञान, कर्म एवं भक्ति यह जो मोक्ष के साधन बताये गये हैं, उनमें भक्ति उत्तम है। अन्य दोनों की अपेक्षा भक्ति सरल भी है, सहज भी। भाव तो प्रत्येक मानव के जीवन में होते ही हैं। मानवमात्र का हृदयसागर सदैव भावों की तरंगों से भरा हुआ है। उसमें शोक, मोह, हर्ष या आनन्द की लहरें उठती रहती हैं। इन्हीं भावों को प्रभुमय बनाया जाय तो बन्ध के हेतु भाव सहसा मुक्ति का कारण भक्ति बन जाता है। ये ही काम, क्रोध, मोह इत्यादि मानव जीवन के शत्रु यदि भक्ति के अंग बन जायँ तो मुक्ति के हेतु हो जाते हैं। लेकिन मुक्ति की साधिका भक्ति कैसी होनी चाहिये? ऊपर ही बताया गया है कि **स्वस्वरूपानुसंधानम्**—अपने आत्मस्वरूप का अनुसंधान ही सच्ची भक्ति है।

हम पूजा पाठ करते हैं। मंदिर में जाते हैं और पुष्पहार चढ़ाते हैं। तीर्थयात्रा करते हैं। संतों की सेवा और अतिथि सत्कार भी करते हैं। ये सब तो सच्ची भक्ति की प्राप्ति के लिये चित्त को शुद्ध करने की प्रक्रियाएं हैं। ऐसे अनेक सत्कर्मों से हमारे मन का मल धोकर साफ हो जाता है। बाद में भक्ति या स्वरूपानुसंधान के योग्य साधक बनता है। और एक बार यह पराभक्ति—'सोऽहम्' इस प्रकार की भक्ति प्राप्त हो जाय तो हमारा बेड़ा पार लग जाता है।

ता. २८ अगस्त को श्रीमती पुष्पाबहन देवप्रकाश महेरा की ओर से वेदपारायण प्रारंभ हुआ जो ता. ३ सितम्बर को पूर्ण हुआ।

श्रीलंका में

भगवान् वेद पारायण की हारमाला एवं जन्माष्टमी का उत्सव पूर्ण कर, आप ता. ५ सितम्बर को श्रीलंका, श्री चतुर्भुज के वहाँ पधारे। एरोड्रोम पर आप के स्वागत के लिये भगवानदास मुनि, चतुर्भुज, गोविंदराम आदि सज्जन उपस्थित

थे। आपके साथ स्वामी ब्रह्मदेवजी शांतानंदजी, गोविंदानंदजी, संतदेव, श्रीविष्णु शर्मा, सुवर्णा तथा कमलबहन थे। श्रीचतुर्भुज ने श्रीलंका का कार्यक्रम आयोजित कर रखा था। सबके निवास खान-पानादि की सुव्यवस्था उन्होंने कर रखी थी।

दूसरे दिन ता. ६ सितम्बर को सायंकाल वहाँ के सिंधी क्लब कोम्युनिटी हॉल में आपका सत्संग शुरू हुआ। ता. ७ को चतुर्भुजभाई के घर पर वेदपारायण प्रारंभ कर दिया। ता. ८ सितम्बर को सिंधी कोम्युनिटी के हॉल में, तीन दिन के लिये रामायण प्रारम्भ किया, एवं ता. १० को समाप्त किया। ता. ११ सितंबर को भगवान् श्रीचंद्र की प्रतिमा पंचामृत से स्नान-पूजन, आरति तथा रोट-प्रसाद का भोग लगाया। उस दिन आचार्य श्री का प्राकट्य भाद्रपद शुक्ला नवमी का दिन था। उसी मंगल अवसर पर सिंधी हॉल में **भगवान् वेद** ग्रंथ की स्थापना पूजन आरति, यज्ञ तथा ब्रह्म भोजन सम्पन्न हुआ। भगवान् वेद साक्षात् सूर्य, अग्नि आदि तो हैं ही, श्रीकृष्ण के मुख से उनका प्राकट्य भी है एवं जगद्गुरु आचार्य श्रीचंद्र के शिवस्वरूप में भी वे विद्यमान् हैं। वेद-सूर्य-चंद्र (सतगुरु) शंकर तथा श्रीकृष्ण, पाँचों देव का एकीकरण है। सबको अपने गुणानुसार भी समन्वय किया जा सकता है, **सूर्य**=प्रकाश, अग्नि, **चंद्र**=सौंदर्य, शीतलता, **शंकर**= शं+कर, जोवों का कल्याण करनेवाले या परम ज्ञानी, **श्रीकृष्ण**=सत्यं शिवं सुंदरम् या सच्चिदानंद स्वरूप इन सबका देदीप्यमान साक्षात् विग्रह है **भगवान् वेद**। और जो इस वेद या ईश्वर से अपना नाता जोड़ लेता है, उसका कभी भी नाश नहीं होता है। वेद में ही कहा है—

न रिष्येत् त्वावतः सखा।

हे प्रभो तेरे संबंधी का कभी नाश नहीं होता है। पूरा मंत्र इस प्रकार है—

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन् अघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा॥

—ऋ. वे. १-९१-८

सोम-हे सोमदेव! **राजन्**-हे राजन्! **त्वं**-आप **नः**-हमारी **अघायतः**-पापियों से, पाप से प्यार करनेवालों से **विश्वतः**-चारों तरफ से **रक्ष**-रक्षा करें। **त्वावतः सखा**-आप जैसे से संबंध रखनेवाले का **न रिष्येत्**-कभी नाश नहीं होता है।

यहाँ प्रथम दो चरणों में सोमदेव से प्रार्थना है, कि हे प्रभो! आप हमें पापियों से बचाओ। और अन्तिम चरण में एक वैदान्तिक प्रतिपादन है कि जो मनुष्य ईश्वर का सखा है याने प्रभु से संबंध जोड़ लेता है, उसका कभी नाश नहीं होता है।

जीव संसार के चक्कर में आकर अपने को भूल गया है। जन्ममरण के जाल से मुक्त होने का सरल उपाय है मेरे प्रभु से संबंध बाँधना। गोपियाँ या मीरां ने प्रभु से मधुरभाव का संबंध किया और कृतकृत्य हो गईं। माता यशोदा ने वात्सल्य से नाता जोड़ा और प्रभु समग्र विश्व के कर्ता, हर्ता, भर्ता, माता यशोदा की गोद में खेलने लगा। समस्त संसार का सूत्रधार सर्वेश्वर अब जब माँ जो खिलौना दे उससे खेले और माँ यदि खिलौना हाथ से छीन ले तो चूप करके बैठ जाय। क्या प्रभु की लीला है। यहाँ वात्सल्यमय रिश्ता काम कर गया। अर्जुन ने सख्यभाव से प्रभु का साथ किया और मेरे प्रभु मित्रतावश सारथी बन बैठे। बलि महाराज ने आत्मसमर्पण किया और प्रभु द्वारपाल बन गये। कहने का भाव है मधुर, सख्य, दास्य, वात्सल्य या किसी भी भाव से प्रभु से संबन्ध जोड़ लो, तो प्रभु सब कुछ संभाल लेगा। अरे, यदि द्वेष से, शत्रु भाव से भी प्रभुमय बनोगे तो कंस–शिशुपाल या रावण–कुंभकर्ण की भाँति प्रभु सामने आकर खड़े रह जायेंगे।

अतः हम प्रभु से एक बार संबंध बाँधना सीख जायँ, फिर तो प्रभु हमारा उद्धार अवश्य करेगा। यहाँ वेद भगवान स्पष्ट कह रहें है–**न रिष्येत् त्वावत सखा**–आप जैसे से संबन्ध रखनेवाले का कभी नाश नहीं होता है। गीता माता ने भी यही घोषणा की है—

नहि कल्याणकृत्कश्चित्
दुर्गतिं तात गच्छति।

—श्रीमद् भगवद् गीता ६–४०

कल्याणमय कर्म करनेवाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है। और प्रभु से संबंध जोड़ने से अधिक कौन सा कल्याणमय कर्म हो सकता है?

ता. १३ सितम्बर को सिंधी हॉल में शंकर, गणपति, हनुमानजी, दुर्गादेवी तथा जगद्गुरु श्री चन्द्र महाराज का पूजन किया गया एवं पंचदेव यज्ञ प्रारम्भ किया गया एवं दूसरे दिन अनंतचतुर्दशी को धूमधाम से इस यज्ञ की पूर्णाहुति की गई।

ता. १६ सितम्बर को, श्री चमुर्भुज के निवास–स्थान में रात्रि को कीर्तन, गीताजी का पारायण, एवं ब्रह्मलीन बाबा तपस्वी पूरणदासजी की धूनि का पूजन और हवन हुआ।

ता. १७ को श्री चतुर्भुज के घर में वेद–पारायण की समाप्ति के पश्चात् आरति–प्रसाद एवं प्रीतिभोजन हुआ। दूसरे दिन वहाँ के रामकृष्ण मिशन में तीन

वेद-ग्रंथों की स्थापना आपके वरद हस्तों से हुई। (१) रामकृष्ण मिशन में (२) थीरुकेथीस्वरम् मंदिर में (३) समस्त सिलोन–हिंदू कोंग्रेस में। प्रभु ने यहाँ पर 'काल' के बारे में मननीय बातें बतलाई थीं, जो इस प्रकार थीं—

कालो अश्वो वहति अर्थात् समय का घोड़ा चलता ही है।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः,
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितः
तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

—अथर्व. १९–५३–१

सप्तरश्मिः–सात रस्सियोंवाला, **सहस्राक्षः**–हजारों धुरोंवाला, **अजरः**–कभी जीर्ण याने बुड्ढ़ा न होनेवाला, **भूरिरेताः**–महान बलशाली, **कालः अश्वः**–समय का घोडा, कालरूपी अश्व, **वहति**–चलता है, सदैव चलता रहता है, कभी भी रुकता नहीं है, **विश्वा**–समस्त, **भुवनानि**–विश्वों को, सातों भुवनों को, **तस्य**–उनके, समय के घोड़े के, **चक्राः**–चक्र हैं, **तम्**–उस समय के घोड़े पर, **विपश्चितः**–ज्ञानी, विद्वान और, **कवयः**-क्रान्तदर्शी लोग, **आरोहन्ति**–सवार होते हैं।

कई लोग जीवन में कार्य करते समय 'कल करेंगे', 'अभी क्या जल्दी है,' 'बहुत समय है', इस प्रकार सोचते रहते हैं और कार्य में विलम्ब करते हैं। कई व्यक्ति अपना प्रारब्ध (अपने द्वारा आरंभ किया हुआ) कार्य अपूर्णतया करके बाकी का फिर करेंगे, ऐसा सोचते रहते हैं। कभी–कभी युक्ति भी दे देते हैं कि कन्या का ब्याह कर दो, गहने फिर बन जायेंगे। लेकिन यह ठीक नहीं है। गहने तो दहेज में ही देना चाहिये अन्यथा उसकी शोभा नहीं रहती है। एक सुभाषित में क्या ही सुन्दर कहा गया है—

करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तया।
मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम्॥

मैं करूँगा, मैं करूँगा, मैं करूँगा इस प्रकार सोचते रहने से मैं मरूँगा, मरूँगा, मरूँगा ही, इस निश्चित बात को मनुष्य भूल जाता है। कहने का भाव है कि यह मैं कल करूँगा इस प्रकार का प्रमाद हम करते रहते हैं और एक दिन काल के ग्रास हो जाते हैं। अतः जो भी करना हो वह आज करो, अभी करो। क्षण का भी प्रमाद मत करो। प्रमाद तो मृत्यु है।

संत कबीर ने भी कहा है—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परलै होइगी, बहुरि करेगा कब ॥

वेद भगवान ने काल का महिमा गान रमणीय काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है । **भगवान वेद** काल को अश्वः बताते हैं । **कालः अश्वः**—समय का यह एक घोड़ा है । और वह **वहति**—चलता ही रहता है । वह कभी किसी के भी लिये एक क्षण तक भी नहीं रुका है, न रुकनेवाला है । और समय का यह घोड़ा विचित्र भी है । अन्य घोड़े को तो एक रश्मि होती है । इसको तो सात, सात रश्मियाँ हैं । रश्मि शब्द से यहाँ रवि, सोम इत्यादि सात वार ले सकते हैं । अथवा सात का महिमा तो वेद में अपार है । सात शब्द से आप सातों भुवन, सात प्रकार की सृष्टि, सात भूमियाँ, सात धातु या सात प्रकार के ज्ञान का निर्देश भी समझ सकते हैं । कोई कहे कि समय का घोड़ा कभी बूढ़ा हो जायेगा तो उसकी गति मन्द पड़ जायेगी, या शक्ति क्षीण हो जायेगी । लेकिन **भगवान् वेद** कहते हैं कि यह कालरूपी अश्व अजर है—जीर्ण होनेवाला नहीं है और **भूरिरेताः**—अर्थात् महा बलवान है । इसके आगे सभी झुके हैं, यह कभी झुकने वाला नहीं है । यह काल का अश्व समग्र विश्व के चक्र को घुमाता है । समय ही समस्त संसार को प्रेरणा देता है और संसार का चक्र चलता ही रहा है, चलता ही रहता है और चलता ही रहेगा ।

अरे भाई घोड़ा है तो फिर कोई उसपर सवारी करनेवाला भी तो होगा ? इस विषय में **भगवान् वेद** की क्या राय है ? तो यह भी बता दें । जो विपश्चित याने विद्वान् हैं और कवयः याने क्रान्तदर्शी हैं, वे इस घोड़े पर सवार होते हैं । जो मनुष्य इस कालरूपी घोड़े की गतिविधियाँ जान लेता है, वह काल के फंदे में नहीं फँसता है । वह काल के चक्र में आकर न आलसी बनता है, न प्रमादी । काल तो लोकक्षय करने में जुटा हुआ है । संसार के सभी स्थावर-जंगम पदार्थ प्रतिक्षण काल के वश में होकर विनाश के गर्त में धकेल दिये जाते हैं । गीता माता ने क्या ही सुन्दर शब्दों में काल के प्रभाव का वर्णन किया है । भगवान कहते हैं—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः । —गीता. ११–३२

मैं लोगों को क्षय करने को प्रवृत्त हुआ काल हूँ । यह काल का सच्चा स्वरूप है । और जो विद्वान उसे ठीक तरह जान लेता है, वह इसके चक्कर में नहीं आता । जो कवि हैं याने क्रान्तदर्शी हैं, [illegible] जो मनुष्य वेद के ऋषियों की

तरह भूत, भविष्य एवं वर्तमान को ठीक तरह से जानता है, वह काल के घोड़े पर सवार हो जाता है अर्थात् उसका नाम एवं कार्य काल के गर्त में विलुप्त नहीं होता है, लेकिन कालातीत हो जाता है, अजर एवं अमर हो जाता है। अतः काल के रहस्य को समझकर हमें भी अपने मन एवं कर्म पर पड़े हुए आलस्य तथा प्रमाद को तिलांजलि देकर अपना कार्य यथावकाश सद्य करना चाहिये।

केन्डो में

लंका का इतना कार्यक्रम समाप्त कर ता. २० सितम्बर को आप केन्डी गये। जहाँ बौद्ध-मठों की मुलाकात की। वहाँ से न्युरेलिया गये एवं मुनि के बँगले में ठहरे। वहाँ के ऐतिहासिक एवं धार्मिक-स्थानों, अशोक-वाटिका, सीता मंदिर, सीताकुंड, भगवान् राम के ठहरने का स्थान, रावण का जहाँ महल था वह स्थान आदि देखे। सती सीता का राक्षस रावण द्वारा अपहरण से लेकर, रावण के वध तक की रामायण के इतिहास की यह भूमि है। आज भी ऐसे विचित्र घटनात्मक स्थानों का प्रवास, हमारी आँखों के सामने, भूतकाल की इन करुण गाथाओं का चित्रपट खड़ा कर देता है। मन में ग्लानि-सी छा जाती है।

सीता की शालीनता

सीता के चरित्र में रही हुई नम्रता एवं शालीनता का बोधक एक अल्प-प्रसिद्ध प्रसंग प्रभु ने यहाँ पर बताया। रामचन्द्र भगवान ने रावण का सकुटुम्ब एवं सदलबल संहार किया। सीता की अग्नि-परीक्षा हुई। माता सीता अग्निदेव द्वारा पवित्र उद्घोषित की गई। प्रभु ने लोकशिक्षणार्थ यह लीला की थी। अन्यथा स्वयं तो जानते ही थे कि सीता देवी सर्वथा निष्पाप है। आप सीता, लक्ष्मण एवं सुग्रीवादि वानर तथा विभीषणादि राक्षस मित्रों के साथ पुष्पक विमान में बैठकर लंका से अयोध्या पधारे।

आप आज चौदह-चौदह वर्ष के बाद पधारनेवाले थे, यह जानकर अयोध्या नगर के सारे नर-नारी, समस्त मंत्रीमंडल एवं माता कौशल्या तथा सुमित्रा राम का स्वागत करने नगर के बाहर आकर खड़े रह गये। राम एवं लक्ष्मण ने विमान से उतर कर माताओं के चरण छुए। पश्चात् सीता देवी ने अपनी दोनों सास को प्रणाम करते हुए कहा कि, 'मैं अवगुणी एवं पति को कष्ट प्रदान करनेवाली हूँ।'

क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे॥

परम पूज्य सद्गुरुदेव भगवान परमानन्दस्वरूप परमप्रेम प्रदाता
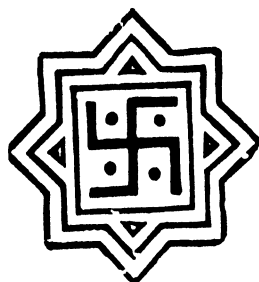
सोचने की बात है कि सीता माता की नम्रता कितनी महान है। स्वयं अपने–आपको अलक्षा–अवगुणी और पति के लिये कष्टदायिनी कहती है। वास्तव में तो सीता के सुवर्णसम निर्मल चरित्र के कारण ही राम अनेक उपाधियों को पार कर गये थे। यह था हमारा नम्रता एवं शालीनता का आदर्श। सीता ने जीवन में कहीं भी गर्व नहीं किया है।

वधू सीता जितनी उदारचरित थी, उतनी ही गुणज्ञ उनकी सास थी। दोनों सास ने सीता को प्रेम से उठाया और कहा भी कि बेटी! उठो, तुम्हारे पवित्र चरित्र के कारण ही राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ महान दुःख के सागर को पार कर सके हैं—

उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्ता शुचिना तवैव।
कृच्छ्रं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या॥

और यह बात जो कही गई, वह प्रिय भी थी एवं सत्य भी थी। अन्यथा जीवन में जो प्रिय बातें होती हैं, वह सत्य नहीं होतीं और जो सत्य होती हैं वह प्रिय नहीं होतीं।

पुनः लंका में

ता. २२ सितम्बर को आप पुनः लंका आ गये। ता. २४ को वहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध–मन्दिरों में गये। वहाँ स्वामी नारदानंद बौद्ध–संत से परिचय हुआ। आपने वहाँ प्रवचन भी किया तथा छोटे–छोटे बच्चों को प्रेमपूर्वक कुछ उपदेश दिया। ता. २५ सितम्बर को कमला बहन भगवान दास के घर पर श्री रामायण–पारायण प्रारम्भ हुआ एवं ता. २७ को पूर्ण हुआ। आपने रामायण के भिन्न–भिन्न पात्रों का चित्रालेखन करते, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, बंधु–बंधु के पारस्परिक सौहार्द–प्रेम, सेवा–भाव, आज्ञाकारिता, नम्रता आदि अनेक विशिष्ट गुणों की चर्चा की एवं बताया कि व्यक्ति से ही गृह, समाज, राष्ट्र बनता है, जैसे बूंद–बूंद से ही सरोवर भरता है। इसलिए हरेक व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने दोषों की ओर ध्यान देकर, उनको नष्ट कर सद्गुण–सम्पन्न होना चाहिये; अपने वेद उपनिषद, महाभारत, गीता, रामायण आदि जितने भी सनातन–धर्म–ग्रंथ हैं, वे सब मानव जाति के सुधार तथा उद्धारार्थ ही हैं। यह वेद–ग्रंथ जिसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा हो रही है वह इसी महान उद्देश्य से है कि आज सर्वत्र विश्व में जो आधिदैविक एवं आधिभौतिक कठिनाइयों की घन घटा छाई है, उसके अंधकार में, प्राणि पथ से

भूला–भटका रहा है, कृपालु भगवान् वेद–सूर्य, अपने उज्जवल ज्ञान प्रकाश से अज्ञान तिमिर को छिन्न–भिन्न कर, मानव–मात्र को अनंत सुख–शान्ति एवं आनंद प्रदान करने प्रगट हुए हैं। जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार में छिपे हुए सब चोर लुटेरे भाग जाते हैं, भगवान् वेद भास्कर के प्राकट्य से, उनकी दिव्य पावन बोध–चन्द्रिका, समस्त विश्व को सौंदर्य–शीतलता एवं अमृत रस का पान करा कर संतुष्ट, पुष्ट तथा तृप्त करेगी। भगवान्–वेद के दर्शन मात्र से ही हमारे सारे पाप–ताप का शमन होकर, सद्बुद्धि प्राप्त होती है। अतः आप उसका नित्य भाव से पूजन–दर्शन कर कृतार्थ होइये।

ता. २८ को चतुर्भुज भाई के घर पर सायंकाल एग्रिकल्चरल मिनिस्टर आपके दर्शनार्थ आये। उनके साथ सीता माता के मन्दिर के पुनरुद्धार की चर्चा की। ता. २९ सितम्बर को भारतीय हाई कमिश्नर श्री थामेस ईब्राहीम के सानिध्य में, भारतीय दूतावास में, आपके कर कमल से भगवान वेद प्रतिष्ठित हुए। ता. ३० को, श्री चतुर्भुज के घर पर, श्री रामायण का अखंड पाठ शुरू हुआ एवं दूसरे दिन पूर्णाहुति हुई। २ अक्टूबर को गाँधी जयंती थी। कुंदनमल जी की फेक्टरी में आप पधारे। पश्चात् श्री भगवानदासजी के प्लोट पर पदार्पण किया, जहाँ वे अपनी फेक्टरी लगाना चाहते थे। ता. ४ अक्टूबर को सिंधी एसोसिएशन द्वारा सिंधी कम्युनिटी होल में आपको मानपत्र दिया गया। ता. ६ अक्टूबर को श्रीलंका के शिक्षा–मंत्री श्री विजयरत्न निशङ्क को भगवान् वेद–ग्रंथ बौद्ध विश्वविद्यालय के लिये आपने दिया। श्रीलंका के निवास दरम्यान किसी भक्त से एक महत्त्व की चर्चा हुई, जो निम्नदर्शित है—

अमरता वित्त से नहीं

एक बार किसी श्रद्धालु भक्त ने प्रश्न किया, 'हे प्रभु ! आपके तो हजारों सेवक हैं। और कई मोटर–गाड़ीवाले रईस हजारों रुपये का दान करते हैं। अतः ये धनी लोग तो गुरु कृपा से प्रभु को प्राप्त कर लेंगे, लेकिन हम जैसे निर्धनों की मुक्ति कैसे होगी ?'

प्रश्न सुनकर गुरुदेव हँस पड़े। कहने लगे, 'भाई' ! ऐसा ही होता कि धन से प्रभु प्राप्त हो जाय और निर्धन नरक में ही जाय तो हमारे वेदमन्त्रों के द्रष्टा ऋषि यह बात अवश्य कहीं न कहीं कहते जाते। न वे स्वयं धनिक थे, न तो उन्होंने धन से ही ईश्वर प्राप्ति होती है, ऐसा कोई विधान किया है। बल्कि **'त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** कहकर त्याग का महिमा गान किया है। मैं आपको इस विषय में प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ।

'जो आज्ञा, महाराज !' भक्त ने कहा।

'उपनिषद के समय में याज्ञवल्क्य नाम के महान तत्त्ववेत्ता हो गये। उनका नाम तो आपने सुना होगा।' गुरुदेव ने बीच में ही प्रश्न किया।

'जी महाराज सुना है, वे राजा जनक के दरबार में थे।' भक्त ने अपनी जानकारी प्रकट की।

'हां तो **याज्ञवल्क्य** को दो पत्नियाँ थीं।' प्रभु ने आगे इतिहास सुनाना आरंभ किया, 'एक का नाम था **कात्यायनी** और दूसरी का नाम था **मैत्रेयी**। याज्ञवल्क्य का राजा जनक हमेशा बहुमान करता था। उसने इस महर्षि को धन-धान्य, गौ, जमीन इत्यादि का पर्याप्त मात्रा में दान दिया था। एक समय ऋषि ने अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर सारे धन का बँटवारा कर दिया। और स्वयं निवृत्ति मार्ग का स्वीकार करेंगे, ऐसी इच्छा प्रकट की।

'फिर क्या हुआ, भगवन्' भक्त ने कौतुकवश पूछा।

'फिर जो हुआ वह ध्यान देने की बात है।' प्रभु बोले, 'जैसे ही मैत्रेयी ने अपने पतिदेव की यह बात सुनी तो वह कहने लगी—

यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति।

—बृ. उप. २-४-२६

हे पतिदेव ! धन सम्पत्ति से भरी हुई सारी पृथ्वी भी मुझे प्राप्त हो जाय, तो क्या मैं अमर बन जाऊँगी ? अर्थात मैं संसार से मुक्त हो जाऊगी ?

'याज्ञवल्क्यजी ने क्या कहा ?' भक्त ने जिज्ञासा की।

याज्ञवल्क्यजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि नहीं, आप अमर नहीं हो सकती हो। आगे कहा कि—

यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवित स्याद्।
अमृतत्वस्य तु न आशा अस्ति वित्तेनेति॥

—बृ. उप. २-४-२

जिस प्रकार अन्य साधन सम्पन्न मनुष्यों के जीवन का नाश होता है, वे अमर नहीं होते हैं, उसी प्रकार तेरा जीवन भी नाशवंत हो जायेगा। धन से अमरता प्राप्त होने की कोई आशा नहीं है। अर्थात् धन द्वारा अमरता याने मुक्ति को आप कभी नहीं खरीद पायेंगे। धन से न मुक्ति मिलेगी, संपत्ति से न कभी अमरता सिद्ध होगी, पैसे से न कभी प्रभु प्राप्त होंगे। यह तो हमारा भ्रम है कि पैसा ही सब कुछ कर सकता है। अरे भाई कभी-कभी तो ऐसा भी

देखा है कि पैसे बढ़ने से उपाधियाँ बढ़ती हैं, स्वस्थता, चिन्ता, रोग इत्यादि भी धनिक के जोवन में सागर में बाढ़ को तरह बढ़ जाते हैं।

'तो क्या धन नहीं कमाना चाहिये ?' भोले भाव से भक्त ने पूछ लिया।

प्रभु अधिक स्वस्थता से कहने लगे, 'बेटा ऐसा नहीं कि मनुष्य को आलसी बनकर कुछ भी नहीं करना चाहिये। उद्यम करें, कमाय भी, जीवन में निर्वाह के लिये यह आवश्यक भी है, लेकिन लोभ न करें, और केवल धन एवं धन से सुलभ विषयों में न फँस जाय। '**त्यक्तेन भुञ्जीथाः**' का यही उद्देश है। गीता का कर्मयोग भी यही सिखाता है कि आसक्ति रहित होकर सब कार्य करें।'

एक स्थान पर आपने **भगवान् वेद** के मंत्र के सहारे बताया कि जो प्रमादी है उसे तो देव शिक्षा करते हैं। यह पूरी बात निम्नदर्शित है।

यन्ति प्रमादं अतन्द्राः

आलस्यरहित देव प्रमादी का नियमन करते हैं।

आज प्रसंगवशात् प्रभु ने प्रमाद के विषय में **भगवान् वेद** की अमृतवाणी का पान कराया। आपके मुख से वेद मन्त्र गंगाधारा की तरह मानवमात्र को पावन करने के हेतु बहने लगा—

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादं अतन्द्राः॥

—ऋ. वे. ८–२–१८, अथर्व २०–१८–३

देवाः–देवतागण, **सुन्वन्तम्**–यज्ञ के लिये सोमरस का संपादन करने वाले की, अर्थात् सतत् कर्म करनेवाले मनुष्य को **इच्छन्ति**–कामना करते हैं **स्वप्नाय**–सोते हुए मनुष्य को, आलसी मानव की **न स्पृहयन्ति**–इच्छा नहीं करते हैं, आलसी से प्यार नहीं करते हैं। **प्रमादम्**–प्रमाद अर्थात् प्रमाद करनेवाले मनुष्य का **अतन्द्राः**–प्रमादरहित, आलस्य या तन्द्ररहित देवता **यन्ति**–नियमन करते हैं। उसे वश करते हैं या शिक्षा देते हैं।

जो मनुष्य यज्ञ में सोम का संपादन करता है, उसे देवता भी चाहते हैं। यहाँ सोमसंपादन क्रिया एक उपलक्षण है। इससे उद्यमी मनुष्य की ओर संकेत है। सोम को प्राप्ति के लिये भी सतत प्रयत्न अपेक्षित है। पर्वत पर जाना, सोमवल्ली लाना, साफ करना, पीसना, रस निकालना इन सभी कार्यों में प्रयत्न ही पूर्वशर्त है। और जीवन में भी जो व्यक्ति हमेश उद्यमी रहता है, उसी पुरुष को लक्ष्मी भी वरण करती है। वेद भगवान अन्यत्र स्पष्ट करते हैं कि **नानाश्रान्ताय**

श्रीरस्ति–ऐ. ब्रा. ७–३३ जो व्यक्ति **नाना**–अनेक प्रकार के उद्यम करते करते **श्रान्ताय**–थक जाता है उसे **श्री**–लक्ष्मी प्राप्त होती है । अतः **परिश्रम की पगदंडी पर पदार्पण किये बिना सिद्धि का शिखर कभी भी सुलभ नहीं होता है ।**

जो जीवन में सोता रहता है, उसकी कामना देवता कभी नहीं करते हैं । **'जो सोवत हैं वो खोवत हैं ।'** जीवन केवल सोने के लिये आलस्य की पुष्टि के लिये तो नहीं है । अन्यत्र वेद में क्या ही सुन्दर उपदेश है कि—

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठत ।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः ॥

ऐ. ब्रा.

जो बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठता है । जो उठकर **खड़ा** रहता है उसका भाग्य खड़ा रहता है । जो सोता है उसका भाग्य सोता है और जो घूमता फिरता है, उसका भाग्य भी घूमता रहता है ।

आप यदि जहाँ है, वहाँ से आगे बढ़ना **ही** नहीं चाहते हो, तो बस 'वहीं खड़े रहो या सोते रहो । लेकिन याद रखें कि **न स्वप्नाय स्पृहयन्ति देवाः**– जो सोता रहता है उसकी कामना देवतागण अत्युदार होते हुए भी नहीं करते हैं ।

वास्तव में देवता स्वयं **अतन्द्राः**–सर्वथा आलस्यरहित होते हैं । सूर्य ने कभी रविवार की छुट्टी माँगी ? वरुण देव या अग्निदेव मानों एक दो दिन छुट्टी पर उतर जायँ तो । सारा विश्व मृत्यु के मुख में चला जाय । **अहो रात्रे अप्रमादं क्षरन्ति** अथर्व, २२–१–९ । रातदिन भी प्रमादरहित होकर सतत चलते रहते हैं । यदि एक दिन २४ घण्टा तक हो रुक जाय तो ! क्या का क्या न हो जाय ? अतः देवता स्वयं आलस्य रहित हैं और अपने समान अपने भक्तों को प्रमाद का परित्याग करने का उपदेश अपने आचार से ही देते हैं ।

यहाँ **भगवान् वेद** जीवन में उपादेय बात भी बताते हैं कि **यन्ति प्रमादं अतन्द्राः** स्वयं अतन्द्रित याने प्रमाद रहित देवता प्रमादी मनुष्य का नियमन करते हैं । कभी–कभी तो प्रभु प्रमादी **को कड़ो से कड़ी** शिक्षा भी देता है ।

प्रभु का यह उपदेश पढ़ने–सुनने वालों को मेरी तरह प्रभु जीवन के प्रति आदरपूर्वक दृष्टिपात करने को अवश्य लालायित करेगा । आपने ९० साल की आयु के बाद **'भगवान् वेद'** का आविर्भाव कराया । ९४ के बाद विश्व यात्रा की । ९६ के बाद वेदों के अनुवाद एवं ९९ के वाद अथर्व वेद के मंत्रों के संस्कृत भाष्य का भगीरथ कार्य संपादन किया । सचमुच १०० साल के बाद यह

उषादेवता की भाँति नित्य नूतन प्रकाश देनेवाले गुरुवर्य हम सब को केवल अपने जीवन से ही आलस्यहीन होने का—प्रमाद का परित्याग करने का उपदेश दे रहे हैं। वेद का उपदेश स्वयं वेदमूर्तिरूप गुरुदेव अपने जीवन में ही मूर्तिमन्त करके हमें दिखाते हैं।

श्री लंका से विदाय

श्री लंका का पूरे ३४ दिन के प्रवास के पश्चात आप प्लेन से बम्बई पधारे। आने के पहले आपने प्रवचन कर, वहाँ के प्रेमी—भक्तों को आशीर्वाद देकर विदा ली। सर्वत्र आपका स्वागत करना तो अति आनंद प्रदायक होता है, परंतु विदा होते समय सब मुरझा जाते हैं। सचमुच ईश्वर की माया अनिर्वचनीय ही है। किसी से प्रेम न करना ही अच्छा है, रोना सिसकना तो नहीं पड़े। परंतु इसके बिना रहा भी तो कहाँ जाता है? मैं तो प्रभु से पूछ लेती हूँ कि गुरुदेव! आपको अपने भक्त प्रेमियों को छोड़ जाने में लवमात्र भी दुःख—ग्लानि नहीं होती। यद्यपि जानती भी हूँ कि यह संसार चैतन्य—विलास ही है, पूर्ण अद्वैत ही है, फिर भी आप इतने कोमल हृदय होते कुछ लगता नहीं। आप कभी तो मुस्करा देते और कभी कहते कि बेटी तुम इतनी विवेकिनी होकर भी यह प्रश्न पूछ रही हो। यह समस्त संसार मेरे प्यारे बाँके बिहारी का ही तो चिद्विलास है, वे ही **एकोऽहं बहुस्याम्** के संकल्प द्वारा, नित्य नूतन रूप धारण कर अपनी दिव्य—लीला करता रहता है। यहाँ मैं—तू का अस्तित्व ही नहीं, तो तुम्हारे प्रश्न का क्या प्रयुत्तर दूँ। मैं सोचती हूँ कि मैं भी यदि आप जैसी पूर्ण ज्ञानसंपन्न होती तो मुझे भी किसी के मिलन—विरह का हर्ष—शोक न रहता। संसार—व्यवहार से तो मुक्त हूँ, परंतु आपका विरह दुःखदायी होता है। अस्तु।

> **स वा इदं विश्वममोघलीलः**
> **सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन्।**
> **भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः**
> **षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः॥**
>
> —श्रीमद्भागवतम् १—३—३६

अर्थात् भगवान की लीला अमोघ है। वे अपनी ललित—लीला द्वारा ही सृष्टि का सृजन—पालन एवं संहार करते हैं, परंतु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियों के अंतःकरण में छिपे रहकर अंतर्यामि के रूप में उनके विषयों को ग्रहण भी करते हैं, अपितु उनसे अलग रहते हैं। वे परमतत्त्व ही हैं। ये विषय कदापि उनको लिप्त नहीं कर सकते।

श्री लंका का प्रवास पूरा कर, आप ता. ८ अक्टूबर को प्लेन से बम्बई पधारे। बहुत दिनों से तड़पन थी आपके दर्शन की।

बम्बई में पुनरागमन

ता. १५ अक्टूबर को श्री बालचंद पमनानी के पौत्र चि. सुरेश का विवाह श्री रामचंद राजपाल की पुत्री उषा के साथ, एवं श्री लछमनदास की सुपुत्री मधु का विवाह, इंद्राबहन नागपाल के सुपुत्र रामू के साथ, आपकी उपस्थिति में सुसंपन्न हुआ एवं आपने दोनों दंपति को आशीर्वाद दिया ।

दूसरे दिन बँगले में श्री बालचंदजी के पौत्र इंद्रेस, उमेश, महेश तथा मिथिलेश का यज्ञोपवित किया गया । ता. १७ को बँगले में **भगवान्–वेद** का पूजन–आरति दोनों नवपरिणित दंपति ने एवं चारों पौत्रों ने साथ मिलकर किया । मेघराज भवन तो एक मानव–मंदिर ही है । आज वर्षों से आपका यहाँ निवास, समस्त परिवार की पूर्ण श्रद्धा–भाव से सतत् सेवा, संतों की भी पूरी व्यवस्था, भागवत, रामायण वेद–पारायण, विविध हवन आदि अनेक पारमार्थिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त, आपके दर्शनार्थ आनेवाली जनता का भी समान रूप से सम्मान सत्कार होता चला आया है । इसका हार्दिक धन्यवाद एवं सुयश परम भक्त, उदार–चरित श्री बालचंद एवं मेरी 'अम्मा' केसरबाई को है । गृहस्थी में अगर आदर्श गृहिणी हो तो संसार में स्वर्ग ही उतर आता है । सुशील, शांत विवेकी, पति–परिवार–परायणा एवं मधुर भाषी नारी साक्षात् देवी ही होती है, जो अपने द्वारा समस्त परिवार को सुख–वैभव प्रदान करती उत्तम गति को प्राप्त कराती है ।

दिल्ली में दीपोत्सवी

ता. २० अक्टूबर को आप बम्बई कार्यक्रम पूरा कर देहली पधारे । ता. २४ को अखंड रामायण का पाठ प्रारंभ हुआ, एवं उसके सात पाठ ता. २९ को समाप्त हुए । ३० अक्टूबर को आश्रम में हनुमान जयंती मनाई । १०४ सुंदर कांड का पारायण तथा १०८ हनुमान चालिसा के पाठ के पश्चात् भोग–आरति प्रसाद वितरण हुआ । ३१ अक्टूबर को दीपोत्सवी एवं दूसरे दिन अन्नकूट का उत्सव धामधूम से मनाया गया ।

७. सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम ।

—अथर्व. ६-११७-३

नूतन वर्ष के आरम्भ में हम प्रभु से **भगवान् वेद** के वचनों में ही प्रार्थना करते हैं कि—**हम ऋण से मुक्त हो जायँ।**

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्
तृतीये लोके अनृणाः स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः
सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम॥

—अथर्व. ६-११७-३

हे अग्निदेव ! हे परमात्मा ! **अस्मिन्**—यह, **लोके**—लोक में, पृथ्वी लोक में, **अनृणाः**—ऋणरहित, **स्याम**—हम हो । **परस्मिन् लोके**—पर लोक में, स्वर्ग इत्यादि में देहत्याग के बाद, **अनृणाः**—हम ऋणरहित बनें । **तृतीय लोके**—स्वर्ग एवं पृथ्वी से भिन्न वैसे तृतीय लोक में, **अनृणाः स्याम**—हम ऋणरहित बनें । ये जो **देवयानाः**—देवयान से, देवमार्ग से, **च**—तथा, **पितृयाणाः**—पितृमार्ग से प्राप्त होनेवाले, **लोकाः**—लोक हैं, उसमें तथा अन्य, **सर्वान् पथः**—सभी मार्गों में, **अनृणाः**—ऋणरहित होकर, **आक्षियेम**—हम निवास करें या गमन करें ।

ऋषि-मुनियों ने वेदमंत्रों का दर्शन किया और ज्ञान का पूरा का पूरा हिमालय मानों हमारे सामने खड़ा कर दिया । इसी वेदरूपी हिमालय से भारत की पावन भूमि में ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, जिसमें मज्जन मात्र से मनुष्य पुनित होता है । इसी वेद-हिमालय से भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं इतिहास की त्रिवेणी का प्रारम्भ हुआ है । इस वेद को हम यदि भूल जायँ तो ! यह वेदमयी ज्ञान प्रकाश सुशोभित मशाल को हमें सदैव प्रज्वलित रखना है । हमारे ऋषियों ने जो हमें प्रदान किया है, उसको विशेष उज्ज्वल बनाकर भावि पीढ़ी को—आगामी युग को देना हमारा कर्तव्य है । अतः जो भी भारत में जन्म लेता है, उसपर यह ऋषियों का ऋण जन्म से ही चढ़ जाता है । उससे भी

अनृण कैसे हुआ जाय ? तो इसका उत्तर भी वेद भगवान ने दिया है—'**ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः**' ब्रह्मचर्य से ऋषि-ऋण दूर करना है । यहाँ ब्रह्मचर्य का अर्थ है वेदाध्ययन । हम वेदों को पढ़ें और हमारे बाद आनेवाली प्रजा को पढ़ायें तो हम, ऋषि—ऋण से मुक्त हो सकते हैं ।

दूसरा है देव—ऋण । देवता हमें क्या—क्या नहीं देते हैं ? साँस लेने को हवा, पीने को पानी, खाने को धान्य, देखने को प्रकाश, चलने को पृथ्वी, देखने को इतना बड़ा सौंदर्य सम्पन्न संसार । और आश्चर्य की बात यह है हमसे कुछ भी माँगते नहीं हैं । क्षण भर सोच लो । जिस प्रकार बिजली का कनेकशन देने वाली सरकार या संस्था हमें हर मास बिल भेजती है, उसी हिसाब से यदि भगवान सूर्यनारायण जो प्रकाश प्रदान करते हैं उसका बिल भेज दें तो कितना होगा । अरे भाई ! पूरे महीने का तो छोड़ो, केवल एक दिन का भी बिल आ जाय तो कौन भर सकेगा ? तो यह देवता का हमारे पर कितना ऋण है । उससे अनृण होने के लिये देव लोग माँगे न माँगे, लेकिन यज्ञ करना वह हमारा उत्तरदायित्व है । यज्ञ में हविप्रदान करके हम देव—ऋण से मुक्त हो पायेंगे । अतः **भगवान् वेद** कहते हैं : '**यज्ञेन देवेभ्यः**।'

तीसरा ऋण है पितृ—ऋण । कभी शांति से सोचो तो सही कि आपका पृथ्वी पर जो अस्तित्व है, वह किसे आभारी है ? किसने आपको पृथ्वी पर पैदा होने का मार्ग खोल दिया । उत्तर मिलेगा हमारे पितृओं ने । अब वे सब हमारे सामने नहीं हैं, काल के ग्रास हो गये हैं । तो, क्या हमें उन सबको भूल जाना चाहिये ? क्या यह उचित होगा कि हम अपने जन्मदाता माता—पिता को ही भूल जायँ ? और यदि ऐसा हुआ तो फिर हम जैसा स्वार्थी या क्रूर तो कुत्ता भी नहीं होगा । हमें अपने दिवंगत माता—पिता की या पितृओं की स्मृति हर हमेशा ताजी रखनी चाहिये । पितृ का जो ऋण है, उसे नहीं भूलना चाहिये । और पितृ—ऋण से मुक्ति का उपाय वेद ने बताया है कि **प्रजया पितृभ्यः**। प्रजा की उत्पत्ति करके अपने परापूर्व से चले आये प्रजातंतु का उच्छेदन नहीं करना चाहिए । हे प्रभु, हमें इन लौकिक एवं वैदिक दोनों प्रकार के ऋण से मुक्त कर दो ।

आगे चलकर हमें स्वर्ग में, पितृलोक में या देवलोक में सर्वत्र ऋणरहित कर दो । फलतः हम सदा सर्वदा मुक्त हो जायँ । हमारी आत्मज्योति तेरी शाश्वत ज्योति में मिल जाय ।

तीन ऋण एवं उनसे मुक्ति की बात भगवान मनु ने मनुस्मृति में भी कही है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥
अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रानुत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥
अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥

मनुस्मृति —६–३५–३६, ३७

इसी प्रकार बौधायन स्मृति में भी कहा गया है—

स्वाध्यायेन ऋषीन्पूज्य सोमेन च पुरन्दरम् ।
प्रजया च पितृन्पूर्वान् अनृणो दिवि मोदते ॥

बौ. स्मृ. २–९–५

अतः मोक्ष–बुद्धि साधक को भी वेदाध्ययनादि द्वारा आत्मा को अनृण करना हितावह है ।

दिल्ली से वृन्दावन

दिल्ली से आप श्री वृन्दावन आ गये । ता. ५ नवम्बर को आपके परम प्रेमी श्री भूरामलजी अग्रवाल की ओर से वृन्दावन में वेद–पारायण प्रारम्भ होकर, ता. १३ को पूर्ण हुआ । उस समय श्री भूरामलजी, उनके पौत्र शंकर, उनकी पत्नी ऋचा, मणिबहन आदि ने **भगवान् वेद** ग्रंथ का पूजन–आरति आदि बड़े भाव से किया । दूसरे दिन उनकी ओर से श्रौत–मुनि आश्रम में यज्ञ तथा भंडारा हुआ । ता. २६ को आश्रम में कन्या–महाविद्यालय का शिलान्यास आपके वरदहस्त से हुआ । ता. २६ नवम्बर को सायं ५ बजे, जन्मभूमि मथुरा में, श्री डालमियाँ, विद्वद्वर्ग तथा भक्त मंडल की उपस्थिति में वेद–स्थापना आपने की । वृन्दावन का कार्यक्रम यहाँ समाप्त कर, ता. २८ नवम्बर को आप भाई लीलाराम की मोटर से देहली गंगेश्वर धाम में आये । दूसरे दिन, लाजपत नगर स्थित लाजपत भवन में, मंत्री श्री शेरसिंह की उपस्थिति में आपने **भगवान–वेद** की प्रतिष्ठा की ।

सुरत में निवास

ता. २९ नवम्बर से १० दिसम्बर तक आप सुरत में, अपने परम भक्त शिष्य श्री हसमुखलाल प्रभुदास रेशमवाला के घर में रहे । वर्ष में एक बार प्रायः आप ८–१० दिन के लिये सुरत पधारते हैं । वहाँ सायंकाल से सनातनधर्म–सेवासंघ में प्रवचन शुरू किये । एवं घर में भी प्रातः रोज प्रवचन करते रहे । आपका गुजराती शिष्य वर्ग भी अति प्रेमी–सेवाभावी, नम्र एवं धर्म–रत है । आपकी गिरा–गंगा

का अमृतपान करने काफी संख्या में जनता उमड़ती है, यह मैंने उनके साथ थी, तब स्वयं देखा । अहमदाबाद से डॉ. गौतम पटेल और उनकी धर्मपत्नी अ. सौ. नीलम आपके दर्शनार्थ पधारे ।

सोने के सन्दूक में कंकर

प्रभु कभी—कभी बात—बात में भी अमूल्य उपदेश और वह भी बहुत थोड़े ही शब्दों में हमारे लिये प्रस्तुत करते हैं । अब तो आपने प्रवचन करना तो कम ही कर दिया है । लेकिन आपकी प्रतिभा का उज्ज्वल उन्मेष तो हमें प्रतिपद प्राप्त होता है ।

एक बार भक्तों से बातें चलती थीं । भक्त आम तौर पर संसारी ही होते हैं । कभी—कभी तो शतप्रतिशत संसारी जीव भी प्रभु के पास आता है । परन्तु प्रभु तो उसे भी 'नदी नाव संयोग' की भाँति सत्कार्य मानते हैं, और अपनी स्नेह—सरिता में आप्लावित करते हैं । भक्तों के साथ चल पड़ी ऐसी गोष्ठी में एक भक्त ने किसी अन्य व्यक्ति के बारे में शिकायत कर दी । इतना ही नहीं धीरे—धीरे उस व्यक्ति के दुर्गुणों की गणना करनी आरम्भ कर दी ।

'बेटा !' पूज्य गुरुदेव उसे बीच में ही काटते हुए प्रेम से बोले, 'प्रभु ने हमें सोने के सन्दूक के समान हृदय दिया है, उसमें हम कंकर क्यों भरें ?'

'प्रभु !' भक्त ने कहा, 'कुछ समझ में न आया ।'

'देखो । हमें प्रभु ने हृदय दिया है, वह अमूल्य है, मानों सोने का संदूक । हमें आपने हृदय में सद्गुणरूपी हीरे भरने चाहिये । अन्य के दुर्गुणरूपी कंकर भरना उचित नहीं है ।'

ता. ७ दिसम्बर को, आप **भगवान् वेद** को साथ लिये, श्री हसमुखभाई के घर से सनातन—धर्म—सेवासंघ में पधारे; वहाँ पर जनता ने पूजन करने के बाद, आपकी शोभा—यात्रा निकाली । श्री अम्बा माता के मंदिर में **भगवान् वेद** स्थापित कर, प्रवचन किया । ता. १० दिसम्बर को गीता जयन्ती का उत्सव मनाकर, आप ता. ११ को नडियाद संतराम आश्रम में आये । महाराज की समाधि पर आपने पुष्पहार अर्पण कर, जानकीदास महाराज की शताब्दि निमित्त प्रवचन किया । वहाँ से करमसद पधार कर, भारत के नरवीर श्री विठ्ठलभाई पटेल की प्रतिमा पर पुष्प माला चढ़ाई । वहाँ श्री जानकीदास महाराज का शताब्दि—उत्सव मनाया जा रहा था, उसमें भी आपने प्रवचन किया । ता. २३ दिसम्बर को करमसद तथा सरदार पटेल विश्वविद्यालय में तथा विद्यार्थी कल्याण केन्द्र में आपका प्रवचन हुआ ।

उसे जानकर मृत्यु से भी न डरो

यहाँ प्रभु ने बताया कि आप इस सौभाग्यशाली विश्वविद्यालय के विद्यार्थी हैं, जिसके साथ इस युग के सबसे नीडर नेता श्री वल्लभभाई पटेल का नाम जुड़ा हुआ है। आप जानते ही हैं कि श्री पटेल सर्वथा भयरहित थे। विश्व की कोई भी सत्ता उसे डरा नहीं सकती थी। हमारे वेद का भी यही उपदेश है कि और तो क्या मृत्यु से भी मत डरो। जैसे कि—

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभूः
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः
आत्मानं धीरमजरं युवानम्॥

अथर्व० १०-८-४४

अकामः—कामनाओं से रहित, **धीरः**—धीर, धैर्यशाली, **अमृतः**—कभी भी न मरनेवाला, अमर, **स्वयंभूः**—अपने आप पैदा हुआ, **रसेन तृप्तः**—रससे सदा तृप्त, आनन्द से भरा हुआ **कुतश्चन—न ऊनः**—कहीं से भी न्यून नहीं, किसी प्रकार की अपूर्णता से रहित **तम्**—वह, **धीरम्**—धीर, **अजरम्**—अजर, जीर्ण न होनेवाला, **युवानम्**—सदा युवान आत्मानम्—आत्मा को, **एव**—ही **विद्वान्**—जानकार मनुष्य **मृत्योः**—मौत से **न बिभाय**—डरता नहीं है।

अथर्ववेद ने १० काण्ड के ८ सूक्त के ४४वे मन्त्र में मृत्यु के डर से किस प्रकार मुक्त हो जायँ, इस बात का सर्वथैव उपादेय वर्णन है। जो आत्मा को जानता है वह मौत से कभी नहीं डरता। जब तक हम अनात्मतत्त्व के प्रति दृष्टि रखते हैं और आत्मतत्त्व का सच्चा स्वरूप नहीं जानते हैं, तब तक ही मृत्यु का भय हमारा पीछा नहीं छोड़ता है। जैसे ही आत्मा का सच्चा स्वरूप ज्ञात होता है, वैसे ही **अभयं वै जनकः प्राप्तोऽसि** की भाँति हम भी अभय को प्राप्त करते हैं।

आत्मतत्त्व का निरूपण वैसे तो अनेक ग्रन्थों में यथायोग्य विस्तार से उपलब्ध होता है। लेकिन अथर्ववेद का यह मन्त्र केवल तीन पाद में ही मानो पूरा आत्मतत्त्व का सार प्रस्तुत करता है।

इस मन्त्र अनुसार आत्मा **अकामः**—सर्व कामनाओं से रहित है। 'मैं' या 'मेरा' यह भाव तो मायावश जीव को घेर लेता है फिर वह बेचारा कामनाओं का ढेर बन जाता है। ऋग्वेद कहता है **पुलुकामो हि मर्त्यः**। अर्थात् मानव

अनेक कामनाओंवाला है । देखिये वेद भगवान ने कौन से शब्द का यहाँ प्रयोग किया है । **मर्त्यः**-याने मरणशील मनुष्य और जन्ममरण में फँसा हुआ मर्त्य मानवी ही अनेक कामनाओं के जाल में फँस जाता है । वास्तव में आत्मा तो अकाम है। सर्वथा कामना रहित है। फिर **धीरः** भी है । धैर्य, स्वयं संयमशीलता यह आत्मा का सच्चा स्वरूप है। आत्मतत्त्व को नहीं पहचाननेवाला ही अधीर होता है । आत्म संयम से वंचित रहता है । **अमृतः**-अमरता यह आत्मा का अविभाज्य लक्षण है। जो नाश होता है, मरण को प्राप्त होता है । वह तो पाञ्च भौतिक शरीर है । आत्मा तो त्रिकालाबाधित और स्वयंभू भी है । एवं आनन्द से आत्मा सदा परितृप्त है । रसो वैसः यह उपनिषद का विधान सहसा स्मृत्युपस्थित होता है । वास्तव में विषयों में प्रतीत होनेवाली रस की मात्रा तो आत्मा के रसमय स्वरूप का एक सहस्रांश मात्र है । आत्मा तो स्वयं रस स्वरूप है, सदैव संतृप्त है। यह आत्मा पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति सर्वदा परिपूर्ण है । उसमें कहीं भी न्यूनता नहीं है । अरे भाई ! न्यूनता की छाया भी आत्मा को स्वप्न में स्पर्श नहीं कर पाती । क्योंकि वह स्वयं संपूर्ण है। यही आत्मा अजर है, कभी जीर्णशीर्ण नहीं होता है। और तो क्या, आत्मा सदा युवान है । नित्य यौवनशीलता ही आत्मा का स्वभाव है । लाखों वृद्धों या वृद्धत्व की भावना से घिरे हुए मनुष्यों के बीच भी आत्मा अपनी युवानी को सूर्य के प्रकाश की तरह स्फुट करता है। जो जीर्ण होता है वह शरीर है, आत्मा हरगिज नहीं ।

ऐसी आत्मा को जो जानता है, उसको मृत्यु का कभी डर नहीं लगता है। भय का मूल आत्मस्वरूप को विस्मृति है । जब यह विस्मृति वेद भगवान के ऐसे मंत्रों द्वारा पुनः प्राप्त हो जायेगी, तब मृत्यु से डरना केवल स्वप्न हो जायेगा और अमरता से मानों आपकी शादी सदा के लिये हो जायेगी । अमर बनना है तो आत्मस्वरूप की विस्मृति को हटा दो ।

बम्बई में जयंती के लिये

सायंकाल संतराम मंदिर में संत निवास का शिलान्यास आपके शुभ हस्त से हुआ । नडियाद तथा करमसद में इतना क्रम पूर्ण कर रात्रि में आप बड़ौदा एक दिन ठहरकर ता. १३ दिसंबर को आप जयंती उत्सव के लिये बम्बई पधारे । उसी दिन शाम को देवकी माता की पौत्री एवं भगवानभाई की पुत्री के शुभ विवाह में आशीर्वाद देने पधारे । अब पुनः पारायण प्रारंभ होने लगे । ता. १७ को तुलसी निवास में, मीनुबहन किसनचंद भारवानी द्वारा, वेद पारायण शुरू हुआ, ता. २३ दिसंबर को पूर्णाहुति हुई । ता. २८ को आप मोटर में त्र्यंबक

गये। वहाँ ब्रह्मलीन तपस्वी बाबा पूरणदास का भंडारा था। दूसरे दिन बम्बई लौट आये।

९८ वाँ जयन्ती उत्सव प्रारम्भ

तुलसी निवास में आपकी ९८ वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में आदरणीय स्वामी कृष्णानन्द गोविन्दानंदजी ने, प्रतिवर्ष क्रमानुसार रामायण नवाह का १०८ पारायण शुरू किया। सायंकाल तुलसी निवास में शताब्दि समारोह के सदस्यों की मिटींग हुई, जिसमें कार्यक्रम निश्चित किया गया।

अब हम आपकी ९८ वीं जन्म जयन्ती मनाने में संलग्न हैं। सोचती हूँ कि हम यह सब कुछ पूर्ण प्रेमश्रद्धा से करते तो हैं, परंतु बाह्य कर्मों की विशेष प्रधानता में, आपके स्वरूप के सूक्ष्मज्ञान की ओर दृष्टि बहुत कम जाती है। इसलिये जो आंतरिक अनुभूति एवं तज्जन्य आनन्द की प्राप्ति है इससे वंचित रहते हैं। मेरी यह धारणा कहाँ तक उचित या सत्य है, यह मैं समझ ही नहीं पाती, परंतु आपके चरण कमल के परिमल में यदि मेरा मन मधुप लीन हो जाय, तो मेरे सब मनोव्यापार शांत होकर, अनंत आनन्दार्णव में विलीन हो जायँ। आप तो पूर्ण ज्ञानी होते हुए भी भक्त हैं, इसीलिये आपका ज्ञान अधिक शोभा देता है। भगवान् श्रीकृष्ण की अवतार लीला, उनके अपार सौंदर्य माधुर्य, उनके अनन्त नाम रूप गुण के रसास्वादन करने में आपका हृदय सदैव लालायित रहता है, यह केवल आपके प्रासंगिक प्रवचनों में ही नहीं, आपके मुखसे भी श्रीकृष्ण का मधुर नाम मुखरित होते मैंने बहुत बार सुना है। या कृष्ण या गुरुदेव! इसलिये मैं केवल आपकी चरण वन्दना करती हुई यही प्रार्थना करती हूँ कि जैसी श्रीकृष्ण में आपकी अनुरक्ति है, वैसी ही इस दीन को भी कृपया प्रदान कीजिये।

श्रीराधिका माधवयोरपारमाधुर्यलीलारूपगुणनाम्नाम्।
प्रतिक्षणास्वादनलोलुपस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

अर्थात् श्रीराधाकृष्ण के अपार माधुर्य, लीलाओं, गुण, रूप एवं अनन्त नामावलियों का प्रतिक्षण रसास्वादन करने के लिये लालायित, आप श्री गुरुदेव के शोभायुक्त चरणारविन्द की मैं वन्दना करती हूँ। ज्ञानदृष्टि में अद्वैत-भाव पूर्णतया स्थित है, अपितु भक्ति में सदा अद्वैत में द्वैत-भाव द्वारा, जो परस्पर दिव्य रसास्वादन का अलौकिक आनन्द होता है उसकी कल्पना मात्र सच्चे प्रेमीजन ही कर सकते हैं। सद्गुरु श्रीकृष्ण एक ही तत्त्व है। आपकी ज्ञान दृष्टि में न तो आप गुरु हैं, न कोई आपके शिष्य। मैं—तू का पूर्णतया अभाव है यहाँ। हम आपके शिष्य

बन, आपके ऊपर गुरुत्व का भार डालते हैं और तब हम गुरु-शिष्य का द्वैत स्थापित कर आपके सत्संग-सेवा उपदेश आदि से अनुगृहीत होते हैं।

सन् १९७९ का प्रारम्भ

आज नूतन वर्ष प्रारम्भ होता है। अतः मंगलाचरण करके हम आगे चलेंगे। वेद-वाणी में उपासक निश्चय करके कहता है कि 'मैं उस महापुरुष को जानता हूँ जो अविद्या से परे हैं, सूर्य के समान स्वयं प्रकाश स्वरूप है। इस पुरुष को जानकर ही मृत्यु का उल्लंघन किया जा सकता है। मुक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

—यजुर्वेद ३१-१८

ता. १ जनवरी १९७९ का नया वर्ष बम्बई में मनाया गया। २ जनवरी को जयंती के उपलक्ष्य में आरंभित रामायण १०८ नवाह का पारायण आज पूर्ण हुआ एवं आपका प्रवचन भी था। प्रतिवर्ष की भाँति मेघराज भुवन में सुन्दर सुमन सज्जित मंडप में आपका पूजन आरति लोक-समूहने द्वारा हुई। सायंकाल तुलसी निवास में भी अति कलापूर्ण पुष्प के हिंडोले में आप विराजमान् हुए। श्रीराम पंजवानी के सुमधुर कीर्तन, संत विद्वानों के प्रवचन, आपके आशीर्वचन के पश्चात आरती प्रसाद—वितरण के साथ उत्सव पूर्ण हुआ।

ता. ५ जनवरी को सायंकाल आपका ९८ वाँ जन्मदिन हॉकी ग्राउण्ड में बहुत धूमधाम से मनाया गया। प्रतिवर्ष आप नये—नये रूप में विराजमान् होते हैं।

इस वर्ष आप चार घोड़े जोड़े हुए निरतिशय सुन्दर रथ में विराजमान थे। रथ के घोड़े तो ऐसे जीवन्त प्रतीत होते थे कि अब दौड़ेंगे अब दौड़ेंगे ऐसा ही प्रतीत होता था। भक्त की पुकार सुनकर जैसे प्रभु रथ पर चढ़कर तुरन्त भागे हुए आते हैं इस प्रकार प्राणीमात्र के उद्धारार्थ मैं सदैव रथारूढ़ हूँ ऐसी अनुभूति देखते ही बनती थी। उस दृश्य का तो स्मरण आज भी यदि होता है तो रोमांच हो आता है और हृदय आनन्दविभोर बन जाता है।

योगेश्वर गुरु गंगेश्वर भाग—२ का उद्घाटन

उसी दिन **योगेश्वर गुरु गंगेश्वर** भाग—२ का उद्घाटन हुआ। उद्घाटक थे बम्बई के मेयर श्री चेम्बुलकर। सेन्ट झेवियर्स कॉलेज अहमदाबाद के संस्कृत के प्रोफेसर डॉ. गौतम पटेल ने बहुत सावधानी एवं परिश्रम से इसका संपादन कर जयन्ती—उत्सव पर तैयार किया। इसलिये मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। और तीसरे भाग का संपादन कार्य का भी सौभाग्य उन जैसे अति प्रेमी नम्रभक्त

पुत्र को प्राप्त होगा, जो आपकी १०१वीं जयन्ती के मंगल अवसर पर जनता जनार्दन की सेवा में प्रस्तुत करने की आशा करती हूँ।

ता. ६ तथा ७ जनवरी को, प्रेम कुटिर तथा प्रेमपुरी आध्यात्मिक विद्याभवन में श्री बचुभाई ड्रेसवाला आदि गृहस्थों द्वारा आपकी ९८ वी जन्म जयंती मनाई गई एवं सम्मान किया गया।

मद्रास में

जयन्ती-उत्सव बाद आपका प्रवास पुनः प्रारम्भ हो जाता है। ता. ८ जनवरी को आप प्लेन से मद्रास गये। श्री परमानन्दभाई के घर ठहरे। श्री परमानन्दभाई तथा उनकी धर्मपत्नी दोनों परमप्रेमी साधुसेवी एवं उदार हैं। ५-६ वर्ष पहले मैं भी आपके साथ जब दक्षिण-यात्रा में थी, तब उनके पास ही हम लोग रहे थे। सिंधी भाई बहनों का अतिथि सत्कार सचमुच श्लाघनीय है। कहीं भी मुझे ऐसा नहीं प्रतीत हुआ कि मैं किसी दूसरे के घर में रह रही हूँ। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना साक्षात् होती थी। बाजू के घर में निवास करती कमलाबहन आसरानी एवं उनकी सहेली दूसरी कमला दोनों का परिचय मुझे भाई परमानन्दजी के घर ही हुआ। अब तो दोनों मेरी प्रिय-पुत्री बन गई हैं। मद्रास में आपके २१ दिन के निवास दरम्यान आपका भरसक कार्यक्रम बना रहा। ता. ९ जनवरी किल-पार्क गार्डन के सिंधी हाउस में प्रतिदिन शाम को १ घण्टा आपका प्रवचन होता।

अंधकार का नाश करो

गूहता गुह्यं तमो वियात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥[1]

—ऋ. वे. १-८६-१०

मरुतः—हे प्राणशक्ति के दाता मरुतदेव **गुह्यं**—शरीर रूपी गुहा में हृदय में विद्यमान **तमः**—अज्ञान का **गूहत**—नाश करो **विश्वम्**—संपूर्णतया **अत्रिणम्**—हमारे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी पुरुषार्थ का भक्षण करने वाले कामक्रोधादिक को **वियात**—सविशेषरूप से दूर करो **यत्**—जो **ज्योतिः**—ज्योति की, परमतत्व के साक्षात्कार रूप ज्ञान की **उश्मसि**—हम कामना करते हैं **कर्ता**—उसे हमारे लिये उत्पन्न करो, प्रकाशित करो।

---

१. गुह्यं गुहायां शरीरान्तर्गतगुहारूपे हृदये भवं तमो भावरूपाज्ञानं तद् गूहत विनाशयत। अत्रिणं पुरुषार्थस्यात्तारं कामक्रोधादिकं सर्वं विनिर्गमयत। यज्ज्योतिः परतत्त्व-साक्षात्काररूपं ज्ञानं कामयामहे प्राणापानादिपञ्चवृत्तिरूपा हे मरुतस्तत्कर्ता कुरुत।

-सायणभाष्यम्

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जायें । इस प्रकार की प्रार्थना हमें उपनिषद में प्राप्त होती है। वैसी ही भावना ऋग्वेद के इस मंत्र में है । यहाँ भगवान मरुत की प्रार्थना वेदमंत्र के द्रष्टा गौतम ऋषि कर रहे हैं । मरुत वैसे तो वायुदेव माने गये हैं और पञ्चप्राण भी एक प्रकार से वायु स्वरूप ही है । अतः यह प्राण शक्ति के दाता भगवान मरुत हैं । उनसे प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो, हमारे हृदय में जो अज्ञानरूपी अन्धकार है, उसका आप विनाश करो । यह अज्ञान तो सर्वभक्षी होता है । वह हमारे हृदय में कामक्रोधादि को पैदा करता है और यह कामादि आन्तरिक शत्रु हमारे धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्षरूपी चतुर्विध पुरुषार्थ का नाश करता है । तो यह सर्वभक्षी अज्ञान का कृपया आप ही विनाश करो । और केवल अज्ञान के नाश से क्या बनेगा । हम तो ज्योति की कामना करते हैं। यह ज्योति है परमात्मा या विश्व का परमतत्त्व, जिसे उपनिषद् ब्रह्म कहता है। बस, इस ज्योति का हमें आप दर्शन करा दो ।

एकबार परमात्मारूपी ज्योति का दर्शन हो जाय तो मनुष्य की जीवन—नौका संसार—सागर से पार सहसा उतर जाय। ईश्वर दर्शन ही मानव का इति कर्तव्य है। लेकिन स्वस्वरूपा ज्ञान से व्याप्त होने पर मनुष्य भौतिक पदार्थों के चक्कर में फँस जाता है। अतः प्रथम इस अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करना अत्यावश्यक है। अज्ञान का नाश होते ही अनायास परम ज्योति का प्रकाश सुलभ हो जायेगा ।

ता. १० को गोपाल नागपाल की दुकान का शुभ मुहूर्त आपके वरदहस्त से हुआ । दूसरे दिन तामिलनाडु के राज्यपाल श्री प्रभुदासभाई पटवारीजी आपको मिलने के लिये घर आये । ता. १४ को मकर संक्रांति मनाई गई तथा सिंधुहोल में प्रातः आपका प्रवचन एवं सायंकाल गोपीबहन नानकराम के घर भगवान-वेद का दर्शन—प्रवचन का आयोजन हुआ। ता. १९ को श्री नटराज शर्मा की सुपुत्री की शादी में जाकर आशीर्वाद दिया । ता. २१ जनवरी को किल पार्क गार्डन में नियाजित सत्संग पूर्ण हुआ । संस्कृत-कोलेज महिलापुर में श्री राघवन की उपस्थिति में आपका संस्कृत में भाषण हुआ । आपका संस्कृत भाषण भी हिन्दी भाषा जितना ही सहज, सरल एवं सुन्दर होता है। ता. २२ को साहुकार पेठ में आपका प्रवचन हुआ । ता. २४ को आप कोयंबतुर जाकर श्री चतुर्भुज के वहाँ ठहरे एवं प्रियाकुंज में प्रवचन किया । दूसरे दिन सिंधुसदन में नये होल का उद्घाटन एवं प्रवचन हुआ । ता. २७ को आप वहाँ से मद्रास लौट आये। दूसरे दिन, राज्यपाल श्रीप्रभुदास पटवारी के निमंत्रण से आप राज्यभवन में गये, जहाँ आपका पुष्पमाला

से स्वागत हुआ। वहाँ आपने प्रवचन किया। श्री. जे. पी. कृपलानी भी उपस्थित थे। भारतीय विद्याभवन में भी उसी दिन शाम को आपका हार्दिक स्वागत तथा प्रवचन हुआ। ता. ३० का मद्रास में अंतिम दिन था। उस दिन भाई परमानन्दजी के घर श्री प्रभुदास पटवारीजी पधारे, एवं उनके स्वागत के पश्चात् आपने प्रवचन किया।

प्रभु सब जानता है

आज प्रवचन के अवसर पर प्रभु ने अथर्ववेद काण्ड चार सूक्त सोलह और मंत्र दो को उद्धृत करके बताया कि कभी भी ऐसा मत मानों कि हम जो करते हैं उसे ईश्वर नहीं जानता है। प्रभु को तो इस संसार का कोना–कोना ज्ञात है। जैसे अपने घर में कोई भी वस्तु कहाँ पड़ी है, यह प्रायः गृहिणी से अज्ञात नहीं होता है, तो फिर सर्वज्ञ ईश्वर को स्वयं का बनाया हुआ संसार क्या है, या उसमें संसारी क्या करता है, वह कैसे अज्ञात रहेगा।

वेद में भगवान वरुण देव का नाम बारंबार आता है। जो समग्र संसार को आच्छादित करके रहता है, उसे वरुण कहते हैं। **वरुणो वृणोति इति सतः निरुक्तः** १०–३ जो सारे संसार को आच्छादित करता है, याने सर्वत्र व्याप्त है उससे भला क्या चीज छिप सकती है? अतः अथर्ववेद कहता है—

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः॥

—अथर्व० ४–१६–२

यः–जो, **तिष्ठति**–खड़ा है, **चरति**–चलता है, **यः च**–और जो, **वञ्चति**–दूसरे की वंचना करता है, दूसरों को ठगता है, **यः**–जो, **निलायम्**–छिपकर, **चरति** चलता है याने छिपछिपकर काम करता है, **यः**–जो, **प्रतङ्कम् चरति**–दूसरों पर आतंक याने अत्याचार करता है, **द्वौ**–दो व्यक्ति, **सन्निषद्य**–साथ बैठकर, **यत्**–जो भी, **मन्त्रयेते**–बात करते हैं, गुप्त मन्त्रणा करते हैं, **तत्**–उसे, **तृतीयः**–तीसरा, **राजा वरुणः**–राजा वरुणदेव, **वेद**–जानता है।

मन्त्र का भाव यह है कि मनुष्य चाहे अकेला एकान्त में बैठकर कोई कार्य करे या योजना बनाये अथवा एक से अधिक व्यक्ति एकत्र होकर अच्छी या बुरी बातचीत भी करे, भगवान वरुण उसको जानता है। यहाँ भगवान वरुणदेव को राजा कहा गया है। राजा जिस प्रकार गुप्तचरों के द्वारा अपने राज्य की गतिविधियाँ जानता है, उसी प्रकार यह विश्वसमस्त का राजा वरुण विश्व की सब बातें जानता है। अतः उसे अन्तर्यामि कहते हैं।

सिकन्दराबाद में

आप मद्रास से सिकन्दराबाद पधारे और आपके प्रेमी भक्त श्री उत्तम भाई के घर ठहरे । २२ दिन उनके पास ठहरे । आपका सत्संग तथा वेद–पारायण प्रत्येक स्थान में चालू ही रहता है । ता. १ फरवरी को हैदराबाद में महादेवमलजी की दूकान का मुहूर्त आपने किया । दूसरे दिन सिकन्दराबाद के सिधु मंदिर में **भगवान् वेद** का पारायण, एक भक्त के निमित्त प्रारम्भ किया । ता. ४ एवं ६ फरवरी को हैदराबाद में श्री राधा कृष्णजी की प्रार्थना पर, सायंकाल सिंधु-मंदिर में आपने प्रवचन किया । ता ७ को सिकन्दराबाद, सिंधी कालोनी में श्री ताराचंद के पुत्र बलदेव के घर पर सत्संग तथा सायं अरुणा बहन के घर पर सत्संग किया । अरुणा बहन का परिचय देने में मुझे बड़ी प्रसन्नता है क्योंकि उसका समस्त जीवन उपासना में ही नियुक्त रहा है । अविवाहित रहकर, कलियुग में इतने तप–संयम सदाचार के साथ एवं संसार से सदा विरक्त रहकर ईश्वर–चिंतन में लगे रहना सहज नहीं, अपितु बहुत ही कठिन है । अरुणा के रूप में मानो भक्तिमती 'मीरा' ही आविर्भूत हुई है, अति प्रेमी एवं सरल हृदयी । आपके साथ बात करती है तब ऐसा प्रतीत होता है कि एक छोटी-सी निर्दोष बालिका अपने पिता से प्यार से कुछ पूछ रही हो । अस्तु । ता. ८ फरवरी को टीली बहन मुरजानी का स्वर्गवास हुआ । आपने उनके स्वजनों को मिलकर सांत्वना दी एवं उपदेशात्मक प्रवचन किया ।

ता. ९–१० फरवरी को, माधवदास बलदेव के घर सत्संग पूरा हुआ एवं विष्नीदास लीलाबहन, ज्योति बहन एवं मोहिनी बहन के घरों में भी आपका प्रवचन हुआ ।

प्रभु भक्त की पुकार सुनता है ।

आ घा गमत् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिः ऊतिभिः ।
वाजेभिः उप नो हवम् ॥

—ऋ. वे. १–३०–८, अथर्व २०–२६

वेद का यह सर्वथा मननीय मन्त्र वेदों में ही इतना सर्वप्रिय था कि उसको ऋग्वेद, सामवेद, एवं अथर्ववेद—इस प्रकार तीनों वेदों में स्थान मिला है । यही बात इसकी लोकप्रियता को द्योतक है । प्रथम इस मंत्र का शब्दार्थ देख लें—

यदि–जो, यदि, **नः**–हमारी, **हवम्**–पुकार, **श्रवत्**–सुन ले, अर्थात् हमारा आर्तनाद वह इन्द्र याने परमात्मा सुन ले तो वह, **सहस्रिणीभिः**–हजारों,

ऊतिभिः-शक्तियों तथा, **वाजेभिः**-बल या ज्ञान के साथ, **ह**-निश्चित रूप से, **उपागमत्**-हमारे पास आ पहुँचता है ।

भक्त एकबार भी हृदय से प्रभु को पुकारता है, तो प्रभु क्षण का भी विलम्ब न करते हुए सहसा उपस्थित हो जाते हैं। गजेन्द्र मोक्ष की कथा सुप्रसिद्ध है । गज ने पुकारा और प्रभु दौड़ते हुए पधारे । एक कवि ने तो यहाँ तक कहा कि—

हरि को पुकारने में करि को लगी देर,
करि को उबारने में प्रभु को लगी न देर ।

द्रौपदी की लाज लेने का सभा के बीच दुष्ट दुःशासन ने दुःसाहस किया। लेकिन करुण पुकार कान पर पड़ते ही परमेश्वर कृष्ण वसनविस्तारी के रूप में उपस्थित हो गये। और तो क्या, दस-दस हजार हाथी का बल एक-एक हाथ में रखनेवाला वह दुष्ट दुःशासन भी हार के बैठ गया । अतः प्रभु पुकार सुनता है, तो वह अवश्य आता है ।

पुकारनेवाले भक्त के समक्ष एक मामूली-सी शर्त है। जब वह बेचारा प्रयत्न करते-करते हृदय से पूरा थक जाता है, तब उसे अपनी निःसहायता, निर्बलता का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता है, तब वह आर्तनाद करता है । और जैसे हीहृदय से प्रभु को पुकारा कि फौरन वह करुणावरुणालय उपस्थित हो गये । वेदमन्त्र से हमें शिक्षा मिलती है कि समग्र संसार से नाता छोड़कर केवल प्रभु को पुकारें । प्रभु दौड़ता हुआ आयेगा । प्रभु तो पधारेंगे ही, इसमें लेशमात्र शंका को स्थान नहीं है । किन्तु जीव का स्वभाव है कि वह सीधा प्रभु की शरण में न जाकर अन्यत्र सहारा ढूंढ़ता फिरता है। अपने सच्चे सहायक सर्वेश्वर को भूलकर सांसारिक सेठ, स्वामी, या स्नेही के पास सहायतार्थ भटकता है । परिणाम में रोना-धोना, सिसकना और आहों की जागीर पाता है । अतः प्रभु की शरण में रहना ही उचित है, क्योंकि वही सच्चा शरणागतवत्सल है।

ता. ११ को पूर्णिमा के दिन भाई उत्तमचन्द के घर प्रवचन हुआ । ता. १२ को आप हवाई जहाज से बम्बई पधारे ।

बम्बई में

देवकी माता का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था एवं देवी बहन भी अस्वस्थ थी, अतः उन दोनों को दर्शन देने के लिये, आप बम्बई पधारे। दोनों के पास गये एवं आशीर्वाद दिया। देवकी माता को देखने में भी आपके साथ गई थी।

वह अति श्रद्धालु-उदार-चरिता थी । अपने स्वर्गीय पतिदेव श्री भोजराज के पीछे उन्होंने लाखों का गुप्त-दान किया और वृन्दावन में भी कन्या विद्यालय, गरीबों के लिये फ्री अस्पताल, तालाब आदि की योजना का संकल्प उन्होंने आपके आगे प्रस्ताव रूप में रखा था । परंतु क्रूर काल किसी को भी अपने कराल मुख से छोड़ता नहीं, आपके दर्शन के बाद, ३-४ दिनों में ही उनका स्वर्गवास हो गया । उनकी सुपुत्री मीठी बहन, जो हमेशा अपनी माता के साथ ही होती थी, मातृ-छाया से वंचित हुई । जगत में अगर माँ-पुत्री का संबंध मधुर हो तो इससे अधिक कोई सुख या आनन्द नहीं । कोई भी सांसारिक या पारमार्थिक संबंध, पारस्परिक निःस्वार्थ प्रेम के बिना निखर नहीं सकता । मीठी बहन ने अपनी पूज्या माता की अमर स्मृति में, आपके लिये चाँदी का एक अति सुन्दर कलात्मक पर्यंक बनवाकर, बम्बई के तुलसी निवास फ्लेट में रखा है । उस पर दोनों ओर कमल, मध्य में नंदनंदन श्री कृष्णचंद मुरली बजा रहे हैं, ऐसा चित्रांकन आपके स्वरूप के अनुरूप ही है । भगवान का दिया हुआ अनंत श्री. ऐश्वर्य का उपयोग, केवल विविध उपभोगों में ही नहीं करके परमार्थ में प्रचुर मात्रा में करनेवाला भाग्यवान् आपका उत्तमचंदानी एवं चेनराय परिवार है । भारत में 'जसलोक अस्पताल' अद्वितीय परमार्थ की इमारत है, जो यशस्वी एवं लोकुमल के औदार्य का ज्वलंत प्रतीक है ।

देवकी बहन अब आपकी कृपा से पूर्ण स्वस्थ है । यह भक्त-परिवार भी आप का शरणागत प्रेमी है । भाई हशमतराय व्यवसाय व्यस्त होते हुए भी आपका सद्गुरु गंगेश्वर इंटरनेशनल वेद मिशन का कार्य पूर्णरूप में संभालते हैं । उनके सुपुत्र ईश्वर एवं पुत्रवधू मीरा, बड़ी पुत्री पूनम सब सदस्यों का श्रद्धा-सेवाभाव हमें सुविदित ही है । बम्बई में आपका यह अनायास आना, हमारे डॉ. जगदीश भाई मर्चेंट के लिए बहुत आनंददायक बना । उनकी सुपुत्री का शुभ विवाह ता. १५ फरवरी को था । अतः मैं भी आपके साथ विवाह मंडप में गई एवं आशीर्वाद दिया । उसी शाम को, श्री घनश्यामदासजी के सुपुत्र गोविंद की शादी में भी आपने नवदंपति को आशीर्वाद दिया ।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः

एक दिन आप ४-५ जिज्ञासु भक्तों के साथ बैठे थे । उसमें गीता के निम्न-लिखित श्लोक पर एक भक्त ने उसका अर्थ समझाने के लिए प्रार्थना की । श्लोक यह था—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

—गी. ४-२४

आपने कहा कि वैदिक उपासना का सच्चा स्वरूप गीता के इस श्लोक में बताया है। अर्थात् अर्पण, हवि, अग्नि एवं आहुति देनेवाला सब ब्रह्म ही है। वही ब्रह्ममार्ग से जाने में समर्थ होगा। मतलब जो पूर्णरूप से ब्रह्ममय बन जाता है, वही ब्रह्म के मार्ग का पथिक हो सकता है। देखिये, यही बात ऋग्वेद में भी बतायी गई है—

यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवाः।
तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। —ऋ. १-१६४-५०

वेदों में क्या नहीं है? उपर्युक्त श्लोक का अर्थ यह है कि विद्वानों ने यज्ञ के द्वारा यज्ञनी पूजा की, जो उनका सर्वप्रथम धर्म था। ये विद्वान् पहले स्वयं यज्ञ या पूज्य बने, फिर उन्होंने उन पूज्यतम महान् देवों की पूजा की। भगवान् तक पहुँचने के लिये स्वयं उसके योग्य बनना पड़ता है। उसके लिये जरूरी है कि—

विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तत् नः आ सुव॥ —ऋ. ५-८२-५०

हमारे सब दुष्ट भाव दूर हों और जो कुछ सद्‌गुण हों वे हमें प्राप्त हों। वह परमेश्वर स्वयं सद्‌गुण रूपी रत्न-खान है; अतः उसे तो सद्‌गुणों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अनन्य भक्ति ही मानव को उसके समीप पहुँचाती है।

"तो महाराजजी! जैसे अब आपने कहा कि भगवान् तक पहुँचने के लिये हमें स्वयं उसके योग्य बनाना पड़ता है। यह काम करने में केवल सद्‌गुरु ही समर्थ हैं, या मानव केवल अपनी योग साधना द्वारा भी प्रभु को प्राप्त कर सकता है, कृपया बताइये।" आपने कहा कि—देखिये। एक होते हैं ज्ञानी, दूसरे होते हैं भक्त। ज्ञानी हैं वानर-बच्चे से, अपने बल तथा पुरुषार्थ पर ही परमात्मा को पानेवाले; वानरी का बच्चा स्वयं अपनी माँ को पकड़ कर कूदता है; अगर यह भूल से छूट जाय तो नीचे गिरने का, हानि का पूरा खतरा रहता है। दूसरी ओर, भक्त हैं बिल्ली के बच्चे के समान, अपनी माता पर सर्वथा निर्भर रहकर, अपनी स्वतंत्र कोई चेष्टा नहीं करते; कहीं जाना हो तो बिल्ली अपने मुख में बच्चे उठा कर ले जाती है, परन्तु बच्चे को यह भय नहीं होता कि माँ के दाँत लगेंगे या वह मुझे खा जायेगी। इसलिये ऐसे भक्त सदा सर्वदा अपने गुरु या प्रभु पर निर्भय बनकर आनंद में रहता है। ज्ञान-मार्ग में साधना दरम्यान थोड़ी-सी भी असावधानी सत्वर गिरा देती है, बहाँ भक्ति-मार्ग में भगवान् स्वयं अपते अनन्य शरणागत का योगक्षेम वहन करते हैं। गुरु नामक तत्त्व में भी परमात्मा-शक्ति झलक कर शिष्य का पथ प्रदर्शन करती है। गुरु की उपासना परमात्मा की उपासना से कम नहीं। तभी तो कहा है न—

अधिगच्छति शास्त्रार्थं स्मरति श्रद्धाति च ।
यत् कृपावशतस्तस्मै नमोऽस्तु गुरवे सदा ॥

अर्थात् शास्त्र का अर्थ अपने आप आता है, हम उसे क्या याद करें ! हम उसमें क्या श्रद्धा करें, वही हममें श्रद्धा करते हैं, जिनकी असीम कृपा से यह संभव होता है, उस गुरुदेव को सदा नमस्कार है । आप सोचिये, है कोई परमात्म-कृपा, और गुरु-कृपा में अंतर ? सद्गुरु की प्राप्ति भी बड़े भाग्य से, जन्मांतर के पुण्य-पुञ्ज से होती है । गुरु शिष्यों के मध्य में मौन बैठे हों फिर भी शिष्यों की सब शंकाएं भी मिट जायं ऐसे समर्थ गुरु साक्षात् ब्रह्मरूप ही होते हैं । इसमें कोई संकल्प-विकल्प को स्थान नहीं रहता । गुरु-शिष्य में यदि अपार पारस्परिक स्नेह हो तो गुरु गुप्त से गुप्त विद्या भी शिष्य के आगे खोल देते हैं । सुनिये, मैं आपको इस विषय पर एक मनोरम सच्ची घटना बताता हूँ ।"

जितं मया जितं मया

"दो गुरु-शिष्य थे । परस्पर दोनों का अगाध प्रेम था । गुरु-कृपा रूप कौमुदी में शिष्य का ज्ञान-समुद्र उछल रहा था । जैसे चन्द्रमा को यह पता नहीं होता कि मेरी ज्योत्सना से समुद्र तरंगित होता है, यहाँ गुरु को भी यह पता नहीं था कि मेरी कृपा अबाधित हो रही है । विद्वान होने से दोनों में परस्पर कभी शास्त्रार्थ चलता है, तो शिष्य के विचार कहीं ऊँचे होते हैं और शिष्य के प्रश्नों के प्रत्युत्तर के लिये गुरु समय माँगते हैं 'अच्छा फिर कभी', कहकर अपनी हार भी मानते हुए बात को समाप्त करते हैं । शिष्य भी अपने को विजयी मान घर चला जाता है । इस तरह जब बहुत दिनों तक चलता रहा, तब गुरु-पत्नी को असह्य हो गया । उसने अपने पति से कहा कि मुझे तो शरम आती है, जब नित्यप्रति आप अपने शिष्य से हार जाते हैं । आपकी जितनी विद्या थी, सारी शिष्य ने ले ली एवं बढ़ा भी दी ! तब गुरु ने हँस के अपनी पत्नी से कहा—यह शिष्य मेरा परम भक्त है, जैसे अपने बालक से हारने में सुख प्रतीत होता है, मुझे भी वैसे हारने में आनंद आता है । तब पत्नी ने झुंझला कर कहा कि यह तो आपने अपनी पराजय को छिपाने का रास्ता ढूँढा है—मैं देखती हूँ कि वह अपने प्रश्नों से आपको निरुत्तर कर देता है । अब गुरु ने सोचा कि यह हमारे पारस्परिक प्रेम से अनजान है, अतः युक्ति द्वारा शिष्य का अपने प्रति कैसा और कितना प्रेम है, वह दिखा दूँ । तो गुरु ने अपनी पत्नी से कहा : "अच्छा देखो, मैं प्राणायाम करके शरीर को अचेतन बना देता हूँ । तुम हमारे ऊपर चद्दर डाल देना और जब शिष्य आये तो तुम रोने लग जाना कि आज तुम्हारे गुरु का देहावसान हो गया । फिर तुम देखना

कि हमसे उसका कितना असीम प्रेम है।" उसने वैसा ही किया। जब शिष्य आया तब वह फूट फूट कर रोने लगी, तब उसको कारण पूछा तो बताया, तब तो वह गुरु-पत्नी से भी अधिक रोने लगा। गुरु-पत्नी ने कहा—बेटा, जो मेरे भाग्य में था सो हुआ तो हुआ, तुम क्यों रो रहे हो ? उनसे सब विद्या तो तुमने सीख ली, अब तुम्हें लेने का क्या शेष है ? शिष्य ने कहा, माताजी, आप सरल हैं, गुरुदेव तो अथाह ज्ञानसागर हैं, वे तो अपनी विद्या द्वारा मुझे पहलवान की तरह हृष्ट पुष्ट बनाने में प्रसन्न थे। यह उनकी मेरे पर अहैतुकी कृपा ही थी। तब गुरुजी हँस कर उठ पड़े एवं बोले—'जितं मया—जितं मया', अब शिष्य सारी घटना का रहस्य पा गया। उसने कहा—"मृत्वा जितं तदा किं जितम्' । वाह प्रभु ! मर कर जीते तो क्या जीते, यदि जीवित अवस्था में ही जीतते तो मैं जीतना मानता, यह भी कोई जीतना है ! गुरु शिष्य में ऐसा अगाध प्रेम था। अतः ज्ञान के सागर, भक्ति के भूधर, विवेक के भास्कर गुरु की प्राप्ति और उससे ऐसी प्रीति का होना भी पूर्वजनित पुण्यों का फल है। आजकल ऐसे शिष्य भी कहाँ होते हैं ? इस प्रकार आपने उपदेश प्रवचनादि द्वारा अनेक विषयों का तत्त्व समझाते हुए भक्त-जिज्ञासु के संशय, विपरीत भावना, अश्रद्धा आदि को मन-हृदय से हटाकर, विशुद्ध भगवत्प्रेम तथा भक्तिरस से भर देते हैं।

कलकत्ता में

ता. १६ फरवरी को आप बम्बई से प्लेन द्वारा कलकत्ता पहुँचे तथा अमर-भवन में, अपने पुराने प्रेमी-भक्त श्री नारायण भाई के पास ठहरे। दूसरे दिन गुजराती समाज के लक्ष्मी-नारायण मंदिर में सायंकाल आपने वेद विषयक प्रवचन किया।

८. नास्य क्षीयन्त ऊतयः ।

—ऋ. वे. ६–४५–३

सद्गुरु देव का–प्रभु का रक्षण कभी क्षीण नहीं होता है ।

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥

—ऋ. वे. ६–४५–३

अस्य–इस परमेश्वर की, **प्रणीतयः**–जीवात्मा को उन्नत करने की रीत, उन्नति के मार्ग आगे ले जाने के तरीके, **महीः**–महान है, **उत**–और, **प्रशस्तयः**–इसकी प्रशंसायें, **पूर्वी**–पुरातन है, सुप्रसिद्ध है, **अस्य**–इसकी, **ऊतः**–रक्षायें, संरक्षण के तरीके, **न क्षीयन्ते**–कभी नाश नहीं होते ।

प्रभु की लीला न्यारी है । **भगवान् वेद** ही कहता है **अस्य प्रणीतयः महीः** इसके जीव को आगे ले जाने के मार्ग महान हैं, अनन्त हैं । हम जिसे असफलता मानते हैं उसमें ही प्रभु ने हमारा भला सोचा हो, तो उसकी हमें कहाँ खबर है ? दुनिया की नजर में निष्फल व्यक्ति प्रभु की दृष्टि में सफल हो जाता है । जो आज असफलता है वह कल सफलता में परिणीत होती है । विभीषण अपने भाई राक्षसराज रावण की सोने की लंका छोड़कर चला आया । वह भी कहाँ ? सागर के उस पार एक पर्णकुटी में रहते हुए भगवान् राम के पास । लौकिक दृष्टि से सोने की लंका के महल निवास को छोड़कर झोंपड़ी में आना, यह जीवन की असफलता है; लेकिन परिणाम निरतिशय सफलता में जाकर रुका । वह लंका का राजा हो गया । मेरे जीवन में भी आँखें चली गईं, तो सब संबन्धी उद्विग्न हो गये । कहने भी लगे कि अरे ! अब इस छोटे बच्चे का जीवन कैसे व्यतीत होगा ? लेकिन प्रभु ने तो आँखों वाले से भी अधिक कृपा की । अतः प्रभु के मार्ग महान हैं । शिव के कल्याणकारी रास्ते को समझने वाला ही उसके सामने फरियाद करता है ।

समष्टि की दृष्टि से देखा जाय तो जब मूसलाधार वर्षा गिरती हो हम बादल को कोसने लगते हैं । लेकिन प्रभु तो पृथ्वी को शस्यसस्यश्यामला बनाने को ही तो करता है । ठंडी जब हम निर्बल को ठीक नहीं जँचती, तो हम ठंडी में उद्विग्न रहते हैं। लेकिन प्रभु धनधान्य ठीक तरह तैयार हो, इसलिए ही तो अनुकूल ऋतु निर्माण करता है । गरमी की बात भी इस प्रकार समझ लेनी होगी । बबूल के

पेड़ पर लम्बे लम्बे काँटे हमें तो अनिष्ट मालूम पड़ते हैं, लेकिन ऊँट तो उसे पापड़ की तरह चबाता है। तो ठीक समझ लें बेटा, कि प्रभु जो करता है उसमें करुणामय की कारुण्यसभर कार्यप्रणालि निहित है।

साथ में इस मंत्र में कही गई एक और बात भी नोट कर लें। **नास्य क्षीयन्त उत्तयः**—इन परमात्मा की रक्षाओं का कभी क्षय नहीं होता है, कभी नाश नहीं होता है। प्रभु के संरक्षक हाथ हमारी चारों ओर से रक्षा करते हैं। पानी, पवन एवं प्रकाश का प्रदान करके परमेश्वर युगों से प्राणी मात्र की रक्षा करता है और करेगा भी। इनके रक्षा के साधनों में न कभी कमी आई है, न आयेगी, क्योंकि जैसा वह अजर एवं अमर है, उसी प्रकार उसकी रक्षायें भी अजर अमर ही हैं। प्रभु और गुरु में अभेद होने से पूज्य सद्‌गुरुदेव की रक्षायें भी अनन्त हैं।

ता. २२ फरवरी को आप कलकत्ता से बराकर में श्री भुरामलजी के पास ठहरे। उनके पुत्र प्रह्लाद तथा सुभाष के पुत्रों के नाम अनुक्रम से प्रभात एवं सुबोध रखे गये। बराकर से आप ता. २५ फरवरी को महाशिवरात्री के दिन कलकत्ता लौट आये। रात्रि में श्री अर्जनदास दासवानी के बंधु श्री लछमनदास के घर शिवरात्री–उत्सव में पधार कर प्रवचन किया। आपके कार्यक्रम सतत् चलते ही रहते हैं, गंगाजी के प्रवाह की तरह। ता. २८ को आप कलकत्ता से लेक टाउन पधारे, क्योंकि भगवतीशरण शास्त्रीजी के राधाकृष्ण मंदिर में पाटोत्सव था। आपने **प्रवचन** किया। ता. २ मार्च को कलकत्ता में रीझूमल के पुत्र भगवान के फ्लेट का मुहूर्त कर, आप २ मार्च को प्लेन से देहली पधारे।

वृन्दावन में होली

होली–उत्सव के लिये आप ४ मार्च को मोटर से वृंदावन गये। फाल्गुन शुक्ला एकादशी के दिन वृंदावन के श्रौत–मुनि आश्रम में होली–उत्सव प्रारंभ किया। ७२ घण्टों के अखंड कीर्तन तथा बाँके बिहारीजी के दर्शन किये। होली उत्सव पर तो लोगों की इतनी भीड़ जम जाती है कि देखते ही बनती है। इस समय मैं क्वचित ही वृंदावन में होती हूँ, कारण आप जानते हैं मेरा मन। यद्यपि ब्रह्मलीन पूज्य दादागुरु रामानंदजी के जयंती उत्सव पर उपस्थित रहने के लिये मैं अवश्य चाहती हूँ, परंतु आप ही मना कर देते हैं। ता. १२ मार्च को वृन्दावन में जनता ने जमनाजी में स्नान किया। सत्यनारायण की कथा एवं महारास आश्रम में हुए।

चन्डीगढ और मंडी में

ता. २६ मार्च को आप वृंदावन से देहली आये। श्रीमति इंदिरा गांधी एवं श्री चव्हाण को आप मिले। ४-५ दिन वहाँ कुछ आराम कर, ता. २२ मार्च को आप चंडीगढ आये। डा. जयगोपाल के यहाँ ठहरे। जैसे पतितपावनी गंगा का सतत् प्रवाह, उस दिशा के सब स्थानों को पावन करता आगे बढ़ता है, आप भी, इसी प्रकार अपने भक्तों के गृहांगण को अपनी पवित्र पद-रज से प्रक्षालित करते रहते हैं। दूसरे दिन चंडीगढ से आप मंडी (हिमाचल प्रदेश) जज साहब को दर्शन देने पधारे एवं रमेशभाई के पास ठहरे। ता. २८ मार्च को शाम को पुनः चंडीगढ आ गये। ता. २९ मार्च को, सनातन धर्म-सभा में प्रधान मलहोत्राजी, उप-प्रधान सहगलजी, मंत्री बालकराम माणिकलालजी की उपस्थित में आपका मननीय प्रवचन हुआ। सायंकाल बडेल में भी आप प्रवचन कर, मोटर से देहली आ गये। ता. ३१ मार्च को श्री यशपाल मित्तलकी अगुआनी में, पठानकोट आश्रम से आरंभ हुई गोरक्षार्थ पदयात्रा देहली गंगेश्वर धाम में आई। प्रातःकाल स्वागत के बाद सबके खान-पान की व्यवस्था की गई। शाम को ६ से ७ सभा में सम्मान तथा प्रवचन हुआ। मुझे याद है गोवध निषेध के सिलसिले में आपके द्वारा शुरू किये गये आंदोलन में आप २२ बार, बम्बई से देहली और देहली से बम्बई प्लेन से जा चुके थे। एक वर्ष तो आपके जयंती उत्सव पर भी आप देहली से श्रीनंदाजी का फोन आने पर चले गये थे। महापुरुष परमार्थ में कितने अगणित कष्ट उठाते रहते हैं, बिना अपना कुछ भी देखे, इसका यह ज्वलंत उदाहरण हमारे सामने है। किसी भी सत्कार्य में अगर मानव की ऐसी दृढ़ लगन हो तो उसमें शीघ्र ही फल-प्राप्ति होती है, परंतु आज संसार मेंबिना ही कुछ स्वार्थ-त्याग या परिश्रम, स्थान-मान तथा गान (स्तुति) सब चाहते हैं। निःशंक इसी अवगुण या स्वार्थ-लोलुपता से भारत आज किसी भी प्रकार ऊँचे उठ नहीं रहा है। एक ओर इतने प्रतिष्ठित विद्वान्, संत महात्मा भारत के अभ्युदय के लिये, उपदेश करते भ्रमण करते हैं, सद्-ग्रंथों का निर्माण कर, पठन-पाठन भी कराते हैं, योग-साधना, भक्ति-द्वारा ईश्वर-प्राप्ति का पथ-प्रदर्शन करते हैं, तो दूसरी ओर इतना ही अधर्म, अनीति, भ्रष्टाचार, धन लिप्सा, गंदे कामुत्पादक चित्रों को देखना, अश्लील साहित्य पढ़ना, यह सब कलियुग की प्रत्यक्ष महिमा है, जो मानव को गाढ अंधकार के अर्णव में डुबाकर अपना राज्य स्थापित करने को उद्यत हैं। मानों, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण, स्वयं **भगवान्-वेद्**-सूर्य के रूप में प्रगट होकर, अपने आग्नेय अस्त्र द्वारा, कलि-कालिमा से व्याप्त विश्व पटल को पुनः पूर्णतया प्रकाशित करेंगे एवं रामराज्य या सत्युग की स्थापना होगी।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

गीता—४—७

मंडी में एक बार आपने प्रभु की लीला का चमत्कार बताया था कि—

पानी में मीन प्यासी

प्रभु की लीला का तो क्या चमत्कार है । और उसकी माया का तो कहना ही क्या । पानी के मध्य में बैठा हुआ मनुष्य पानी पानी करता रहे । तृषा से जलता रहे । कैसा आश्चर्य । किसी ने ठीक ही कहा है—

'मुझे देखत आवत हाँसी, पानी में मीन प्यासी ।

(कबीर)

और यही बात वेद के मन्त्र में कही गई है—

अपां मध्ये तस्थिवान्सं तृष्णाऽविदत् जरितारम् ।
मृडा सुक्षत्र मृडय ॥

—ऋ. वे. ७—८९—४

अपाम्—जल के, **मध्ये**—बीच में, **तस्थिवांसम्**—रहनेवाले, **जरितारम्**—स्तोता, को, प्रभु के भक्त को, **तृष्णा**—तृष्णा का, प्यास का, अविदत अनुभव होता है, ज्ञान होता है, प्यास सताती है, **मृड**—दया कर, **सुक्षत्र**—हे शोमन धनवाले देव वरुण, **मृडय**—मुझ पर कृपा कर ।

महर्षि वसिष्ठ वरुणदेव को अपने हृदय से स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे अनेक प्रकार से सुशोभित धनवाले भगवान राजा वरुण । मैं तो जल के बीच में भी प्यासा ही प्यासा हूँ । तू मुझपर कृपा कर ।

सच पूछा जाय तो मानव मात्र की दशा का यहाँ पर भगवान वसिष्ठ प्रतिनिधित्व कर रहे हैं । ज्ञान के भण्डार वेद होने पर भी मानवी आत्मज्ञान या ईश्वर के ज्ञान से वंचित है । सूर्य प्रकाश में मानों उसे अंधेरा नजर आता है । रत्नाकर के किनारे पर बैठा हुआ मनुष्य रत्नों के लिए तरसता है । हिमालय की चोटी पर भी उसे वर्फ नहीं दिखाई देती । मूसलधार वृष्टि में बैठने पर भी बेचारा जल की एक बूंद नहीं पा सकता । अरे प्रभु ने पैर दिये हैं, लेकिन सन्मार्ग पर पदार्पण नहीं कर सकता । कान होने पर भी प्रभु का श्रवण नहीं करता । आँखें मौजूद हैं, फिर भी कण कण में बसे हुए प्रभु को देख नहीं सकता । प्रभु तो नभ की तरह मानव के पूरे शरीर को आच्छादित करते हैं, फिर भी उसकी अनुभूति मानव को कहाँ है ! वायु की तरह प्रभु हमारी चारों ओर अन्दर

एवं बाहर सतत् गति करते हैं, लेकिन उसके स्पर्श से हम अनुप्राणित होते नहीं हैं। तेज की किरणें प्रभु के प्रभाव को स्पष्ट करती हैं, फिर भी हम उसे देखने तक की चेष्टा भी नहीं करते। पक्षी के कलरव में या झरने की कलकल में प्रभु के मधुर शब्दों का गान है, लेकिन संसार के निम्नकोटि के शब्दों को सुनने की आदत के कारण वह तो हमें सुनाई तक नहीं देता है। संसार के सभी पदार्थों के रस का हम उपभोग अवश्य करते हैं, लेकिन वह रस के दाता रसात्मक रसेश्वर के सच्चे रस के लिये हमारी रसना कभी भी रसिकत्व व्यक्त नहीं करती है। क्या मजबूरी है। प्रभु कृपा की गंगा के तीर पर बैठे हुए भी हम सदा प्यासे ही प्यासे मर जाते हैं। सचमुच जल में मीन प्यासी ही मरेगी। **अपां मध्ये तृष्णाऽविदत्**—पानी में भी प्यासे ही हम मर जायेंगे। अतः हे करुणावरुणालय तू हम पर कृपा कर। तेरे स्वरूप की झाँकी हमें करा दे। पत्थर से परमेश्वर तक, अणु से ईश्वर तक जो तेरा स्वरूप सर्वत्र व्याप्त है, उसे समझने की बुद्धि दे, देखने को नयन दे, सुनने को कान दे, आस्वादनार्थ रसना दे और उसके स्पर्श के लिये संवेदनशीलता प्रदान कर। तेरे लिये तो यह देना सहज है। हमारे लिये पाना मुश्किल है। अतः वेद के शब्दों में ही कहेंगे **मृडा सुक्षत्र मृडय।**

हरद्वार में

ता. ५ एप्रिल को गंगेश्वरधाम, देहली में रामनवमी का उत्सव मनाया गया। ब्रह्मलीन स्वामी सर्वानंदजी का जन्मदिन होने के कारण, प्रायः आप उस समय देहली में उपस्थित रहते हैं। उसके पश्चात् आप ता. ७ एप्रिल को हरद्वार गये। वहाँ सिद्धमाता सुमित्राबहन की ओर से भागवत्-सप्ताह प्रारंभ हुआ। मैं भी बम्बई से देहली आपके पास पहुँच गई थी। ता. १४ एप्रिल को भागवत सप्ताह पूर्ण हुआ। प्रातःकाल आनंदमयी माता के आश्रम में **भगवान् वेद** की आपके वरद हस्त से प्रतिष्ठा हुई। मैंने भी माताजी के दर्शन किये। बहुत संत महात्मा, विद्वान् एवं भक्तजन उपस्थित थे। उनके सादे परन्तु सुशोभित केसरी वस्त्र मंडित मंडप से मुझे प्रसन्नता हुई।

अमृतसर में

ता. १७ एप्रिल को हम हरिद्वार से अमृतसर पहुँचे। अपने रामधाम आश्रम में ठहरे। हरेक आश्रम आपकी उपस्थिति में चेतन प्रकाशयुक्त रहता है। एक प्रकार की आनंद, उत्साह, लहरी फैल जाती है, जैसे निष्प्राण शरीर में पुनः प्राण संचार, या ग्रीष्म के बाद वर्षा के दिन। अपने आश्रम के बाजू में ही, आपके

परम भक्त सूतरवाले का परिवार रहता है। जब भी आप जायँ, उसी दिन उनके वहाँ सबका भोजन होता है। नित्य प्रति आपके लिये दूध, फल आदि रुचि अनुसार मधुबहन लाती रहती है। अंतिम दिन, जाने से पहले उनके घर में पदार्पण कर आशीर्वाद देते विदा होते हैं, यह वर्षों की प्रथा अब भी चालू है। बहुत ही श्रद्धालु सेवाभावी गुरुभक्त परिवार है यह। मेरे साथ तो ये सब अति प्रेम से रहते हैं, जब भी आप के साथ जाती हूँ, वहाँ सब प्रेम की वर्षा करते हैं, इससे अधिक मैं और चाहती भी क्या ? उनके स्वर्गवासी श्री जगन्नाथजी की पुण्य-स्मृति में ठाकुरीमाता एवं प्रकाशबहन ने अखंड रामायण-पारायण रखा। हमारे यहाँ के रामधाम आश्रम के अति पुराने, निष्ठावान् सेवक स्वर्गीय श्री दौलतराम की पुण्य-स्मृति में, उनके पुत्र प्रकाश तथा नन्दकिशोर ने अखंड रामायण का पाठ रखा। भाई दौलतराम सचमुच ही आपके अनन्य सेवकों में से एक थे, जिन्होंने आश्रम का आदि से अंत तक सुचारु रूप में संचालन किया। ता. २२ एप्रिल को अमृतसर में गुरु गंगेश्वर महिला मंडल का साप्ताहिक सत्संग। उसमें भी आपने प्रवचन किया। अमृतसर का यह कार्यक्रम समाप्त कर आप देहली होते हुए, श्री तिरखाजी की मोटर से वृन्दावन गये। मैं आपके साथ ही रही। एक दिन यहाँ एक भक्त से मननीय वार्तालाप हुआ।

प्रभु को सौंपकर निश्चिन्त बनो

एक भक्त ने अपने कौटुम्बिक संघर्ष की शिकायत की। वास्तव में यह घरघर की कहानी थी। गीता में अर्जुन की द्विधा जिस प्रकार मानवमात्र की है, केवल अर्जुन की नहीं, उसी प्रकार इस सुशिक्षित सज्जन की करुणकथनी प्रत्येक प्राणि से सुसंबद्ध थी। आपने सांत्वनापूर्ण उपदेश दिया—'बेटा, ऐसी स्थिति में धैर्य धारण करो और प्रभु की इच्छा मान सब सहन करो। जो कुछ होता है, प्रभु की इच्छा से होता है। 'लेकिन प्रभु मेरे पिता नहीं मानते, बड़े होकर भी नहीं समझते।' भक्त की शिकायत हुई। 'बेटा अब उन्हें क्या समझाना है। हो गये होंगे साठ-सत्तर वर्ष की आयु के।'

'हाँ प्रभु'

'बस हमें तो "**वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः**' वे वृद्ध हैं, उनके चरित्र पर विचार नहीं करना चाहिये।'

'फिर मन को शांति नहीं मिल पाती।' भक्त की फरियाद में तथ्य था।

'हाँ बेटा, लेकिन प्रभु ने मनुष्य को विवेक दिया है। विवेक से शांति लाभ होता है। विचार ही ऐसे बनाये रखने चाहिये। देखो, नगरपालिका उद्यान बनाती

है। वह जनता के सुख के कारण है, दुःख के कारण नहीं। उसमें से दूर से गुलाब की खुश्बू लेनेवाला मौज से आनन्द लेता है। जो गुलाब लेने जाय तो कभी काँटा भी सहन करना पड़ता है। प्रभु का संसार रूपी बाग अपनी प्यारी मानव–संतान के सुख के लिये है। उसकी खुश्बू से मानवी आनन्द ले, वही सच्चा तरीका है। अन्दर घुसकर फूलों को लेनेवाले को काँटा ही नसीब होता है। उसमें प्रभु का क्या कुसूर ?'

'दूसरे तरीके से देखा जाय तो' प्रभु ने आगे कहा, 'जब कांटा गहरा चुभता है, तो दर्द भी ज्यादा होता है। यदि पाँव में जूते होते हैं, तो काँटा नहीं चुभता है। हम समग्र अरण्य काँटों से रहित तो नहीं कर सकते, किन्तु अपने पाँव में जूता अवश्य डाल सकते हैं। विवेक रूपी धर्म को धारण करने से संसार के कष्टरूपी बाण हमें स्पर्श नहीं कर सकते।'

'परन्तु प्रभु यह तो बहुत कठिन है।' भक्त ने अपनी अशक्ति प्रदर्शित की।'

'कठिन कुछ नहीं बेटा।' प्रभु ने प्यार से प्रत्युत्तर दिया, 'देखो एक भक्त कहता है—

गोकुल को जाने वाले मेरा प्रणाम कहना।
जो कोई आवे सिर पै हँस हँस के सहना॥

प्रभु के विरह में रोता हुआ गिरता, और वहाँ जाने में असमर्थ भक्त एक अन्य भक्त को कहता है कि हे गोकुल को जानेवाले मेरे भाई ! तू वहाँ मेरे प्यारे प्रभु नन्दनन्दन से मेरा केवल प्रणाम कहना। मुझ पर जो गुजर रही है, उसको कहानी प्रभु को नहीं कहना। कहीं मेरे प्यारे कमल सुकोमल नवनीत हृदय प्रभु के दिल को मेरी दुःखमय कहानी सुनते चोट न आ जाय। मैं अपने सब दुःखों को सहन कर लूँगा। मैं अपनी करम कहानी से प्रभु को दुःखी करना नहीं चाहता। इससे हमें भी शिक्षा लेनी है कि प्रभु जो हमारे प्रारब्ध में लिखा है, पिता-माता, पत्नी या पुत्र चाहे प्रतिकूल है या अनुकूल हमें शिकायत नहीं करनी चाहिये। शिकायत भी उसे की जाती है जिसे पता न हो, लेकिन हम तो उस सर्वेश्वर को शिकायत करते हैं, जो सर्वज्ञ हैं, सब जानता है। हम शिकायत करते हैं याने हम मान लेते हैं कि उसको यह पता नहीं। मानो हम उसकी सर्वज्ञता चुरा लेते हैं। इससे तो प्रभु कहीं नाराज न हो जाय, ऐसा डर सच्चे प्रेमी भक्त के हृदय में रहता है। जो प्रभु की मार में भी प्यार समझता है, वही सच्चा भक्त है। माता बच्चे को द्वेष से नहीं, प्यार से मारती है। उसको बनाना है, बिगाड़ना नहीं, तभी तो कष्ट देती है। उसी प्रकार प्रभु अपने भक्तों को उसको उन्नति–तरक्की के लिये कष्ट

देते हैं। सोने को अग्नि में डाला जाता है, कूटा जाता है, ताकि उसमें से सुंदर मनोहर गहने बने। प्रभु माता की भाँति या सुनार के समान अपनों को बनाना चाहता है। भक्त संसार की शोभा बने "विश्व का अलंकार बने, इसी हेतु से उसे भी अच्छी तरह पीटता है, कष्ट देता है।"

'यही तो प्रभु का प्यार है।' भगवन्! इसमें तो मेरे जैसा निर्बल मन का मानवी खत्म हो जाय।'

'बेटा! क्या प्रभु को यह पता नहीं? ठीक समझो। कुम्हार कच्चे घड़े को ऊपर से मारता है, तब नीचे दूसरा हाथ रखता है। संत कबीर ने भी कहा है—

'गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
अंतर बाँह सहारा दे, बाहर बाहे चोट॥

अर्थात् गुरु कुम्हार है और शिष्य घड़ा है। वह उसे गढ़ते समय अंदर का निकम्मा पदार्थ अवगुण आदि निकाल डालता है। वह बाहर से भले उस पर चोट करता हो, पर अंदर से बाँह का सहारा देकर उसे चोट सहने का बल-सहनशक्ति देता है। प्रभु भी अपने भक्त पर दुःख की या कष्टों की कृपा करता है, तब अपना वरद और संरक्षक हस्त भी साथ रखता है। वह दयालु भक्त का नाश कभी नहीं होने देता है। गीता में तो स्वयं प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं—

'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।'

गीता ९-३१

तो भाई सब प्रभु को सौंप कर निश्चिन्त बनो।

वृन्दावन में मूर्ति प्रतिष्ठा

आपके परम भक्त, धर्मनिष्ठ श्री किसनचंद मँगनानी ने वृन्दावन आश्रम में भगवान् श्री राधा-कृष्ण की, सीताराम की, भगवान शंकर की, एवं आपकी संग-मरमर (आरस) प्रतिमाएं जयपुर से बनवाई थीं, उन सब इष्टदेवों की स्थापना करने के लिये आप पधारे। उनके साथ हमारे गुरुस्वरूप **भगवान् वेद** भी थे। मेरा तो परम सौभाग्य था कि मुझे भगवान ने उनके दिव्य वस्त्र तथा शृंगार सजाने का सुमंगल अवसर दिया। मेरे साथ कमलबहन तथा कमला आसरानी भी उसमें सहायक थीं। भाई किसनचंदजी ने भगवान के वस्त्र बहुत सुंदर बनवाये थे; उस पर मोर मुकुट, मयूराकृति कुंडल, बाजूबंध, कंठहार, करधनी तथा नूपुर रूप विविध शृंगार ने, उस स्फटिक मूर्ति को जो 'स्वयंमेव सुंदरम्' है, उनको अनेकगुनी शोभा-सौन्दर्य एवं माधुरी बढ़ा दी। नहीं नहीं, उन दिव्य चेतन-मूर्तियों के प्रकाश से ही ये वस्त्र-शृंगार दीप्तिमान् बनें, ऐसा कहना सुसंगत होगा। अस्तु। पूरी तैयारी के पश्चात् आप मंदिर में पधारे। श्री किसनचंदजी ने भाव से मूर्ति-पूजन किया;

श्रीमती रतनबहन फोजदार द्वारा
श्री डॉ. करणसिंहजीको
नन्दनन्दनकी स्वनिर्मित कलाकृतिकी भेंट

जन्म शताब्दी महोत्सवमें पू. गुरुदेव को
पुष्पमाला अर्पण करते हुए जम्मू काश्मीरके
सदरेरियासत श्री डॉ. करणसिंहजी,

जन्म शताब्दी महोत्सव में प्रवचन करती हुई लेखिका
श्रीमती रतनबहन फोजदार

जन्म शताब्दी महोत्सव में प्रवचन करते हुए
भारत के सर्वोच्च न्यायालयके मुख्य न्यायमूर्ति श्री चन्द्रचूडजी,
साथमें पूज्य गुरुदेव और श्री मुरलीधर आसवानीजी

आपकी मंगल-मूर्ति को वस्त्र-परिधान मैंने किया। सबने मिलकर, उपर्युक्त पाँचों मूर्तियों की आरति की, रम्य घँटनाद से दिशायें गुँज उठीं।

सर्वदेवमयो गुरुः

पञ्चदेव उपासना हमारे उदासीन संप्रदाय में मान्य है : शिव, शक्ति, सूर्य, विष्णु एवं गणपति। इन पाँचों के समन्वयरूप आप ही हैं। जैसे मैं समझती हूँ शिव या शंकर रूप में परम ज्ञानी एवं विश्व हितैषी सद्गुरु को ही शास्त्रों ने माना है—सूर्य भी ज्ञान-प्रकाश का प्रतीक होने से सद्गुरुरूप ही है—अज्ञान, अंधकार को नष्ट कर ज्ञान-दीप-प्रकाश का कार्य है, 'गुरु' की शक्ति है ब्रह्मविद्या, जिसे भी वेदशास्त्रों ने शिव की अभिन्न शक्ति माना है, अगर शक्ति न हो तो शिव 'शव' रूप रह जायेगा। विष्णु विश्व के पालक हैं, सद्गुरु उनका ही रूप है उसमें नित्य अभेद है, गणपति तो सर्वप्रथम पूज्य देवता माने गये हैं क्योंकि प्रत्येक शुभ कार्य का प्रथम उनसे ही श्रीगणेश होता है। वे मंगलदाता हैं, इसलिये भी सद्गुरु उनका ही रूप है। अब बताइये कौन-सा देव सद्गुरु में शेष रहा ?

या काचिद् वै क्वचिदपि दशा किञ्चिदभ्यासपूरा-
दानन्दाख्या भवभयहरा स्यात् सुभक्तस्य सद्यः।
सिद्धिः सैषां सुरपितृनृणां यस्य भक्त्या भवेन्नु
तं स्वात्मानं विभववपुषं सद्गुरुं वै प्रपद्ये॥

अर्थात् दीर्घकाल तक निरंतर अभ्यास करने वाले किसी अनन्य श्रेष्ठ भक्त को जो तत्काल कोई अनिर्वचनीय भवभयहारिणी आनंदावस्था प्राप्त हो जाती है, वही उसकी सिद्धि है। देवताओं, पितरों एवं मनुष्य को यह सर्वोत्तम सिद्धि जिनकी भक्ति से प्राप्त होती है, उन ज्ञानादि ऐश्वर्यमय वपुधारी, निजात्म-स्वरूप सद्गुरु को मैं शरण लेती हूँ। यह तो फिर भी आपकी उच्चतम स्थिति का यत्किंचित वर्णन करती हूँ, जहाँ मेरे जैसे की पहुँच नहीं। आपका मानव-मात्र के साथ जो अनुपम व्यवहार है, जो सदगुण-रत्नों की दिव्य झलक आप में नित्य पाई जाती है, जिसके द्वारा सब आपकी ओर नित्यप्रति आकर्षित रहते हैं, ये तो हम प्रत्यक्ष देख, अनुभव कर सकते हैं। यह श्लोक इसी विषय को स्पष्ट रूप से प्रगट करता है—

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽति गंभीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता
रूपे सुंदरता हरौ भजनिता सत्स्वेव संदृश्यते॥

अर्थात् धर्म में तत्परता, वाणी में माधुरी, दान में उत्साह, मित्रों से निष्कपटता, गुरुजनों के प्रति नम्रता, चित्त में गाम्भीर्य, आचार में पवित्रता, गुणग्रहण में रसिकता, शास्त्र में विद्वत्ता, रूप में सुन्दरता एवं हरिभजन में लगन—ये सब गुण सत्पुरुषों में ही देखे जाते हैं।

माउन्ट आबू में

देहली का क्रम समाप्त कर ता. ३ मई को हम माउन्ट आबू पहुँचे। मैं आपके साथ ही थी, अतः सोचा कि थोड़े दिन आबू में आपके साथ रहकर ही बम्बई चलूँ, क्योंकि दुबारा निकलना अशक्य था। अतः आबू में १८ दिन आपको सेवा में रहकर ता. १२ मई को बम्बई वापस आई। जैसे पहले बता चुकी हूँ, आपको आबू में अधिक आराम उपलब्ध होता है। अपना स्वाध्याय वेद-संशोधन कार्य आदि में आप विद्वानों से संलग्न रहते हैं। उसी में आपको अति प्रसन्नता रहती है। लगातार तीन महीने आप वहाँ की शांतरम्य तपोभूमि में निवास करते हैं। ता. ४ जून को राजस्थान के शिक्षामन्त्री श्री मनहरलालजी अविनाशी धाम में आपके दर्शनार्थ आये। १८ जून को राजस्थान के राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक आश्रम में आये, तब उनको **भगवान् वेद** का दर्शन कराया तथा आपने प्रवचन किया। ऐसा अलौकिक धार्मिक ग्रंथ देखते ही सब प्रसन्न एवं आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

विद्वद् गोष्ठि

आज रोज प्रतिपदा थी। माउण्ट आबू के अविनाशी भवन की वेद स्वाध्याय शिबिर में अनाध्याय मनाया गया। विद्वानों की एक छोटी-सी लेकिन अविस्मरणीय गोष्ठि रखी गई। इसमें प्रा. श्री नवलकिशोर कांकड, भगवद्दत्त वेदालंकार, डां. विष्णु शर्मा, प्रि. नटवरलाल याज्ञिक, डां. राजेन्द्र नाणावटी, सुश्री सुवर्णाबहन एवं डां. गौतम पटेल के वेदविषयक प्रवचन हुए। गोष्ठि का आरम्भ ॐ कुमारीबहन के सस्वर वेद पाठ से हुआ।

श्री नवलकिशोरजी ने देववाणी संस्कृत भाषा में मननीय प्रवचन किया और ऋग्वेद के प्रथम मंत्र की गुरुपरक व्याख्या सुनाई। ब्राह्मणग्रंथों से अनेकानेक उद्धरण से आपने अपने प्रवचन की गरिमा बढ़ा दी। कृपालु गुरुदेव ने वहाँ हिन्दी में भी प्रवचन करने का अनुरोध किया, क्योंकि श्रोताओं में कतिपय माताएँ एवं बहनें भी थीं। डां. विष्णु शर्माजी ने वेद के मन्त्र की व्याख्या द्वारा वेद में कृष्ण-चरित्र दिखाया। गोपी वस्त्रहरण की लीला का रहस्य स्फुट किया। उसका हेतु पशु याने संसार के जीवों को पाश अर्थात् संसार के बंधन से छुड़ा देना है,

इस बात का सयुक्तिक प्रतिपादन किया । पंडितप्रवर वेदालंकारजी ने वेदमन्त्रों की आध्यात्मिक व्याख्या रोचक ढंग से सुनाई । आपने जो भी वेदमन्त्र या ब्राह्मणग्रंथों से उद्धरण प्रस्तुत किये, वे सब आपके रसनाग्रवर्ती थे । अत: प्रवचन में सविशेष प्रतिभा का दर्शन हुआ । प्रि. नटवरलाल याज्ञिकजी ने सूर्या विवाह का ऋ. १०–८५वाँ सूक्त रोचक शैली से सुनाया । श्रोताओं में से तो विद्वान लोग याज्ञिकजी को पुरोहित ही कहने लग गये । डॉ. राजेन्द्र ने महर्षि वसिष्ठ द्वारा की गई वरुण देव की स्तुति का अपनी अद्वितीय शैली में वर्णन किया । यहाँ पर रही हुई भक्ति का श्रोताओं को रसास्वादन कराया । स्वयं कवि होने के नाते एवं अनोखी वक्तव्य-शैली के कारण पूर्व की गोष्ठि की तरह इस बार भी डॉ. राजेन्द्र ने अपने वक्तव्य से गुरुदेव को प्रसन्न किया और श्रोताओं की प्रशंसा पर अपना अधिकार अबाधित है, वह सिद्ध किया । डॉ. गौतम ने अपने गुजराती पुस्तक 'वैदिक साहित्य अने संस्कृति' में से वेद की कविता में दृष्टिगोचर होनेवाले स्वस्तिक, पद्म, चक्र, छत्र, हार इत्यादि बन्धों से श्रोताओं को अवगत कराया । कु. सुवर्णा ने तो पू. गुरुदेव की शैली का अनुकरण करते हुए मन्त्रों में राधा और कृष्ण का चरित्र प्रस्तुत किया । बहन ने मन्त्रों एवं अन्य उद्धरणों के अंक इत्यादि स्मृत्युपस्थित रख कर श्रोताओं को आश्चर्यान्वित कर दिया ।

दूसरे दिन घुमकर आने के बाद पू. गुरुदेव ने सूर्यासूक्त में वधू को दिये गये एक आशीर्वाद का रहस्य स्फुट किया । आपने कहा—वेद में मन्त्र है कि—

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

—ऋ. वे. १०–८५–४६

यहाँ नववधू को श्वसुर, सास, ननद एवं देवर पर साम्राज्ञी बनने को कहा है । वेद में ऐसी बात क्यों ? क्या वधू महारानी बनकर बैठ जाय और अन्य सब उनकी सेवा ही करते रहें ? नहीं, वेद भगवान कभी ऐसी बात नहीं करेंगे । इसमें तो रहस्य है कि जैसे साम्राज्ञी की आज्ञा का उल्लंघन राज्य में कोई नहीं कर सकता है, उसी प्रकार से नववधू ! तुम भी उसी प्रकार का प्रेममय सेवापूर्ण व्यवहार अपनी ससुराल में करो, जिससे वश होकर सास–श्वसुर, ननद–देवर इत्यादि सब तेरा कहा प्रेम से माने, तेरी कोई भी बात कभी भी न टाले ।

यहाँ पर याज्ञिकजी ने प्रश्न कर लिया—'प्रभु ! वहाँ सूर्याविवाह के प्रसंग में वधू के अनुक्रम से सोम, गंधर्व, अग्नि और अंत में मनुष्य इस प्रकार पतियों का निर्देश है । इसका क्या रहस्य है ? शादी के पहले कन्या के तीन–तीन पति कैसे ?

'यह तो सरल ही है', गुरुदेव ने उत्तर दिया, वहाँ कहा है—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋ. वे. १०–८५–४०

यहाँ सोम को कन्या का प्रथम पति बताया है। कन्या जब पाँच साल की होती है, तब वह सोम की तरह—चन्द्रमा की तरह प्यारी, आकर्षक एवं मनोहर लगती है। फिर थोड़ी बड़ी होकर नृत्य-गान आदि में प्रवीणता प्राप्त करती है तब गंधर्व उसका पति माना जाता है। और जब १५–१७ साल की होती है तब उसका लावण्य पूर्णतया प्रकाशित होता है। यहाँ पर अग्नि देवता उसके रूप को देदीप्यमान बनाता है। अतः वही उसका पति है। और पति **पा रक्षणे** धातु से बनता है। याने जो पालन करता है—रक्षण करता है वही पति होता है। अब याज्ञिकजी, समझ में आ गया ?"

'हाँ ! महाराज, ठीक समझ में आ गया।' याज्ञिकजी ने स्वीकार के साथ हर्ष प्रकट किया।

अहमदाबाद में गुरु-पूर्णिमा

ता. २९ जून तक आबू में रहकर, गुरु-पूर्णिमा-उत्सव के लिये आप ता. ३० जून को अहमदाबाद पहुँचे। देवगढ बारिया के राज परिवार भी आपके पुराने परम भक्तों में से एक है। द्रुपद कुँवरबा ने बारिया में बहुत यज्ञ, पारायण, मंदिरों की स्थापना आदि धार्मिक कार्य किये हैं, उन सब सुअवसरों पर आपको आमंत्रित कर, आपके करकमल से ही उद्घाटन आदि कार्य कराते रहे हैं। मैं भी १–२ बार, माताजी के आग्रह से आपके साथ २–३ दिन वहाँ रही थी। संत श्री नटवरलालजी वहाँ की सब देखभाल करते हैं। बड़े कार्यकुशल, विरक्त, संत-सेवी सज्जन हैं।

राजमाता की पुत्री संगीता के स्वर्गवासी होने पर, सांत्वना के लिये, आप बारिया मोटर से पधारे एवं सायंकाल गोविंददेवजी के मंदिर में प्रवचन किया। दूसरे दिन, आप अहमदाबाद वापस आये। भालकिया परिवार आपका अति प्रेमी तथा श्रद्धालु है। ता. ५ जुलाई को, श्री प्रमोद भालकिया के सुपुत्र किरण के शुभ-विवाह में जाकर, नवदम्पति को आशीर्वाद दिया। ता. ९ जुलाई को गुरु-पूर्णिमा का उत्सव था। अतः मैं भी बम्बई से ५–६ दिन पहले ही आश्रम में पहुँच गई थी। प्रिय प्रभाबहन पटेल के पास, उनके अति प्रेमवश, मैं बंगले में रह जाती हूँ। वहाँ के स्नेहियों को मिलकर प्रसन्नता होती है। उत्सव निमित्त प्रायः

सब आनेवाले समय पर पहुँच ही जाते हैं। उस दिन नित्यक्रम अनुसार, **भगवान् वेद** का पूजन, आरति, नीचे सत्संग होल स्थित आचार्य श्री चन्द्र, दादागुरु रामानंदजी के प्रतिमा—पूजन—आरती होती है। प्रातः काल से १२ बजे तक आपका पूजन चलता है। १२ से ३ तक आप विश्राम कर उठते हैं। पुनः लोगों का आना—जाना शुरू हो जाता है। सायंकाल, होल में व्यास—पूर्णिमा पर आपके मनहर प्रवचन के पश्चात् आशीर्वाद देते हैं, तब उत्सव समाप्त होता है।

उत्सव के बाद एक दिन वहाँ के ट्रस्टियों की मिटिंग होती है। अतः आप २—३ दिन के बाद, अहमदाबाद से बम्बई आ जाते हैं। ता. १२ जुलाई को आप बम्बई पहुँचे।

बम्बई में

ता. १५ जुलाई को सांताक्रुज में, गोविंदधाम में कला माता के यहाँ आप गये एवं सायंकाल प्रवचन किया। वापस आते वक्त नानावटी अस्पताल में, श्रीमति लीलाबहन खन्ना को देखने गये। वेद—पाठ सीखने को उत्सुक बहनों के लिये आपने श्री वीरसेन वेदश्रमीजी को बम्बई बुलाया। उनके पास हमारी सीताबहन हरलालका, इन्द्रा सेक्सरिया, नीता सुरी आदि प्रति दिन प्रातः बँगले में सस्वर पाठ का अभ्यास करती रहीं। आप भी चाहते हैं कि सस्वर वेद—पाठ आपका शिष्य-वर्ग सीख लें तो बहुत ही सुंदर काम बनेगा। परंतु खेद की बात तो यह है कि किसी को भी दृढ भाव एवं लगन के साथ ऐसे सुकार्यों में मन—हृदय का योग नहीं होने से, उसका प्रवाह ही सर्वथा रुक जाता है। किसी भी कला के उत्कर्ष और तज्जनित आनंद की अनुभूति के लिये, चिरकालीन अविरत साधना अपेक्षित है। एक रात में कोई पारंगत नहीं हो सकता। ता. १९ जुलाई को, वेद—विद्वान श्री वेदश्रमीजी के द्वारा, बँगले में, राधाबहन दासवानी की स्वर्गीय माता देवीबहन के निमित्त वेद—पारायण प्रारम्भ हुआ। ता. २२ जुलाई को इन्द्राबहन सेक्सरिया के घर में आप पधारे। प्रातः से शाम तक कीर्तन, प्रवचन एवं अंत में वेद—घोष की मंगल ध्वनि से उत्सव पूर्ण हुआ। ता. २६ जुलाई को हमारी प्रेमी—भक्ता केटीबहन सिप्पी के सुपुत्र रमेशजी के आफिस का उद्घाटन कर आशीर्वाद दिया। अब सतत् विभिन्न कार्यक्रम का प्रवाह चलता रहा। ता. २९ जुलाई को, तुलसी निवास में, श्री हशमतराय थडानी के फ्लेट में, आपके ९९वें वर्ष की जयन्ती-उत्सव के लिये सदस्यों की बैठक हुई, जिसमें भावि कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गई। शाम को राधाबहन दासवानी की बहन विद्या की सुपुत्री की शादी में आपने उपस्थित होकर, आशीर्वाद दिया। सौभाग्यकांक्षिणी कन्या को आशीर्वाद देते हुये आपने वेद के मन्त्र का उच्चारण किया—

भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ॥

—अ. वे. २–३६–५

हे सुपुत्री, सौभाग्य को नाव पर आरूढ़ हो। यह नाव सब प्रकार के सुख और मांगलिक सामग्री से परिपूर्ण है और कभी टूटनेवाली नहीं है। इसके द्वारा तैरकर तू अपने मन से काम्य–वरणीय ऐसे वर को प्राप्त कर, दोनों साथ सत्कर्म करते हुए अन्त में संसार पार करो।

ता. १२ अगस्त को श्री दामोदर चेनराय के दौहित्र चि. संजय के यज्ञोपवित में आप पधारे। मेघराज–भवन में स्वर्गीय देवीमाता के निमित्त वेद–पारायण की समाप्ति हुई।

ता. १५ अगस्त स्वातंत्र्य–दिन के साथ, श्रीकृष्ण जन्माष्टमि का उत्सव भी बहुत ही धूमधाम से, आपकी अध्यक्षता में, तुलसी–निवास में मनाया गया। ता. १९ को, स्वर्गीय देवीमाता के पिंडदान देने के लिये, राधाबहन का सुपुत्र सुरेश तथा गोविंदानंद त्र्यंबक गये। रुद्री–पाठ, पूजन, गोदावरी–स्नानादि करके बम्बई लौट आये। ता. २० अगस्त को, भाई बालचंदजी के सुपुत्र श्री जयकिशन दास तथा लक्ष्मीबहन की कन्या भारती को मँगनी होंगकोंग निवासी जानकोबहन रामचंद के सुपुत्र जोहनी के साथ सुसम्पन्न हुई। एवं ता. २७ अगस्त को उनके शुभ–विवाह में उपस्थित रहकर, आपने नवदम्पति को आशीर्वाद दिया।

आपकी थोड़ी-सी भी सेवा जो–जो उमर लायक कन्याएं पूर्ण भाव से करतीं, उनको सत्वर ही जीवन–साथी प्राप्त हो जाते। इस सत्य का प्रत्यक्ष उदाहरण भाई बालचंद को दोनों पौत्रियों के प्रसंग हैं।

श्रीनगर में

ता. ३१ अगस्त को बम्बई से प्लेन द्वारा सीधे ही श्रीनगर पहुँचे, जहाँ आपका भव्य स्वागत हुआ। कश्मीर का कार्यक्रम प्रथम से हो निर्धारित हो चुका था, अतः अब १ सितम्बर से शुरू हो गया। श्रीनगर के श्रीचंद्र–चुनार में, श्रीचंद्र नवमी उत्सव मनाया एवं साथ ही नव निर्मित भवन का उद्घाटन आपके वरद करकमल से हुआ।

श्री चन्द्र-चूनार

इस वर्ष मई महिने में जब कुछ दिन अमृतसर रहें, तब श्री चन्द्र-चूनार के वयोवृद्ध महंत पूज्य श्री कृष्णदासजी आपके दर्शनार्थ श्री विश्वनाथ सहगल के साथ पधारे थे। ता. २१ सितम्बर भाद्रपद शुक्ल ९मी को जगद्गुरु आचार्य श्री चन्द्र

प्राकट्य दिन था। ता. २१ सितम्बर, भाद्रपद शुक्ला नवमी को हमारे उदासीन संप्रदाय के आदि गुरु, साक्षात् शंकरावतार जगद्गुरु श्री चन्द्राचार्य का प्राकट्य दिन था। महन्तजी के दर्शन मुझे प्रथम बार ही उस दिन हुए। मुख पर तपश्चर्या का तेज था। उनकी प्रबल इच्छा थी कि आप उस शुभ अवसर पर, कश्मीर पधारे एवं श्री विश्वनाथ सहगल तथा अन्य धर्म प्रेमियों के अटूट प्रयत्न द्वारा, श्री चन्द्र-चूनार में जो विस्तृत मन्दिर-रचना हो रही है, उसका अवलोकन करें एवं **भगवान् वेद** की स्थापना भी आपके वरद करकमल से हों।

ये सब बातें सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता एवं गौरव हुआ। आप तो उदासीन संप्रदाय के शिरोमणि हैं। आपकी अपूर्व वेद विद्या के साथ-साथ अलौकिक स्मृति शक्ति, एवं गिरा-गंगा का सौन्दर्य सर्वथा अप्रतिम अवर्णनीय है। और इतने महान् होने पर भी आपकी असीम नम्रता के आगे हम सब नत-मस्तक हैं। अस्तु। आचार्य श्रीचन्द्र सचमुच मेरे अनेक जन्मों के सद्गुरु अवश्य हैं। ऐसी अचूक प्रतीति मुझे कई बार हुई है। बैठे बैठे ही अंतःप्रेरणा हुई कि श्रीचन्द्र-चूनार में इतना भारी महोत्सव होने जा रहा है, तो आचार्यश्री का चित्र भी रखा जाय। मैंने सहसा महंतजी से अपनी नम्र-भावना प्रदर्शित की। श्री विश्वनाथ सहगल ने तथा आपने भी कहा कि रतन बहन बहुत सुन्दर चित्र बनाती है, उन्होंने श्रीचन्द्रजी तथा स्वामी रामानन्दजी के पहले भी ३-४ चित्र बनाकर देहली राजवाना एवं वृन्दावन के आश्रम में दिये हैं। सुनकर महन्तजी प्रसन्न हुए एवं मुझे कहा कि अवश्य बना लेना। श्री विश्वनाथ के साथ तो मेरा बहुत पुराना परिचय है गुरु-बन्धु के नाते। उन्होंने भी मुझे आपके साथ काश्मीर आने का हार्दिक आमंत्रण दिया। कुछ समय बैठकर दोनों आपकी आज्ञा लेकर चले गये।

मैंने आचार्य श्रीचन्द्र का मनोरम चित्र पहले ही श्री विष्णु शर्मा के साथ भेज दिया था, उसकी भी अनावरण विधि आपने की। ता. २ सितम्बर को श्रीचन्द्र चुनार में प्रातःकाल **भगवान् वेद** का पारायण प्रारंभ किया। पश्चात् रामायण के अखण्ड पारायण में आप उपस्थित हुए। उस दिन सायंकाल से श्री विश्वनाथ सहगल के निवास-स्थान में सत्संग शुरू किया। ता. २ सितम्बर को श्री विश्वनाथजी के घर में **भगवान्-वेद** श्री चन्द्रचुनार से पधारे। सबने मिलकर पूजन आरति की, प्रसाद वितरण के पश्चात् वेद-पारायण की समाप्ति की गई। ता. ९ सितम्बर को वृन्दावन से गोस्वामी पुरुषोत्तमजी आये। श्रीचन्द्र चुनार के महन्त श्रीकृष्णदासजी महंत कृष्णानन्दजी गिरि, महंत ईश्वरानन्दजी गिरि, ज्ञानगिरिजी तथा हनुमान मन्दिर के महन्त माधवदासजी श्रीनगर के कीर्तन में उपस्थित थे। ता. १० सितम्बर को प्रातःकाल श्रीचन्द्र-चुनार में आचार्य श्रीचन्द्र भगवान को रोट प्रसाद का भोग लगाया।

सायंकाल श्री विश्वनाथजी के घर का सत्संग पूर्ण कर प्रसाद वितरण किया। काश्मीर का यह सवा दो महिने का लम्बा कार्यक्रम था। ता. २१ सितम्बर को श्रीविश्वनाथ के घर मिटींग हुई, जिसमें विश्वनाथजी धर्मवीर वत्राजी, महंत कृष्णदासजी एवं आपके एवं श्री ईश्वर शर्मा तथा विज्ञानानन्द को महन्त श्री कृष्णदासजी के साधक शिष्य रखे जायँ। ता. २२ सितम्बर से नवरात्री प्रारंभ हुई। श्री विश्वनाथजी के निवास स्थान में दुर्गा सप्तशती पारायण, रामायण-नवाह्न पारायण एवं टेपों के द्वारा वेद-पारायण शुरू किया गया। रात्रि में आधा घण्टा आपने प्रवचन किया। ता. २९ सितम्बर को दुर्गाष्टमी के दिन दुर्गा सप्तशती का पारायण पूर्ण हुआ। यज्ञ भी किया गया। दूसरे दिन उसी स्थान से रामायण नवाह्न के पारायण तथा गीताजी के पारायण पूर्ण हुए। साथ साथ प्रवचन भी समाप्त किये। ता. १ अक्तूबर को दशहरा का उत्सव श्रीनगर में मनाया गया। इस प्रकार श्रीनगर का सुन्दर कार्य समाप्त कर, ता. ३ अक्टूबर को आप जम्मू पधारे एवं श्री दयालसिंहजी के पास ठहरे। उनके पास दो दिन रहकर ता. ५ अक्टूबर को आप अमृतसर पहुँचे।

अमृतसर में

ता. १० को प्रातः आप दुर्गेयाना एवं लक्ष्मीनारायण मन्दिर में पधारे। सायंकाल श्री विश्वनाथ सहगल के सुपुत्र बीरेन्द्र की मँगनी में आशीर्वाद दिया। ता. १३ अक्टूबर को निर्मल—वेदांत संम्मेलन में गये एवं प्रवचन किया, विषय था :— **'क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।'** अर्थात् महापुरुषों की कार्यसिद्धि किन्हीं साधन सामग्रियों पर निर्भर नहीं रहती, अपितु उनके सत्त्व पर, पौरुष पर निर्भर रहती है। नीतिकार वैदिक नीति-उपदेश के निर्देश प्रसंग में मर्म की यह बात भला कैसे भूल सकते हैं! वे कहते हैं :

सदा सत्त्वपरैर्भाव्यं सद्भिर्विजय काङ्क्षिभिः।
द्रुघणेनापि गा जिग्ये मुद्गलः सत्यवान् रणे॥

—वेदोपदेशचन्द्रिका पृ. ३३७

अर्थात् विजय की आकांक्षा रखनेवाले सज्जनों का कर्तव्य है कि सदैव सत्त्वनिष्ठ रहें, अपने पौरुष पर निर्भर रहें। सत्त्ववान् मुद्गल ऋषि ने रण में ठूँठ से भी गायें जीत लीं। यह वैदिक कथा इस प्रकार है : मुद्गल नाम के एक ऋषि बहुत—सी गायें पाले हुए थे। उनकी गायों पर कुछ चोरों की दृष्टि गड़ गई। एक दिन अवसर देखकर ऋषि की अनुपस्थिति में चोरों का एक गिरोह आया और मात्र एकबूढ़ा बैल छोड़ गायें चुरा ले गया। ऋषि आये तो देखकर आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने सोचा कि चोरी हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ दीखता, क्योंकि कठिनाई

से मैं दो–तीन घण्टे ही घर पर नहीं था । क्या किया जाय ? बूढ़े बैल को देख उन्हें ध्यान आया कि बैलगाड़ी जोतकर पीछा करें और चोरों को पकड़ निकालें। पर गाड़ी में दो बैल चाहिये । दूसरा कहाँ से लाया जाय ! सामने ठूँठ खड़ा था । ऋषि की दृष्टि उस पर पड़ी । महासत्त्वशाली तो वे थे ही । उठाया उसे, दूसरे बैल की जगह जोत लिया और तेजी से गाड़ी लेकर दौड़ पड़े । गाड़ी बड़ी तेजी से चल रही थी । मानो मुद्गल की उड़ानों से वह स्पर्धा कर रही हो । आखिर उन्होंने चोरों के गिरोह को पकड़ ही लिया । उनका इस सत्व से सराबोर प्रभावशाली रूप और ढ़ंग देख चोर भीतर से डर तो गये थे । फिर भी उन्होंने अपनी दृढ़ता दिखाने का यत्न किया । ऋषि के पास मात्र लाठी का साधन था । उन्होंने उस कला की अपनी सारी अभिज्ञता की बाजी लगा दी और अन्ततः चोरों को सर करके ही छोड़ा । चोर प्राण लेकर भाग गये और ऋषि अपनी सारी गायें लेकर आश्रम में सकुशल लौट आये । उनके सत्त्व से ठूँठ ने भी बैल का काम कर कमाल कर दिया । कथासूचक ऋचा—

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्टाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत् सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥

—ऋ० १०।१०२।९

अर्थात् (सेवादि सहायकों के अभाव में विजय पाने की बात का उपहास करते किसी मित्र को उत्तर देने के लक्ष्य से) मुदगल ऋषि द्रुघण की त्रिष्टुप से स्तुति करते हैं; हे सखे ! उस द्रुघण को देखो । वह गाड़ी में जुता हुआ है । वृषभ का मित्र है । वृषभ जितना काम करता है, उतना ही वह भी करता है । संग्राम के बीच मारने योग्य सबको मारकर सुख से सोता है । अर्थात् वह निश्चेष्ट होकर बैठता है, इसी द्रुघण के बल पर मैंने चोरों के साथ संग्राम में चोरी गई सैंकड़ों गायों को जीत लिया, वापस पा लिया । सत्त्व के बल पर मैंने उन्हें जीता । मेरे सत्त्व की प्रतिमूर्ति द्रुघण को देखो ।

मैंने सोचा यह ऋग्वेद को उपदेशात्मक कथा आप पर पूर्णतया घटती है । आपने भी जो **भगवान् वेद** का विस्तृत प्रचार प्रसार सर्वत्र इतनी वृद्धावस्था में किया, यह आपके सत्त्व या पुरुषार्थ का ही प्रत्यक्ष प्रमाण है । इतना ही नहीं, वेद वाङ्मय जैसा रत्न भंडार कितनी उदारता से विश्व के कोने–कोने में घूमकर, स्वयं प्रदान कर आप प्रसन्न हुए हैं, भला इससे बढ़कर संसार में कौन होगा, जो आपके असीम औदार्य–शौर्य की स्पर्धा कर सके !

उसी दिन ता. १३ अक्तूबर को आप अमृतसर से शिवप्रकाश को मोटर में लुधियाना पहुँचे एवं श्री यशपाल के यहाँ ठहरे। ता. १४ को लुधियाना में श्री मुकुंद हरिजी के रजत-जयंती कीर्तन संमेलन में आप गये तथा प्रवचन किया।

मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व

प्रभु ने अपने प्रवचन में मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व पर विशेष विस्तार किया। विश्व में ८४ लाख तो योनियाँ हैं। इनमें स्वकर्मानुसार आत्मा भटकती रहती है। उनमें मनुष्य जन्म की प्राप्ति कितनी दुर्लभ है? जरा गणित के माध्यम से जोड़ लगाओ तो भी पता चलेगा कि मानव जन्म कितना दुर्लभ है। ज्यादा नहीं, सिर्फ एक एक बार हो यदि सभी योनियों में से पसार होना पड़े, तो भी मनुष्य बनने से पहले अगणित जन्म व्यतीत हो जायँ।

कहीं प्रभुकृपा से मनुष्य जन्म तो मिला, लेकिन विकलांग रहे तो? कहीं आँख नहीं है या किसी को पाँव नहीं है। किसी की जिह्वा चलती नहीं है, तो कोई सुन ही नहीं सकता है। प्रभु ने हमें सर्व इन्द्रियों से संपन्न बनाया। अब पूर्ण मनुष्य का रूप तो मिला। किन्तु पूर्णतया मनुष्य न बने तो? याद रहे कि काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, क्रूरता ये तो पशुता के लक्षण हैं मानवता के नहीं। मनुष्य जन्म प्राप्त करने के बाद मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति नजर में ही नहीं आया तो?

आमतौर पर यदि अच्छा खाना-पीना, हिरना-फिरना, बीबी-बच्चे, बाग-बगीचे या घर-महल, मोटर-गाड़ी मिल गया, फिर कौन पूछता है प्रभु को? कौन याद करता है ईश्वर को? भौतिक सम्पत्ति एवं विषयों की प्राप्ति होने पर किसीको ईश्वर याद नहीं आता है। यह सब होने पर भी संत समागम हो और उसका रंग चढ़ने से संसार से मुक्ति की कामना हो तो वही मानवजीवन का सार्थक्य है। लेकिन यह तो दुर्लभ या दुर्लभतर नहीं, किन्तु दुर्लभतम है। कहा गया है कि—

> दुर्लभं त्रयमेवैतद्-देवानुग्रहहेतुकम्।
> मनुष्यत्वं मुमुक्षत्वं महापुरुषसंश्रयम्॥

देव याने ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त होने वाले मनुष्यत्व, मुमुक्षत्व और महापुरुष का आश्रय ये तीन अत्यंत दुर्लभ हैं।

मनुष्य जीवन पाकर कुत्ते बिल्ली की तरह खाने-पीने में या भोगविलास में जीने की जगह हमें मुक्ति के प्रति अवश्य गति करनी चाहिये, अन्यथा यह दुर्लभतम मनुष्य देह दुँपट्टे में गोबर बाँधने वाले गँवार की तरह निष्फल चली जायेगी।

राजवाने में समाधि-दर्शन

जब भी आप अमृतसर आते हैं अचूक लुधियाना होते हुए अपने ब्रह्मलीन सद्गुरु रामानंदजी के समाधि दर्शनार्थ अवश्य जाते हैं। सद्गुरुदेव के अनंत उपकारों की उज्ज्वल निहारिका शिष्य के स्वच्छ हृदय-पटल पर सदैव प्रकाशित होती हुई गुरुमुखचंद्र के दर्शन करती है। नक्षत्रगण के मध्य में जो राकेश की स्थिति है, वही शिष्य के उपकृत हृदयाकाश में सद्गुरु की है, होनी ही चाहिये। गुरु-शिष्य का पारस्परिक विशुद्ध प्रेम ही दोनों के सम्पूर्ण ऐक्य का प्रतीक है। आप विश्व-वंद्य होने पर भी, आपके हृदय में गुरु के प्रति कृतज्ञता है, यह आप की असीम गुरु-भक्ति, नम्रता की द्योतक है। सचमुच जब स्वामीजी की अनेक विध प्रशंसा-स्तुति आपके श्रीमुख से सुनती हूँ। तब मेरा हृदय भी उत्तुंग भाव से अभिषिक्त हो, नयनों से अश्रु रूप में छलकता है, आपके पादपद्मों को जाता है, प्लावित करता है। अपने परम सेवक श्री गुरुदेवसिंह, श्री यशपाल तथा भीमसेन थापर एवं अन्य भक्तों के साथ मोटर में राजवाना गये। वहाँ पर समाधि के दर्शन कर, भोग लगाया, एवं वापस लुधियाना आ गये। ता. १७ को संक्रांति मनाई गई, सभी भक्तों को संक्रांति सुनाने के बाद आपने आशीर्वाद दिया। दण्डी स्वामी के निगम-निकेतन वेदमंदिर में एवं पश्चात् वेद भारती के सत्संग में आप आ गये और दोनों जगह प्रवचन किया। इस प्रकार, अमृतसर, लुधियाना, रजवाना का कार्यक्रम समाप्त कर, ता. २८ अक्टूबर को आप देहली में अपने गंगेश्वर धाम में ठहरे।

देहली में दीपावलि उत्सव

ता. २० अक्टूबर को दीपोत्सवी-उत्सव मनाया गया। उस दिन अपने प्रवचन में दीपोत्सवी का सुंदर अर्थ समझाते हुए मानव-जीवन का चरम लक्ष्य ज्ञान-प्राप्ति होना चाहिये, वह कैसे हो, इस पर प्रकाश डाला। आपने कहा कि यदि मानव अपना प्रत्येक कर्म वेद के शुभविचारों से प्रभावित करके करे, तो मानव-धर्म का उदय हो सकता है और धर्म पर समाज आरूढ़ हो सकेगा। हमारा जन्म किस प्रयोजन के लिये है, यह जानकर, मानव-जाति यदि अपने कर्मों को वेदोक्त रीति से करें तो अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है। वेद में कहा है कि—

देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे।

—यजुः १-१

अर्थात् जगदुत्पादक सविता देव हम सबको श्रेष्ठतम कर्म के लिये अच्छी प्रकार संयुक्त करें। सर्वोत्तम कर्म के लिये सर्वोत्तम विचारों की आवश्यकता है। मानव अपने विचारों से ही उन्नति या अवनति को प्राप्त होता है। वेद मनुष्यों

को श्रेष्ठतम विचारों को प्रदान करता है। ईश्वर की मंत्रणा हमें वेद-मंत्रों से ही प्राप्त होती है, देखिये वेद कहता है—

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्। —यजुः २५-१५

अर्थात् देवों की श्रेष्ठतम सरल स्वभावयुक्त, विद्वानों की—जो कल्याणकारिणी सुमति है, वह हमें प्राप्त हो। वह बुद्धि तभी प्राप्त होगी, जब हम श्रेष्ठ कर्मों को करेंगे। अतः मंत्र पुनः कहता है—

देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम्।

अर्थात् देवों की जो दानशील, परहितकारी एवं उदार वृत्तियाँ हैं, वे सर्व प्रकार से सदा हमारी बुद्धि में प्रवेश करती रहे। और जब वे दैवी वृत्तियाँ हमारी मति को दैवी सुमति रूप में परिवर्तित करेगी, तब हमें दुष्ट-जनों की या दुष्ट वृत्तियों की कुसंगति त्याज्य ही प्रतीत होगी और इस स्थिति में—'**देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम्**'। हम देवताओं की श्रेष्ठ मित्रता भी प्राप्त कर सकेंगे—अन्यथा नहीं। ज्ञान, विज्ञान, प्रेरणा तथा श्रेष्ठ कर्मों की यह वेद-वाणी माता स्वरूपा है। इसकी सेवा निष्फल नहीं जाती, क्योंकि यह वरदाता है। अथर्ववेद की यह माता गायत्री की कितनी भावयुक्त स्तुति है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

—अथर्व. १९-१२-२

वेद ने इस मंत्र में लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओं के मूलाधार तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मचर्यस्=तेज एवं मोक्ष, इन आठ कामनाओं में मानव मात्र की सब कामनाओं का समावेश हो जाता है। कोई दीर्घ-जीवन, तो कोई धन, कोई संतान, तो कोई सांसारिक ऐश्वर्यो से परे मोक्ष की कामना करता है। वेद से सब सुलभतापूर्वक प्राप्त होता है। वेद मानव-जीवन की सब समस्याओं का हल प्रस्तुत करता है, यह स्वयं भगवान वेद कहते हैं। इनमें अर्थ का फल काम है और धर्म का फल मोक्ष है।

अतः आज के मंगल अवसर पर मैं सबको यही आशीर्वाद देता हूँ कि आपके हृदय में **भगवान् वेद** अपनी दिव्य ज्योति से अज्ञान अंधकार को हटा दें एवं आपका जीवन वेद ज्ञान-दीप्ति से निरंतर प्रकाशित, पुलकित तथा शांति-सौरभ से परिपूर्ण हो।

आज के दीपोत्सवी के उज्ज्वल दिन को हम सब भक्त-जन अति विनीत भाव से अपने गुरुरूप वेद भास्कर को प्रणाम करते हुए यही प्रार्थना करते हैं कि आप के श्रीमुख से मुखरित वेद-गिरा का अखंड गंगा-प्रवाह हमारे बाह्यांतर दोषों का निवारण करता हुआ, शांति शीतलता भरता हुआ, अपने सहज प्रणव-कलरव गान द्वारा अनंत आनंद की अनुभूति करायें । क्योंकि वेद का सर्वप्रथम नाद ही ऊँकार या प्रणव है, जिसमें से यह समस्त नाम-रूप जगत् की उत्पत्ति हुई है और उसमें ही लय भी ।

वृन्दावन में

दीपावली के बाद कुछ दिन देहली ठहर के आप ता ५ नवंबर को वृन्दावन पधारे । अब इस पुण्यभूमि में पदार्पण करते ही वेद-पारायण प्रारंभ होने लगे । ता. ८ नवंबर को सालानपुर निवासी मीठू तथा कुसुम बहन अग्रवाल की ओर से दो दो वेद-पारायण शुरू हुए एवं ता. १६ को उनकी पूर्णाहुति की गई । दूसरे दिन श्री शंकर टीकमदास बेलानी की ओर से वृन्दावन में भगवान्-वेद का पारायण शुरू किया, एवं ता. २५ को पूर्ण हुआ । ता. १९ नवंबर को सोमवती अमावस्या के दिन आश्रमवासियों ने जमनाजी में स्नान किया ।

ता. २० नवंबर को श्रीमती इंद्रा नरेश सेक्सरिया की ओर से आनंदमयी माता के आश्रम में, परम भागवत श्रीकृष्णशंकर शास्त्री ने भागवत्-सप्ताह का प्रारम्भ किया और ता. २६ को पूर्ण किया ।

प्रभु के गुणगान करो

वहाँ प्रवचन में आपने बताया कि—

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षद् अति द्विषः ॥

—ऋ. वे. १०-१८७-१, अथर्व० ६-३४-१

क्षितीनाम्-मानवों के लिये, **वृषभाय**-इच्छित कामनाओं को बरसानेवाले, अभीष्ट प्रदान करनेवाले, **अग्नये**-अग्निदेव के लिये, **वाचम्**-अपनी वाणी को, अर्थात् स्तुति एवं स्तोत्रों को, **प्र ईयर**—प्रकृष्टता से प्रेरित करो-प्रेमसे प्रभु के गुनों का गान करो, **सः**-वह प्रभु **नः**-हमारे, **द्विषः**-आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं को **अति पर्षत्**-बहुत दूर कर देगा ।

यहाँ **भगवान् वेद** हमें आज्ञा दे रहा है कि हमें प्रभु के गुणगान प्रकृष्टता से उत्तमरूप से करना चाहिये । कीर्तन में बैठे और ताली बजाते समय शर्म आये तो प्रभु कैसे प्रसन्न होंगे ? अन्यत्र भावावेश में आकर या किसी को दिखाने के लिए

या प्रसन्न करने के लिये हम नृत्य भी कर लेते हैं, किन्तु प्रभु के सामने कीर्तन में नाचने को जी नहीं करता है, हमें लज्जा आती है। ऐसा नहीं होना चाहिये। मीराँबाई पाँव में घूँघरू बाँधकर राजवंश की कन्या एवं वधू होने पर भी नाची थी तो प्रभु भी मानो उसके इशारे पर नाचते थे। गोपियों का भी वही हाल था। अतः **भगवान् वेद** तो कहता है : **वाचम् प्र ईरय**-वाणी याने स्तुति प्रकृष्टता से प्रेरित करो, प्रेम से भावावेश में आकर प्रभु के गुणों का गान करो। यह प्रभु कैसे हैं ? **क्षितीनाम्-वृषभाय** याने मनुष्यों कीं कामनाओं को वृष्टि करनेवाले। आपने आकाश से बादलों द्वारा होती हुई वृष्टि देखी होगी। मनुष्य जो कल्पना या कामना करता है, इससे तो कई गूना अधिक जल बादल पृथ्वी पर बरसाता है। प्रभु भी बादलों को तरह मनुष्य को कामनाओं की पूर्ति के लिए सतत अपनी कृपावृष्टि करता है। अतः **भगवान् वेद** प्रभु को अपना वृषभ याने वृष्टि करने वाला यहाँ बताता है। प्रभु हमारी प्रत्येक कामना को पूर्ण करनेवाला है, अतः हमें उसको अत्यधिक प्रेम-स्तुति करनी चाहिए।

वह आगे क्या करेगा ? वेद कहता है **सः नः पर्षद् अति द्विषः-स नः द्विषः अति पर्षत्**-वह हमारे शत्रुओं को बहुत दूर कर देगा। हमारे दो प्रकार के शत्रु होते है : (१) बाह्य (२) आन्तरिक। दोनों में आन्तरिक काम, क्रोधादि षट् विकार महान शत्रु है। वह हमारा यह जन्म तो खराब करता है, लेकिन नया जन्म भी नष्ट भ्रष्ट कर देता है। अतः दोनों प्रकार के शत्रुओं से मुक्ति पाने के लिये हमें प्रभु की शरण लेनो चाहिये। प्रभु के गुणों का प्रेम से गान करना चाहिये। वही हमारे आन्तर-बाह्य शत्रुओं से हमें पार लगायेगा। श्रीमद् भागवत भी हमें प्रभु के गुणगान करने को प्रोत्साहित करता है।

सूरत में

२४ दिन श्री वृन्दावन धाम की लीलाभूमि में निवास कर, ता. २९ नवम्बर को आप सुरत गये। श्री प्रभुदास गंगादास रेशमवाले के यहाँ ठहरे। आपके साथ स्वामी सुवेदजी, निजानन्दजी, गोविन्दानन्दजी, गोपालानन्दजी आदि ८-१० संत थे। यह आपका बहुत पुराना प्रेमी, संत-सेवी, भक्त परिवार है। ता. ३० को उनके घर में एवं शाम को सनातन-धर्म सभा में आपका सत्संग शुरू हुआ। मुझे भी अपने शताब्दि-महोत्सव के दरम्यान **भगवान् वेद** के वस्त्र-शृंगार, वेद-पाठियों के लिये वस्त्रादि को खरीदने के लिये सुरत जाना था, अतः आपके पहुँचने पर मैं भी तीन-चार दिन के लिये आ गई थी। श्री हसमुखभाई ने मेरे लिये अलग कमरा सब सुविधायुक्त रखा था। समस्त परिवार इतना प्रेमी, कर्तव्य-निष्ठ तथा विवेकी है कि मुझे अपने ही घर-परिवार का प्रत्यय हुआ। श्री सुरेश

भाई, नन्दुभाई एवं मेरी प्रिय रसिलाबहन ने दो दिन मुझे अपनी मोटर में साथ लेकर, सब खरीदी करा ली । एक दिन भोजन के उपरान्त, श्री हसमुखभाई की रेयोन की फेक्टरी में ले गये । बड़े प्रेम से उन्होंने वहाँ बननेवाली साड़ियाँ, कपड़ा आदि मुझे बताया । उनमें से **भगवान् वेद** के वस्त्र, पीघवरु एवं रूमाल का कपड़ा दिया । उन सबके सौजन्ययुक्त मधुर व्यवहार को मैं भूल नहीं सकती । अस्तु । ता. ५ दिसम्बर को श्री रेशमवाले के निवास–स्थान में, १४ वेद–विद्वानों द्वारा **भगवान् वेद** की वेद–मंत्रोच्चार सहित मधुपर्क से पूजा हुई । ता. १० नवम्बर को सनातन–धर्म–सभा के एवं घर के प्रवचन पूर्ण किये । काफी संख्या में जनता प्रातः आपके दर्शनार्थ आती रही । ता. ११ को मैं आपके साथ बम्बई आ गई । आप श्री बालचंद के पास ठहरे ।

तुलसी–निवास में जयंती–उत्सव प्रारम्भ

ता. २३ दिसम्बर को, तुलसी–निवास में आपकी ९९वीं जन्म–जयंती उत्सव का प्रारम्भ, हमारे वंदनीय स्वामी कृष्णानंद गोविंदानंदजी द्वारा हुआ । उस दिन १०८ रामायण–नवाह पारायण शुरू किया गया । प्रतिवर्ष के क्रमानुसार, तुलसी निवास में श्री देवीबहन हशमतराय के घर में कमिटी के सदस्यों की एक मिटींग हुई, जिसमें आगामी शताब्दि–समारोह में, भागवत–सप्ताह परम भागवत श्री डोंगरेजी द्वारा, १०८ वेद–पारायण, पंचदेव यज्ञ, स्थान आदि पर विचार–विमर्श हुआ । ता. २१ दिसम्बर को तुलसी–निवास में रामायण–नवाह–पारायण की पूर्णाहुति हुई । दूसरे दिन तुलसी–निवास में ब्राह्मण भोजन, हनुमान–चालिसा तथा सुंदरकांड का पाठ हुआ । ता. २३ दिसम्बर को, अति धन्य मंगल अवसर पर, हमारी महिला मंडल की केटीबहन सिप्पी, कला गोपालदास, लक्ष्मीबहन लोकूमल, लखीबहन, लक्ष्मीबहन गोविंदराम, सीताबहन हरलालका, इंदिराबहन नागपाल, निर्मलाबहन आदि ने प्रातः से शाम तक चालू मधुर कीर्तन किया । शाम को हॉकी ग्राउण्ड में आपकी ९९वीं जन्म–जयंती बहुत ही सुंदर रूप में मनाई गई । प्रतिवर्ष आपकी ही अंतःप्रेरणा से, नये–नये सुरम्य अध्यात्मभाव सूचित आपका कलापूर्ण सिंहासन बनता है । इस वर्ष शेष–शय्या समुद्र के बीच बनाई थी एवं दोनों ओर अत्यन्त आकर्षक एक–एक नागकन्या अपने हाथ में प्रज्वलित दीप धर के बैठी थी, मानों वे नागदमन के पश्चात् अपने रक्षक–उद्धारक भगवान् श्रीकृष्ण की आरती कर रही हो । शेष का पंचमुखी फन आपका शिर–छत्र रूप में अत्यन्त शोभा देता था । आसपास प्रफुल्लित नील–कमल आपके दर्शन से धन्य बन, अपनी परिमल–माधुरी को फैला रहे थे । प्रेक्षक वर्ग भी इस दिव्य दृश्य से अति प्रभावित एवं प्रसन्न थे । और मेरे आनन्द की तो अवधी ही कहाँ ! मन तो चाहता है कि सारी हृदय–भावनाओं

का रस-रंग इस अगाध चरित-सागर में उंडेल कर, स्वयं भी उसमें विलीन हो जाऊँ, परन्तु जब तक आपके श्रीचरण इस शस्य श्यामला भारतभूमि पर हैं, तब तक तो मुझे और भी दिव्य रसास्वादन को लोलुपता से रहना ही पड़ेगा। अंत के दो वर्ष से आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहने से, आपको अधिक परिश्रम न हो इस ढंग से ही हम क्रम बनाते हैं। क्योंकि सदा एक-सी स्थिति किसी की भी नहीं रहती। ता. २४ दिसम्बर को तुलसी-निवास में सुंदर सुमन-मंडप बनाया था, परन्तु अस्वस्थता के कारण आप नहीं पधारे। उस दिन हमारा मन बहुत ही उदास रहा। आकाश में सूर्य भी बादलों से आच्छादित हो ही तो जाता है, परन्तु क्षण-दो क्षण के लिये ही। वैसे ही आपकी लीला है। किसी की भी समझ में नहीं आती। ता. २६ दिसम्बर को प्रेमपुरी अध्यात्म सत्संग मंडल में प्रातः आपका जयंती-उत्सव भावपूर्वक मनाया गया।

अग्निदेव से प्रार्थना करते हुए हमलोग बंधु, मेधा, यश, ब्रह्म, चारों वेद, रत्न, भग (ऐश्वर्य) तथा व्रत इन आठ रत्नों की माँग करते हैं। होने पूरे 'नव-रत्न' चाहिये। यह नवाँ अमूल्य रत्न है सद्‌गुरु, जिसमें इन आठों रत्नों को सहज दीप्ति है। अतः आज हम इस मंगल दिन पर आपसे यही विनम्र प्रार्थना करते हैं कि आप ही हमें नवम् रत्न रूप में प्राप्त हों। जैसे संसार अपनी ऐश्वर्य-निधि को बहुत ही छिपाकर रखता है, ताकि किसी की कुदृष्टि न पड़े, हम भी आपको इसी प्रकार कुशलतापूर्ण ढंग से रखेंगे। चार ऋषि एवं चार महान देवों के मध्य में हमारे निष्काम-प्रेमरूपी वस्त्र से, हमारे हृदय रूप डिब्बे को लपेट कर रखेंगे। हैं न सुंदर युक्ति! इन आठ पहरेगीरों के समान हैं, जो विषय-विकार अहंकार रूप लुटेरे को भीतर प्रवेश ही नहीं पाने देंगे। ऐसे मंगल दिन पर संतान जो माँगे पिता देता ही है प्रसन्नता के साथ। आप तो हमारे सर्वस्व ही हैं, इस नाते या बहाने तो हम आपसे बहुत कुछ माँग सकते हैं। परन्तु हम तो संतोष केवल एक इसी रत्न से ही मान लेंगे। दोगे न प्रभु!

'मधुरादपि मधुरतरा मथुरानाथस्य माधवस्य कथा' आप साकार ब्रह्मरूप हैं, अतः आपकी कथा मधुर से भी अत्यन्त मधुर है। हम आपके लोकोत्तर चरित का वर्णन करते हुए नित्य संतुष्ट एवं आनंदमग्न रहते हैं। आप रस रूप हैं—**रसो वै सः।** (तैतरीय उप-२-७)

राजा को छोड़कर केवल उनके धन-भंडार को ही चाहनेवाले लोग मूर्ख हैं। फिर आप तो जगाधिराज हैं, हम आपके अतिरिक्त कुछ चाहते ही नहीं। अतः दयालु! इतना ही करो—

'मैं तुम्हें निहारा करूँ, तुम मुझे देखते रहो।'

९. धियो विश्वा विराजति।

—ऋ. वे. १-३-१२

भगवान् वेद कहते हैं कि—

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना।
धियो विश्वा विराजति॥

—ऋ. वे. १-३-१२

सरस्वती–विद्या, सरस्वती, **महो अर्णः**–महान सागर है। सागर में अगणित रत्न हैं। देवदानव और मानव सब कोई युगों से रत्न निकालते रहते हैं, फिर भी सागर आज रत्नाकर ही है। उसमें रत्नों की कोई कमी न थी, न है और न हो सकेगी। माता सरस्वती का यही स्वरूप है। दुनिया में सरस्वती याने विद्या के क्षेत्र में कितने ही नित्यनूतन आविष्कार किये जायँ, फिर भी उस **विद्या स्वरूप** में न कोई न्यूनता आती है, न क्षति होती है। भाई! विद्या तो अक्षयपात्र है, वह न कभी रिक्त हुआ है, न होगा। सरस्वती को महान सागर कहकर **वेद भगवान्** यही प्रतिपादित कर रहे हैं कि विद्या का क्षेत्र सदैव हरा–भरा है और रहेगा। आप नियमित रूप से उसमें से फल–प्राप्ति के सफल प्रयत्न करते रहें। सरस्वती **प्र चेतयति केतुना**–है। अपने केतु याने ध्वज से सर्व को प्रेरणा देती है। भगवान के मन्दिर पर लगी हुई धजा जिस प्रकार दूर दूर से देखनेवाले भक्त के मन में गन्तव्य स्थान का निर्देश करती है, और हृदय को आनन्दविभोर बनाती है, उसी प्रकार सरस्वती भी अपनी सदैव उन्नत ध्वजा से प्राणीमात्र को प्रेरणा देती है कि 'हे मेरे प्यारे बच्चों! मेरे मन्दिर में आओ, मेरी गोद में आओ, मैं तुम्हारी बुद्धि को सात्त्विक बना दूँगी—स्वयं प्रकाशित बना दूँगी।' **धियो विश्वा विराजति**–वह विश्व के प्रत्येक प्राणी की बुद्धि को प्रकाशित करती है। एक बार बुद्धि में माता सरस्वती के विद्या के निर्मल चन्द्र का प्रकाश हो जाता है, तो फिर अज्ञानरूपी तिमिर का वहाँ सदैव लोप हो जाता है। चन्द्र के सामने अन्धकार की क्या हैसियत है, कि वह क्षण भर भी टिक सके! इस प्रकार वैदिक सरस्वती की उपासना करनेवाला विद्यार्थी ऐहिक सुख

समृद्धि और शांति को तो प्राप्त करेगा, उससे बढ़कर पारलौकिक मुक्ति का भी भोक्ता बनेगा। ज्यादा तो क्या, मुक्ति उसकी दासी बन जायेगी। तो हमें विद्या का उपार्जन वैदिक आदर्शों के साथ करना चाहिये।

इसके साथ जब मैं प्रभु के चरित्र का चिन्तन करती हूँ, तो मुझे साक्षात् सरस्वती का चरित्र नजर आता है। आप स्वयं सरस्वती स्वरूप हैं, और अपनी बुद्धि-विद्या से समग्र विश्व में प्रकाशते हैं। अतः **'धियो विश्वा विराजति'** यह वेद विधान आपके बारे में भी चरितार्थ होता है।

उदासीन सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक भगवान् सनकादिक थे। वे अपने योगवल से सदा पांच वर्ष के ही कुमार बने रहते थे। ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान विशारद, धर्मशास्त्रों के आचार्य एवं मोक्षधर्म के प्रवर्तक हैं। एक बार ऋषियों के तत्त्वज्ञान सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में विस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥
निवृत्तिः कर्मणा पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्वृत्ति समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्॥

(महा शान्ति० ३२९/६-७)

अर्थात् विद्या समान कोई नेत्र नहीं, सत्य के समान कोई तप नहीं, राग के समान कोई दुःख नहीं, एवं त्याग के समान कोई सुख नहीं। पाप कर्मों से दूर रहना, सदा पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषों के-से आचरण एवं सदाचार का पालन करना—ये सर्वोत्तम श्रेय के साधन हैं। प्राणीमात्र के सच्चे हितैषी कुमार चतुष्टय के पावन पादपद्मों में शत कोटि प्रणाम एवं उन्हीं परमहंस परम्परा के वंशज अविनाशी मुनि आचार्य श्रीचन्द्र अराध्यचरण दादागुरु स्वामी रामानन्दजी तथा आदित्यवर्ण आपको आज, नूतन वर्ष के मंगल प्रभात को हम विनीत भाव से वंदन करते हुए बस यही प्रार्थना करते हैं कि हम सब आपके सुचरित की सुबोधिनी-कौमुदी को प्राप्त कर, अपना जीवन श्रेष्ठतम बनायें।

नया वर्ष : सन् १९८०

जयन्ति के बाद कुछ दिन बम्बई में ठहरकर, ता. ८ जनवरी को आप प्लेन से दिल्ली पधारे। उन दिनों में भी आपका स्वास्थ्य पूर्णतया चिन्तारहित तो

नहीं था । १५ जनवरी को मकर-संक्रान्ति का उत्सव मनाया गया । १ फरवरी को, देहली में लाल किले के पास ब्रह्मलीन श्री हरिहर बाबा की पुण्य-स्मृति में चल रहे उत्सव में आप पधारे । वहाँ परम विरक्त स्वामी रामसुखदासजी भी मिले । दूसरे दिन दिल्ली में गुरु रामराय दरबार की शाला के उत्सव में आपने उपस्थित होकर, छात्रों को आशीर्वाद दिया । तीन सप्ताह दिल्ली में रहकर आप एक दिन के लिये अमृतसर गये । आपके परम भक्त-शिष्य, श्री विश्वनाथ सहगल के सुपुत्र वीरेन्द्र के विवाह में उपस्थित रहकर, नवदंपति को आशीर्वाद दिया । चारों वेदों की टेपें उनको प्रसाद रूप में देकर, सचमुच उनके दांपत्य जीवन को सरस बना दिया । सुंदर-मधुर ऋचाओं की दिव्य संगीत सुरावली, उनके जीवन के पद-पद को रसमय आनंदमय बनायेगी, अंत में अद्वैत के अनंत रसार्णव में दोनों को विलीन कर दें तो क्या आश्चर्य ! शादी जैसे मंगल अवसर पर, जागतिक भेंट-सौगात की कोई कमी नहीं होती । परंतु ऐसी अनोखी, अपूर्व प्रसादी एवं वह भी आप जैसी महान विभूति के करकमल से जिस भाग्यवान् युगल को प्राप्त हो, उसका जीवन क्यों न सुरभित और वैभव संपन्न बनेगा !

ता. १० फरवरी को आप प्लेन से कलकत्ता पधारे । आपके शिष्य श्री अर्जनदास दासवानी के सुबंधु श्री लछमनदास के सुपुत्र सुनील तथा नारायणदास के पुत्र रमेश की यज्ञोपवीत-विधि में उपस्थित होकर दोनों को आशीर्वाद दिये । सायंकाल मीरा विश्वनाथ मंदिर में वैदिक सम्मेलन का आयोजन था, वहाँ आपने वेद विषयक अति मननीय प्रवचन किया । साथ साथ, राधा-कृष्ण, सीताराम तथा उमाशंकर के मंदिरों का एवं नूतन सत्संग हॉल का उद्घाटन किया ।

अन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः ।

सम्पत्ति एक के पास से दूसरे के पास चली जाती है ।

आज धन के प्रयोग के बारे में प्रभु से चर्चा चल पड़ी । धनी को क्या करना चाहिए ? संपत्ति का स्वभाव क्या है ? धन का दान करना यह कैसा मार्ग है और उस मार्ग पर चलने से क्या लाभ है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर प्रभु ने केवल एक ही वेदमन्त्र उद्धृत करके बताया । वह मन्त्र है—

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्
द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा
अन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥

ऋ. वे. १०-११७-५

तव्यान्—धन से अतिशय समृद्ध पुरुष को चाहिये, **नाधमानाय**—याचना करने वाले मनुष्य को वह, **इत्**—अवश्य, **पृणीयात्**—दान करे। **द्राघीयांसम्**—अतिलम्बे, **पन्थानम्**—सुकृत के मार्ग को, **अनुपश्येत्**—देखें। **रायः**—धनसंपत्ति, **ओ उहि**—निश्चित रूप से ही, **रथ्याः**—रथ के, **चक्राः**—चक्रों की भाँति, **आवर्तन्ते**—चारों ओर घूमती है, ऊपर नीचे फिरती हैं और, **अन्यम् अन्यम्**—एक व्यक्ति से दूसरे के पास, **उपतिष्ठन्त**—चली जाती है।

वेद में धन या संपत्ति का वाचक शब्द है रयि। यह शब्द 'रा' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है 'देना'। मतलब कि जो दूसरे को दी जाती है वह रयि याने धन है ! धन अपने संग्रह के लिये नहीं, किन्तु दूसरे को देने के लिये है, यह उदात्त भावना भारत की भूमि में वेदकाल से चली जाती है।

यह मंत्र स्पष्टतया प्रतिपादन करता है कि जो धनी है, अतिधनी है याने जिसके पास अपने और अपने परिवार के सुख-चेन के लिए खर्च करने के बाद भी धन बचता है, उसे माँगनेवाले को धन देना चाहिये। सुकृत का मार्ग बड़ा लम्बा होता है। मनुष्य को जीवन में बहुत ही लम्बी मंजल काटनी होती है। अब वह यदि इस प्रकार माँगनेवाले को कुछ भी न दें, तो किसे पता है कि जन्मजन्मान्तर में वह माँगनेवाला बनेगा और आज जो माँगता है वही देनेवाले के रूप में उपस्थित हो जायगा ! **भगवान् वेद** यहाँ **द्राघीयांसं पन्थाम्**—अत्यन्त लम्बे मार्ग का निर्देश करते हैं, उसका यही रहस्य है।

यदि हम किसी को धन नहीं देंगे तो ? चिन्ता मत करो। लक्ष्मी आपकी बंधी हुई हरहमेश आपके पास ही रहेगी, यह कौन कह सकेगा ? वह न किसी की दासी हुई है न होगी। वेद भगवान यह समझाने के लिये एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे रथ का चक्र निरन्तर घूमता रहता है। कभी एक भाग ऊपर रहता है तो कभी दूसरा। उसी प्रकार संपत्ति भी निरन्तर एक मनुष्य के पास से दूसरे मनुष्य के पास चली जाती है। अतः मनुष्यमात्र का

इति कर्तव्य है कि स्वसंपत्ति का यथायोग्य विनिमय करने के बाद दान के रूप में अन्य से संविभाग करना चाहिये ।

आपका वेद–प्रचार–प्रसार कार्य की अविरत धारा विश्व के कोने–कोने में बहती भूमि को पावन करती रहती है । कलकत्ता के म'रा विश्वनाथ मंदिर में **भगवान् वेद** का पारायण काशीजी के विद्वानों द्वारा प्रारंभ हुआ । यह पारायण क्या, यह तो वेद कल्लोलिनी गंगा का सुमधुर घोष, या द्विज–मधुरों के गुँजारव में विश्व वाटिका में वसंत का संदेश, या विरही प्रणयिनी को पियु–मिलन की आशा देती कोयल की कुहुक है ! कि या फिर अपने प्रियतम का उद्गार । इस ऋचा रूपी सुरभित सुमनावली से सम्मानित, सत्कारित करती देवांगना की यह प्रशस्ति है, क्या उपमाएं दी जाय ।

वस्तुतः श्री कृष्ण मुखारविन्द से निर्झरित वेद, विश्व संगीत स्वरूप ही हैं, क्योंकि वे स्वयं 'राग' या संगीत ही हैं । दूसरे अर्थ में राग या प्रेम स्वरूप होने से भी, समस्त विश्व उनकी प्रेम–परिमल से, प्रेम–रंग–तरंग से ही आप्लावित है ।

ता. १४ फरवरी को महाशिवरात्रि का उत्सव खूब धूमधाम से मनाया गया । ता. १६ फरवरी को सूर्यग्रहण था । उसका असर वैज्ञानिक–दृष्टि से इतना खतरनाक था, कि बहुत दिन पहले से ही, वर्तमान–पत्रों तथा डॉक्टरों ने जनता को सूचना दे रखी थी कि ग्रहण के समय कोई भी व्यक्ति उसकी ओर दृष्टि न करे, क्योंकि ऐसा करने से दृष्टि चली जाने की संभावना थी। उस समय दरम्यान खाना–पीना तो प्रथम भी वर्ज्य ही होता है। ता. १५ को आप देहली से मोटर में वृंदावन गये । भाई भूरामल अग्रवाल की ओर से, श्रौत–मुनि निवास में वेद–पारायण शुरू किया गया । उसकी पूर्णाहुति ता. २५ फरवरी को हुई । उसी दिन संस्कृत विद्यालय का शिलान्यास भाई भूरामलजी द्वारा हुआ । दूसरे दिन अखंड कीर्तन तथा होली उत्सव प्रारंभ हो गया ।

स्वामी रामानंदजी की जन्मजयन्ती

फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी को मेरे दादागुरु ब्रह्मलीन स्वामी रामानंदजी महाराज की जन्म–जयंति थी । उस दिन प्रतिवर्षानुसार, भक्त–संत-मंडल ने उनके चित्र का अर्चन पूजन कर, भावपूर्ण कीर्तन किया । प्रसिद्ध कीर्तनकार कृष्णप्रेमी श्री दलीलीजी खलीली राम पञ्चवानी, गंगारामजी के कीर्तन तो व्रजभूमि की श्रीकृष्ण लीलाओं को मूर्तिमान कर देता है । आपने कईबार 'कीर्तन' शब्द को अति सरल सुंदर सारपूर्ण भाव बताया कि कीर्तन शब्द को उलटा करने से 'नर्तकी' बनता है, जिसका अर्थ है

माया। अतः कीर्तन करने से माया नर्तकी की चूड में फँसा हुआ जीव, भगवद्रस में डूब कर लाख चौरासी के चक्कर से छूट जाता है, क्योंकि भगवान के चरण-कमल में प्रविष्ट सुभागी जीव को माया कदापि स्पर्श नहीं कर सकती, यह नितान्त सत्य है। एक बार आपने गुरु का महत्व दर्शाया था कि—

गुरु का महत्त्व

गुरु शब्द सांसारिक प्रक्रिया में आज रूढ़ हुआ है। जो पढ़ाता है वह हमारा शिक्षक याने गुरु है। शाला में शिक्षक गुरु, संगीतशाला में उस्ताद। उसी प्रकार सब लोग गुरु का अर्थ मानकर चलते हैं। गुरु सांसारिक बातें सिखायें और उनके द्वारा उदरपूर्ति हो ऐसा एक भाव संस्कारवश समाज में दृढ हो रहा है। लेकिन यह तो पानी से भी पतला अर्थ है।

गुरु वास्तव में सांसारिक बातें नहीं, किन्तु पारमार्थिक रहस्यों के उद्घाटन के लिये होता है। संसार की जाल से माया एवं ममता से, आवागमन के चक्कर से जो हमें छुड़ाये वही सच्चा गुरु है। हम तो अपनी अहंकार ग्रंथि के साथ संत या गुरु के पास जाते हैं। कभी कभी आर्थिक या सांसारिक बातों से महापुरुष को तंग करते हैं। यह उचित नहीं है। सच कहा जाय तो आत्मार्थी शिष्य के अभाव में महान गुरु के जीवन में रिक्तता बनी रहती है। जब आत्मजिज्ञासु आता है, तब सहस्रसूर्य की भाँति ज्ञानप्रकाश फैला कर जन्म जन्म के अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने में गुरु अपना सच्चा सामर्थ्य दिखलाते हैं। कमी हमारी है। हम आत्मकेन्द्री एवं स्वार्थी बनकर जाते हैं और परिणामतः सच्चा ज्ञान नहीं पा सकते हैं। उल्लू को सूर्य नहीं दिखाई दे, उसमें सूर्य का क्या कसूर? यहाँ तो उल्लू आँखें बन्द कर लेता है। हम भी उल्लू की भाँति सद्गुरु पाकर भी मुक्ति के दर्शन नहीं कर पाते हैं।

होली उत्सव : 'सजना' की होली

ता. २ मार्च को होली-उत्सव सानंद मनाया गया। उस दिन मुख्यतया व्रज में एवं अन्य स्थानों में भी सब नर-नारी, रंग की पीचकारियाँ भरभर, एक दूसरे पर छाँट कर, बहुत ही मस्ती में सारा दिन झूमते रहते हैं। बड़ा आनंदोत्सव होता है यह। सजन कसाई परमात्मा के परम भक्त थे। श्रीकृष्ण के साथ उनकी हार्दिक प्रीति थी। परंतु वे होली खेलने नहीं जाते थे। एक दिन प्रभु ने उससे पूछा, 'सजना' क्या आज मेरे साथ होरी नहीं खेलोगे? तो सजना ने

क्या ही सुंदर भावपूर्ण प्रत्युत्तर दिया; कहा, 'मेरे जीवनधन ! आपके साथ अवश्य खेलूँगा । और इन क्षुल्लक बनावटी रंगों से क्या होली खेलूँगा ! मैं तो अपने रक्त की एक एक बूँद से आपके साथ अवश्य खेलूँगा और एक दिन सचमुच ही अकस्मात् एक घर की दीवार उनके सिर पर टूट पड़ी और सजना का सिर फूट जाने से उनके प्राणपखेरू प्रभु की अनंत ज्योति में मिल गये । धन्य है ऐसे अद्‌भुत प्रेमी !

वृन्दावन में नेत्र यज्ञ

ता. ९ मार्च को श्रौत मुनि आश्रम में नेत्र-शिविर लगाया । भिवानी हरियाणा आदर्श नेत्र अस्पताल के डॉ. मदन मोहन गुप्ता को दस दिन के लिए आश्रम में नेत्र रोगियों की चिकित्सा तथा इलाज के हेतु बुलाया गया । दरम्यान १३० नेत्र ओपरेशन, ७०० को चश्मा, सबको दूध भोजन तथा औषधि निःशुल्क दिये गये । इतना ही नहीं, उनको वापस जाने का किराया तक दिया गया । वृन्दावन निवासी श्री नानकचंद द्वारा यह अति श्लाघनीय परमार्थ कार्य नियोजित था एवं श्री परस-राम गुप्ता ने इसमें पूरी तरह सहायक बन, उसको सफल बनाया । आजकल ऐसे अनेक मानवतापूर्ण कार्य, भारत में विभिन्न स्थानों पर दानी सज्जनों एवं परोपकार-रत डॉक्टरों के साथ अनेक सेवाधारी व्यक्तियों के सहयोग से हो रहे हैं । यह बड़े आनंद का विषय है । दूसरे दिन ता. १० मार्च को गुरु गंगेश्वर देवकी भोजराज महाविद्यालय का उद्‌घाटन, मथुरा जिलाधीश श्री वी. डी. माहेश्वर द्वारा, पूज्य स्वामी श्री अखंडानंदजी की अध्यक्षता में किया गया, जब वहाँ के सभी प्रतिष्ठित संत-विद्वान् उपस्थित थे । श्रीमती देवकी बहन भोजराज आपके परम पुराने भक्तों में से एक थीं । उनकी इच्छा के अनुसार, इस कन्या महाविद्यालय तथा होमयोपैथिक औषधालय की स्थापना की गई । साथ साथ, ता. १४ मार्च को उपर्युक्त औषधालय में एलोपैथिक दवाखाना भी शुरू किया गया, ताकि उभय प्रकार के चिकित्सक प्रयोग हो सके । इस प्रकार तीन सप्ताह श्री वृन्दावन में रह-कर, ता. १७ मार्च को रामनवमी उत्सव के लिये आप दिल्ली पधारे ।

चैत्रो नवरात्र प्रारंभ

रामनवमी उत्सव निमित, गंगेश्वर-धाम आश्रम में १०८ रामायण नवाह पारायण एवं साथ ही भगवान्-वेद का पारायण भी प्रारंभ हो गया । सायंकाल श्रीमती रामादेवी एवं कृष्णदासजी के प्रवचन हुए । ता. २३ मार्च को पटेल नगर शक्तिबाग से भगवान्-वेद तथा भगवान राम की शोभा यात्रा खूब धूमधाम से निकलकर, गंगेश्वर धाम में पूर्ण की गई । ता. २४ मार्च, रामनवमी के दिन,

रामायण नवाह तथा वेद पारायण की पूर्णाहुति की गई। उस उत्सव के साथ, ब्रह्मलीन स्वामी सर्वानंदजी महाराज को जन्म जयंति मनाई गई। दूसरे दिन, यज्ञ तथा यमुना स्नान हुआ। ता. २७ मार्च को, कश्मीर के डॉ. करणसिंहजी आश्रम में आपके दर्शनार्थ पधारे एवं वेद में नवधा भक्ति इस विषय पर प्रवचन किया।

वेद में नवधा भक्ति

भगवान् से भक्ति की याचना करते हुए वेद कहता है :

'तस्य ते भक्तिवांसः स्याम' अथर्व० ६-७९-३

अर्थात् हम सदा पूर्वोक्तगुणविशिष्ट आपकी अतिशय भक्ति से युक्त रहें।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में भगवत्प्राप्ति के लिए भक्ति की साधना का अनेक प्रकार से उपदेश दिया है—सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः (६-३१), श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः (६-४७), चतुर्विधा भजन्ते माम् (७-१६), भजन्ते मां दृढव्रताः (७-२८), भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव (८-१०), भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया (८-२२), भजन्त्यनन्यमनसः (९-१३), नमस्यन्तश्च मां भक्त्या (९-१४), पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति (९-२६), ये भजन्ति तु मां भक्त्या (९-२९), भजते मामनन्यभाक् (९-३०) न मे भक्तः प्रणश्यति (९-३१), अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् (९-३३), इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः (१०-८), तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् (१०-१०), भक्त्या त्वनन्यया शक्यः (११-५४), मद्भक्तः सङ्गवर्जितः (११-५५), यो मद्भक्तः स मे प्रियः (१२-१४-१६), भक्तिमान् यः स मे प्रियः (१२-१७), भक्तिमान् मे प्रियो नरः (१२-१९), भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः (१२-२०), भक्तिरव्यभिचारिणी (१३-१०), भक्तियोगेन सेवते (१४-२६), स सर्वविद् भजति माम् (१५-१९), मद्भक्तिं लभते पराम् (१८-५४), भक्त्या मामभिजानाति (१८-५५)।

श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में भक्ति के नौ भेद बताये गये हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

—भाग० ७५-२३

एक ही मन्त्र में नवधा भक्ति

वेद में भी विभिन्न स्थलों पर भक्ति के इन नौ भेदों का पृथक्–पृथक् वर्णन तो है ही, जिसका दिग्दर्शन आगे किया जायेगा, यहाँ भगवान् वेद का वह प्राचीन मन्त्र उद्धृत किया जाता है जिसमें भक्ति के उपर्युक्त सभी प्रकारों का अद्भुत कौशल के साथ एकत्र ही समावेश किया गया है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

—ऋ० १–८९–८

अर्थात् (देवाः !) हे देवगण ! हम, (भद्रम्) भजनीय, सेवनीय, आराधनीय, विद्वानों की 'कल्याणानां निधानम्' इस उक्ति से कल्याणमय तथा 'मङ्गलं मङ्गलानाम्' इस उक्ति से परममङ्गलमय परमात्मा को, (कर्णेभिः शृणुयाम कानों से सुनें अर्थात् उनके दिव्य गुण, कर्म और चरित्र को सुनें । तात्पर्य यह है कि हमारी श्रोत्रेन्द्रियाँ निरन्तर हरिकथा–श्रवण में संलग्न रहें । (यजत्राः) भगवान् के अर्चक हम भक्त, (स्थिरैः अङ्गैः) कर-पदादि अंगों से, तथा (तनूभिः) अवयवी शरीरों से संयुक्त होकर, (तुष्टुवांसः) भगवत्कीर्तन करते हुए, (देवहितम्) देव के, भगवान् के हितार्थ, भगवत्प्रीत्यर्थ, (यत्, इण्, गतौ शतरि रूपम्, आयुः) प्रवहमान जीवन को, (व्यशेम) प्राप्त हों अर्थात् हमारे जीवन का लक्ष्य लौकिक स्वार्थसिद्धि नहीं अपितु भगवान् की सेवा द्वारा उनकी प्रसन्नता प्राप्त करना हो । इस प्रकार श्रवण आदि साधनों से भक्ति के अनुष्ठान के फलस्वरूप नैसर्गिक प्रेम का उदय होने पर, (अक्षभिः) नेत्रों से, (पश्येम) अपने आराध्यदेव भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करें ।

इस मन्त्र में प्रयुक्त 'शृणुयाम' पद से श्रवण का, 'तुष्टुवांसः' से कीर्तन का, 'देवहितम्' और 'आयु' से आत्मनिवेदन का तथा 'यजत्राः' से अर्चन भक्ति का प्रतिपादन हुआ है । इसी प्रकार 'स्थिरैरङ्गैः' पदों से परमात्मा की स्थावर मूर्तियों, मन्दिरों में स्थापित प्रतिमाओं तथा जंगममूर्ति महात्माओं की पादसेवा सूचित की गयी है । भाव यह है कि भगवान् की स्थावर-जंगम द्विविध मूर्तियों की पाद-सेवा में ही हाथों की सार्थकता है । मस्तक भगवान् के निवासाश्रय सम्पूर्ण प्राणियों की वन्दना करके अपने को सार्थक करें और यह शरीर प्रभु के दास्य एवं सख्य भाव का साधन हो । 'शरीर' पद मन का भी उपलक्षक है, अतः इससे मानस स्मरण भक्ति भी प्रतिपादित होती है । इस प्रकार भक्ति के सभी प्रकारों का निर्देश इस मन्त्र में हुआ है ।

इसी प्रकार शुक्ल यजुर्वेद का एक मन्त्र देखिये जिसमें भक्ति के श्रवण-कीर्तनादि सभी भेद एक साथ दृष्टिगोचर होते हैं—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ —शु० यजु० ३६-२४

प्रकाशदाता सूर्य प्रभु की प्रत्यक्ष ज्योतिर्मय मूर्ति है, अतः इस मन्त्र में साधक उसी रूप में अपने इष्टदेव की प्रार्थना कर रहा है कि—हे भास्करात्मक प्रभो! (तत्) पूर्वमन्त्रों से प्रतिपादित, (देवहितम्) देवताओं के प्रिय, (शुक्रम्) शुद्ध पापरहित अथवा तेजोमय (चक्षुः) समस्त विश्व के प्रकाशक, नेत्रस्थानीय आप, (पुरस्तात्) पूर्वदिशा में, (उच्चरत्—उच्चरति) विश्वकल्याण के लिए उदित होते हैं। (शतं शरदः जीवेम) हम आपकी सेवा के उद्देश्य से सौ शरद् ऋतुओं तक अर्थात् सौ वर्ष जीवन धारण करें, (शतं शरदः शृणुयाम) सौ वर्षों तक आपकी गुणगाथा का श्रवण करते रहें, (शतं शरदः प्रब्रवाम) सौ वर्षों तक आपके पराक्रमों का प्रवचन, पुनः-पुनः वर्णन या कीर्तन करें तथा अन्त में, (शतं शरदः पश्येम) श्रवण, कीर्तन आत्मनिवेदन आदि की महिमा से नैसर्गिक प्रेमदशा में सौ वर्षों तक आपका दर्शन करें, श्रवणादि साधनों से साध्य भगवद्दर्शन हेतु सहजानुरक्ति चिरकालस्थायिनी हो। इसके पश्चात् भक्त अपनी पूर्ण शरणागति अनन्य निष्ठा का परिचय दे रहा है—(शतं शरदः अदीनाः स्याम) सौ वर्षों तक हम किसी के सम्मुख दीनता न दिखावें। जब एकमात्र प्रभु ही दाता हैं, विश्वम्भर हैं, विश्व के बड़े-से बड़े राजा-महाराजा, सेठ—साहूकार सब उसी के द्वार के भिखारी हैं, तो एक भिक्षुक से क्या माँगे, क्यों माँगे? अतः हम एक उसी प्रभु से मनोरथ पूर्ति की प्रार्थना करें, अन्य से नहीं। 'शतं शरदः' अर्थात् सौ वर्ष, ये पद सुदीर्घकाल के ही द्योतक हैं। किन्तु भक्त की प्रार्थना है कि (भूयश्च शरदः शतात्) सौ वर्षों से भी अधिक काल तक यह अनन्य शरणागति, साध्य—साधन भावापन्न भक्ति की धारा हमारे हृदय में प्रवाहित होती रहे।

ईश्वर प्रेरित प्रारब्ध के अनुरूप जीवन आदि क्रियाएँ स्वतः सिद्ध हैं, उनके लिए प्रार्थना का विशेष महत्त्व नहीं है। अतः श्रवण—कीर्तनादि भक्ति की सतत स्थिति के लिए प्रभु से प्रार्थना ही इस मन्त्र का प्रतिपाद्य है। प्राचीन भाष्यकारों ने उपर्युक्त दोनों मन्त्रों की अन्धत्व—बधिरत्वादि—दोष—निवारण—परक जो व्याख्याएँ की हैं, वे चमत्कृतिशून्य होने से विशेष आदरणीय नहीं जान पड़तीं। अतलस्पर्श वेद-रत्नाकर में गहराई तक डुबकी लगाने पर ही आत्मनिवेदनादि बहुमूल्य चमत्कृतिपूर्ण भावरत्न अधिगत होते हैं।

एक ही मन्त्र द्वारा नवविध भक्ति का निरूपण करनेवाले दो वेदमन्त्र ऊपर उद्धृत किये गये । अब भक्ति के नौ भेदों में से क्रमशः श्रवण आदि प्रत्येक भेद के दिग्दर्शक वेदवाक्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

श्रवण-भक्ति

इन्द्रस्य तु वीर्याणि प्रवोचम् । (ऋ० १.३२.१)

अर्थात् मैं मन्त्रद्रष्टा ऋषि इन्द्र के पराक्रमों का प्रवचन वर्णन करता हूँ ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम् । (ऋ० १.१५४.१)

अर्थात् भगवान् विष्णु के पराक्रमों का प्रवचन करता हूँ ।

इन दोनों वेदवाक्यों में 'नु' और 'कम्' पादपूरक निपात हैं । प्रवचन सदा श्रवण-सापेक्ष ही होता है । श्रोता के उपस्थित रहने पर ही प्रवक्ता प्रवचन के लिए उत्साहित होता है । कोई सुननेवाला न हो तो प्रवचन निरर्थक, अरण्यरोदन ही होगा । अतः जहाँ-जहाँ 'वोचम्' 'वोचेम' आदि वक्तृत्वमूलक क्रियापद आये हों, वहाँ-वहाँ 'श्रृणु' 'श्रृणुयाः' आदि श्रवणार्थक क्रियापदों का अध्याहार करना ही होगा । इस प्रकार उपर्युक्त दोनों वाक्यों का अर्थ यह हुआ कि 'मैं मन्त्रद्रष्टा ऋषि इन्द्र तथा विष्णु के पराक्रमों का प्रवचन करता हूँ, साधकगण सुनें ।' यदि लिङर्थ विवक्षित होगा तब यह अर्थ मानना होगा कि 'यदि आप लोग श्रवण करना चाहें तो मुझे अनुमति दें । मैं इन्द्रादि के पराक्रमों का प्रवचन आरम्भ करूँ ।'

ज्ञातव्य है कि पूरे ऋग्वेद में 'वोचम' पद का १९ बार तथा 'वोचेम' पद का ६ बार जहाँ-जहाँ प्रयोग हुआ है वे सब मन्त्र वचोभङ्गी से नवधा भक्ति के प्रथम भेद श्रवण के ही प्रतिपादक हैं, क्योंकि प्रवचन का श्रवण से नियत साहचर्य है ।

कीर्तन-भक्ति

प्रवचन में किसी के गुण-कर्मादि का अनेक प्रकार से कथन ही अभिप्रेत होता है, अतः कीर्तन को प्रवचन का पर्याय माना जाय, तो अर्थ की दृष्टि से कोई अंतर नहीं पड़ता । इस दृष्टि से उपर्युक्त श्रवण-सम्बन्धी सभी वेद वाक्य कीर्तन के सहज ही प्रतिपादक हो जाते हैं ।

कीर्तन शब्द का अन्य अर्थ है गुणगान । इस अर्थ में कीर्तन भक्ति के निर्देशक कतिपय वेद-वचन निम्नलिखित हैं—

गायन्ति त्वा गायत्रिणः। (ऋ० १.१०.१)

सुष्टुतिमीरयामि। (ऋ० २.३३.८)

बृहदिन्द्राय गायत। (ऋ० ८.८९.१)

इन्द्रमभि प्र गायत। (ऋ० ८.९२.१)

प्र गायत्रेण गायत। (ऋ० ९.६०.१)

प्र गायताभ्यर्चाम। (ऋ० ९.९७.४)

उपर्युक्त सभी वेदवचनों का अर्थ सुस्पष्ट ही है। अर्थ का विचार करते समय यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं के नाम से सर्वत्र ईश्वर का ही ग्रहण अभिप्रेत है। इसका विशेष विवरण वेदोपदेश–चन्द्रिका के 'देवता–विचार' शीर्षक लेख (पृ० ३७६) में दिया गया है।

इस प्रसङ्ग में अथर्ववेद का निम्नलिखित मन्त्र विशेष महत्त्वपूर्ण है, जो अहर्निश भगवत्कीर्तन का सुस्पष्ट आदेश दे रहा है—

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम्॥

(अथर्व० ६.१.१)

(आथर्वण—थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः अथर्वन्नित्यतः स्वार्थिकाऽण्। अथर्वैवाथर्वणः तत्सम्बुद्धौ आथर्वणेति)। हे एकाग्रचित्त साधक! (दोषा उ गाय) रात्रि में भी भगवान् के गुणों का गान करो अर्थात् दिन–रात भगवत्कीर्तन का अनुष्ठान करते रहो। (बृहत् गाय) विशाल गान करो अर्थात् अकेले ही नहीं, अपितु संकीर्तन–सम्मेलन आदि की भी योजना बनाकर कीर्तन–मण्डलियों के साथ मिलकर विराट् कीर्तन करो, जिसकी ध्वनि से धरती–आकाश गूँज उठे। (द्युमत्) तेजोमय सात्त्विक चित्तको, (धेहि) भगवान् में स्थापित करो अर्थात् जिह्वा से कीर्तन करते समय अपना चित्त भी भगवच्चरणारविन्द में लगाये रहो। (सवितारम्) जगत् के उत्पादक अथवा प्रेरक, (देवम्) परमात्मा को, (स्तुहि) स्तुति करो। इस मन्त्र में 'गाय' और 'स्तुहि' क्रियापदों से भगवद्–यशोगान और भगवद्गुणानुकथन उभयविध कीर्तन का निर्देश किया गया है।

कार्ष्णिकलापाचार्य श्रीस्वामी गोपालदासजी महाराज ने भक्तिप्रकाश में कीर्तन का लक्षण लिखा है—'भगवतो यशोगानं रटनं वा मुहुर्मुहुः' अर्थात् भगवान् के यश का गाना अथवा पुनः पुनः रटना यानी गुणानुकथन ही कीर्तन है।

स्मरण-भक्ति

वेदमाता गायत्री का द्वितीय पाद ही स्मरणात्मिका भक्ति का सर्वोत्तम निदर्शन है—

भर्गो देवस्य धीमहि । (ऋ० ३.६२.१०)

अर्थात् हम (देवस्य) परमात्मा के, (भर्गः) तेजोमय स्वरूप का, (धिमहि) ध्यान, चिन्तन यानी स्मरण करें ।

पादसेवन-भक्ति

निम्नलिखित मन्त्र में भगवच्चरणारविन्द का महात्म्य द्योतित किया गया है, जो मानव को उनके अर्चन या सेवन की ओर प्रेरित करता है—

पदं देवस्य मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥
(ऋ० ८.१०२.१५)

(मीळ्हुषः देवस्य) अभीष्ट पदार्थों के वर्षक परमात्मा का, (पदम्) चरण आराधनीय, सेवनीय है । तृतीय चरणोक्त 'भद्रा' शब्द का देहली-दीपक-न्याय से लिङ्गव्यत्यय करके 'पदम्' के साथ भी अन्वय करने पर आराधनीय या सेवनीय अर्थ ठीक बैठ जाता है । आगे भगवच्चरण के सेवनीय होने में हेतु प्रदर्शित किया गया है—क्योंकि वह भगवच्चरण (अनाधृष्टाभिः) शत्रुओं से अनभिभूत, (ऊतिभिः) रक्षाओं से युक्त है । तात्पर्य यह कि उसकी छत्रछाया में भक्त का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता । (उपदृक्) उस परमात्मा का समीप से दर्शन या साक्षात्कार, (सूर्यः इव) सूर्य के समान, (भद्रा) कल्याण का हेतु है । अथवा वह देव, परमात्मा सूर्य की भाँति उपदृक्, उपद्रष्टा, प्राणिमात्र के शुभाशुभ कर्मों का साक्षी है ।

गीता में इसी भाव से परमपुरुष परमात्मदेव को उपद्रष्टा कहा गया है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः । (१३.२२)

अर्चना-भक्ति

वेद में अर्चना के प्रतिपादक कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

अर्कमर्चन्तु कारवः । (ऋ० ८.९२.१९)

(कारवः) स्तोतृगण, (अर्कम्) अर्चनीय परमात्मा की, (अर्चन्तु) अर्चना, पूजा करें ।

अर्चत प्रार्चत । (साम० पू० ४.२.३.३)

(अर्चत) साधकगण ! आप लोग परमात्मा की अर्चा करें । (प्रार्चत) अतिशयता से अर्थात् पूर्ण सावधानी से, तन्मयता से पूजा करें ।

अर्चन्त्यर्कमर्किणः । (ऋ० १.१०.१)

(अर्किणः) अर्चात्मक मन्त्रों के पाठक, पुजारी, (अर्कम्) पूजनीय परमात्मा की, (अर्चन्ति) अर्चा करते हैं । तात्पर्य यह कि प्रभु के भक्त अर्चना में, विनियुक्त वेदमन्त्रों से विधिवत् अपने इष्टदेव का पूजन करते हैं ।

इसी प्रकार 'त्र्यंबकं यजामहे' (ऋ० ७.५९.१२) यह अतिप्रसिद्ध मन्त्र भी अर्चन-भक्ति का उदाहरण है ।

वन्दन-भक्ति

वन्दन शब्द 'वदि अभिवादनस्तुत्योः' (भ्वा० आ० ११) धातु से निष्पन्न होता है । 'वदि' धातु का अर्थ है अभिवादन अर्थात् नमस्कार और स्तुति । स्तुति अर्थ मानने पर वन्दन का कीर्तन में ही अन्तर्भाव हो जायेगा । अतः नवधा भक्ति के प्रकरण में वन्दन का अभिवादन या नमस्कार अर्थ ही ग्रहण किया गया है । वन्दन-भक्ति के वैदिक उदाहरण के रूप में निम्नलिखित मन्त्र प्रस्तुत है, जिससे सीता की वन्दना की गयी है ।

हल जोतते समय खेत पर जो रेखा बनती है, वह सीता कही जाती है । 'सीता लांगलपद्धतिः' (अमर कोश) और इसीसे आविर्भाव होने के कारण जगज्जननी जानकी का नाम भी सीता पड़ गया । वैदिक-स्तुति-प्रकरण में जहाँ स्तुत्य के रूप में जड़ पदार्थ सम्बोधित होते हैं, वहाँ उनके अधिष्ठातृ देवता का ग्रहण किया जाता है । तदनुसार यहाँ भी सीता शब्द से भूमि पर अंकित रेखा की अधिष्ठात्री देवी की वन्दना की गयी है ।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगासति यथा नः सुफलासति ॥

(ऋ० ४.५७.६)

(सुभगे सीते !) हे सुरूपे सीतानामक देवते ! (अर्वाची भव) तुम हमारे अभिमुख होओ, हमारे अनुकूल बनो । (त्वा=त्वाम् वन्दामहे) हम तुम्हारी वन्दना करते हैं, (यथा=यतः) क्योंकि तुम, (नः) हमारी, (सुभगा असति) शोभन धनदात्री हो, तथा, (सुफला असति) शोभन फलदात्री हो । निष्कर्ष यह कि शोभन धन-धान्य प्राप्ति के निमित्त हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । तुम्हारी कृपा से हमारी

खेती फले-फूले, प्रचुर अन्न उत्पन्न हो, जिसके विनिमय द्वारा हम स्वर्ण आदि भी प्राप्त करें। इसी प्रकार वेद के सभी नमस्कार-बोधक मन्त्र वन्दन-भक्ति के उदाहरण हैं।

शुक्ल यजुर्वेद के 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' (१६.१) से 'नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्याम्' (१६.६६) तक के सभी मन्त्र वन्दन-भक्ति के ही प्रतिपादक हैं। प्रसंगवश यहाँ इन मन्त्रों का स्वल्प परिचय भी देना उचित है।

इस प्रकरण में आये मन्त्र दो प्रकार के हैं। कुछ उभयतो नमस्कारात्मक हैं, कुछ अन्यतरतोनमस्कारात्मक। जहाँ नन्तव्यदेवतावाचक पदद्वय के पूर्व और देवतावाचक तृतीय पद के पश्चात् नमः शब्द प्रयुक्त है, वे उभयतोनमस्कारात्मक मन्त्र हैं। 'नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमः' (शु० यजु० १६.२१) यहाँ 'वञ्चते' और 'परिवञ्चते' इन दोनों पदों से तथा तृतीय नाम 'स्तायूनां पतये' के पश्चात् 'नमः' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'वञ्चते' पद यहाँ 'परिवञ्चते' का विशेषण है, अतः रुद्रद्वय ही मन्त्र का प्रतिपाद्य है, रुद्रत्रितय नहीं। जहाँ यजुर्वेद के आरम्भ में ही नमः शब्द निर्दिष्ट है, वे अन्यतरतोनमस्कारात्मक मन्त्र कहे जाते हैं। नमः शंभवाय च मयोभवाय च' (शु० यजु० १६.४१) यहाँ केवल आरम्भ में ही नमः शब्द का प्रयोग है, अतः शंभव और मयोभव रुद्रयुगल अन्यतरतोनमस्कार्य हैं।

शुक्ल यजुर्वेद के सोलहवें रुद्राध्याय में नौ अनुवाक हैं जिनमें क्रमशः १६, ५, ५, ५, ५, ४, १, ५, २० कण्डिकाएँ हैं। सत्रहवीं से सत्ताइसवीं तक ११ कण्डिकाओं में कुल ८८ रुद्रों का वर्णन है, क्योंकि प्रत्येक कण्डिका में ८-८ रुद्र वर्णित हैं। अट्ठाईसवीं कण्डिका के दो आरम्भिक रुद्र—'नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः' और छियालीसवीं कण्डिका के सप्तम-अष्टम—'नमः इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः' इन चारों का ८८ में योग करने पर उभयतोनमस्कार्य ९२ रुद्र होते हैं। उन्तीसवीं से पैंतालीसवीं तक १७ कण्डिकाओं में प्रत्येक में ८ के क्रम से कुल १३६ रुद्र वर्णित हैं। अब अट्ठासवीं कण्डिका के अन्तिम ६ तथा छियालीसवीं के आरम्भ के ६, कुल १२ का १३६ में योग करने पर १४८ अन्यतरतोनमस्कार्थ रुद्र सिद्ध होते हैं। निष्कर्ष कि शुक्लयजुर्वेद के 'नमो हिरण्यबाहवे' (१६.१७) से 'धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः' (१६.४६) तक के मन्त्रों में २४० यजु एवं उनके प्रतिपाद्य उतने ही रुद्र हैं। छियालीसवीं कण्डिका के अन्त में 'नमो वः किरिकेभ्यः' आदि जो ४ यजु हैं उनके प्रधान प्रतिपाद्य अग्नि-वायु-रुद्रदेवता ही हैं। चालीसवां कण्डिका में १० तथा इकतालीसवीं में ६ रुद्रों का प्रतिपादन है, फिर भी प्रत्येक कण्डिका में अनुपात ८-८ का ही है।

इस प्रकार इस अध्याय में द्विविध नमस्कारों की परम्परा से वन्दन-भक्ति की वृष्टिधारा दृष्टिगोचर होती है।

दास्य-भक्ति

दास्य-भक्ति का वैदिक उदाहरण निम्नलिखित है—

यदद्यकच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥

(ऋ० ८.९३.४)

(वृत्रहन् !) स्वरूपाच्छादक अज्ञान के विनाशक, (सूर्य !) हे सूर्यात्मक, (इन्द्र !) परमेश्वर ! (अद्य) सृष्टिकाल में, (यत् कच्च अभि) जिस किसी पदार्थ के अभिमुख या समक्ष, (उदगाः) आप उदित होते हैं, (तत् सर्वम्) वह समस्त पदार्थ, भवदुद्भासित विश्व, (ते वशे) आपके वशीभूत हैं । भाव यह कि आप विश्व के स्वामी हैं, मैं उस विश्व के अन्तर्गत हूँ, अतः आपका सहज दास हूँ । दीनबन्धो ! मुझपर दया करके मेरे अज्ञान का नाश करें ताकि मैं संसार-बन्धन से मुक्त हो सकूँ । इसी भाव का सूचक भगवान् का 'वृत्रहन्' विशेषण यहाँ दिया गया है । भगवत्कृपा से स्वात्मदर्शन होने पर जब अज्ञान नष्ट होता है, तभी तक संसार-बंधन से मुक्त हो पाता है ।

सख्य-भक्ति

अस्य प्रियासः सख्ये स्याम । (ऋ० ४.१७.९)

(प्रियासः = प्रियाः) प्रेमास्पद हम, (अस्य) इस परमात्मा के (सख्ये) मैत्रीभाव में, (स्याम) स्थित हों, अर्थात् हम ईश्वर के प्रिय विश्वसनीय सच्चे मित्र बनें ।

देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम् । (ऋ० १.८९.२)

(वयम्) हम साधकगण, (देवानाम्) सर्वदेवमय प्रभु के, (सख्यम्) सख्यभाव को, मित्रता को, (उपसेदिम) प्राप्त करते हैं अर्थात् सर्वदेवात्मक भगवान् के हम सच्चे मित्र बन चुके हैं, अतः भव-बन्धन का कोई भय नहीं है ।

आत्मनिवेदन-भक्ति

स नो जीवातवे कृधि। (ऋ० १०.१८६.२)

(सः=त्वम्) वह आप अर्थात् पूर्वोक्त–गुण–विशिष्ट, हमारे सर्वस्व प्रभो ! (नः) हमें, (जीवातवे) जीवन के हेतु, एकमात्र परम लक्ष्य, अपनी सेवा के लिए, (कृधि) स्वीकार करें । यहाँ साधक प्रभु की सेवा के लिए अपने को समर्पित कर रहा है । सच्चा भक्त प्रभु की सेवा के लिए ही जीवित रहता है । भगवत्सेवा में जीवन के उपयोग की सम्भावना मिटते ही वह प्राणोत्सर्ग कर देता है । एक प्रसिद्ध किंवदन्ती है कि पतिप्राणा देवी पद्माने राजभृत्य–द्वारा अपने प्राणनाथ पतिदेव
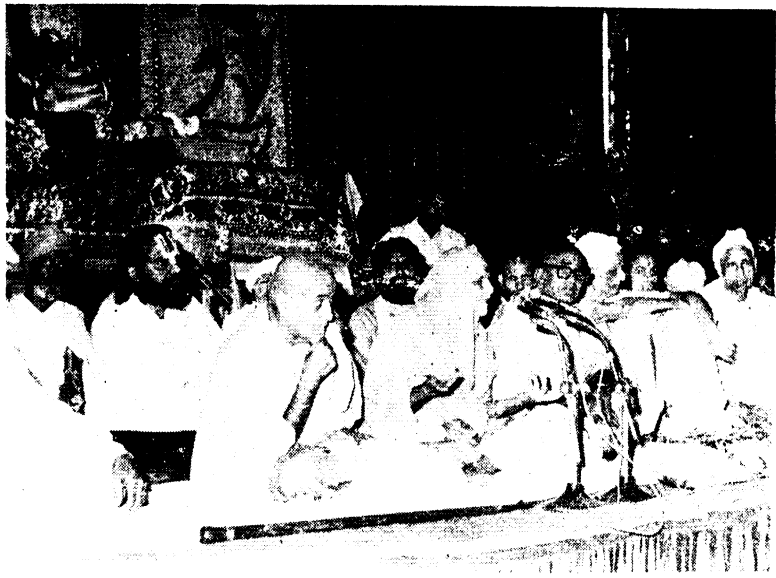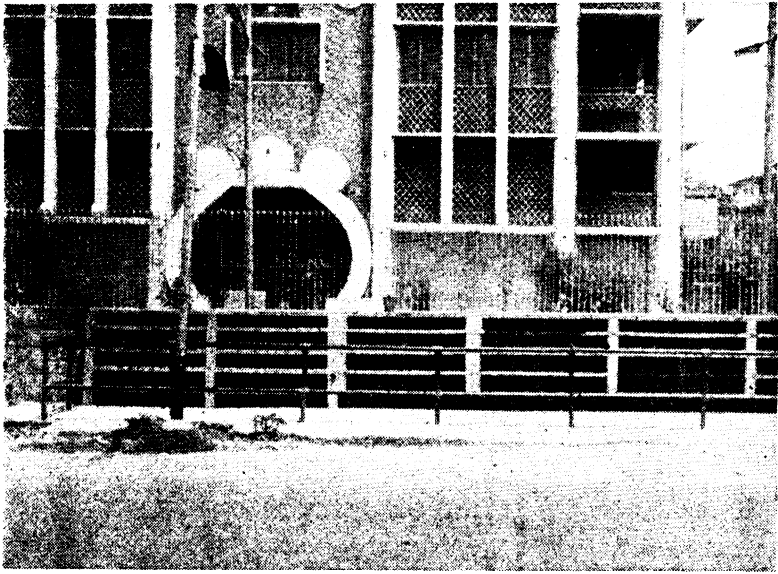
गुरु गंगेश्वर धाम, नई दिल्ली
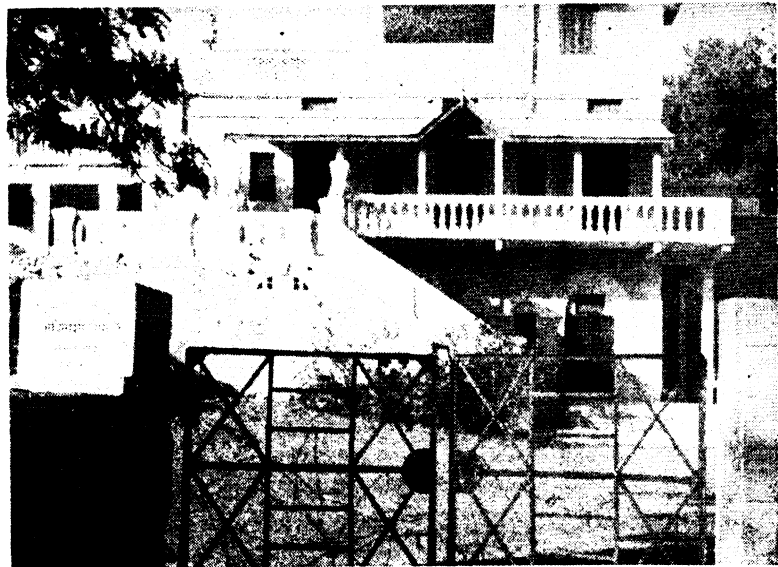
अविनाशी धाम, माउन्ट आबू

जयदेव की मृत्यु का समाचार पाते ही तत्क्षण प्राणों का परित्याग कर दिया। आत्मनिवेदन का इससे श्रेष्ठ और क्या उदाहरण हो सकता है? आत्मनिवेदन का ही नामान्तर शरणागति है, जिसका उल्लेख श्वेताश्वतर उपनिषद् में है—'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' (६.१८)।

नैसर्गिक भक्ति

नवधा भक्ति का आचरण साधक अवस्था में होता है। उस समय प्रभु में साधक का प्रेम वैध होता है। माता, पिता, गुरुजन, शास्त्र आदि का आदेश विधि है। उससे प्रेरित होकर, न चाहते हुए भी साधक विवश होकर भगवान् की अर्चा-वन्दना करता है। इसीलिए शास्त्रों में भक्ति को वैधीभक्ति माना गया है। इसके निरन्तर अभ्यास से परिपक्व दशा में प्रभु के प्रति नैसर्गिक प्रेम उत्पन्न हो जाता है। जैसे नदियों का समुद्र की ओर, पतंग का दीपक की ओर, चकोर का चन्द्रमा के प्रति तथा चातक का मेघ के प्रति सहज आकर्षण होता है, वैसे ही प्रभु के चरणों में स्वाभाविक प्रेम का उदय नैसर्गिक भक्ति या भगवदनुरक्ति है।

साधन दशा में जिन दास्य-सख्यादि की गणना की गयी है, वे सब सतत अभ्यासवश परिपक्व हो जानेपर नैसर्गिक प्रेम से सम्बद्ध दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर, इन चार प्रधान भावों में समाविष्ट हो जाते हैं। इन चारों के मूल में वैराग्यातिरेक परिपुष्ट शान्तभाव रहा करता है, जैसे पाँचों भूतों के शब्दादि विशेष गुण उत्तरोत्तर अपने कार्यभूतों में संक्रान्त होते हैं, क्योंकि कारण-गुणों का कार्य में संक्रान्त होना दार्शनिक सिद्धान्त है, तदनुसार आकाश का शब्दगुण वायु में, वायु का स्पर्श तेज में, तेज का रूप जल में, जल का रस पृथिवी में संक्रान्त होता है, पृथिवी का अपना गुण केवल गन्ध है, उसमें रहनेवाले शेष चार गुण कारणभूतों की देन हैं। इसी प्रकार शान्त भाव का जिन गुण विषयतृष्णात्याग दास्य में, दास्य का सेवा सख्य में, सख्य का सङ्कोचाभाव वात्सल्य में और वात्सल्य का ममतातिरेक मधुरभाव (कान्ताभाव) में समाविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार मधुरभाव में उसके निजगुण एक प्राणता के अतिरिक्त पूर्वोक्त भावों के विषय-वैतृष्ण्य, सेवा, निःसंकोचता और ममतातिरेक भी समाविष्ट रहते हैं। मधुर भावों में पाँचों गुणों का एक साथ समावेश होने के कारण भावुक भक्तों की दृष्टि में ही नहीं, भगवान् की दृष्टि में भी वह भाव सर्वोच्च माना गया है। इसीलिए गोपियों का प्रेमराज्य में सर्वोच्च स्थान है।

आपकी परमभक्ता स्वर्गवासिनी देवकी माता भोजराज के तीव्र संकल्पानुसार, गंगेश्वरधाम, देहली में होमियोपथी एवं एलोपथी का औषधालय का, ता. २८ एप्रिल को आपने उद्घाटन किया। दो डाक्टर-बहनें नियुक्त की गईं और आज कई एक दर्दी उसका लाभ उठा रहे हैं, यह बहुत प्रसन्नता की बात है।

शताब्दि-महोत्सव का प्रथम-पाद

आपका जन्म-शताब्दि-महोत्सव आपके प्रेमी-भक्तगण बहुत ही विस्तृत रूप में मनाना चाहते थे। अतः सर्वप्रथम तो जमीन निश्चित करना आवश्यक था। आजकल बम्बई में सतत् विविध कार्यक्रमों का प्रवाह चलता ही रहता है और शीघ्र तो क्या, एक-दो वर्ष पहले ही, संस्था-संचालक अपने कार्य के लिये, सरकार से प्लोट निश्चित कर, रकम भर देते हैं। इस ख्याल से लेखिका स्वयं प्रधान-मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को मिलने देहली गई, ताकि वहाँ के प्रतिष्ठित-व्यक्तियों के सहयोग से उनको मिलकर, प्लोट के लिये माँग की जाय। अतः ता. २१ एप्रिल को लेखिका, गुलाबहन, वीणाबहन वधवा, स्वामी गोविंदानंद तथा स्वामी माधवानंद के साथ श्रीमति गाँधी को राजभवन में प्रातः ११ बजे मिलने गये।

बहुत व्यस्त होने पर भी, उन्होंने अपने सेक्रेटरी श्री धवन को हमारे इस कार्य में साथ देने को कहा। उन्होंने भी बम्बई में, इस कार्य के अधिकारी को पत्र द्वारा प्लोट देने का आदेश दिया। परंतु यह कार्य इतना सहज नहीं था। हमारे उत्साही कार्य-निपुण संत श्री आनंद भास्कर मई में बम्बई आये एवं गुरु-भक्त, सेवा-निष्ठ भाई श्री लोकुमल मंगनानी तथा श्री मुरलीधर आसवानी के साथ में, सतत् १५-२० दिन अथक परिश्रम पश्चात् हमें धोबी तालाब स्थित क्रोस-मैदान का २५००० गज का प्लोट प्राप्त हुआ। इस प्रकार आपके शताब्दि-महोत्सव का प्रथम-स्तंभ न्यास का श्रेय उपर्युक्त संत-गुरु-भक्तों को ही है, अन्यथा हम आगे कदम नहीं उठा सकते थे। मैं भी १ मई को बम्बई वापस आ गई एवं गुरुदेव अपने संत मंडल के साथ माउन्ट आबू गये। इसके पूर्व ता. २७ एप्रिल को, आश्रम में, नेपाल के महाराज की ओर से रामायण का अखंड पाठ शुरू किया, एवं दूसरे दिन उसकी पूर्णाहुति की गई। पुनः ता. २३ एप्रिल को, नाभा महाराणी की ओर से, तीन अखंड रामायण पाठ प्रारंभ किये, जो ता. ३० को, सत्यनारायण की कथा सहित पूर्ण हुए।

माउण्ट आबू में जपमाला का आयोजन

दो मई से ता. १५ जुलाई तक आपने आबू के अपने अविनाशी धाम में निवास किया। कुछ विश्राम के साथ-साथ, आपका नित्य वेद-भाष्य-लेखन कार्य

भी पंडित नवलकिशोर काङ्कर, श्री शुक्ल के द्वारा चलता रहा । इस वर्ष डा. गौतम पटेल उनके विद्वान मित्र श्री राजेन्द्र नाणावटी एवं श्री नटवरलाल याज्ञिक भी आपके दर्शन एवं वेद–विषयक कार्य प्राप्ति के लिये कुछ दिन रहे थे । आपके जन्म–शताब्दि के मंगल अवसर पर, लोक भोग्य वेद-पुस्तकें छापी जायँ, ऐसी विद्वानों की इच्छा थी । अतः आपने वेदों में से १०८ जप गान–मनन सुलभ ऋचा–रत्नों का संकलन किया । उसका अंग्रेजो तथा हिंदी अनुवाद श्रीमति लता एवं राजेन्द्र नाणावटी ने किया । ये दोनों पति–पत्नी एम. ए. और एम. ए. पीएच. डी. हैं । संपादक श्रीमति नीलम पटेल एम. ए.; ए .फिल् तथा डा. गौतम पटेल एम. ए.; पीएच. डी. हैं । जीवन में नित्य उपयोगी वेदमंत्रों की माला होने से इस छोटी परंतु कीमती पुस्तिका का नाम '**जपमाला**' रखा गया है । यह अनुक्रम से छः विभागों में विभक्त है : विभूतियोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञान–योग, दूसरा ज्ञानयोग तथा जीवनयोग ।

जो वाचक–वर्ग संस्कृत भाषा से अज्ञात हों, वह अंग्रेजी एवं सरल हिंदी अनुवाद पढकर, उस मंत्र का अर्थ अच्छी प्रकार समझ सकेंगे । इतना ही नहीं, उसका नियमित जप–करने से भी बहुत शांति–आनंद की अनुभूति होती है । गुरुदेव ने **'शुक्ल–यजुर्वेद–संहिता' सनातन भाष्य के** साथ प्रकाशित की है । यह पुस्तक केवल विद्वद्भोग्य ही नहीं, साधकों को भी सहायक है ।

विश्वतोमुख भगवान् वेद

'विश्वतोमुख भगवान्–वेद' यह पुस्तक, गुरुदेव के वेद–विषयक विभिन्न प्रवचनों का सुंदर पुष्पहार, उनके शिष्य, व्याकरणाचार्य स्वामी आर्चिकानंद शास्त्री ने गुम्फित किया है । वेद रत्नाकर में सतत् निमज्जित आपकी वृत्ति, उसकी अत्यन्त गहराई से अनेक अमूल्य रत्न हृदय–गुहा में निरंतर भरती रहती है; इन शब्द–रत्नों का मनोहर, सार गर्भित प्रवाह आपके श्रीमुख से निसृत, समस्त विश्व को रस–माधुरी से आप्लावित एवं ज्ञान प्रभा से प्रकाशित करता है । यह पुस्तक आपकी वेद–गरिमा का मूर्तिमान स्वरूप है ।

वेद एवं गुरु दोनों अभिन्न हैं । आपके ता वे: प्राण ही हैं । शरीर शुरू से ही अस्वस्थ रहने पर भी आप आज जो शतायु बने हैं, उसका एकमात्र कारण है आपका वेदाध्ययन या प्रखर वेद–रुचि, जिससे आपका समस्त दीर्घ जीवन वेद–वीणा के मधुर नाद से झंकृत एवं अलंकृत है । इसे कोई अतिशयोक्ति भले ही माने, मेरी तो यह सतत अनुभूति है ।

आपके ही आशीर्वाद से, आपके शिष्यगण भी आज वेद–प्रचार–प्रसार एवं वैदिक प्रकाशन–कार्य में प्रोत्साहित हैं। आपके विनीत शिष्य गौतम पटेल ने भी गुजराती में दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं। एक है 'वैदिक साहित्य अने संस्कृति' तथा 'वेदनो वारसा–वैभव' दोनों स्नातक विद्यार्थियों के, एवं आम जनता के वेद ज्ञान के लिये प्रशंसनीय प्रयास है।

श्री कांकरजी का प्रदान

कविशिरोमणि श्री नवलकिशोर काङ्करजी ने भी बहुत हो मान–भावपूर्ण आपकी **'जीवन–झाँकी'** तथा 'अभिनंदन–पद्य–पुष्पाञ्जलि', आपके जन्म–शताब्दि महोत्सव के मंगल पर्व पर प्रस्तुत कर, अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। उनके प्रत्येक शब्द–सुमन से हृदय–रस–माधुरी की वर्षा हो रही है। गुरु–वन्दना के रूप में उन्होंने आपकी असीम गरिमा का गान द्वारा आपका विश्व विजयी जीवन पर प्रकाश डाला है। उन सबको ऐसी सुंदर–वेद–कृतियाँ आपके श्री चरणों में समर्पित करने के लिये मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

गुरु प्रसाद

वस्तुतः आप परमार्थ स्वरूप ही हैं। परमार्थ सत्य वस्तु को परमार्थ सत्य वस्तु के सिवा और कौन दिखा सकता है ! इसीसे जन्मों तक भटकने के बाद, जब जीव उनके दर्शन के योग्य होता है, तभी वे कृपा करके दर्शन देते हैं और अपने ज्ञान तथा शक्ति से अपने स्वरूप में लीन कर देते हैं। जिसे हम परमार्थ तत्त्व या भगवान् कहते हैं, उन्हीं के मूर्तिमान् अनुग्रह का नाम गुरु है। वर्षों आपके निकट सानिध्य में मैंने अचूक देखा है कि आपके नामश्रवण, दर्शन आलाप एवं स्मरण मात्र से ही, असंख्य अशांत, उद्विग्न व्यक्तियों के प्राणों में शांति का सञ्चार होने लगता है, चिरकाल की प्यास बुझने लगती है, असह्य अतृप्ति में भी तृप्ति की अनुभूति होने लगती है। मैं स्वयं अपनी पूर्व स्थिति की और आज की समस्त परिवर्तित मनोदशा की बात करूँ तो आज से ३३ वर्ष पहले, मैं कुछ खोई–सी, दीन मनोदशा में थी। समझ नहीं पाती थी, क्यों और क्या हो रहा था। परंतु वास्तव में मैं गुरुदेव की प्रतीक्षा में, उनके मिलने के लिए तड़प रही थी। अति तीव्र लगन एवं सच्चा भाव ही प्रभु को अपने समीप ला देते हैं इसमें कोई संदेह नहीं। तो जिनकी प्रतीक्षा थी, जिनके लिये प्राण तड़प रहे थे, जिनके बिना मैं अँधेरे में भटक रही थी, आपके मिल जाने पर, दर्शनमात्र से ही मुझे अद्भुत, अवर्णनीय आनंद एवं तृप्ति का अनुभव हुआ। इस प्रकार गुरु की महिमा केवल

शिष्य ही समझ सकता है, सो भी तब, जब गुरु उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं । और कोई उन्हें जान नहीं सकता, क्योंकि वे अपने को गुप्त रखते हैं । आपको गुरु रूप में पाकर सचमुच में निहाल हो गई हूँ । यह शिष्य की दृष्टि कल्याण स्वरूपिणी है ।

सद्गुरोः सम्प्रसादेऽस्य प्रतिबन्धक्षयस्ततः ।
दुर्भावनातिरस्काराद्विज्ञानं मुक्तिदं क्षणात् ॥

अर्थात्, यह अनादि स्वप्नभ्रमरूप संसार अपने आप ही निरस्त नहीं होता। केवल एक ईश्वर और तदभिन्न सद्गुरु के प्रसाद से ही इसका निरास होता है ।

अहमदाबाद में गुरुपूर्णिमा

ता. १६ जुलाई को आप माउन्ट आबू से अहमदाबाद पधारे । मैं भी पंद्रह दिन पूर्व आपके दर्शनार्थ आबू आई थी और साथ ही पूर्णिमा के मंगल अवसर पर आपके साथ ही, प्रतिवर्षानुसार रही । गुरु-पूर्णिमा का पावन दिन, वर्ष में एक बार उदित होता है जब हम सब भक्त-शिष्य समाज, सद्गुरु रूप ज्ञान सूर्य का हार्दिक पूजन, अर्चन करबध्धकृताञ्जलि से अपनी कृतज्ञता प्रगट कर, उनकी प्रसन्नतारूप प्रसाद प्राप्त करें । गुरु मूर्तिमंत प्रेम, प्रकाश एवं ज्ञान स्वरूप होने के कारण, शरणागत जीवमात्र अपने जीवन में 'प्रेय और श्रेय' दोनों प्राप्त कर सकते हैं। आपने यहाँ एक बार वेद में 'भगवत्कृपा' इस विषय पर सुंदर प्रकाश डाला था ।

वेद में भगवत्कृपा

'भगवत्कृपा' शब्दों में 'भगवतः कृपा' यह षष्ठीसमास है । दूसरे शब्दों में 'भगवत्' और 'कृपा' इन दोनों के मेल से यह शब्द निष्पन्न हुआ है । 'भगवत्' शब्द का प्रथमा के एकवचन में 'भगवान्' और बहुवचन में 'भगवन्तः' ऐसा रूप बनता है। क्रमशः भगवान् शब्द दो बार, 'भगवन्तः' तीन बार और 'कृपा' शब्द आठ बार ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ है । 'दय' धातु के 'दयते' शब्द का ग्यारह बार और 'दयसे' रूप का सात बार तथा 'दयध्वम्', 'दयस्व' शब्दों का प्रयोग एक-एक बार ऋग्वेद में दृष्ट है । सायणाचार्य ने 'दयसे' शब्द का अर्थ 'अनुगृह्णासि' माना जाता है। निम्नलिखित मन्त्र द्रष्टव्य है ।

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥

—ऋ० ७-२३-५

इस मन्त्र में 'दयतिरनुग्रहार्थः' सायणभाष्य की उक्ति से 'दयसे' का अनुगृह्णासि 'अर्थ सुस्पष्ट है। मन्त्रार्थ इस प्रकार है—(इन्द्र) षड्विध-ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मन्! (शुष्मिणम्) बलवान्, (तुविराधसम्) बहुधन, अतिसमृद्ध, (त्वा) आपको, (ते) वे, (मदा) प्रसादक; प्रसन्नता के कारण आपके भक्त के द्वारा किये हुए अर्चन—वन्दन आदि विविध क्रिया—कलाप, (मादयन्तु) प्रसन्न करें।

तात्पर्य, प्रभो! आप श्रद्धापूर्वक अनुष्ठित अर्चन, वन्दन, आत्मनिवेदनादि से संतुष्ट हो अपने भक्त को दुस्तर संसारमहोदधि से पार करने की अवश्य अनुकम्पा करें; क्योंकि समस्त देवों में अनुप्रविष्ट विविध देव, उनके विभिन्न नाम तथा अनेक रूपों की कल्पना का आधार केवल आप[१] ही हैं। अतः समस्त देवप्रपञ्च आपका ही विस्तार है। दूसरे शब्दों में वे (देवगण) भले ही स्थान-भेद, क्रिया भेद से तीन अथवा अनन्त कहे जायँ, वस्तुतः वे [२]आपके ही स्वरूप हैं; आपसे पृथक् उनकी सत्ता नहीं। अतः करुणावरुणालय! आप (मर्तान् दयसे हि) साधक मनुष्यों पर निश्चिय ही अनुग्रह करते हैं। (शूर, वीर, बाह्य तथा आन्तर शत्रुओं के विनाश में समर्थ! (सवने) सवनोपलक्षित यज्ञादि समस्त कार्यों में साधकों के अर्पण किए गये विविध सोमादि उपहारों से, (मादयस्व) स्वयं प्रसन्न हों एवं साधकों को अभीष्ट प्रदान करके अनुगृहीत करें। इस मन्त्र द्वारा भगवदनुग्रह पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

वेद में 'भगवान्' और 'भगवन्त'

अब क्रमशः 'भगवान्', 'भगवन्त' एवं 'कृपा' शब्द का जिन मन्त्रों में निर्देश हुआ है, उनपर कुछ विचार किया जाता है। उनमें से कतिपय मन्त्र

१. १. एकस्यात्मनः (निरु० ७.१.४), २. सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति (ऋ० १०.११४.५), ३. यो देवानां नामधा एक एव (ऋ० १०.८२.३), ४. यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे (ऋ० १०.८२.६), ५. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋ० १.१६४.४६), ६. रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् (ऋ० ३.५३.८), ७. इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते (ऋ० ६.४७.१८)।

२. आत्मा सर्वं देवस्य (निरु० ७.१.४) अर्थात् विविध देवों के नाम रूप तथा रथादि उपकरण समस्त एक ईश्वर के ही स्वरूप है।

निम्नलिखित हैं—

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥॥

(ऋ० ७-४१-५)

अर्थात् (देवाः) देवगण! अथवा देवतुल्य विद्वद्गण! (भग एव) स्व-स्व कार्य में प्रवर्तमान प्राणिवर्ग के आराध्य जगदीश्वर[1] ही (भगवान् अस्तु) षड्विध-ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। (लडर्थे लोट्)! (तेन) उस षड्विध-ऐश्वर्य-सम्पन्न आराध्य जगन्नियन्ता परमात्मा की कृपा से हम साधक, (भगवन्तः) अद्वैतमत में भागवत्स्वरूप, ब्रह्मस्वरूप भक्तिसिद्धान्त में भगवान् के समान भगवल्लोक निवासी, शङ्ख-चक्रादि-चिंह्न-मण्डित, (स्याम) विग्रहधारी बन जायँ। हम ही नहीं, (सर्व इत्) समस्त साधक, सम्पूर्ण प्राणिवर्ग ही, (भग) परमात्मन्! (त्वा) आपका, (जोहवीति) अपनी समीहित सिद्धि की कामना से पुनः-पुनः आह्वान करते हैं।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्राणी प्रार्थना करता है—प्रभो! हम पर आप ऐसी कृपा करें, जिससे हमारे सब मनोरथ पूर्ण हों। (प्रार्थना का अर्थ ही है अभीष्ट सिद्धि के लिए अनुग्रह करने का भगवान् से अनुरोध, अतः प्रार्थनाप्रधान प्रायः सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को ही भगवदनुग्रह का प्रतिपादक कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी।) अतः (भग) अस्मदाराध्यदेव! (सः) वह कृपासागर आप, (नः) हमारे, (पुर एता) पुरोगामी नेता, मार्गदर्शक, (इह) इस भूलोक में अथवा वेदविहित कर्मानुष्ठान में, (भव) बनें। अथवा नामदेव, मीरा, रविदास प्रभृति भक्तों की तरह हमारी आँखों के सामने निराकार से साकार बनकर उपस्थित हो दर्शन की प्यासी आँखों को तृप्त करें। उपर्युक्त षड्विध ऐश्वर्य का विवरण इस प्रकार है—

१. निःसीम ऐश्वर्यपूर्ण प्रभुता, यथेष्ट कार्यकारिता, २. ज्ञान-क्रिया भेद से द्विविध वीर्य शक्ति, पराक्रम, ३. यश, कीर्ति, ४. श्री, विपत्ति का निवारण, ५. ज्ञान और ६. वैराग्य।

इस प्रकार प्रभु के छः ऐश्वर्य हैं। सबके साथ निःसीमता एवं पूर्णता का अन्वय है। प्रभु श्रीकृष्ण के विग्रह में उपर्युक्त छहों प्रकार के ऐश्वर्य का विकास होने के कारण ही वे पूर्णावतार या स्वयं भगवान् माने गये। भगवान् के छह

१. 'भग' शब्द निघण्टु (१.३.७) में पठित एवं विवृत है। 'भज सेवायाम्' धातु से कर्म में 'घ' प्रत्यय करने पर 'ज' को 'ग' होने पर यह निष्पन्न होता है। 'भज्यते स्वकार्ये प्रवर्तमानप्राणिवर्गेण सेव्यते' यह इसकी व्युत्पत्ति है।

ऐश्वर्य निम्नलिखित श्लोक में उल्लिखित हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

—विष्णुपु० ६-५-७४

अर्थात् सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य, इन छहों का नाम भग है। भगवत् शब्द के विवेचन के पश्चात् जिन मन्त्रों में 'कृपा' शब्द का प्रयोग हुआ है, उन मन्त्रों पर दृष्टिपात करें।

वेदमन्त्रों में 'कृपा'

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा।
अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः॥

—ऋ० ८-२३-५

(सु) शोभन, (अध्वर) मार्गदाता! मार्गदर्शक! (अध्वानं राति ददाति उपदिशति इति अध्वरः तत्सम्बुद्धौ अध्वर) अर्थात् वेदोक्त माध्यम से कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोगादि विविध मार्गों के उपदेशक परमात्मन्! (आ उत् तिष्ठ) उठें, हमारे रक्षणादि कार्य में सतत तत्पर रहें। ('उ' निपात केवल पादपूरक हैं, अर्थ विशेष का सूचक नहीं) आप, (स्तवानः) स्तुति किये जानेपर, (कृपा) अनुग्रह से, (शुशुक्वनिः) देदीप्यमान हो चमकते हैं। आपकी कृपा, (देवी) दिव्य, (भाः) भासमाना, चमकीली, चमत्कारिणी एवं (बृहता) महती है।

भावार्थ यह है कि स्तोता भक्त ज्योंही आपकी स्तुति आरम्भ करता है, तत्क्षण आप उसपर अपनी अद्भुत चमत्कारिणी महती कृपा करते हैं, जिससे आपका कृपाभाजन वह भक्त भुक्ति एवं मुक्ति के दिव्यानन्द का अनुभविता बन जाता है।

किसी से छिपा नहीं है कि भगवत्कृपा से असम्भव कार्य भी अनायास निष्पन्न हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में भगवत्कृपा की महिमा का यह अनवद्य पद्य अतिप्रसिद्ध है—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

जिसकी कृपा से वाक्-शक्तिहीन गूँगा प्राणी प्रखर वक्ता बन जाता है एवं पंगु व्यक्ति, जो जङ्घा-पादादिरहित होने के कारण एक-दो पग भी नहीं चल सकता, दुर्गम पर्वत को भी लाँघ जाता है।

शास्त्रों में भी भगवत्प्राप्ति का साधन भगवत्कृपा को माना गया है। भगवत्कृपा भगवद्भक्ति पर निर्भर है। गीता में कहा है—

'पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया' (८-२२)

भगवद्भक्ति को भगवत्कृपाद्वारा[1] भगवत्प्राप्ति का कारण बनाया गया है। क्रम यह है—पहले साधक को भगवान् का अनन्य भक्त बनना होगा, पश्चात् भगवत्कृपाभाजन इस भक्त को ब्रह्म साक्षात्कार या भगवद्दर्शन के द्वारा अनायास ही ब्रह्मप्राप्ति या भगवत्प्राप्तिरूपा मुक्ति का लाभ हो जाता है।

वेद में शरणागति का महत्व

भगवत्कृपा-प्राप्ति के अमोघ साधन शरणागति का सूचक 'शरणम्' शब्द आठ बार, सप्तम्यन्त 'शरणे' शब्द तीन बार ऋग्वेद में पठित है। विस्तारभय से केवल दो-चार स्थलों पर ही यहाँ विचार किया जाता है।

पुरुत्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा।
तोदस्येव शरण आ महस्य॥

—ऋ० १-१५०-१

(अग्ने) अग्रणी, भक्तदुःख-दावदग्ने परमात्मन्! (तव स्विदा) आपका ही (अरिः) अर्ता, प्रापक, विविध उपसंहारों का समर्पक मैं सेवक, (पुरुवोचे) धन दो, पुत्र दो इत्यादि विविध प्रार्थना वाक्यों को बोलता हूँ। वर्तमान में ही नहीं, अपितु भूतकाल में भी आपकी सेवा में मैंने नाना प्रकार के वाक्य रूप उपहार अर्पित किये हैं। अतः मैं अन्य प्राणियों की तरह मौन क्यों रहूँ। अर्थात् जोरदार शब्दों में आपके समक्ष अपनी बहुत-सी माँगें उसी प्रकार प्रस्तुत करता हूँ, जैसे घर का अन्तरंग सेवक, (महस्य) महान् (तोदस्य[2]) शिक्षक अर्थात् कुमार्ग गमन से रोककर सन्मार्ग में लगानेवाले स्वामी की शरण में, (आ) आया हुआ, निःसंकोच अपनी माँगें प्रस्तुत करता है।

१. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
मत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्रप्स्यसि शाश्वतम्॥ —गीता १८-६२

२. हितैषी होने पर भी इधर-उधर यातायात में (स्वतन्त्रता में) बाधक होने के कारण स्वामी सेवक को आपाततः पीड़ाकारी भासता है। इसी अभिप्राय से 'तुद' व्यथने धातु से 'पचाद्यच्' से 'अच्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न 'तोद' शब्द स्वामी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

तात्पर्य, भला अपनी सतत सेवाओं से जो स्वामी का सच्चा सेवक, विश्व-सनीय बन गया है, उसे क्या कभी स्वामी के समक्ष अपने या दूसरे के सम्बन्ध में किसी प्रकार की बात कहने में हिचकिचाहट हो सकती है ? ठीक उसी तरह मैं आपका सच्चा सेवक होने के नाते आपको कुछ भी कहने से नहीं घबराता। स्पष्ट है कि शरणागत भक्त का अपने आराध्यदेव के साथ किस प्रकार निःसंकोच व्यवहार एवं वार्तालाप निष्पन्न हो जाता है !

प्रभु कृपा करके शरणागत भक्त में अपने दिव्य तेज की स्थापना करते हैं। फिर वह अग्नि की तरह देदीप्यमान, अति तेजस्वी, समस्त जन समाज से आहूत अर्थात् विश्व–समादरणीय बन जाता है। समस्त जनसमाज अपने कल्याण के लिए उसे सभाओं और गृहों में आमन्त्रित करते हैं। समस्त जनता उसके चरणों में नतमस्तक हो जाती है। इसी अभिप्राय का सूचक निम्न–निर्दिष्ट मन्त्र है—

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः ।
अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥

—ऋ० ८–२५–१९

(सूर्यः) सर्वप्रेरक अन्तर्यामी, (ष्यः) वह मित्र और वरुण परमात्मा [हिंसा–पीडासंकट से भक्त का रक्षक होने के कारण 'मित्र' तथा अनिष्टनिवारक होने से 'वरुण' क्रिया–भेद से परमात्मा के ही नाम हैं।] (दिवः) द्योतमान स्वप्रकाश सच्चिदानन्द परमेश्वर की शरण में वर्तमान अर्थात् शरणागत भक्त में, (ज्योतिः) विचित्र तेज को, (उद् अयंस्त, उद्यच्छति, उद्‌गमयति) उद्‌गत करता है, अर्थात् भगवत्कृपा से शरणागत भक्त अलौकिक तेजः सम्पन्न हो जाता है। पश्चात् वह (भक्त) अग्नि की तरह शुद्ध, दीप्त एवं, (आहूतः) आहूत, आमन्त्रित,, समस्त विश्व का समादरणीय बन जाता है।

अद्वैताचार्य विद्वद्वरिष्ठ मधुसूदन सरस्वती ने त्रिविध शरणागति का 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' (गीता १८–६६) श्लोक की व्याख्या का जो उल्लेख किया है, उसका आधार वेदमन्त्र इस प्रकार है—

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरुथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥

—ऋ० ६–४६–९

इसका भाव यह है कि (इन्द्र) परमात्मान् ! (त्रिधातु) तीन प्रभेदों से युक्त, (त्रिवरूथम्) आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आदिदैविक भेद से त्रिविध ताप के निवारक, (छर्दिः, रेफ उपजनः, छदिः छदिस्मत्) आच्छादन युक्त, अर्थात् दुर्जनों से

बचाव के लिए जो भक्तों को छिपाकर सुरक्षित रखता है उस, (शरणम्) अवलम्बन, शरणागति को (यच्छ) प्रदान करें । केवल मुझे ही नहीं, मेरे प्रेमी, धनी, समृद्ध वदान्यशिरोमणि अन्य प्राणियों को भी ।

तात्पर्य, हम सबको आप अपनी शरण में लें, जिससे हमारा कोई बाल भी बाँका न कर सके; (यावय, दिद्युम् एभ्यः) शत्रुओं से प्रयुक्त दिद्यु—चमकीले, अग्नि उगलते हुए, आयुध को मेरे सहित इन सबसे पृथक करें । आपके अनुग्रह से हम सब शत्रु के किसी भी आयुध के लक्ष्य न बनें, आदि वाक्यांशों के माध्यम से इसी भाव को प्रकट किया गया है ।

शरणागति के तीन प्रकार

पूर्वोक्त त्रिविध शरणागति के वे तीन प्रकार निम्नलिखित हैं—

तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा ।
भगवच्छरणत्वं स्यात् साधनाभ्यासपाकतः ॥

—गीता १८.६६ की गूढार्थदीपिका

अर्थात् १. मैं उन्हीं का हूँ, २. वे मेरे ही हैं और, ३. मैं वही हूँ, इस पद्धति से भगवच्छरणागति तीन प्रकार की है । क्रमशः प्रथम मन्द, द्वितीय मध्य, तृतीय अधिमात्र—तीव्र, दूसरे शब्दों में जैसे—जैसे निरन्तर अभ्यास से साधना में परिपक्वता सम्पन्न होती है, वैसे—वैसे साधक क्रमशः एक से दूसरी भूमिका—पर आरोहण करता है ।

प्रथम भूमिका में भक्त को भगवान् का परोक्ष ज्ञान होता है । शास्त्रों के परिशीलन से प्रभु की लोकोत्तर महिमा से परिचित हो, सांसारिक राजा—महाराजाओं की परवाह न करता हुआ वह केवल प्रभु की दासता को स्वीकार करता है ।

शरणागति का द्वितीय आदर्श भक्त सूरदास के जीवन में दृष्टिगोचर होता है । सूरदासजी चले जा रहे थे । मार्ग में एक गहरा गड्ढा था । कहीं भक्त गिर न जाय, इसलिए भगवान् ने सूरदासजी का हाथ पकड़ लिया । प्रभु जाने लगे तो सूरदासजी, कहीं प्रभु चले न जायँ, इसलिए दृढ़ता के साथ हाथ पकड़े रहे । अन्त में प्रभु ने बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ा लिया और जाने लगे । सूरदासजी बोल उठे—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात् कृष्ण किमद्भुतम् ।
हृदयाद् यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ॥

'हे कृष्ण ! बलपूर्वक आप हाथ छुड़ाकर जा रहे हैं, इसमें क्या आश्चर्य, अलौकिकता है । बलवान् व्यक्ति दुर्बल से हाथ छुड़ा हो लेता है । मैं आपका पराक्रम तभी

मान सकता हूँ, जब आप मेरे हृदय से निर्गत हो सकें।' यह अतिशय परिपूर्ण प्रेम ही द्वितीय शरणागति की कक्षा है।

तात्पर्य, संसार के सभी पदार्थों को भक्त अपना न मानकर उनसे सर्वथा उपरत हो केवल प्रभु में ही अपनी ममता को केन्द्रित करता है। उसका वही निरतिशय प्रेमपरिप्लुत ममतातिरेक द्वितीय कक्षा की शरणागति या भक्ति है। 'स एवाहम्' (वही मैं हूँ) इस प्रकार अद्वैतानुभूति सर्वोत्तम शरणागति की तीसरी कक्षा है। यमराज अपने अनुचरों को आदेश दे रहे हैं—

सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात्॥

—विष्णु० पु० ३.७.३२

अर्थात् हे अनुचरवर्ग! जिन महापुरुषों की अपने हृदयविहारी अनन्त निःसीम अपरिच्छिन्न प्रभु में इस प्रकार की मति, अटल भावना है कि मैं और यह समस्त जगत् अर्थात् हम सब वासुदेव के ही स्वरूप हैं, उन महापुरुषों को निगृहीत करने का भूलकर भी प्रयास नहीं करना चाहिए, उससे सदैव दूर ही रहना चाहिए। वे वासुदेव परमपुरुष अद्वितीय, सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेद-वर्जित परमेश्वर हैं। गीता में भी कहा है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ —गीता ७–१९

सर्वत्र वासुदेव–भावना से भावित–भक्त अतिदुर्लभ कहा गया है। तात्पर्य यह है कि समस्त जगत् वासुदेवस्वरूप है। इस भावना का उदय अनेक जन्मों की साधना का परिपक्व सुमधुर फल है। उक्त भावना से भूषित कोई विरला ही प्राणी होगा।

गीता के आरम्भ में 'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' (२–७); मध्य में गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्' (९–१८) तथा उपसंहार में 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' (१९–६६) इन वचनों द्वारा शरणागति का उल्लेख होने से गीता का तात्पर्य शरणागति में ही मानना होगा। उपक्रम (आरम्भ), परामर्श (मध्य) तथा उपसंहार (समाप्ति) में जिसका वर्णन हो, वही सिद्धान्त वक्ता को अभिप्रेत होता है, क्योंकि अपने अभिप्रेत विषय को दृढ़ करने के लिए वक्ता बार–बार उसका निर्देश करने से चूकता नहीं।

वैष्णव मत में षड्विध शरणागति

वैष्णव भक्ति–निबन्धों में विद्वद्वरेण्य वैष्णवाचार्यों ने षड्विध शरणागति स्वीकृत की है। उसीका नामान्तर 'प्रपत्तियोग' है। इसका उल्लेख 'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' (श्वेताश्व० ६–१८) में स्पष्ट है।

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रतिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागति ।

—अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७–२८–२

१. आनुकूल्यस्य संकल्प—प्रभु को जो प्रिय हैं, उन्हीं कार्यों को करने का मन में विचार तथा प्रयत्न करना अर्थात् गीता के (१६.१–३) में वर्णित दैवी सम्पत्ति के नाम से प्रख्यात छब्बीस सद्गुणों का जीवन में उपादान ही प्रथम शरणागति है ।

२. प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्—गीता (१६.४) में निर्दिष्ट दम्भ, दर्पाभिमानादि दुर्गुण आसुरी सम्पत्ति हैं, जिनको 'निबन्धायासुरी मता' (१६.५) इस उक्ति से बन्धन के कारण कहा गया है । उनका परित्याग द्वितीय शरणागति है ।

३. रक्षिष्यतीति विश्वासः—'भगवान् पिता हैं, मैं उनका प्रिय पुत्र हूँ । संकट के समय क्या पिता द्वारा कभी पुत्र की उपेक्षा सम्भव है ? अतः भयंकरातिभयंकर परिस्थिति में भी वे मेरी रक्षा से कभी चूकेंगे नहीं; अवश्य ही दुःख–महोदधि से मुझे उबारेंगे'—इस प्रकार का दृढ़ विश्वास ही तृतीय शरणागति है । 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' (गीता ९.२२)—मैं भक्त का योगक्षेम वहन करता हूँ । 'कौन्तेय प्रतिजानीहि न भक्तः प्रणश्यति,—(गीता ९.३१)—कुन्तीनन्दन ! घण्टानाद से उद्घोषित कर दो कि मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता, आदि भगवद्वचन तृतीय शरणागति को ही दृढ़ कर रहे हैं ।

४. गोप्तृत्ववरणम्—रक्षा के लिए किसी दूसरे का सहारा न लेना, मुख न ताकना, प्रभु को ही एकमात्र अपना रक्षक स्वीकार करना, आवश्यकता पड़ने पर अपनी अभीष्ट–पूर्ति के लिए प्रभु का ही दरवाजा खटखटाना, किसी दूसरे की सहायता की आशा स्वप्न में भी न करना तथा समस्त जगत् मेरे आराध्यदेव प्रभु के द्वार का भिखारी है, मैं भी उसी से अभीष्ट की याचना करूँगा, भिखारी से भीख माँगना क्या शोभास्पद है ? यह भाव दृढ़ होना ।

कहा जाता है कि एक बार जङ्गल में सम्राट् अकबर के प्राण पिपासा से संकट में पड़ गये । एक किसान ने अपने निमित्त सुरक्षित जल के दान से उसकी रक्षा की । उपकृत सम्राट् ने किसान को अपना हस्ताक्षर युक्त पत्र दिया, जिसके आधार पर वह निःशङ्क सम्राट् के दरबार में पहुँच सका । बादशाह ने प्राणदाता किसान से स्नेहपूर्वक सदा साथ रहने का अनुरोध किया और कहा कि 'आपके लिए कोई वस्तु अदेय नहीं, जो माँगेंगे, वही मिल जायेगी ।'

एक दिन मस्जिद में वह सम्राट् के साथ गया। नमाज पढ़ते हुए सम्राट् की शारीरिक चेष्टाओं से उस किसान को अनुभव हुआ कि सम्राट् भगवान् से कुछ माँग रहा है। पूछने पर सम्राट् ने भी उसकी पुष्टि की। किसान सम्राट् के पास से बिना कुछ माँगे चल दिया। सम्राट् के रोकने पर भी नहीं रुका। अन्त में सम्राट् ने सस्नेह कहा—'मित्र! खाली हाथ-क्यों जा रहे हो?' तब विवश होकर किसान को कहना ही पड़ा कि 'भिखारी का भिखारी क्यों बनूँ? जिनके भिखारी आप हैं, यदि आवश्यकता होगी तो उन सबके दाता विश्वनियन्ता प्रभु से ही माँग लूँगा।' इस प्रकार प्रभु के अतिरिक्त किसी और के आगे हाथ न पसारना चतुर्थ शरणागति है।

५. आत्मनिक्षेप—विश्व-रूप-दर्शन से संत्रस्त अर्जुन गीता (११.४१.४५) में कह रहे हैं—'आप समस्त चराचर जगत् के पालक हैं। जब कोई आपके समकक्ष ही नहीं तो किसी के आपसे उत्कृष्ट होने की तो सम्भावना ही क्या! आप पूज्य, जगत्वन्द्य, जगद्गुरु हैं, आपका प्रभाव अतुलनीय है। अतः मैं आपके श्रीचरणों में नतमस्तक हूँ।

आप मुझ पर प्रसन्न हों। आपकी महिमा को न जानते हुए मित्र मानकर एकान्त अथवा जनसमाज के समक्ष मैंने आपके प्रति उपेक्षारूप जो अपराध किये हैं, आप भक्तवत्सल दयानिधि हैं, आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास है कि आप अपने जन की उस अवज्ञा पर ध्यान न देंगे।' इसके अतिरिक्त 'मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः' (गीता ६.१४); 'मन्मना भव मद्भक्तः' (९.३४) आदि श्लोकों में 'आत्मनिक्षेप' शरणागति की ओर संकेत किया गया है। आत्मनिक्षेप का अर्थ है—अपने जीवन को प्रभु के हाथ में सौंप देना। मन-वचन-कर्म से निष्काम प्रभु-सेवा में तत्परता ही पञ्चम शरणागति है।

६. कार्पण्यम्—कार्पण्य (दैन्य) शब्द का अर्थ है—आर्तस्वर से प्रभु-प्रार्थना। भगवान् को यह भाव अत्यन्त प्रिय है। अपना पृथक् अस्तित्व मिटा डालना ही दैन्य की पराकाष्ठा है।

शरणागति ही नहीं, अपितु शरणागत भक्तों का उद्धार भी वैदिक कथाओं में विशेष उपलब्ध है। ऋग्वेद के २५ सूक्तों के द्रष्टा 'दीर्घतमा ऋषि' का, क्रूर सेवक के खड्ग प्रहार से शरीर के टुकड़े-टुकड़े किये जाने पर भी, देहावसान न होना, यथापूर्व जीवित रहना, प्रबल पाप के प्रभाव से भ्रष्टबुद्धि क्रूर दास का आत्महत्या करके संसार से चल बसना, दुष्ट अनुचर द्वारा रस्सियों से बाँधकर नदी में फेंकने पर भी न डूबना, प्रत्युत जीवित रह अङ्गराज की सभा में पहुँचकर

विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करना, जन्मान्ध होने पर भी दृष्टि-शक्ति से सम्पन्न होना, प्रभृति घटनाएँ भगवत्कृपा का ही अद्भुत प्रभाव हैं (वेदोप० चं० श्लोक ४५-४६, ऋ० १.१४७.३ तथा १५८.५) अत्रिसुता अपाला के श्वेत कुष्ठ की निवृत्ति होने के अनन्तर उसका सूर्य के समान देदीप्यमान हो जाना (वेदोप० चं० श्लोक ९२,८.९१.७), बन्धु आदि भ्राताओं के प्रार्थना करने पर सुबन्धु का पुनः जीवित हो जाना (वेदोप० चं० श्लोक ९३-ऋ० ५.२४-तथा १०.५७-६०) इत्यादि अद्भुत चमत्कारों से ईश्वर कृपा का जाज्वल्यमान सामर्थ्य प्रमाणित होता हैं। स्मरण रहे, अग्न्यादि नाम से जगदीश्वर ही स्तुत्य हैं, अग्न्यादि देवता नहीं। अतः अग्न्यादि की कृपा से सम्पन्न कार्य जगदीश्वर की कृपा का लोकोत्तर परिणाम है। अधिक क्या कहें, भगवत्कृपा के चमत्कारी उदाहरणों का संग्रह ही वेद, अष्टादश पुराण, महाभारत, रामायण तथा सन्त-वाणी, किम्बहुना समस्त विश्व-साहित्य है।

ता. १७ जुलाई को वेद-मंदिर में, आपके भक्त-शिष्य श्री नारी पोहानी द्वारा वेद-पारायण प्रारंभ हुआ। ता. २६ जुलाई को पूर्णाहुति की गई। आपके विश्व भर में वेद-प्रचार-प्रसार से, भारतवासी ही नहीं, विदेश निवासी भक्त-समाज में भी **भगवान्-वेद** की अमृत-लहरी इतनी प्रबल हो गई है कि सब वेद-पारायण कराने में ही अधिक प्रसन्नता की प्रतीति करते हैं।

ता. २५ जुलाई को, वेद-मंदिर में प्रातःकाल कोटी कांची के शंकराचार्य जी पधारे एवं मंदिरों का दर्शन किया। सायंकाल आपकी अध्यक्षता में श्री रमण लाल जी द्वारा लिखित, 'वेद भागवत' का समर्पण, स्वर्गीय श्री मंगलभाई को किया तब व्रजराज महाराज भी पधारे थे।

अब ता. २७ जुलाई को गुरु-पूर्णिमा थी। प्रतिवर्षानुसार विभिन्न शहरों से भक्त-गण आपके दर्शन पूजनार्थ सुबह से रात तक आते रहे। वही एक दिन होता है जब दूर-देशी गुरु-भाई-बहनों का प्रेमभावपूर्ण मिलन संभव होता है। परस्पर गुरु प्रशस्ति करने का आनंद-लाभ प्राप्त होता है।

अहमदाबाद का एक प्रसंग मुझे याद आता है—

मान के भाजन

'महाराज! आप तो इतनी भीड़ में भी पढ़ते रहते हैं।' एक भक्त ने आश्चर्य व्यक्त किया।

'हाँ भाई। क्या करें, काम तो करना है।' प्रभु ने प्यार से उत्तर देते

कहा, 'जो सज्जन प्रेम से दर्शन करने को आते हैं, उनकी श्रद्धा को तो ठुकराया नहीं जाता और अपना काम रुक जाय यह भी ठीक नहीं।

'लेकिन इसमें धारा का विच्छेद नहीं होता है?' भक्त ने प्रश्न कर दिया।

'हाँ, होता तो है, फिर भी उसे जोड़ लेते हैं। जो आनन्द और एकाग्रता आबू जैसे एकान्त स्थल में आती है, वह बम्बई जैसे बहुजनसंकुल स्थान में कहाँ से आयेगी?' प्रभु बोले।

'तो आपको कष्ट भी पड़ता होगा'? भक्त ने संशय की अभिव्यक्ति जरा घबराहट के साथ कर दी। 'कष्ट तो क्या होना है। अब तो अभ्यास हो इस प्रकार का हो गया है। मैं एकबार मालवियाजी से कार्यवशात् मिलने गया था। मालवियाजी हिन्दू सभा की नियमावली लिख रहे थे। मैं मौन होकर बैठ गया। वह कहने लगे 'महाराज चुप क्यों हो? मैंने कहा,' आप नियमावली लिख रहे हैं।' तब हँस कर बोले, "आप जिस काम से आये हैं वह बताइये। मैं आपसे बात भी करूँगा और नियमावली लिखता भी रहूँगा। इस प्रकार दोनों काम करने का मुझे तो अभ्यास हो गया है।" सच कहो तो मालवियाजी बात करते भी रहे एवं नियमावली भी लिखते रहे। उनके लिये नियमावली लिखना आसान काम था। अनेक संस्थाओं की लिख चुके थे। मेरे लिये भी अभ्यास हो गया है।

एक बार गुरुदेव को विशेषता को ओर गौर करते हुए अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी एवं वेदमंदिर के ट्रस्टी श्री चन्द्रकान्त भाई जगाभाईवाला ने बताया था कि 'मैं अनेक साधु सन्तों से मिलता हूँ, लेकिन स्वामीजी जैसे विद्याभ्यासंगी सन्त नहीं देखा। कोई भी कितना धनी या बड़ा आदमी आये, उससे यथोचित व्यवहार के बाद सद्य अध्ययन में व्यस्त हो जाते हैं। अतः मुझे स्वामीजो के प्रति सविशेष मान होता है।

प्रभु शरण का स्तोत्र

यहाँ पर एक विद्वान ने प्रभु से कहा! हे भगवन्। हमें कोई सुन्दर स्तोत्र वेद में हो तो बताइये।

'भाई आप जैसे विद्वानों के लिये तो सारा वेद ही स्तोत्र है।' प्रभु ने उत्तर दिया।

'नहीं प्रभु! कोई सुन्दर मन्त्र हो, भले हो वह अप्रसिद्ध हो, लेकिन उसमें कोई मनोहर भक्तिमय भावभरे हों, ईश्वर के गुणगान हो, भक्त हृदय की भावना का प्रतिघोष करने वाला वह मन्त्र हो, जिसे पढ़कर—सुनकर और औरों को सुनाकर

हम कृत्यकृत्य हो जायें । विद्वान ने अपनी अभिलाषा की पूर्णतया अभिव्यक्ति कर दी ।

प्रभु तो ठहरे कल्पवृक्ष समान । और वेद तो है चिन्तामणि । आप जो चाहें वह पा सकते हैं, सद्य प्रभु ने नीचे का मन्त्र सुनाया—

उरुं नो लोकं अनु नेषि विद्वान्
स्ववंत् ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू
उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥

—ऋ. वे. ६-४७-८, अथर्व. १९-१५-४

इन्द्र–हे इन्द्र, परमेश्वर, त्वं–आप, **विद्वान्**–सब कुछ जाननेवाले हैं तो हमें, **उरुं लोकं**–महान लोक में, **अनुनेषि**–पहुँचा देते हैं जहाँ, **स्ववंत्**–आनन्द, **ज्योतिः**–प्रकाश, **अभयम्**–अभय, निर्भयता तथा **स्वस्ति**–कल्याण का वास है, **ते**–आप, **स्थविरस्य**–वृद्ध याने पुराण पुरुष के, **बाहू**–हाथ, **ऋष्वा**–विघ्नों के नाश करनेवाले हैं । अतः हम आपकी, **बृहन्ता शरण**–महान, अपरंपार शरण में, **उपस्थेयाम**–बैठ जायें या बैठ जाना चाहते हैं ।

प्रभु ने मन्त्र का विवेचन भी प्रस्तुत कर दिया, 'देखो भाई ! यहाँ ईश्वर को सर्वज्ञ कहकर उसके गुणगान किये हैं । स्तोत्र में स्तोतव्य के गुणों का कथन होना आवश्यक है । इस सर्वज्ञ शब्द के अन्य अनन्त गुणों को उपलक्षण ही मान लें, इसमें इष्टापत्ति है । फिर यहाँ प्रभु के महान लोक में पहुँचने की कामना है । और वह लोक भी कैसा है ? आनन्दमय, प्रकाश स्वरूप, भयरहित और कल्याणप्रद । आ गये न प्रायः सभी स्वर्ग या वैकुंठ के लक्षण ? स्तोत्रों में ऐसे लोकों की कामना भक्त करता ही है । अब रह गया इस लोक में पहुँचने का उपाय । क्यों ठीक है न ?

'हाँ महाराज ।' विद्वान ने प्रभु की बात स्वीकार ली ।

'तो वेद भगवान उसकी भी कमी नहीं रखते हैं ।' प्रभु ने कहा, 'स्तोत्रों में शरणागति का भाव प्रमुख रहता है । और मन्त्र के चौथे चरण में प्रभु की महान शरणागति ऋषि चाहता है ।' प्रभु भक्तों के सदा सहायक हैं, यह स्तोत्र साहित्य में प्रसिद्ध भाव का सूचन 'प्रभु के हाथ विघ्नों के नाश करनेवाले हैं' यह कहकर कर दिया है । तो अब हो गया यह आपका प्रभु शरण का वैदिक स्तोत्र ।

एक अन्य प्रसंग भी यहाँ उल्लेखनीय है कि—

जागृत को तो वेद ही कामना करता है

'भगवन् ! हम वेद की कामना करते हैं । वेद पढ़ना चाहते हैं, सुनते हैं

या वेद से हमारा उद्धार होगा ऐसा मानते हैं।' एक भक्त ने प्रश्न के लिये पूर्वभूमिका प्रस्तुत की।

'हाँ! ठीक है। हमें वेद की कामना करनी ही चाहिए।' प्रभु ने बीच में ही उत्तर दिया। 'लेकिन कहीं ऐसा हो सकता है कि वेद ही हमारी कामना करें।' भक्त ने प्रश्न पूरा किया। 'हाँ। क्यों नहीं' प्रभु 'बोले, लो **भगवान् वेद** के शब्दों में ही सुनो—

> **यो जागार तमृचः कामयन्ते**
> **यो जागार तमु सामानि यन्ति।**
> **यो जागार तमयं सोम आह**
> **तवाहस्मि सख्ये न्योकाः॥**

—ऋ. वे. ५–४४–१४, सा. वे.

यः—जो, **जागार**—जागता है, **तम्**—उसकी, **ऋचः**—ऋचायें, **कामयन्ते**—कामना करती है, **यः**—जो, **जागार**—जागता है, **तम्**—उसके पास, **उ**—निश्चित रूप से, **सामानि**—साम, **यन्ति**—आते हैं, **यः**—जो, **जागार**—जागता है **तम्**—उसे **अयम्**—यह, **सोमः**—सोम, **आह**—कहता है कि, **अहम्**—मैं, **तव**—तेरा, **अस्मि**—हूँ, **सख्ये**—तेरी मित्रता में **न्योकाः**—निवास करता हूँ।

'जो जीवन में सदा जागृत है, उसकी कामना ऋचा एवं साम करता है, अर्थात् वेद स्वयं करता है।

'यह तो नवीन एवं समझने की बात है' भक्त ने कहा।

'हाँ। बिलकुल जीवन में समझ कर अमल में लाने की बात है। मनुष्य सारा जीवन सोता रहता है। निद्रा, आलस्य एवं प्रमाद में ही अपना जीवन बहुधा व्यतीत करता है। यदि वह अपनी अज्ञानमयी निद्रा का त्याग करे तो उसे वेद या ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। देखो, इसी मन्त्र से स्पष्ट है कि भगवान् सोम ही कहते हैं कि जो जागृत है उसके वे मित्र बन जाते हैं, याने सदा सहायक बनते हैं।

'तो हमें जागना चाहिये' भक्त ने कहा। 'अवश्य' प्रभु ने आदेश दिया, 'हम संसार के भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिये भी भौतिक निद्रा का त्याग करके घण्टों तक परिश्रम करते हैं। तो फिर प्रभु की प्राप्ति के लिये घोर मोहमयी निद्रा से जागकर अथक परिश्रम करना चाहिये। एक बार आप जागृत हो जाओ फिर वेद या स्वयं भगवान ही आपको कामना करेंगे, आपके मित्र बनेंगे और आपका बेड़ापार करेंगे।

१०. यद् भद्रं तन्न आ सुव।

—ऋ. वे. ५-८२-५

ऋग्वेद के मंडल ५ सूक्त ८२ मंत्र ५, ६ और सात में श्यायाश्व ऋषि ने भगवान सविता याने प्रत्यक्षदेव सूर्यनारायण की स्तुति की है। वहाँ पर वेद के ऋषि कल्याण की कामना करते हुए कहते हैं—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव।

—ऋ० वे० ५-८२-५

हे देव सविता, दुनिया के समग्र पापों को हमसे दूर कर दो और जो कल्याणमय है, उसीका ही हमारे लिये सर्जन करो। हमें हमेशा जो कल्याणमय मंगलमय हो, वही प्रदान करो। जोवन में शिव याने कल्याण या मंगल की कामना या उपासना करना यह मानवमात्र का धर्म है। हम अपने लिये अपने परिवार के लिये या मित्र के लिये कल्याण की कामना करें, यह पर्याप्त नहीं है, हमें अपने शत्रु के कल्याण की भी कामना करनी चाहिये। यही हमारी भारतीय परंपरा है। आशीर्वाद देते समय कहा जाता है **शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु**। यहाँ शत्रु के नाश की बात नहीं है। शत्रु की बुद्धि का-कुबुद्धि का नाश हो, यह भावना व्यक्त की गई है। मतलब हम शत्रु या मित्र के प्रति समान भाव रखते हैं और सर्वत्र कल्याण की कामना करते हैं। पाप से बचकर आजीवन कल्याण की प्राप्ति हमारा जीवनलक्ष्य होना चाहिये, यह शिक्षा हमें इस वेदमंत्र से प्राप्त होती है। यहाँ पर आगे के मंत्र में विशेष काम की बात बताई गई है—

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे।
विश्वा वामानि धीमहि।

—ऋ० वे० ५-८२-६

हम देदीप्यमान भगवान सविता देव के ज्ञान में याने दृष्टि में निष्पाप बनें और विश्व में सौंदर्य का सब सुन्दर चीजों का ध्यान करें। जीवन में हमें सर्व प्रथम निष्पाप बनना है। हमारे दिनभर के कामों के साक्षो हैं प्रत्यक्ष देव सविता। हम इस भगवान सूर्यनारायण की दृष्टि में पापरहित बनें। हम ऐसे कार्य करें कि जैसे सूर्यनारायण की उपस्थिति में अन्धकार हमें स्पर्श नहीं करता है, उसी प्रकार

पाप भी कोसों दूर रहे। इसलिए जरूरी जीवन व्यवहार कैसा होना चाहिये, वह **वेद भगवान्** यही बताते हैं। **'विश्वा वामानि धीमहि।'** विश्व में हम समग्र सौंदर्य का ध्यान धरें। जीवन में या संसार में अच्छी–बुरी सब बातें होती हैं। सुन्दर और असुन्दर का सह–अस्तित्व संसार में तो है। लेकिन हमें तो सुन्दर की उपासना करनी है और असुन्दर का त्याग। हंस की तरह सुन्दरता के क्षीर का उपभोग करना है और असुन्दरता रूपी जल को छोड़ देना है। भाई! गुलाब के साथ काँटे होते तो हैं, लेकिन हम तो गुलाब का सौंदर्यपान करें, यही जरूरी है। काँटों में हाथ डालने की कोई आवश्यकता नहीं है। सत्य, प्रेम, अहिंसा आदि सुन्दरतम गुणों की उपासना करें। इससे विपरीत असुन्दर दुर्गुणों के प्रति दृष्टिपात ही न करें। ऐसा **भगवान् वेद** हमें सिखाते हैं। **'विश्वा वामानि धीमहि'** की **भगवान् वेद** की शिक्षा को जीवन मन्त्र बनानेवाला मनुष्य अपना कल्याण तो करेगा, साथ ही अपने संग आनेवाले का भी कल्याण करेगा।

इस कथा प्रसंग से मेरा मन अतीव प्रसन्न हो गया। गुरु महाराज के जीवन रहस्यों की मानो यह गुरु चाभी है। आप सब कुछ जानते हैं। अपने साथी संतों का या शिष्यगण का सारा जीवन व्यवहार आप से छिपा नहीं है। आप सर्वज्ञ होते हुए भी किसी के जीवन की असुन्दर बात के प्रति किञ्चित् भी दृष्टिपात नहीं करते हैं। और किसी को कुछ भी नहीं कहते हैं। बुराई में से भी भलाई, अमंगल में से भी मंगल, दुर्गुण में से भी सद्‌गुण को ढूँढ़ना, यह हमारा इति कर्तव्य है, यह बात हमारे परमाराध्य गुरुदेव अपने चरित्र से हमें सतत सिखाते हैं। यह हमारी कमी है कि हम इस सूर्य प्रकाश के समान सुस्पष्ट बात को भी मायावश प्रत्यक्ष नहीं कर पाते हैं। हमें तो अन्तर में श्रद्धा है कि गुरुकृपा ही भक्तों को सब कुछ हस्तामलकवत् स्पष्ट कर देगी।

बम्बई में

गुरुपूर्णिमा के बाद आप बम्बई पधारे और सेठ बालचन्द पमनानी के बँगले में निवास किया। इस वर्ष आपकी जन्म शताब्दि के निमित्त बहुत विस्तृत कार्य-क्रम की रूपरेखा बनाकर, तदनुसार पूर्ण व्यवस्था करनी थी। इसलिये उत्सव तक आपका सतत बम्बई निवास आवश्यक था।

ता. ३ अगस्त को, तुलसी निवास, डी रोड में, 'गुरु गंगेश्वर शताब्दि समारोह' की मिटींग हुई, जिसमें मुख्य शिष्यगण उपस्थित थे। बँगले में भी श्री रामभाई ड्रेसवाला, श्री सोमानीजी, श्री सदाजीवतलाल, श्री दिनेशभाई, श्री नानुभाई झवेरी आदि उत्साही, अनुभवी, कार्यदक्ष लोकसेवक आपकी पवित्र सेवा में संपूर्ण

सहयोग देने के लिये मिलते रहे। आपके परम सेवक श्री ठाकोरभाई पटेल, श्री गोविंदराम तथा मुरलीधर आसवानी, श्री लोकुमल मंगनानी, श्री मथुरादास चावला, श्री हशमतराय वकील, चेनराय परिवार आदि अनेक प्रेमी भक्तों ने सब प्रकार का सहयोग दिया। भारत तथा विदेश निवासी भक्तों के लिये यथायोग्य निवासस्थान, खान-पान, वाहनादि की भी अति औदार्यपूर्ण व्यवस्था, संतों का अलग प्रबंध, वेद-पाठी विद्वानों एवं ब्राह्मणों का उचित सम्मान, भोजन तथा दान-दक्षिणा का पूरा प्रबंध आदि ऐसे अनेक कार्यों की जिम्मेदारी इन्होंने उठाई। आप सावधानी-पूर्वक इस शताब्दि महोत्सव की शोभा बढ़ाने उत्सुक रहे। उसमें पञ्चदेव महायज्ञ, शुकदेव स्वरूप श्री डोंगरे महाराज द्वारा श्रीमद्भागवत की कथा, १०८ भागवत् पारायण, १०८ वेद-पारायण, गुरुदेव का पौष शुक्ल सप्तमी का जन्मोत्सव एवं विविध सम्मेलन का कार्यक्रम रखा था। समय-समय पर कार्यकर, अपनी अपनी तैयारी या प्रबंध की सूचना आपको देते रहे थे।

ता. २६ अगस्त को रक्षाबंधन का पवित्र दिन था। अनेक भक्तों ने आपको भावपूर्वक रक्षाबंधन किया। ता. १ सितम्बर को नंदनंदन श्रीकृष्ण का प्राकट्य दिन प्रतिवर्षानुसार तुलसी निवास में, आपकी अध्यक्षता में बहुत धुमधाम से मनाया गया। ता. १९ सितम्बर भाद्रपद शुक्ल नवमी को, हमारे उदासीन संप्रदाय के आदि पुरुष शंकरावतार, आचार्य श्री चंद्र का प्राकट्य उत्सव भक्त-संतगण ने आनंद पूर्वक मनाया। रोट-प्रसाद वितरण एवं आरति हुई। इस अवसर पर चतुर्थआश्रम संन्यास की आपने वेद वचनों से सिद्धि की।

चतुर्थाश्रम की वेद द्वारा सिद्धि

अपने वैदिक साहित्य में वीतराग मुनि का स्पष्टतया वर्णन है। उनकी क्रिया एवं सिद्धि का जो निरूपण है, उसे देखकर सिद्ध होता है कि **भगवान् वेद** चतुर्थाश्रम याने संन्यासाश्रम का विधान करते हैं। जैसे कि—

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गाः वसते मलाः।
वातस्यानुध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत॥

—ऋ० वे. १०-१३६-२

मलाः-मलिन **पिशङ्गाः**-भगवे वस्त्र धारण करनेवाले, **मुनयः**-मुनि लोग, **वसते**-रहते हैं। वे कैसे हैं? तो कहते हैं, **वातरशनाः**-वात याने वायु, वायु ही ब्रह्म है, क्योंकि 'नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' ऐसा श्रुति में कहा है। अतः ब्रह्म जिसका बन्धन आश्रम है वह ब्रह्म में लीन रहनेवाले को वातरशनाः कहते

हैं। **वातस्य**–ब्रह्म के, **ध्राजिम्**–पद को, **अनुयन्ति**–प्राप्त करते हैं। **यत्**–जिस पद में, **देवासः**–देवलोग, आत्मतत्त्व को जानने वाले लोग, **अविक्षत**–योग द्वारा प्रवेश करते हैं।

इस मंत्र से स्पष्ट होता है कि संन्यासाश्रम वेदविहित है। कोई पूछेगा कि संन्यास शब्द का प्रयोग श्रुति में है? तो उत्तर उदाहरण के साथ दिया जाता है कि **संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः** ऐसा मुण्डकोपनिषद् में लिखा ही है। और याद रहे कि जैसे पक्षी के आकाश में और जलचर के पदचिह्न पानी में दिखाई नहीं पड़ते हैं, वैसे ही ज्ञानवान् की गति होती है। वह अत्रतत्र सर्वत्र विचरते हुए भी निर्लेप होते हैं।

शकुनीनामिवाकाशे जले वारिचरस्य च।
पदं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानवतां गतिः॥

ये संन्यासी संसार निःसार है, ऐसा निश्चय प्रथम कर लेते हैं। बाद में क्या सच्चा सार है, उसे पाने के लिये शादी किये बिना उत्तम कोटि के वैराग्य का आश्रय लेकर संसार का त्याग करके प्रव्रज्या धारण करते हैं।

संसारमेव निःसारं दृष्ट्वा सारदिदृक्षया।
प्रव्रज्यत्यकृतोद्वाहः परं वैराग्यमाश्रितः॥

श्रीनगर में

गत वर्ष, श्रीनगर में, श्रीचंद्र चुनार में बड़ा उत्सव आपकी अध्यक्षता में मनाया गया था। इस वर्ष भी, वहाँ के वयोवृद्ध महंत कृष्णदास एवं भक्तवर श्री विश्वनाथ सहगल की विज्ञप्ति से आप ता. २१ सितम्बर को हवाई जहाज से श्रीनगर पधारे। ता. २३ सितम्बर को आचार्य श्रीचंद्र की स्फटिक प्रतिमा की स्थापना, श्रीचंद्र चुनार में आपके वरद करकमल से संपन्न हुई। वहाँ के निवास दरम्यान, श्री विश्वनाथ सहगल के गृहांगण में सत्संग चलता रहा। जहाँ–जहाँ आप जाते हैं, भूमि तो निःसंदेह आपकी पदरज से पावन होती ही है, भक्तों के हृदयाकाश में भी मानो सूर्य–प्रभा की लालिमा छा जाती है, एवं नयन सजल बन, आपकी दिव्यमूर्ति माधुरी का आनंद पाते हैं। श्रीचंद्र स्वयं भी अपने साकार स्वरूप को देखना चाहते हैं, तब तो उस पवित्र चंद्र चुनार भूमि में आपको पदार्पण करना होता है।

एक बार श्रीनगर में श्रीचन्द्र चुनार को संत भूमि बताते हुए आपने यहाँ 'वेद में सन्त' इस विषय पर मार्मिक प्रकाश डाला है।

वेद में संत

कौन ऐसा हतभाग्य प्राणी होगा जो त्रिविध-दुःख-निवारण के लिए सचेष्ट न हो। त्रिविध दुःख का निवारण तभी होगा जब उसके कारण अज्ञान का ब्रह्म-विद्या के द्वारा नाश हो। ब्रह्मविद्या का उदय सन्त-कृपा पर निर्भर है। इसी भाव से गर्ग संहिता में कहा है—'नृणामन्तस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः' अर्थात् सूर्यनारायण तो निस्सन्देह ही बाह्य अन्धकार का नाश करते हैं; किन्तु मनुष्यों के अन्तर के अन्धकार का नाश साधु (सन्त) ही कर सकते हैं, सूर्य नहीं।

उन संतों के लक्षण, सन्त शब्द का अर्थ, सन्त शब्द साधु है; वा अपभ्रष्ट वेद में प्रयुक्त है या नहीं, यदि प्रयुक्त है तो किसके लिए? कर्मयोगी, भक्त और ज्ञानी इन सबके लिए या किसी एक के लिए, आदि विषयों की मीमांसा इस लेख द्वारा की जाती है।

सन्त शब्द की सिद्धि

सन्त शब्द चार तरह से निष्पन्न हो सकता है—

१. 'षण सम्भक्तौ' (भा० प० ४६४) धातु से औणादिक 'तन्' प्रत्यय करने से निष्पन्न सन्त शब्द का अर्थ है—'सनति सम्भवति लोकाननुगृह्णाति' अर्थात् लोकानुग्रहकारी। यह सन्त शब्द व्याकरण नियम से साधु तो है, परन्तु शास्त्र में प्रयुक्त नहीं है।

२. 'शम्' शब्द से 'कंशंभ्यां बभयुस्तितुयसः' (पा० सू० ५.२.१३८) द्वारा 'त' प्रत्यय होने पर 'शान्त' शब्द बनता है। इस शब्द की 'शं सुखं ब्रह्मानन्दात्मकं विद्यते यस्य' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ होगा—'ब्रह्मानन्द-सम्पन्न व्यक्ति'। इसीका अपभ्रंश सन्त शब्द है।

३. 'षणु दाने' (त० उ० १४६४) धातु से 'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्' (पा० सू० ३.३.१७४) से 'क्तिच्' प्रत्यय लगाने पर 'सन्ति' शब्द बनता है। 'सनोति प्रार्थितं फलं प्रयच्छति' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ होगा—'फलदाता'। इसी 'सन्ति' शब्द से 'तत्र साधुः' अर्थ में 'यत्' प्रत्यय करने पर 'सन्त्य' शब्द बनता है जिसका अर्थ है—'फलदाताओं में श्रेष्ठ'। इस सन्त्य शब्द का ऋग्वेद में बहुत स्थलों पर प्रयोग हुआ है—

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि। देवान् देवयते यज।

—ऋ० १.१५.१२

अर्थात् 'फल-प्रदाताओं में श्रेष्ठ हे अग्निदेव! आप गृहपति सम्बन्धी रूप से युक्त हैं, ऋतुदेव के साथ यज्ञ के निर्वाहक हैं। देव! कृपाकांक्षी यजमान के लिए

देवयजन को निर्विघ्न सम्पादन करें।' मंत्र में अग्निदेव के लिए फलदाताओं में श्रेष्ठ अर्थ को लेकर सन्त्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। यतः ब्रह्मवित् महात्मा लोग देव दुर्लभ ब्रह्मविद्या-रूपी फल प्रदान करते हैं, अतः वे फलदाताओं में सर्वोच्च हैं। इसीलिए लोग अधिकतर उन्हें ही 'सन्त्य' कहने लगे। वही शब्द कुछ विकृति के साथ 'सन्त' शब्द के रूप में आजकल महात्माओं के लिए प्रयुक्त होता है।

४. सन्त शब्द सिद्धि का एक अन्य प्रकार यह भी है—'अस भुवि' धातु से शतृ प्रत्यय होने पर 'सत्' शब्द बनता है, जिसके प्रधानतः अर्थ दो हैं—विद्यमान और श्रेष्ठ। गीता में कहा गया है—'सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते।' अर्थात् 'विद्यमान वस्तु तथा श्रेष्ठ वस्तु के बोधन के लिए सत् शब्द प्रयुक्त होता है।' इस प्रकार सत्ता और श्रेष्ठता सच्छब्द का प्रवृत्ति-निमित्त है।

वेदान्त-सिद्धान्त में किसी भी पदार्थ की ब्रह्म को छोड़ स्वतन्त्र सत्ता नहीं। शुक्ति-कल्पित रजत में इदंता के समान ब्रह्मकल्पित समस्त विश्व में अधिष्ठान ब्रह्म-सत्ता का ही भान होता है। इस प्रकार त्रिकालाबाध्य ब्रह्म-तत्त्व ही पारमार्थिक सत्ता-युक्त होने से 'सत्' शब्द का वाच्यार्थ है। अतएव गीतोक्त ब्रह्मत्रयी में सत् शब्द की गणना की गयी है—ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।

जिस तत्त्व को ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, कर्मयोगी और भक्त उसी को ईश्वर कहते हैं। अतः माया की मोहक शक्ति को पद-दलित कर अशास्त्रीय पथ में प्रवर्तक लोभ-मोहादि राजस-तामस भावों की दासता से मुक्त हो शास्त्र-विहित मार्ग की ओर अग्रसर होने का जो सतत प्रयास करते हैं वे महापुरुष, कर्मयोगी, भक्त, ज्ञानी, किसी भी कोटि के क्यों न हों, सत्—परमतत्त्व-पर निष्ठा रखने के कारण 'सत्' शब्द द्वारा व्यपदिष्ट होते हैं। सत् शब्द के सत्तारूप प्रथम प्रवृत्ति-निमित्त को लेकर ब्रह्म-वाचक सत् शब्द का प्रयोग इनमें लक्षण वृत्ति से होता है। सत् शब्द का प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में 'सन्तः' ऐसा रूप बनता है। उसीका अपभ्रंश 'सन्त' शब्द सत्पुरुषों के लिए हिन्दी में प्रयुक्त है। द्वितीय श्रेष्ठता-रूप-प्रवृत्ति-निमित्त पक्ष में सत् शब्द का प्रयोग उनमें मुख्य ही है, गौण नहीं, क्योंकि वे अष्टविध आत्मगुण तथा वैराग्यादि सात्त्विक-भावों से सम्पन्न होने के कारण सर्वश्रेष्ठ हैं।

द्विविध संत

सारांश किसी भी प्रकार सन्त शब्द निष्पन्न किया जाय, सर्वथा उसका अर्थ सत्पुरुष ही होगा। ये सत्पुरुष दो प्रकार के होते हैं—प्रवृत्तिसेवी और निवृत्तिसेवी। कर्मियों को प्रवृत्तिसेवी तथा ज्ञानियों को निवृत्तिसेवी कह सकते हैं। भक्तों का संबंध दोनों ओर है। अतएव भगवान् ने गीता में कर्म और ज्ञान के मध्य में भक्ति को स्थान दिया है।

१. कर्मयोगी सन्त—कर्मयोगी सन्तों का ऋग्वेद के निम्ननिर्दिष्ट मंत्र में इस प्रकार वर्णन है—

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥

—१.११०.४

वाघतः=ऋत्विजों के सहित, सौधन्वनाः=सुधन्वा के पुत्र, ऋभवः=ऋभुः नामक, सन्तो मर्तासः=सत्पुरुष, शमी=यज्ञदानादि एवं तपश्चर्या, परोपकारादि कर्म का, विष्ट्वी=अनुष्ठान कर, तरणित्वेन=शीघ्र ही, अमृतत्वम्=देवभाव को, आनशुः=प्राप्त हुए ।

अर्थात् ऋभु नाम के सत्पुरुष कर्मानुष्ठान की अलौकिक प्रज्ञा से सम्पन्न इन्द्रादि देवों के समान, (संवत्सरे) वर्ष के अवयव वसन्तादि भिन्न-भिन्न ऋतुकाल में अनुष्ठान करने के योग्य, (धीतिभिः) अग्निष्टोमादि यज्ञों से, (समपृच्यन्त) सम्बद्ध अर्थात् हविर्भाग के योग्य हुए । तात्पर्य यह कि कर्मयोग का अलौकिक सामर्थ्य है । आत्मोन्नति-प्रासाद के उच्चाति-उच्च शिखर पर आरूढ़ होने के लिए कर्मयोग ही प्रशंसनीय सोपान है । ऋभु नाम के सन्त इसके ज्वलन्त निदर्शन हैं । वे मनुष्य ही थे, परन्तु उनकी कर्मयोग के प्रभाव से देवों में गणना हुई । इतना ही क्यों, अग्निष्टोमादि बड़े-बड़े यज्ञों में यजमान-दत्त हवियों के भोजन में इन्द्रादि देवों के समान उन्हें भी अधिकार प्राप्त हो गया ।

२. निवृत्तिमार्गीय सन्त—निवृत्तिसेवी सन्तों का वर्णन अथर्ववेद में इस प्रकार हुआ—

पूर्णः कुम्भोधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥

—अथर्व० १९.५३.३

इस मन्त्र का चान्द्र भाष्य इस प्रकार है—काले सर्वजगत्कारणभूते नित्ये अनवच्छिन्ने परमात्मनि स्वस्वरूपे, अधिशब्दः सप्तम्यर्थानुवादी । पूर्णः सर्वत्र व्याप्तः कुम्भः कुम्भवत् कुम्भ अहोरात्रमासर्तुसंवत्सरादिरूपः अवच्छिन्नो जन्यः कालः आहितः निहितो वर्तते सर्वस्य कार्यस्य स्वकारणेऽवस्थानात् । अत्र विद्वदनुभवं श्रुतिः प्रमाणयति । तं जन्यं कालं सन्तः सत्पुरुषा बहुधा नानाप्रकारम् अहोरात्रादिभेदेन पश्यामो नु अनुभवामः खलु । अथवा तं जन्यकालाधारं परमात्मानं बहुधा बहुभिः श्रवणमनननिदिध्यासनैः पश्यामः साक्षात्कुर्मः सन्तः सद्रूपब्रह्मोपासका वयम् । 'अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः' इति हि श्रुतिः (तै०आ० ८.६) वै-नु-शब्दौ प्रसिद्ध्यर्थौ ।

सः कालः इमा इमानि परिदृश्यमानानि विश्वा विश्वानि व्याप्तानि भुवनानि भूतजातानि प्रत्यङ् प्रत्यञ्जनः अभिमुखाञ्जनः आव्याप्नुवन् भवति । तं कालं परमे उत्कृष्टे सांसारिकसुखदुःखादिद्वन्द्वदोषरहिते व्योमन् व्योमनि आकाशवन्निर्लेपे सर्वगते विविधं रक्षके परमानन्दप्रदायके स्वस्वरूपे वर्तमानम् आहुः विद्वांसः । व्योमन्निति 'सुपां सुलुक्' इति सूत्रेण सप्तम्यां लुक् । 'न ङिसम्बुद्धयोः' इति नलोप प्रतिषेधः ।

अर्थात् समस्त जगत् का कारण अपरिच्छिन्न नित्य परमात्मा ही काल है। प्रत्येक वस्तु से सम्बद्ध, कुम्भ की भाँति परिच्छिन्न, अहोरात्र मासादि रूपजन्यकाल उसी में स्थित है, क्योंकि सम्पूर्ण कार्य अपने कारण में रहा करते हैं । इस विषय की पुष्टि में वेदपुरुष विद्वदनुभव को प्रमाणित करते हैं । उस जन्य काल को, (सन्तः) सत्पुरुष हम आहोरात्रादि भेद से अनन्त प्रकार का ठीक अनुभव करते हैं । अथवा जन्यकाल का आधार उस महाकाल परमात्मा का श्रवण, मनन और निदिध्यासन—इन अनेक साधनों से, सन्तः=सद्ब्रह्म के उपासक हम साक्षात्कार करते हैं । वै, नु शब्द श्रवणादिकों की ब्रह्मसाधनता की प्रसिद्धि के प्रदर्शक हैं । इस पक्ष में 'सन्त' इस शब्द का अर्थ है सद्ब्रह्म के उपासक । इस अर्थ की पुष्टि स्वयं श्रुति भगवती कर रही हैं । 'अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः । (तै० उ० २.६.१.) । वह सर्वाधार परमात्मा कालरूप से इस दृश्यमान भूतवर्ग को व्याप्त कर रहा है । विद्वान् उस काल को उत्कृष्ट सांसारिक सुखदुःखादि द्वन्द्वों से निर्मुक्त आकाश की तरह निर्लेप सर्वव्यापी विविध प्रकार से रक्षक परमानन्द-प्रदायक स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित कहते हैं ।

इस मन्त्र में निवृत्तिसेवी सन्तों का कितना सुंदर और आकर्षक चित्र खींचा गया है । वे सद्ब्रह्म के ध्यान में तत्पर एवं श्रवणादि साधनों द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार के सम्पादनार्थ सदा सचेष्ट रहते हैं ।

वेद में सन्त वाचक अन्य नाम

वेद में सन्तों के अन्य भी मुनि, कवि, धीरादि नाम मिलते हैं । इनमें मुनि शब्द प्रायः निवृत्तिसेवी सन्तों के लिए प्रयुक्त होता है । निवृत्तिसेवी सन्त सदा प्रभु का अवलम्बन लेते हैं । वे कभी भूलकर भी अन्य की ओर नहीं ताकते । इनमें कुछ दिगम्बर होते हैं तो कुछ वल्कल, कषायाम्बर आदि वस्त्र धारण किया करते हैं । वे अपने सतत प्रयास से उस ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं, जिसे यम, हिरण्यगर्भ, प्रजापति प्रभृति देवों ने प्राप्त किया है । इस विषय का सम्यक स्पष्टीकरण आगे उद्धृत मन्त्र के अवलोकन से हो जाता है ।

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मलाः ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥

(ऋ० १०,१३६.२)

वातरशनाः=ब्रह्मपरायण वा दिगम्बर, मुनयः=निवृत्तिसेवी सन्त होते हैं और कतिपय सन्त, पिशङ्गा=कपिल-वर्ण-युक्त, मलाः=मलिन अर्थात् चमक-दमक से रहित वल्कलादि के वस्त्रों को, वसते=पहनते हैं, वातस्य=परब्रह्म के, ध्राजिं=उस पद को, अनुयान्ति=ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर प्राप्त होते हैं, यत्=जिस पद को, देवासः=देवों ने, अविक्षत=प्राप्त किया ।

आत्मा के अष्टविध गुण

सन्तों के जीवन में आत्मा के आठ गुणों का विकास होता है । सन्त दशविध अशुभ प्रवृत्तियों को त्यागकर दशविध शुभ प्रवृत्तियों का सतत अनुष्ठान किया करते हैं । गौतमस्मृति में आत्मा के निम्नलिखित आठ गुण बताये गये हैं—

'दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहा' इति । इनके लक्षण बृहस्पति-स्मृति में इस प्रकार दिये हैं—

परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा ।
आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिता ॥१॥

दूसरा हो वा अपना, बन्धु अथवा मित्र हो या शत्रु, विपद्ग्रस्त होने पर उसके दुःख दूर करने की हार्दिक इच्छा दया कही गयी है ।

बाह्ये चाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित् ।
न कुप्यन्ति न वा हन्ति सा क्षमा परिकीर्तिता ॥२॥

किसी के द्वारा शारीरिक वा मानसिक पीड़ा पहुँचाये जाने पर क्रोधित न होने और उसे मारने की चेष्टा न करने का नाम क्षमा है ।

न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि ।
नान्यदोषेषु रमते सानसूया प्रकीर्तिता ॥३॥

गुणी के सद्गुणों का हनन अर्थात् अपलाप न करना, थोड़े गुणवाले प्राणियों की भी प्रशंसा करना और दूसरे के दोषों पर दृष्टि न डालना ही अनसूया है ।

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ।
स्वधर्मे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥४॥

अभक्ष्य वस्तु का परित्याग, दुर्गुण–रहित प्राणियों के साथ संसर्ग और स्वधर्म में दृढ़ता ही शौच है।

शरीरं पीड्यते येन सुशुभेनापि कर्मणा।
अत्यन्त तन्न कर्तव्यमनायासः स उच्यते ॥५॥

जिस सुशोभन (श्रेष्ठ) कर्म से भी शरीर को अधिक कष्ट हो उसे अति मात्रा में करते रहना उचित नहीं है। इसको विद्वानों ने अनायास कहा है।

प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविसर्जनम्।
एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥६॥

सदा शुभ कर्म करना और अशुभ कर्म न करना इसे तत्त्वदर्शी मुनियों द्वारा मंगल कहा गया है।

स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना।
अहन्यहनि यत्किञ्चिदकार्पण्यं हि तत्स्मृतम् ॥७॥

स्वल्प वस्तु से भी अन्तरात्मा को प्रसन्न रखते हुए प्रतिदिन कुछ न कुछ अवश्य देना चाहिए, ऐसी धारणा का नाम ही अकार्पण्य है।

यथालाभेन सन्तोषः कर्तव्यो ह्यर्थवस्तुना।
परस्याचिन्तयित्वार्थं सा स्पृहा परिकीर्तिता ॥८॥

दूसरे के वैभव की इच्छा न रखते हुए यथा–प्राप्त अभीष्ट वस्तु से संतोष करना ही अस्पृहा है।

दशविध अशुभ प्रवृत्तियाँ

त्याज्य दशविध अशुभ प्रवृत्ति का वर्णन मनु भगवान् ने इस प्रकार किया है—

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥

अदत्तानामनुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥

त्रिविधं च शरीरेण वाचा चैव चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधं कर्म दशाधर्मपथांस्त्यजेत् ॥

—मनु० १२.५.८

परद्रव्य को अन्याय से ग्रहण करने की भावना, शास्त्र-प्रतिषिद्ध ब्रह्मवधादि की आकांक्षा, परलोक नहीं है, शरीर ही आत्मा है, ऐसा विपरीत विश्वास, यह तीन प्रकार का मानसिक अशुभ कर्म है। पारुष्य (कठोरता), अनृत (मिथ्याभाषण), पैशुन्य (परनिन्दा), असम्बद्ध प्रलाप, यह चार प्रकार का वाचिक अशुभ कर्म है। बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण, हिंसा, परदार-रति, यह तीन प्रकार का शारीरिक अशुभ कर्म है। पूर्वोक्त त्रिविध शारीरिक कर्म, चतुर्विध वाचिक कर्म, त्रिविध मानसिक कर्म, सभी मिलकर दश हुए। धर्म-प्रक्षेपकारी (धर्माविरोधी) होने से इनका नाम धर्मपथ है। इस स्थल में पथ शब्द 'पथ प्रक्षेपे' इस चौरादिक धातु से बना है, अतः इसका अर्थ मार्ग नहीं है। भद्रपुरुष इन दश धर्मपथों का अवश्य त्याग करें।

मनु भगवान् के दशविध अशुभ प्रवृत्ति का कण्ठतः प्रतिपादन करने से तत्प्रतिद्वन्द्वी दशविध शुभ प्रवृत्तियाँ अर्थतः सूचित हो जाती हैं, क्योंकि 'शुभाशुभफलं कर्म' (मनु० १२.३) इस उक्ति से द्विविध प्रवृत्ति ही प्रस्तुत है। दशविध शुभाशुभ प्रवृत्ति का न्यायदर्शन के द्वितीय सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन महर्षि संक्षिप्त शब्द में इस प्रकार वर्णन करते हैं—

दोषैः प्रयुक्तः=शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचा-नृतपरुषसूचनासम्बद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति; सेयं पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय। अथ शुभा—शरीरेण दानं परित्राणं परिचरणं चेति; वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति, मनसा दयामस्पृहां श्रद्धां चेति; सेयं धर्माय।

अर्थात् रागादि दोषों की प्रेरणा से प्रवृत्त पुरुष शरीर से हिंसा, परपीड़न, स्तेय (चोरी) प्रतिषिद्ध मैथुन—पर-दार-सेवा, इन कुकर्मों को करता है। वाणी द्वारा पर-निन्दा, अनर्थक प्रलाप, मिथ्या भाषण, कठोर भाषण—इन चार कुकर्मों को करता है। पूर्वोक्त दशविध अशुभ प्रवृत्ति अधर्म का कारण है। अब शुभ प्रवृत्ति कहते हैं—शरीर द्वारा दान, परित्राण और परिचरण (वृद्धसेवा), वाणी से सत्य-भाषण, हित-भाषण, प्रिय-भाषण, वेदादि सच्छास्त्रों का अध्ययन और मन द्वारा दया, अस्पृहा, श्रद्धा इन सत् कर्मों को प्राणी करता है। यह दशविध शुभ प्रवृत्ति धर्म का कारण है।

सन्तों के स्वरूप-परिचयार्थ गीता के अनेक स्थलों में श्रीकृष्ण परमात्मा ने सन्त-लक्षणों का वर्णन किया है। वे लक्षण सिद्ध सन्त (ज्ञानी) में अयत्नसिद्ध अर्थात् स्वाभाविक हैं, जो मुमुक्षु सन्तों के लिए यत्न द्वारा सम्पादनीय हैं। विस्तार भय से व्याख्यासहित श्लोकों का उद्धरण अशक्य है।

सन्त के लक्षण

श्रीमद्‌भागवत में भगवान् वेदव्यास ने कई स्थलों पर सन्तों के लक्षण कहे हैं। वैराग्य, तत्त्वबोध, उपरति भी सन्तों के लक्षण हैं। परन्तु उनका सहावस्थान नियत नहीं। पञ्चदशी के चित्रदीप में विद्यारण्य स्वामी ने इसका वर्णन किया है।

कर्मयोगी सन्तों के उद्‌गार

नीचे कर्मयोगी, भक्त एवं ज्ञानी सन्तों के उद्‌गारों द्वारा उनके वास्तविक स्वरूप का परिचय कराया जा रहा है। प्रथम कर्मयोगी के उद्‌गार सुनिये—

कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्।
तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्॥

हे परमगुरु परमात्मन्! इच्छा अथवा अनिच्छा से शुभ या अशुभ जो कर्म मैं कर रहा हूँ, वे सब आपके श्रीचरणों में अर्पित करता हूँ क्योंकि मेरी कोई भी क्रिया स्वतन्त्र नहीं है। प्रत्येक क्रिया के मूल में आपका हाथ है।

भक्त सन्त

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्‌भाव्यं तद्‌भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम्।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहु मतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहमनुगता निश्चला भक्तिरस्तु॥

याग–दानादि धर्म, धन–संग्रह और सांसारिक विषय–भोग इन सब पदार्थों में मेरी थोड़ी भी रुचि नहीं है। भगवन्! पूर्व–कर्म के अनुसार जो कुछ होना है वह भले ही हो। आपके समक्ष मुझ अनाथ की जोरदार शब्दों में एक ही प्रार्थना है कि इस जन्म में ही नहीं, अपितु जन्म–जन्मान्तर में भी सर्वदा आपके चरणयुगल में मेरा अटल प्रेम बना रहे।

ज्ञानी सन्त

धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽद्य।
धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि॥

धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किञ्चित्।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य सम्पन्नम्॥

—पञ्चदशी, तृप्तिदीप ९३.९४

आज अविनाशी स्वात्मदर्शन से सतत ब्रह्मानन्द का भान हो रहा है। ढूँढ़ने पर भी दुःखमय संसार कहीं दृष्टि—गोचर नहीं होता। हो भी क्यों ? उसका कारण मेरा अज्ञान ब्रह्म—बोध के त्रास से सदा के लिए कहीं भाग गया है, अतः मुझे बारम्बार धन्यवाद है। मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, क्योंकि अब ऐसा कोई कार्य शेष नहीं रहा, जिसके करने को मुझे अपेक्षा हो। समस्त प्राप्तव्य वस्तु मुझे प्राप्त हो गयी। ऐसी कोई वस्तु शेष नहीं है, जिसकी मुझे लिप्सा हो। अतः मुझे कोटिशः धन्यवाद है। इस निबन्ध का उपसंहार करते हुए निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढम्।
अस्य पुण्यस्य सम्पत्तेरहो वयमहो वयम्॥
अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम्॥

अहोभाग्य है कि मेरे समस्त पुण्य निश्चय ही सफल हो गये। इस पुण्य—सम्पदा से सचमुच हम धन्य हो गये। इस आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाने से अनुभव हो रहा है कि ये शास्त्र, गुरु, ज्ञान और आत्मसुख, सभी कुछ महामहिमशाली हैं !

संगः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्यक्तुं न शक्यते।
सद्भिरेव स कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

अर्थात् संग सभी प्रकार से त्याज्य है। यदि वह उस प्रकार त्यागना सम्भव न हो तो सन्त, सज्जनों का ही संग करना चाहिए, क्योंकि सन्त सज्जनों का संग सर्वथा दुर्लभ हुआ करता है।

सृष्टि में सब समान कहाँ ?

आज का दिन रमणीय था। काश्मीर में सूर्योदय का समय अरसिक को भी रसमय, निष्प्राण-से को भी प्राणवान् या अचेतन से मनुष्य को भी सचेतन सा बना देता है। भगवान भास्कर का उदय ऐसा प्राणवान् था। **सूर्यः आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**—यह वेद वाक्य स्वारस्य मुझे तो मानों प्रत्यक्ष कराने के लिये ही प्रभु स्वयं पधारे हों, ऐसी अनुभूति हो रही थी। मैं तो क्षण भर इस आनन्द सागर को लहरों में खो गई। चैतन्य सागर सूर्यनारायण की तेज किरणें मुझे आनन्दविभोर कर रही थीं। थोड़ी क्षणों बाद मन में प्रश्न हुआ कि इस प्रकार की दिव्य अनुभूति प्राणी—मात्र को भी होती होगी ? लेकिन सबको ऐसी प्रतीति कहाँ ? तब प्रभु के पास पहुँची और इस विषय में प्रश्न कर दिया।

मेरे अन्तर्यामी हँस पड़े। कहने लगे : 'बेटा रतन ! तू सबको तेरे समान मान लेती है। मेरी बेटी उदारहृदया है। लेकिन क्यों भूल जाती है कि विषमता में ही सृष्टि होती है। समता में तो प्रलय है। यदि सब कोई सात्त्विक वृत्ति के ही हो जायँ तो फिर संसार ही नहीं रहेगा।

'भगवन् ! क्या वेद में भी यह बात है।' मैं रही वेद भक्ता, अतः इस प्रकार का प्रश्न निकल गया।

'हाँ हाँ, बेटी, सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति। यह बात क्यों विस्मृत हो गई। और प्रमाण भी ले लो—

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः
संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि
ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः॥

—ऋ. वे. १०-११७-९

समौ चित् हस्तौ–दोनों हाथ समान होने पर भी **समं न विविष्ट**–एक समान कार्य में व्यापृत नहीं होते हैं। एक समान कार्य नहीं करते हैं। **संमातरा चित्**–एक ही माता वाले दो वत्स **समं न दुहाते**–एक समान दूध नहीं देते हैं। **यमयोः चित्**–जुड़वा भाई होने पर भी **समा वीर्याणि न**–वे समान वीर्य–शक्ति वाले नहीं होते हैं। **ज्ञाती सन्तौ**-एक ही कुल में उत्पन्न हुए दो मनुष्य **समं न पृणीतः**-समान प्रकार से दान नहीं करते हैं।

'हम दूर क्यों जायँ ?' **वेद भगवान्** तो हमें कहते हैं कि आप अपने दो हाथ ही ले लो। दाहिना हाथ जितना कार्य कर सकता है, उतना बाँया हाथ थोड़ा कर पायेगा ? एक ही गौ के दो बच्चों को ही ले लो, माता एक ही होने पर दो बछड़े एक समान दूध तो नहीं देते हैं। मानव जाति में भी उदाहरण देना **भगवान् वेद** नहीं चूकते। एक माँ के दो जुड़वे भाइयों में भी बल एक समान नहीं होता है। और एक ही कुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति एक समान दानशील नहीं होते हैं। अतः प्रभु ने संसार में विषमता रखी ही है। सर्वत्र समता तो ब्रह्म में या ब्रह्मभूत विभूति में दृष्टिगोचर हो सकती है। अन्यत्र जहाँ-जहाँ प्रकृतिदेवी का याने माया का स्पर्श हुआ, वहाँ तो विषमता ही विषमता नजर आयेगी। और तो क्या कहें एक ही मनुष्य का सुबह से शाम तक का व्यवहार देखें तो कभी सात्त्विक, कभी राजस तो कभी तामस, कभी देव, कभी मानव तो कभी दानव लगता

योगेश्वर गुरु गंगेश्वर भाग-२ के उद्घाटन के शुभ अवसर पर
पू. गुरुदेव को ग्रंथरत्न भेंट करती हुई
लेखिका श्रीमती रतनबहन फोजदार
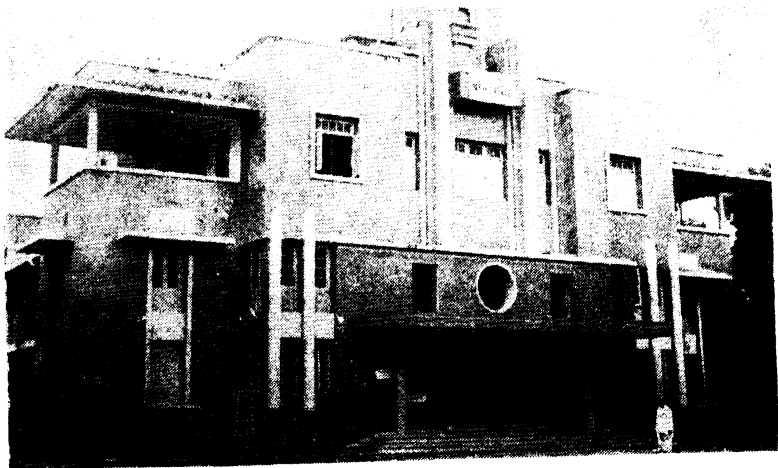
वेदमंदिर, अहमदाबाद

परमपूज्य स्वामी श्री रामदासजी महाराजका समाधि-मन्दिर,
राजवाना, पंजाब
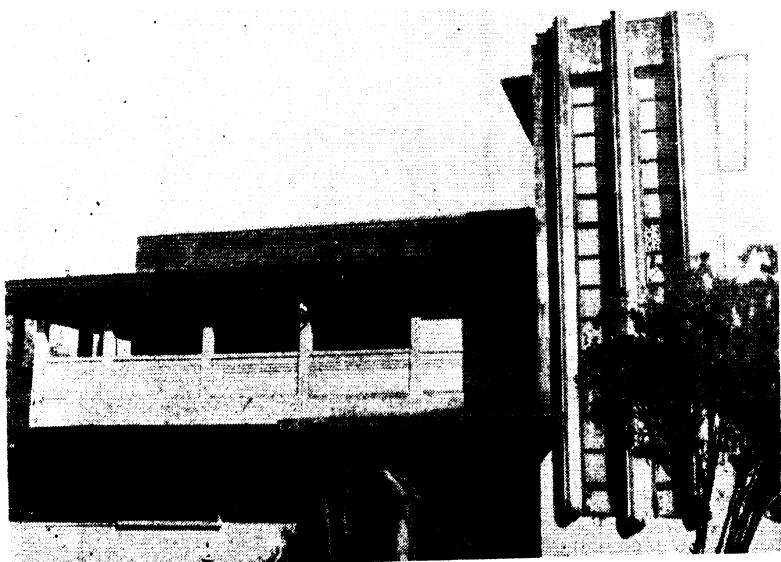
ॐकार बंगला, नासिक

है । अतः सर्वत्र एक समान वृत्ति, विवेक या विज्ञान की अपेक्षा सिद्ध नहीं रखनी चाहिये ।

माँ दहीं लायेगी

प्रभु–सद्‌गुरुदेव महाराज के कश्मीर के परम श्रद्धालु भक्त श्री विश्वनाथजी सहगल से सुनी हुई बात है कि—

'महाराज श्री हमारे पास १९५७ के सितम्बर मास में सर्वप्रथम पधारे थे। बाद में मई १९६७, सितम्बर १९७७, सितम्बर १९७९, सितम्बर १९८० एवं सितम्बर १९८१ में आप कश्मीर पधारे और हमें सेवा—पूजा का सुअवसर प्रदान किया था ।

१९५७ की बात है, हमारे स्वर्गीय पिता श्री ला० गुरसहायमल सहगल (जिनका १२ जून, १९६६ में देहान्त हो गया) पर अहमदाबाद के कपड़े के व्यापारी सेठ हरिगोपाल छबीलदास भाटियाजी की चिठ्ठी आई कि पू. गुरुदेव कश्मीर पधार रहे हैं। आप एयरपोर्ट जाकर उनका स्वागत करें। हमलोग, मैं और मेरे पिताजी, टेलिफोन से पता लगाकर एयर-पोर्ट रवाना हुए। और रास्ते में ही एक फियाट कार खड़ी हुई मिल गई । नीचे उतर कर देखा तो उसमें संत एवं गृहस्थी बैठे थे। पू. गुरुदेव, ईश्वर मुनिजी, सेठ नटवर भाई चिनाई तथा पू. रतन बहन फोजदार उसमें थी। वह गाड़ी गरम हो गई थी। मेरे पिताजी की विनती का स्वीकार करके महाराजजी हमारी गाड़ी में बैठे। हमने अपने घर पधारने की प्रार्थना की। लेकिन पुष्पाबहन के घर ठहरने का प्रथम से निश्चित था। अतः गुरुदेव वहाँ पधारे। हमें आश्वस्त किया कि पहलगाम से वापस आने पर वे हमारी कोठी पर ठहरेंगे और कथा भी करेंगे ।

मेरे पिताजी को गाय पालने का बड़ा शौक था । दूसरे दिन सुबह में संतों के लिये दूध ले जाने के लिये आप सुबह में जल्दी जाग गये और गाय का दूध निकालने वाला नहीं आया था, तो हमारा कोचवान जो था उसके द्वारा गाय का दूध निकलवाया और पू. महाराजजी की सेवा में दूध लेकर उपस्थित हो गये। प्रभु से निवेदन किया कि 'मैं आपके लिये घर की गाय का दूध लाया हूँ'। पू. गुरुदेव ने बताया कि 'आजकल मैं दूध नहीं पीता हूँ, दहीं खाता हूँ' ।

'प्रभु मुझे यह बात पहले मालूम होती तो मैं दहीं लेकर सेवा में उपस्थित हो जाता ।'

'कोई बात नहीं बेटा,' प्रभु बोले, 'दहीं माँ लेकर आयेगी ।'

और थोड़े ही क्षणों में माँ दहीं लेकर उपस्थित हो गई । हम सब आश्चर्य चकित हो गये ।

गाय ने दो बार दूध दिया

घर पर जब मेरे पिताजी और माताजी प्रभु से आज्ञा लेकर वापस आने लगे, तो रास्ते में दोनों सोचते थे कि घर में दूध है नहीं और दहीं भी यहाँ ले आये हैं । तो बच्चों के लिये बाजार से दूध लेकर जायँ । उन दिनों कश्मीर में दूध की काफी दिक्कत रहती है । दूध प्रायः मिलता ही नहीं । हुआ भी वैसा । बाजार में दूध बिलकुल नहीं मिला । रास्ते में 'अब क्या किया जाय' ऐसा सोचते सोचते माता–पिता घर पर आयें । और पिताजी ने कहा 'बच्चों को चाय पिला के स्कूल भेज दिया जाय' ।

पूछा गया, 'पिताजी ! ऐसी क्या बात है ?'

पिताजी कहने लगे 'मैं आज सुबह में सारा दूध निकलवाकर सन्तों के लिये गया था । बाजार में भी दूध नहीं मिला है ।'

ऊपर से जवाब आया, 'सब बच्चों ने दूध पी लिया है और दूध को कढ़ाई भरी पड़ी है ।'

सबको आश्चर्य हुआ । पिताजी गायमाता का दूध पूरा निकालकर ले गये हैं । इस बात का कोई पता हमारे दूध निकालनेवाले गूजर को नहीं था । वह अपने समय पर आया । नित्य क्रमानुसार दूध निकाला और पूरा देकर चला गया । गायमाता ने गुरुदेव की सेवा के लिये एक ही समय में दो बार दूध दिया ।

गायमाता की अद्भुत सेवा

श्री सहगलजी पू. गुरुदेव की महिमा की अनेक बातें बारंबार सुनाते हैं । उनमें से एक बात मुझे याद है और भक्तों की श्रद्धा बढे इसलिये यहाँ उल्लेख करने की अनुज्ञा चाहती हूँ । १९६७ में पूज्य गुरुदेव श्री विश्वनाथजी सहगल के दिवंगत पिता की स्मृति में श्रीमद् भागवत सप्ताह–पारायण निमित्त कश्मीर पधारनेवाले थे । उन दिनों घर में उनके पास एक गाय थी, जो १० से १२ सेर दूध दिया करती थी । सहगलजी को विश्वास था कि यह गायमाता की सहायता से वे गुरुदेव की सेवा कर सकेंगे ।

एक रात अचानक सहगलजी का गूजर आया और कहने लगा कि गायमाता ने टांगें फैला दी हैं । और शायद बचने का कोई उपाय नहीं है । मैंने अपने मित्र

एवं वेटरनिटी अस्पताल के सुप्रिटेन्डन्ट डॉ. अमरनाथ तीकु को सहसा बुलाया। वे आये। उनके पास भी कोई उपाय न था। वे तो कहने लगे, 'यह बेचारी अब तो एक-दो घण्टे की मेहमान है। मुझको थोड़ी जल्दी खबर की होती तो ठीक। अब तो कुछ नहीं हो सकता।'

सहगलजी एवं उनकी भाविक धर्मपत्नी मलका अत्यन्त दुःखी हो गये। मलका की तो आँखों से आँसू गिरने लगे। वह बोली, 'डॉक्टर साहब कुछ भी करो। मेरे गुरुदेव पधार रहे हैं। हम उनकी सेवा कैसे कर पायेंगे?'

डॉक्टर ने कहा, 'तिल्ली का तेल और कपूर यदि मिल जाय तो गरम करके गाय की छाती पर उसका मालीश करो। शायद बच जाय।'

रात को ११-३० बजे विश्वनाथजी बाजार में दौड़े। वैसे तो उस समय मिलना दुर्लभ था। किन्तु गुरुकृपा से मिल गया। घर आकर तेल गरम करके कपूर मिलाकर गाय को मालीश की। सुबह में प्रभुकृपा से गाय बच गई।

पू. गुरुदेव पधारे। गायमाता ने काफी दूध दिया। सम्पूर्ण स्वस्थ थी। आनन्द से पू. गुरुदेव एवं संतों की सेवा होती रही। जिस दिन गुरुदेव श्रीनगर से चले, उसी दिन गायमाता ने अपनी भौतिक देह का त्याग कर दिया। मानों गुरुदेव की सेवा के लिये ही वह इतने दिन जीवंत रही।

श्रीनगर का यह पुण्य कार्य संपन्न कर, आप ता. ३ अक्टूबर को प्लेन में दिल्ली आये एवं कार्यवश वहाँ १ सप्ताह ठहर कर, ता. १० अक्टूबर को बम्बई लौटे।

बेंग्लोर में

भक्त-प्रेमी कितना भी चाहें कि गुरुदेव वृद्धावस्था के कारण बहुत अशक्त होने की वजह से अधिक भ्रमण न करें, परन्तु आप ऐसे दृढ़ निश्चयी हैं कि जिस समय जहाँ जाना जरूरी हो, अवश्य चले जाते हैं। सिंधी पंचायती अखाड़ा ने कुछ समय पहले आपकी अध्यक्षता में अपना रजत-जयंती-उत्सव मनाना निर्धारित किया था, परंतु उस समय कोई कारणवश आप जा नहीं सके। तो पंचायती अखाड़ा ने भी अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया था कि जब आपकी ओर से आने की सूचना मिलेगी, तब हम उत्सव मनायेंगे। आपका इतना मृदु स्वभाव है कि आप उनकी भावना को ठुकरा नहीं सके। अतः ता. २१ अक्टूबर को आप बेंग्लूर पधारे एवं श्री रतनचंद चावला के पास ठहरे। सिंधी पंचायती अखाड़ा का रजत-जयंति-उत्सव शुरू हुआ। दूसरे दिन आपने प्रातःकाल वहाँ प्रवचन किया और अभय के बारे में बताया।

अभय एक उपादेय गुण

अभय मानवमात्र के लिये उपादेय गुण है। हमारे वैदिक साहित्य में अभय को तो मुक्ति का पर्याय माना है। जनक राजा को 'हे जनक, तू मुक्त हो गया, यह कहना है तब कहा गया है **जनक, अभयं वै प्राप्तोऽसि**। हे जनक, तू अभय को प्राप्त हुआ है। अथर्ववेद में ईश्वर को अभय देने के लिये क्या ही उत्तम प्रार्थना की गई है—

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवंछग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि॥

अ० वे० १९-१५-१

हे देवराज इन्द्र, हे परमेश्वर, हमें जहाँ से भी भय प्राप्त हो वहाँ हमें निर्भय बनायें। हे मघवन्, हे संपत्ति के दाता, आप अपनी रक्षक शक्ति से हमारे द्वेषी और शत्रुओं को दूर करें। इस मंत्र में सर्वत्र अभय प्राप्ति की कामना की गई है। दूसरी पंक्ति के द्वेषी और शत्रु पदों से बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के शत्रुओं का निर्देश है। इसी सूक्त के अन्तिम मंत्र में भव्यातिभव्य भावना निहित है—

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

अ. वे. १९-१५-६

हे प्रभु, हम मित्र से निर्भय बनें, हम अमित्र याने शत्रु से भयरहित बनें, ज्ञात पदार्थ से जिसे हम जानते हैं, उन सबसे हम निर्भय बनें, हम अपने सामने आनेवाली अज्ञात चीज से भी निर्भय बनें, हम रात्रि को निर्भय रहें, हम दिन को निर्भय रहें और तो क्या हे प्रभु, दिशाएं मेरी मित्र बन जायं। मनुष्य मित्र-अमित्र से ज्ञात-अज्ञात से रात्रि और दिन में निर्भय बन जाता है, तो समग्र विश्व उसका मित्र बन जाता है। विश्व मित्रता की अद्भुत भावना हमारे वेदों की अद्वितीय देन है, अमूल्य प्रदान है।

बेंग्लोर में एक बार आपने विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य के बारे में बताया था।

ब्रह्मचर्य का महत्त्व

विद्यार्थी अवस्था में ब्रह्मचर्य का महत्त्व सविशेष होता है। हमारे वेद में ब्रह्मचर्य की महत्ता अत्युच्च स्वर से पाई गई है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

—अ० वे० ११-५-१७

ब्रह्मचर्य के तप द्वारा राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारी की कामना करता है। राजा ब्रह्मचर्य के तप से राष्ट्र की रक्षा करता है, उसको ठीक तरह से समझना है। सब राजा ब्रह्मचारी बन जाय तो फिर प्रजातन्तु का विच्छेद हो जाय। लेकिन ऐसी बात नहीं है। स्वदारसंतोष—अपनी पत्नी में संतोष रखना यह गृहस्थी का ब्रह्मचर्य है। राजा इस प्रकार का ब्रह्मचारी नहीं बनता है और परदारव्यवहार करता है तो विलासी बन जाता है और समग्र देश पर आपत्ति आ जाती है। इतिहास इस बात का साक्षी है। हमें कई उदाहरण मिल जायेंगे, जिनमें राजा विलासी होने के कारण समग्र राष्ट्र को आबादी बरबादी में परिवर्तित हो गई हो। आचार्य पक्का ब्रह्मचारी होगा तो उसके शिष्य अपने आप ही ब्रह्मचर्य पालन में रत हो जायेंगे। अन्यथा गुरु-शिष्य दोनों की अधोगति होगी! वेदमन्त्र तो आगे चलकर बताता है कि—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व १ राभरत्॥

अ० वे० ११-५-१९

ब्रह्मचर्यरूपी तप से देवों ने मृत्यु को भी दूर कर दिया। और इन्द्रदेव ने भी ब्रह्मचर्य द्वारा देवों में तेजस्विता भर दी। इससे यह सिद्ध होता है कि देवों की अमरता या तेजस्विता का भी रहस्य ब्रह्मचर्य है। विद्योपार्जन हो या राष्ट्रशासन, ओजोपार्जन हो या आत्मशासन, सर्वत्र ब्रह्मचर्य सदैव उपकारक है। इसी सूक्त के एक मंत्र में ब्रह्मचर्य को तो परब्रह्म की—परमेश्वर की प्राप्ति का भी साधन बताया है।

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति
तस्मिन् देवा अधि विश्वे समेताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं
वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्॥

अ० वे० ११-५-२४

मंत्र का भावार्थ है कि ब्रह्मचारी प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, हृदय, तेज, मेधा पैदा करने वाला तथा जिसमें समग्र देवगण विद्यमान हैं, ऐसे ब्रह्म को धारण करता है याने उसे प्राप्त करता है। थोड़े ही शब्दों में कहा जाय तो ब्रह्मचारी परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करके स्वयं धन्य-धन्य बन जाता है। अतः जीवन में, सविशेष करके विद्यार्थी अवस्था में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

ता. २३ को बेंग्लोर में शरद-पूर्णिमा उत्सव मनाया गया। अन्य क्रम में, मैसूर स्थित रामकृष्ण मिशन आश्रम में आपने **भगवान् वेद ग्रंथ की स्थापना**

की । दूसरे दिन, ता. २५ अक्टूबर को, बेंग्लोर में बैंकर्स–सेवा–समिति में भाषण किया। अन्त में ता. २६ को सिंधी पंचायती सभा में 'सोवेनियर' का—जिसमें २५ वर्ष का अपना इतिहास प्रस्तुत है, उसका उद्घाटन कर, ता. २७ को आप जहाज से पुनः बम्बई आ गये।

बम्बई में

ता. २९ अक्टूबर को आपके भक्त श्री सीरुमल एवं लीला दादलानी की सुपुत्री अनीता के शुभ विवाह में उपस्थित होकर आशीर्वाद दिया।

ता. ३१ को मेघराज भवन में उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा आया। गोला साहेब का एवं संत–महंत निर्वाण मंडल का पूजन हुआ। और आपके जन्म शताब्दि–महोत्सव में पधारने का भी हार्दिक निमंत्रण दिया।

दीपावली

ता. ७ नवम्बर को दीपावली उत्सव मनाया गया। बीच में ८–१० दिन कुछ विश्रांति आपको मिली। पुनः ता. १७ नवम्बर को मेघराज–भवन में गीता प्रचारक संत हरिहर महाराज आपके दर्शनार्थ आये, तब वेद–गीता के प्रचार विषयक विचार–विमर्श हुआ।

सद्गुरु गंगेश्वर शताब्दि–महोत्सव को पूर्णतया सफल बनाने के उद्देश्य से, कार्यकर्ताओं की मिटींग समय–समय पर रखी जाती थी। ता. २३ नवम्बर को तुलसी निवास में एक मिटींग हुई, जिसमें महत्त्वपूर्ण कार्यों का निश्चय किया गया।

सुरत में

गत वर्ष जब आप भाई हसमुखलाल रेशमवाले के घर कुछ दिन ठहरे थे, तब प्रेमी जनता के आग्रहवश आपने वचन दिया था कि मेरी जयन्ती के पहले मैं आपको अवश्य दर्शन–सत्संग–लाभ दूँगा। तदनुसार, आप ता. २ दिसम्बर को आठ दिन के लिये सुरत पधारे एवं रेशमवाले के गृह को पावन किया। यह परिवार वर्षों से आपकी सेवा में संलग्न रहा है और यह भाव उनकी स्नेह सम्मानयुक्त सेवा में छलकता प्रतीत होता है। मुझे भी महोत्सव शृंगार–रचना में कुछ चीजों की आवश्यकता थी। अतः मैं ता. ७ दिसम्बर को आपके पास पहुँच गई। तीन दिन में, हसमुखभाई तथा मेरी प्रिय रसीलाबहन के सहयोग से आवश्यक माल खरीदकर, ता. ११ दिसंबर को हम साथ ही बम्बई आये। सुरत निवास दरम्यान प्रतिदिन प्रातःकाल २ घण्टा संतों का कीर्तन प्रवचन चलता रहा।

अब शताब्दि महोत्सव के शुभ दिन बहुत ही पास आ रहे थे। ता. १२ दिसंबर को बम्बई में प्रेमपुरी आश्रम में, उत्सव के बारे में एक मिटींग हुई, जिसमें बचूभाई ड्रेसवाला, श्री अर्जनदास दासवानी, श्री गोविंदभाई तथा मुरलीधर आसवानी, मथुरादास चावला, श्री हशमतराय थढानी, लेखिका, केटीबहन सिप्पी, निर्मलाबहन लंगर, लक्ष्मी-लखीबहन आदि भक्तगण एवं संत-वर्ग उपस्थित था। ता. २० दिसंबर को मेघराज-भवन में सायंकाल जस्टीस भगवती आपके दर्शनार्थ आये। दूसरे दिन प्रातः पंजाब के राज्यपाल श्री जयसुखलाल हाथी तथा सुब्रह्मण्य रामकृष्णजी आपके दर्शन के लिये आये। सायंकाल भक्त श्री नारी पोहानी की बहन रुक्मिणी के शुभ लग्न में उपस्थित होकर नवदम्पति को आशीर्वाद दिया।

१४ साल बाद पुत्र : क्या प्रारब्ध बदला ?

आजकल गुरुदेव बम्बई में जे. बी. मंघाराम के बंगले के अलावा श्री मेवानी जी के कप्परेल स्थित फ्लेट में भी रहते हैं। कभी-कभी भक्तवर श्री गोविंदभाई एवं मुरलीधरभाई के खार स्थित 'वृन्दावन' में भी रहकर भक्तों की दृष्टि को दर्शन देकर पावन करते हैं।

एक बार श्री मेवानीजी से सत्संग हो गया। स्वयं भौतिक रूप से तो संपन्न हैं, लेकिन बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से भी आप गुरुकृपा से काफी आगे बढ़े हुए हैं। बात बात में आपने बताया कि 'ऐसे महापुरुष के पास से जब लोग सांसारिक बातें माँगते हैं, तो मुझे आश्चर्य होता है। कोई पुत्र माँगता है, तो कोई धन, कोई मोटर तो कोई चाकर, लेकिन ये सभी चीजें आखिर नाशवंत हैं।'

'हाँ जी! आपकी बात बिलकुल सत्य है। फिर भी प्रभु की माया ऐसी ही है।'

'तो माया से मुक्त करने के बजाय आप मायिक पदार्थ क्यों देते हैं ? एक बार मैंने गुरुदेव से यह बात पूछी थी।'

'हाँ तो प्रभु ने आपको क्या कहा था।'

'प्रभु ने कहा था कि भाई हम तो सबको अपने अपने कर्मों का फल देना चाहते हैं। किसी को पुत्र के लिये मंत्र दे दिया। अब वह जितनी श्रद्धा एवं भक्ति से काम करेगा उतनी ही शीघ्र एवं सुखद फल-प्राप्ति होगी। कभी-कभी तो एक ही मंत्र से एक को इच्छित फल प्राप्त होता है, दूसरे को नहीं।

'तो क्या उसमें कारण हो सकता है' मैंने पूछा था।

'कारण तो सीधा है, जो जितना कर पाता है, वह उतना फल पाता है।

कर्म का यह अटल सिद्धान्त है। और प्रभु की सृष्टि में सर्वत्र निश्चित रूप से विद्यमान है।'

'तो क्या कभी ऐसा हो सकता है कि किसी के भाग्य में संतान न हो तो भी संत की कृपा से—मंत्र के प्रभाव से हो जाय ?'

'भाई !' प्रभु ने कहा, 'आपने तात्त्विक सवाल कर दिया है। पहले उदाहरण लें। सिंगापुर में एक सिन्धी भाई आये। उनको केवल लड़कियाँ ही थीं। लड़का नहीं था। छोटी बच्ची भी १४ साल की हुई थी। अब तो पुत्ररत्न की प्राप्ति का तो ख्याल ही छोड़ दिया था। मुझे बात बात में पता लग गया कि इन्हें पुत्रेषणा है। मैंने मंत्र दिया। और श्रद्धाभक्ति से समन्वित होकर उसने मंत्र का जाप किया। प्रभु का चमत्कार समझो कि उसे १४-१५ साल के बाद पुत्र प्राप्त हुआ।

'भगवन् ! यह आपका प्रभाव है। आप तो भाग्य ही बदल देते हैं।'

'नहीं। यही तो समझना है।' गुरुदेव ने कहा, 'भाग्य या प्रारब्ध क्या होता है ? आखिर हमारे ही कर्म जो फलोन्मुख हैं—फल देने को तैयार हैं, उसे हम प्रारब्ध कहते हैं। मतलब हमारे गत जन्मों के कर्म से प्रारब्ध बनता है। अब मानो हमने गतदिन बहुत खा लिया है, तो हमें आज अजीर्ण हो गया है। अब अजीर्ण से बचने के लिये दवाई या उपवास जैसे उपाय हैं। हम उपवासादि से अजीर्ण को दूर कर सकते हैं, उसी प्रकार गत जन्मों से बना हुआ प्रारब्ध इस जन्म के शुभ कर्मों से दूर किया जाता है।

'तो प्रभु ! सब अपना अपना प्रारब्ध बदल लेंगे।'

'देखो, वह इतना आसान नहीं है। सभी अजीर्ण के रोगी दवाई या उपवास से शीघ्र अच्छे तो नहीं हो जाते हैं। क्योंकि दवाई के साथ पथ्य भी तो चाहिये। अन्यथा अपथ्य का सेवन करने से तो विकार आयेगा, रोग भयंकर भी बनेगा और विनाश भी संभव है। उसी प्रकार केवल मंत्र जपने से प्रारब्ध नहीं बदलेगा। उसके पीछे पवित्रता, संयम, सत्यादि नियमों का पालन एवं पूर्ण श्रद्धा भी होनी चाहिये, अन्यथा जैसे दवा खाने पर भी रोग न जाता, वैसे मंत्र जपने पर भी प्रारब्ध नहीं बदलता।' श्री मेवानीजी से ये बातें सुनकर मुझे तो आनन्द आनन्द हो गया।

शताब्दी महोत्सव का मंगलाचरण

ता. २८ दिसंबर को प्रातः काल प्रतिवर्ष कार्यक्रमानुसार, वंदनीय स्वामी कृष्णानंद गोविंदानंदजी ने रामायण-नवाह पारायण प्रारम्भ किया। अनीता दयालजी

के सुपुत्र राजन के यज्ञोपवित निमित्त योजित वेद-पारायण का सायंकाल पूर्णाहुति की गई।

ता. २९ दिसम्बर को शताब्दि महोत्सव का क्रोस मैदान में, परम गुरुभक्त श्री हशमतराय वकील ने प्रातःकाल भूमि-पूजन द्वारा मंडप-रचना के लिये शुभ मुहूर्त किया। ता. ३० को बँगले में महोत्सव के बारे में एक मिटींग हुई, जिसमें सब प्रबंध की सूचना एवं अन्तिम कार्यक्रम की रूपरेखा का प्रकाशन किया गया। ता. ३१ दिसम्बर को 'साधु-वेला' में 'जीवनमुक्ति' नामक पुस्तक का उद्घाटन एवं प्रवचन हुआ।

गुरुदेव का अलौकिक स्वरूप

सद्गुरुदेव के इस अति मंगल, मोक्षदायी जीवन-चरित्र में जन्म शताब्दि महोत्सव का विवरण लिखूँ, इसके पहले गुरु-तत्त्व एवं गुरु-शिष्य के परस्पर भाव विषयक दो शब्द लिखना, यहाँ आवश्यक मानती हूँ।

इस त्रिभुवन में ज्ञानदाता सद्गुरु के लिये देने योग्य कोई दृष्टान्त हो नहीं दीखता। उन्हें पारसमणि को उपमा दें, तो यह भी उचित नहीं, क्योंकि पारस लोहे को सोना तो बना देता है, पर पारस नहीं बनाता। परन्तु सद्गुरुदेव के पादपद्म युगल के आश्रित शिष्य को सद्गुरु अपना निज स्वरूप ही दे डालते हैं। इसलिये सद्गुरु की कोई उपमा नहीं।

एक बात स्पष्ट है कि जब तक हम गुरु को भगवान् के रूप में नहीं देख पाते, उनसे प्रवाहित होनेवाले भगवत् ज्ञान को स्वीकार नहीं करते और उनकी प्रत्येक क्रिया हमें लीला के रूप में नहीं प्रतीत होती, तब तक समझो, गुरुकरण नहीं हुआ। तब तक हमने गुरु नहीं बनाये, उनको चाहे जो समझें। गुरु होने के पश्चात् उन्हें भगवान् से नीचे कुछ भी समझना पतन का कारण है। इस भगवद् विभूति के रूप में वे ही एक हैं, जगत् में और कितने भी गुरु हैं, वे सब मेरे गुरुदेव के लीला विग्रह हैं; सर्वत्र उन्हीं का ज्ञान और उन्हीं का अनुग्रह प्रकट हो रहा है। गुरु के प्रति शिष्य के हृदय में जितनी श्रद्धा; प्रेम एवं उनकी गरिमा का ज्ञान रहता है, उन्हीं के अनुसार उनसे शिष्य का व्यवहार होता है। शास्त्रों में गुरु-महिमा और शिष्य लक्षण का इतना विस्तृत वर्णन है कि उनका संक्षिप्त विवरण भी एक बड़ा ग्रंथ बन सकता है। अतः इतना समझ लेना चाहिये कि गुरु बिना उपासना मार्ग के रहस्य नहीं मालूम होते और न उनकी अड़चनें दूर होती हैं। उपासना-प्रेमी गुरु के बिना एक पग भी नहीं बढ़ सकता। गुरु के संतोष में ही शिष्य की पूर्णता है। गुरु के स्मरण में ही समस्त देवताओं का स्मरण अंतर्भूत है।

गुरु सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः गुरु-पूजा भगवत्पूजा है, गुरु, मंत्र और इष्ट देवता—ये तीन नहीं एक हैं। जिनके हृदय में भगवत्प्राप्ति की इच्छा है, वास्तव में साधना द्वारा अपने स्वरूप को जानकर मुक्त होना चाहता है, उनके लिये श्री गुरुदेव की शरण में जाना सर्वप्रथम कर्तव्य है। संसार के क्षणिक वैभव-सुख-भोग को तृणवत् दुःखद अनुभव कर, विरक्त, शुद्ध चित्त से गुरु शरणापन्न होता है। उनका जीवन निःसंदेह सफल हो जाता है।

श्री सद्‌गुरु की अतुलित कृपामयी, अमृतमयी दृष्टि से यदि किसी को यह प्रतीति उदय हो जाय कि '**मैं ब्रह्म हूँ**' तो उसका मन भ्रमरहित हो जाता है। सब संशय नष्ट होने के कारण वह जीवनमुक्त होता है।

ऐसे हमारे सद्‌गुरु सूर्य के समान हैं, जो संसार- आभास को नष्ट कर, अद्वैतरूप पद्म को प्रफुल्लित करते हैं। हमारी अविद्या रूपी निशा का एवं ज्ञान-अज्ञानरूप ज्योत्स्ना का लयकर, ज्ञानी जनों के लिये आत्मबोध का सुदिन प्रकाशित करते हैं; जो सूर्य विवेकरूप किरणों से ज्ञानरूप सूर्यकांत प्रदीप्त होकर, संसार रूप अरण्य को भस्मीभूत करता है; जो सूर्य को अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होने पर, अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है। ऐसे साक्षात् वेद-सूर्य मेरे सद्‌गुरु को मेरा शतकोटि प्रणाम है। स्तुति करनेवाला, स्तोत्र एवं स्तुत्य, इस त्रिपुटी का ऐक्य जब हो, तभी, देव की योग्यता अनुसार उनकी सच्ची स्तुति होती है। आपकी स्तुति करते जहाँ पश्यन्ती, माध्यमा तथा वैखरी भी परा सहित लय हो जाती है, ऐसे मेरे आनंदस्वरूप सद्‌गुरुदेव को, एक अति क्षुल्लक स्तुति रूप अलंकार पहनाती हूँ, जिसे आप सहर्ष स्वीकार करें।

वसंत ऋतु में ही बन सौंदर्य प्रकट होता है, जहाँ बन सौंदर्य है, वहीं पुष्प प्रफुल्लित होने पर, भ्रमर समूह एकत्रित होता है। वैसे ही जहाँ सद्‌गुरु हैं, वहीं ज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मानुभव एवं समाधान या चित्त-शांति रहती है। जिससे सर्व पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, ऐसे सद्‌गुरु के सानिध्य में उनकी दिव्य शक्ति के साथ उनकी अणिमा, महिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ भी दासी बन कर सेवा में खड़ी रहती हैं। वस्तुतः यदि निराकार श्री गुरुमूर्ति ने साकारत्व स्वीकार न किया होता तो वे विश्व के उपासकों की सेवा को कैसे ग्रहण कर सकते थे। इसी प्रकार अनंत संख्या युक्त वेद की ऋचायें, यदि पावन, ज्ञान-प्रकाशित गंगाधारा के रूप में शिवस्वरूप गुरु गंगेश्वर के मस्तिष्क से प्रवाहित न होती, तो आज त्रिविध ताप संतप्त विश्व को शीतलता, तृप्ति, शांति एवं तज्जनित आनंद की अनुभूति कैसे होती! जहाँ स्वयं वेद भी आपके स्वरूप को जानने में असमर्थ हैं, हमारी अति क्षुल्लक

सीमित बुद्धि से आपको कैसे पा सकेंगे ? अतः हृदय से एकमात्र याचना हम भक्त प्रेमी जन करते हैं कि **'त्वं त्राता तरणे ! चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ।** —ऋ. वे. ६-१-५

हे तरणे ! तारणहार यानि संसार के विविध दुःखों से तारनेवाले भगवन् ! तू हमारा त्राता रक्षक है; इसलिये चेत्य या जानने योग्य है तू कि हमारा कौन है, तू हमारे साथ सदा रहनेवाले सच्चा माता तथा पिता है । **'स न इन्द्रः शिवः सखा ।'**—ऋ. वे. (८-९३-३) वह इन्द्र परमात्मा हमारा कल्याणकारी सखा है । इसलिये हे भगवन् ! **'त्वस्माकं तव स्मसि'**। —(ऋ. वे. (८-८१-३२) तू हमारा है और हम तेरे हैं । यहाँ इन्द्र, अग्नि, वरुण, रुद्र आदि अनेक नामों के द्वारा एक परमात्मा का वर्णन किया है । शास्त्रों के सिद्धान्तानुसार परमात्मा, श्री कृष्ण, वेद, गुरु, ज्ञान, विद्या आदि भी एक ही तत्व के विभिन्न नाम हैं ।

इतनी प्रार्थना के पश्चात् भी हृदय-सागर में उठे हुये अनेक पावन रंग-तरंग आपके अद्भुत कृपापूर्ण स्वरूप का सुंदर चित्रांकन करने को लालायित हैं, संतुष्ट नहीं होते परंतु जैसे माता शिशु की हठ को वात्सल्य द्वारा छुड़ाकर, पलने में झुलाती है, ठीक उसी तरह यहाँ पर अपनी मस्त भावना के उत्तुंग तरंगों को विवेक द्वारा विवश बनाकर अपनी हृदय-गुहा में कुछ समय तक बँद करना ही होगा ।

११. भूयसी शरदः शतात्।

:—अ. वे. १९–६७–८

अथर्ववेद में दीर्घायु की कामना का एक मनोहर एवं सुप्रसिद्ध सूक्त है और उसमें सौ–सौ शरद ऋतु तक याने सो–सौ साल तक जीने की स्वस्थ रूप से जीने एवं दिन प्रतिदिन आगे बढ़ने की कामना की गई है। पूज्य गुरुदेव ने उस सारे के सारे मंत्र की भावना को अपने जीवन में साकार एवं मूर्तिमन्त की है। आप स्वयं वेदमूर्ति, वेदविभू या वेदविग्रह ही हैं।

हम सब मर्त्यलोकों के प्राणियों ने यह साक्षात् वेदविग्रहरूप सद्गुरुदेव का जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया। और वह भी जितना आपका भव्य एवं उदात्त जीवन है, उतनी ही भव्य एवं उदात्त रीति से मनाया। यहाँ पर अब तो आपने सौ साल पूरे किये हैं, हम तो चाहते है कि आप **भूयसीः शरदः शतात्** सौ सौ शरद से भी अधिक समय तक इस संसार में रहें और आपके केवल दर्शन मात्र से त्रिविध ताप संतप्त भूमंडल एवं मानव मात्र को वेदामृत का पान कराके पराविद्या का ज्ञान करायें, ताकि जीव संसार से मुक्त होकर शिव बन जाय।

जन्म शताब्दी महोत्सव विवरण

ता. ८ से १८ जनवरी १९८१ तक आपका भव्याति भव्य जन्म शताब्दी महोत्सव बम्बई स्थित क्रोस मैदान धोबी तालाब में मनाया गया। मैं पहले ही बता चूकी हूँ कि इसकी तैयारियाँ तो कई दिनो से हो रही थीं। अब यह सुदीर्घ-काल से अपेक्षित दिन नजदीक आ गया। १०८ **भगवान् वेद** पारायण, १०८ श्रीमद् भागवत पारायण, पूज्य श्री डोंगरेजी महाराज की भागवत कथा, पञ्चदेव महायज्ञ एवं विविध संमेलनों का आयोजन हो गया।

आप ठहरे विश्वामित्र, समग्र जगत के मित्र। अतः आपके निमित्त आयोजित उत्सव में सारे विश्व से भक्त–प्रेमी–शिष्यगण, सन्त समाज, विद्वद्वर्ग, लब्ध प्रतिष्ठित सज्जन एवं आबालवृद्ध उपस्थित हो गये। धोबी तालाब के पास के सुप्रसिद्ध क्रोस मैदान में विशाल पांडाल खड़ाकर दिया गया और उसमें भव्य **जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य वेदनगर**' का कलात्मक वैभवपूर्ण निर्माण सतत सात–सात दिन के

परिश्रम के बाद सम्पन्न हुआ । यहाँ मानव–सागर ऐसा उमड़ता रहा कि उसका वर्णन शब्दों से करना संभव ही नहीं । यह स्थान गुरु–प्रेमी–भक्तों के लिये तो वृन्दावन धाम हो गया ।

एक ओर भारत के विविध प्रदेशों से पधारे वेद-पाठियों के १०८ आसन लग गये । तो दूसरो ओर श्रीमद् भागवत के १०८ पारायण करने के लिये १०८ ब्राह्मणों के आसन को व्यवस्था की गई । वास्तव में तो १०८ से बढ़कर २०० तक संख्या बढ़ गई थी । फिर भी आपकी कृपामयी लीला से सब कुछ सुचारुतया व्यवस्थित हो गया । मध्य में दोनों बाजू श्रोतागण एवं सामने सुन्दर सुमनों से सजी हुई व्यासपीठ पर, शुकस्वरूप, वंदनीय श्री डोंगरे महाराज विराजमान थे । उस पीठ की दाँयी ओर एक बड़े स्टेज पर हमारे चरित्र नायक, उदासीन संप्रदाय शिरोमणि, सद्‌गुरुदेव का आकर्षक चित्र, एवं साथ ही संप्रदाय के पूर्व पुरुषों श्री दादागुरु स्वामी रामानन्दजी, आचार्य श्री चंद्रजी तथा सनत्कुमार की लेखिका ने स्वयं चित्रांकित की हुई कृतियाँ शोभायमान् थीं । ऐसा प्रतीत होता था कि गुरुदेव के ये पुण्य पुरुष, देवों के रूप में, इस अति मंगल अवसर पर अपनी आशिष वृष्टि करने एवं उनके सुभागी भक्त प्रेमीजनों को अनायास दर्शन द्वारा कृतार्थ करने पधारे हैं । उन प्रतिमाओं के आगे, एक चाँदी के आसन पर, **भगवान् वेद** ग्रन्थ शोभा दे रहा था । नित्यप्रति प्रातः वहाँ नियुक्त पंडित द्वारा सबका विधिवत् पूजन अर्चन, आरति एवं प्रसाद वितरण होता था । साथ में एक दूसरे मंच पर लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा थो, जिसका प्रतिदिन विधिवत् पूजन होता था । व्यासपीठ की बाँयी ओर संत समाज एवं विद्वद्‌जन विराजमान् होते थे । संतों में विशेष अतिथिरूप, परमादरणीय महामण्डलेश्वर श्री स्वामी कृष्णानन्दजी, स्वामी गोविंदानंदजी (हरिद्वार), जिस जुगल जोड़ो ने, गुरुदेव को सर्वप्रथम १९६४ की जन्म जयंती से लेकर आज तक, अति प्रेम–भावपूर्व रामायण नवाह द्वारा, रामचरित मानस को रसमय बोध प्रदायिनी कथा अपनी सुन्दर शैली में सुनाकर, असंख्य श्रोताओं को मुग्ध बनाया है । स्वामी हंसदेव मुनिजी (हरिद्वार), स्वामी अमरमुनिजी (रामतीर्थ मिशन), स्वामी प्रीतममुनिजी, स्वामी कृष्णानन्दजी (हरिद्वार), स्वामी ब्रह्मानन्दजी (संन्यास आश्रम, पार्ला), स्वामी ब्रह्मदेवजी, स्वामी शान्ति प्रकाशजी, स्वामी श्याम सुन्दरदासजी (हरिद्वार), स्वामी शंकरानन्दजी (हरिद्वार), स्वामी वेदांतानन्दजी (हरिद्वार), स्वामी महेश्वरदेवजी (हरिद्वार), स्वामी धर्मदेवजी, किशोरदासजी (वाराणसी), स्वामी विद्यानंदजी (पुष्कर), स्वामी सर्वज्ञ मुनिजी (दिल्ही), स्वामी सुवेद-मुनिजी (अहमदाबाद), स्वामी गोपाल मुनिजी (ऋषिकेश), स्वामी रविमुनिजी (अहमदाबाद) इससे अतिरिक्त म. मं. श्री स्वामी पूर्णानन्दजी महाराज वेदांताचार्य, लक्ष्मणकिलाधीश

श्रद्धेय श्री सीतारामशरणजी महाराज, श्री हरिमिलापजी महाराज, स्वामी श्री रामस्वरूपजी महाराज श्री १०८ सीताराम ओमकारनाथ ठाकुर, पू. स्वामी श्री अखंडानन्दजी महाराज सरस्वती आदि अनेक महापुरुष उपस्थित थे। इस विस्तृत पण्डाल के अंतिम छोर पर, पञ्चदेव महायाग का क्रम चलता रहा, और यजमानों ने भावपूर्वक प्रातः सायंकाल पूजन आरति आदि किये।

मुख्य प्रवेशद्वार के एक कोने में गुरुदेव के विश्राम के लिये एक छोटा कमरा बना दिया था और उसके अग्रभाग में, लकड़ी के एक मंदिर में आपकी आरस की चरण पादुकाएं रखी गई थीं। मंदिर के शिखर पर सुन्दर जरी का ध्वज, द्वार में झालर एवं चारों ओर सुगन्धित सुमनों की मालाएँ उस दिव्य वातावरण में मादकता प्रसारती थी। भक्तजन प्रवेश करते ही, आपके चरण युगल को प्रणाम कर, पुष्प चढाते रहते थे। उस समय भटिण्डा से श्री चेतनसिंहजी आदि पञ्जाब रेजिमेन्ट के सदस्य भी आपकी सेवा में सहर्ष उपस्थित थे।

अन्दर-बाहर की सारी देखभाल एवं आगन्तुक अतिथियों के खान-पान एवं निवास की पूरी जिम्मेवारी उठाते हुए हमारे उत्साही शिष्य स्वामी आनन्द-भास्कर, स्वामी गोविन्दानन्दजी, श्री लीलाराम भाई, श्री पुरुषोत्तमभाई तथा श्री रमणभाई पटेल और उनके परिवार के सभी सदस्य एवं उनके मित्र श्री नटवरभाई वल्लभभाई आदि दिन-रात देखे बिना सतत परिश्रम करते थे और इसे सर्वांगसंपूर्ण बनाने में श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक सदा हँसते मुँह सेवा करते थे। प्रतिदिन सायं प्रातः करीब ५००० व्यक्तियों का भोजन होता था। वेदपाठी एवं पारायणरत ब्राह्मणों के लिये फलाहार की अलग ब्यवस्था रखी गई थी। रसोई का स्थान पाण्डाल से काफी दूर रखा गया था, क्योंकि कथावार्ता एवं प्रवचन में कोई बाधा न हो, विक्षेप न हो।

नड़ियाद के सुप्रसिद्ध संतराम मन्दिर के महन्त श्री नारायणदासजी की आज्ञा से ५० व्यक्तियों की टीम के साथ पधारे हुए प्रा. श्री जयन्ती भाई ने भण्डारे में तनमन से पूरी सेवा की थी। साथ में सर्व श्री रावजीभाई, ठाकोरभाई इत्यादि भी थे। वृन्दावन निवासी कमला बहन, मद्रास की कमला बहन आसरानी, बम्बई की सीताबहन हरलालका और उनका पूरा परिवार, एवं सुवर्णा बहन आदि ने भी पूरी शक्ति एवं भक्ति से सेवा प्रदान की थी। इन बहनों की सेवा भी मूक सेवा थी और अपने में अद्वितीय थी। और भी अनेक भाई-बहन प्रभु की सेवा में सूर्य-चन्द्र की भाँति रात दिन लगे थे। उन सबके नाम तो मुझे याद नहीं हैं, लेकिन सबका मैं हार्दिक धन्यवाद करती हूँ और सद्गुरुदेव के उनको आशीर्वाद मिले ऐसी प्रार्थना करती हूँ।

मंगल उद्घाटन

ता. ८ जनवरी को प्रातः सात से साढे आठ बजे तक श्री लक्ष्मी नारायण व्यास पीठ एवं वेद-मन्दिर का विधिवत् मंगल श्लोकों द्वारा ब्राह्मणों ने पूजन किया। पश्चात् भक्तों ने व्यक्तिगत **भगवान् वेद** तथा श्रीमद्भागवत् का पूजन एवं आरती आदि किया। आठ से नव तक वैदिक मंगलाचरण के बाद, स्वागताध्यक्ष, भक्त श्री गोविंदराम सेउमल आसवानी ने अपने भावपूर्ण शब्दों में जनसमाज का स्वागत किया। साधु सेवी भक्त श्री हरिलाल ड्रेसवाले ने इस जन्म शताब्दि महोत्सव की संक्षिप्त रूपरेखा बताई। तब तक पण्डाल खचोखच भर चुका था, लोगों का प्रेमभाव, उत्साह आनन्द देखते ही बनता था। चन्द्र-दर्शन से जैसे समुद्र तरंगित हो उठता है, प्रफुल्लित पद्म-पराग लालायित भ्रमरगण जैसे उनका सौन्दर्य एवं रस-माधुरी के लिये मँडराते हैं, आपके पावन दर्शन, तथा कृपामय दृष्टि के लिये नर-नारी-आबालवृद्ध *सहस्रों की संख्या में उपस्थित थे।

हमारी परमादरणीया **माता आनन्दमयी माँ** ने अपने वरद करकमलों से, इस अति मंगल जन्म शताब्दि-महोत्सव का उद्घाटन किया। लोगों की आनन्दपूर्ण जयजयकार की मधुर ध्वनि से समस्त वायुमंडल गूँज उठा। साढ़े नव बजे, वन्दनीय **लक्ष्मणकिलाधीश श्री सीतारामशरणजी** के वरद हस्त से १०८ चतुर्वेद-पारायण का उद्घाटन हुआ। पश्चात् पूज्यपाद **श्री सीताराम ओमकारनाथजी ठाकुर** ने १०८ श्रीमद् भागवत पारायण का उद्घाटन किया। पौणे दस बजे, महाराष्ट्र-प्रशासन मंत्री, **माननीय श्री बाबूराव काले ने** पञ्चदेव महायाग का उद्घाटन किया। वे बड़े सात्विक विचार के, एवं आर्य-संस्कृति के प्रेमी हैं एवं आपके प्रति उनकी बहुत निष्ठा है।

इतना कार्यक्रम की समाप्ति बाद, दस बजे, हमारे विशेष मुख्य अतिथि म. मं. श्री स्वामी रामस्वरूपजी महाराज ने अपना यथोचित वक्तव्य किया। पश्चात् म. मं. अनन्त विभूषित श्री स्वामी अखंडानन्दजी महाराज सरस्वती जो अध्यक्षपद पर विराजीत थे, उनका मधुर, भावपूर्ण भाषण हुआ। अंत में साढ़े दस बजे, स्वामी गोविंदानंदजो वेदांताचार्य ने आभार प्रदर्शित किया।

उद्घाटन के दिन पूज्य गुरुदेव ने जो प्रवचन किया उसका सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार है—

*उत्सव के विस्तृत कार्यक्रम के लिये परिशिष्ट-८ देखें

श्रीराम और श्रीकृष्ण वेद प्रतिपाद्य हैं

उपस्थित संत समाज, विद्वद्वर्ग व प्रभु के परम प्यारे भागवत भास्कर डोंगरेजी महाराज, मैं बहुत वर्षों से व्यासपीठ छोड़ चुका हूँ। अब व्यासपीठ पर बैठकर बोलूँ, यह मेरी इच्छा नहीं थी, परंतु परम भागवत डोंगरेजी के अनुरोध से ही व्यासपीठ पर विराजमान हुआ हूँ। अब मैं व्यासपीठ श्री डोंगरेजी महराज को दे चुका हूँ। पहिले स्वामी अखण्डानन्दजी ने मेरी बड़ी सहायता की। जिस व्यासपीठ पर मुझे बैठना पड़ता था, उस व्यासपीठ पर बैठकर उन्होंने अनेक लोगों का उद्धार किया। अब जैसे मैंने स्वामी अखण्डानन्दजी को निश्चित किया कि यह काम आप किया करें। अब स्वामी अखण्डानन्दजी यह काम डोंगरेजी महाराज को सौंप रहे हैं। अधिक कुछ कहना नहीं। मैंने भक्तों को पहिले ही कहा था कि शताब्दी मत मनाओ। शताब्दी मनाओगे तो मुझे बैठना पड़ेगा। मैं आजकल बैठ नहीं सकता। शरीर में इतनी शक्ति नहीं है। श्रीमद्भागवत में जो लिखा है वह वेद में है। जो वेद में है, वह श्रीमद्भागवत में है।

ऋग्वेद का प्रथम मंत्र—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्वजम्। होतारं रत्नधातमम्।

ऋ. वे. १—१—१

मैं विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिये घूम रहा था। एक बार कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी में गया। ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में गया। जगह जगह पर पाश्चात्य विद्वानों से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ एक पाश्चात्य अंग्रेज संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने मुझसे पूछा—'महाराज आपकी भारतीय संस्कृति का स्रोत क्या है?' मैंने कहा—'भगवान् वेद।' उसने फिर से पूछा—'आपकी भारतीय संस्कृति के आधार स्तंभ क्या हैं?' मैंने कहा—'प्रभु राम व श्रीकृष्ण।' मुझे नहीं पता कि वह किस दृष्टि से पूछ रहा है। वह कहने लगा कि जब आपकी भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ राम व श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्ण चरित का वर्णन महाभारत में और राम प्रभु का रामायण में वर्णन है। आपने प्रधान स्रोतग्रंथ वेद बताया। और वेद में श्रीरामकृष्ण की चर्चा नहीं है। फिर आपकी संस्कृति के आधार स्तम्भ प्रभु श्रीराम व श्रीकृष्ण को कैसे माना जाय। मैंने सज्जन को कहा—

नैषः स्थाणोरपराधः यदेनमन्धो न पश्यति। एक स्थाणु है। स्थाणु कहते हैं शुष्क वृक्ष को, जिसकी शाखा हरी-भरी नहीं है। नीरस हो गया हो ऐसे वृक्ष का नाम है स्थाणु। उससे वह टकरा गया। इसमें उस स्थाणु का अपराध नहीं है, पर उस व्यक्ति का अपराध है जो उसे देख नहीं पाता, हमारे

वेदों में एक भी ऐसा मन्त्र नहीं, जिसमें राम व कृष्ण का वर्णन नहीं हो। पाश्चात्य विद्वानों को मैंने कहा कि आप लोगों ने वेदों के वास्तविक अर्थ में दृष्टि नहीं डाली। इसलिये आप यह कहने का दुस्साहस कर रहे हैं कि राम–कृष्ण चरित का वेदों में वर्णन नहीं। तब मैंने उन्हें बतलाया कि प्रभु श्रीराम व श्रीकृष्ण दोनों के चरित्रों के लिये दूर क्यों जाते हो? ऋग्वेद के प्रथम काण्ड के प्रथम सूक्त का प्रथम मन्त्र ही है। यह सब मैंने अपने ग्रंथों में तो लम्बा चौड़ा लिख दिया है, पर उन सज्जनों को थोड़े में ही समझाया। **अग्निम्**–अग्नि का अर्थ क्या है? **स्वयं बकासुरस्य अग्निवत् तालु–मूल दाहकम्।** भगवान श्रीकृष्ण का भक्षण कर रहा है वह बकासुर; उसके तालुमूल को कृष्णने अग्नि की तरह दग्ध किया तो अग्नि का अर्थ है अग्नि की तरह बकासुर के तालुमूल के दाहक जो श्रीकृष्ण है उनकी **अहं ईळे** मैं स्तुति करता हूँ। यहाँ पहले ही वाक्य में श्रीकृष्ण का वर्णन है। अच्छा दूसरी ओर चलिये। परमात्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि। तो चाहे अग्नि कहो चाहे वायुपुत्र कहो। तो अग्निमीळे का अर्थ है **वायुपुत्रं हनुमन्तं अहं ईळे।** वायुपुत्र जो हनुमान हैं, उनका हम स्तवन करते हैं। कैसे हैं वायुपुत्र? **पुरोहितं यज्ञस्य।** यज्ञ नाम है संधि का। जब राम व सुग्रीव की संधि होने जा रही थी, उससे पहले जिस सुग्रीव ने प्रभु राम के पास जिस महावीर को भेजा। अब ज्यादा समय नहीं है। ये सब बातें मैंने ग्रन्थों में लिख रखी हैं। इस तरह राम–कृष्ण का वर्णन ऋग्वेद के पहले वाक्य में ही आता है।—

'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।'

—ऋ. वे. १–१–१

और फिर मैंने आगे बताया, "हम गायत्री को वेद–माता कहते हैं। जो माँ की भाषा होती है, वही बच्चे की भाषा होती है। यदि माँ पंजाबी है, तो लड़का पंजाबी बोलेगा। यदि माँ गुजराती है, तो लड़का गुजराती बोलेगा। तो वेद माता है गायत्री। जब गायत्री में राम–कृष्ण का वर्णन है तो वेद माता के पुत्र तो उन्हीं राम और कृष्ण का वर्णन करेंगे।" अब तो वे (पाश्चात्य अंग्रेज विद्वान) लगे और भी आश्चर्यचकित होने। उन्होंने कहा है:—'यह आप क्या कहने लगे? गायत्री में तो है सविता का वर्णन। आप लगे करने राम–कृष्ण का वर्णन।' मैंने कहा— 'इसलिये तो आया हूँ तुम्हारे यूरोप और अमेरिका में, ताकि तुमको गायत्री का असली अर्थ बताऊँ। तो मैंने गायत्री का अर्थ बतलाया'—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

ऋ. वे. ३–६२–१०; साम. १४६२; तै. सं. १–५–६–४; तै. आ. १–११–२

सविता नाम है सूर्य का । सूर्यनारायण ने अपनी कन्या कालिन्दी के वररूप में जिसको स्वीकार किया, अर्थात् अपनी कन्या कालिन्दी का विवाह जिसने श्रीकृष्ण से किया। दूसरे शब्दों में सूर्यनारायण की कन्या कालिन्दी के जो पतिदेव हैं, **वरेण्यम्** । फिर क्या—**भर्गो देवस्य धीमहि** । भर्ग माने भून डालनेवाला। जैसे भडभूजा मिट्टी में चनों को डालकर भूंज डालता है, इसी तरह रावण कंसादि राक्षसों को जो भून डालनेवाले हैं, उनके जो विनाशक हैं, तत् ऐसे जो श्रीकृष्ण हैं, उनका हम ध्यान करते हैं । कैसे वह श्रीकृष्ण हैं ? **धियो यो नः प्रचोदयात्** । समस्त पृथ्वी जिनकी है, जो भगवान अर्जुन के प्रति गीता के उपदेश के बहाने से कुमार्गगामी लोगों की बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं। जिन्होंने सूर्य सुता कालिन्दी से शादी की और जिसने कंसादि राक्षसों को चने की तरह भून डाला ऐसे श्रीकृष्ण का हम चिन्तन करते हैं। जैसे गायत्री में कृष्ण का वर्णन है या जब वेद माता गायत्री श्रीकृष्ण का वर्णन कर रही है तो वेद क्यों नहीं करेगा ? दूसरा मैंने बतलाया **तत्सवितुर्वरेण्यम्** । सविता नाम है सूर्य का । सूर्यवंश की ६३वीं पीढ़ी में भगवान् राम हुए । पौत्र से दादा को बड़ा प्यार होता है । जो अपनी कुल कीर्ति का वर्धक है, वह वंश के मूलपुरुष को अतिप्रिय होता है। **सवितुः** माने **सूर्यस्य** । सूर्य को वरेण्य माने परमप्रेमास्पद हैं, जो सूर्यनारायण के अत्यन्त प्रेमपात्र हैं । क्यों ? **सूर्यकुलकीर्तिवर्धकत्वात्** । सूर्यकुल की कीर्ति का वर्धक होने से । **भर्गो देवस्य धीमहि** । भर्ग क्या है ? भर्ग माने रावणादि राक्षसों को चने की तरह जिसने भून डाला ।अब **धीमहि**—उन राम का हम 'धी' ध्यान करते हैं। **धियो यो नः प्रचोदयात्** । अन्यान्य अवतारों ने अन्यान्य ऋषि मुनियों ने अपने ग्रन्थों के द्वारा सन्मार्ग का उपदेश दिया, पर प्रभु राम ने ग्रन्थों की जरूरत नहीं रक्खी । जिन्होंने अपने चरित के द्वारा कुमार्गगामी लोगों की बुद्धियों को सन्मार्ग की प्रेरणा दी । अर्थात् जिन भगवान राम के आदर्श से लोग भ्रातृप्रेम–पितृभक्ति और प्रजावत्सलता को सीखकर सच्चे मानव बनते हैं। उन श्रीराम का हम चिन्तन करते हैं । इस तरह गायत्री वेदमाता में रामकृष्ण का वर्णन है। वह रामायण का और भागवत का बीज है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में ही **अग्निमीळे** इस वाक्य द्वारा राम–कृष्ण का वर्णन किया गया है। और फिर कौतुक से उसने पूछा—'महाराज भक्ति–भक्ति कहते हैं, पर वेद में तो भक्ति का नाम ही नहीं ।' मैंने कहा—'आपकी प्रज्ञा को मैं धन्यवाद देता हूँ कि आपने वेदों को दूर से सुन लिया है, या फिर वेदों पर किसी का लिखा हुआ अनुवाद पढ़ लिया है, या कि कोई एकाध टिप्पण पढ़ लिया है । भक्ति का वर्णन कितना सुन्दर है ! ऋ. वे. मंडल ६ सूक्त ७९ मंत्र ३.

तस्य ते भक्तिवांसं स्याम् ।

उस परमात्मा के हम पुत्र हैं । वे जो परमात्मा हैं—जिन्होंने जगत का सृजन किया—वे तरह–तरह से जगत का पालन कर रहे हैं । कहते हैं उसके भक्तिवान्सं स्याम । सच्चे अनन्य भक्त बन जायें और वह अनन्य भक्ति क्या है ? शुक्ल यजुर्वेद की प्रथम कण्डिका के प्रथम अध्याय में स्पष्ट कहा है : **ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्याम** । वह जो द्रौपदी गोपाल श्रीकृष्ण हैं, श्रीमद्‌भागवत के प्रतिपाद्य । कहते हैं उसके हम अनन्य भक्त बन जायें । उसी अनन्य भक्ति का श्रीकृष्ण प्रभु ने गीता में स्थान स्थान पर वर्णन किया है । वह जो वेद वर्णित भक्ति है, और उससे अनन्यभक्ति का गीता ने स्पष्टीकरण किया है, जिस भक्ति के मुख्य देव राम–कृष्ण का वेदों में वर्णन हुआ, उसी कल्पवृक्ष रूपी वेद भगवान के पके हुए फल श्रीमद्‌भागवत को आपके सामने परम भागवत श्री डोंगरेजी प्रस्तुत करेंगे । उसका आप रसास्वाद लें ।'

इस प्रकार उद्‌घाटन विधि के बाद हमारा प्रतिदिन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । उस दिन साढ़े दस से एक बजे तक पूज्यपाद श्री डोंगरेजी महाराज श्रीमद्‌भागवत की परम पावन, अघनाशिनी, मोक्षप्रदायिनी कथा करते रहे । डोंगरेजी महाराज जैसे परम–भागवत के श्रीमुख से निसृत कथा की रसामृत धारा में, असंख्य भावुकप्रेमी नर–नारियों ने निमज्जन कर आत्मसुख का अलभ्य लाभ उठाया है । आपका समस्त जीवन ही भागवत्–स्वरूप है, संयम, सदाचार, भक्ति–ज्ञान समन्वित आदर्श एवं श्रेष्ठ जीवन ! आपकी कथा का समय था प्रातः नव से बारह एवं सायं तीन से छः तक ।

विविध सम्मेलन

प्रतिदिन शाम को सात से नव तक विभिन्न सम्मेलन नियोजित थे ।

ता. ८ जनवरी गुरुवार — वेद–सम्मेलन
ता. ९ जनवरी शुक्रवार— भागवत–सम्मेलन
ता. १० जनवरी शनिवार— गीता–सम्मेलन
ता. ११ जनवरी रविवार— रामायण–सम्मेलन
ता. १२ जनवरी सोमवार— योग–सम्मेलन
ता. १३ जनवरी मंगलवार— स्वागत–समारोह
ता. १४ जनवरी बुधवार— संस्कृत सम्मेलन
ता. १५ जनवरी गुरुवार— वेदान्त–सम्मेलन
ता. १६ जनवरी शुक्रवार— राष्ट्रीय एकता सम्मेलन
ता. १७ जनवरी शनिवार— गो–सम्मेलन
ता. १८ जनवरी रविवार— गुरुपादुकार्चा–सम्मेलन

* प्रत्येक सम्मेलन के विस्तृत कार्यक्रम के लिए कृपया देखिए परिशिष्ट नं. १० ।

वेद सम्मेलन

ता. ८ को सायंकाल वेद सम्मेलन था। आरंभ में सुप्रसिद्ध रेडियो गायक श्री हरिओम शरण ने अपने सुमधुर स्वर में आधा घण्टा भजन सुनाया। पश्चात् श्री हरिभाई ड्रेसवाला ने १० मिनिट तक स्वागत भाषण किया, पश्चात् म. मं. स्वामी श्री पूर्णानन्दजी महाराज,-वेदांताचार्य-ने वेद-सम्मेलन का उद्‌घाटन कर यथोचित भाषण किया। बाद में आदरणीया श्री वेद भारतीजी, वन्दनीय लक्ष्मणकिलाधीश श्री सीतारामशरणजी महाराज तथा श्रद्धेय मुनि श्री हरिमिलापजी महाराज के मननीय भाषण हुए। अंत में रात्रि को नव से साढ़े नव तक, अध्यक्ष म. मं. स्वामी रामस्वरूपजी महाराज, वेदांताचार्य के भावपूर्ण भाषण के साथ प्रथम दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

ता. ८ जनवरी से ११ जनवरी तक, विविध सम्मेलन नियमितरूप से नियोजित कार्यक्रमानुसार चलते रहे। उपस्थित सन्त महात्मा एवं विद्वद्‌जनों के सुन्दर उपदेशात्मक प्रवचन से जनता अघाती नहीं थी।

गीता संमेलन

ता. १० को गीता संमेलन था। उसमें अनेक विद्वानों ने अपने प्रवचन किये। इस अवसर पर त्यागमूर्ति वीतराग स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज उपस्थित थे। आपने गीता में वर्णित भगवद् शरणागति के बारे में अत्यंत सुंदर मननीय एवं भावपूर्ण प्रवचन, युक्ति-प्रयुक्ति एवं रोचक उदाहरणों के साथ दिया। आपके प्रवचन का पूरा पाठ पीछे परिशिष्ट में दिया गया है। जिज्ञासु से अनुरोध है कि उसे अवश्य पढ़ें।

ता. ११ के दिन शाम को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति माननीय श्री चन्द्रचूडजी मुख्य अतिथि के रूप में पधारे थे। इतने उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी वे अतिनम्र सुशील एवं श्रद्धा-निष्ठायुक्त महानुभाव हैं। आपने भारतीय संस्कृति एवं वेद का गौरव समझाया। पूज्य गुरुदेव के कार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा की तथा उनके लिये दीर्घायु की कामना की।* इस सुमंगलमय अवसर पर लेखिका रतन बहन ने भगवान श्रीकृष्ण की एक सुन्दर स्वयंकृति माननीय श्री चन्द्रचूडजी को सद्‌गुरुदेव की ओर से प्रसादरूप में दी। वे बहुत प्रसन्न हुए।

ता. १२ जनवरी, पौष शुक्ल सप्तमी संवत् २०३०, आपका जन्म-दिन था। अतः आपके परम भक्त, श्री बालचन्द पमनानी के निवास-स्थान, मेघराज भवन में, प्रतिवर्ष के अनुसार आपका पूजन रखा गया। प्रातः ७ से ८ तक श्रीमद् भगवद्‌गीता के सामूहिक पाठ के पश्चात् ८ से १२ बजे तक आपका पूजन आरति-क्रम आदि था। बंगले के बगीचे में सुन्दर पुष्प-मण्डप सजाया गया था।

* माननीय श्री चन्द्रचूडजी के पूरे प्रवचन के लिए परिशिष्ट-४ देखें।

उमड़ती सरिता-प्रवाह के समान जनता का आगमन-प्रवाह सतत् दोपहर १२॥ बजे तक होता रहा । पूजनीया माँ आनन्दमयी भी, अपनी वृद्धावस्था तथा दुर्बलता की परवाह न करके, फलों से भरे टोकरे, पुष्पहार के साथ आपके दर्शनार्थ आईं एवं आपको शाल अर्पण की । लोगों की भीड़ इतनी जमी थी कि स्वयंसेवकों के अनुनय-विनय के बावजूद भी मेदनी को काबू में रखना मुश्किल था । आप भी बहुत ही थके हुए थे, अतः स्वामी आनन्द भास्कर आदि सन्तों के साथ भोजन के पश्चात् आपने बँगले में ऊपर जाकर तब तक विश्राम किया, जबतक, भोजन का क्रम चला । असंख्य पुष्पहार, फलों की टोकरियाँ, वस्त्र एवं विविध उपहार की प्रचुर सामग्रियाँ तीन-चार घण्टों में इतनी एकत्रित हुई थीं कि जितनी किसी बड़े राज-दरबार में महोत्सव में होती हैं । शाम को आप योग-सम्मेलन में पधारे ।

योग सम्मेलन

अन्य सम्मेलनों की भाँति योग-सम्मेलन भी अत्यधिक रसप्रद एवं विद्वत्तापूर्ण चर्चाओं से भरा हुआ था । ता. १२ जनवरी को शाम को सात बजे कीर्तन के साथ इसका प्रारम्भ हुआ । स्वागत-भाषण दिया श्री १०८ स्वामी श्यामसुन्दरदासजी शास्त्री ने । उनके बाद निखिल शास्त्र मर्मज्ञ श्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज ने मननीय उद्‌घाटन प्रवचन किया । आपने अपनी रसमय सुधासार-गर्भित वाणी में कहा—

"हमारे गुरु श्री उड़िया बाबाजी महाराज के परम मित्र और हमारे पिता के समान, सद्‌गुरु, सर्वथा आराध्य, पूज्य स्वामी श्री महाराज की जन्म शताब्दी के अवसर पर हम लोग उपस्थित हुए हैं । इनको हम क्या धन्यवाद दें ? क्या कामना करें ? इनका आशीर्वाद हम लोगों पर बना रहे । इनके वरद हस्त की छत्रछाया में हम भी जो कुछ बनें, सो ईश्वर की सेवा में, धर्म की रक्षा और संवर्धन के लिए, अपनी भारतीय आध्यात्मिक, वैदिक संस्कृति के अभ्युत्थान के लिए यथासंभव सेवा करते रहें । यही हमारे मन में अभिलाषा है । हमारा जो यह अध्यात्मशास्त्र है, दर्शनशास्त्र है, वह कहीं भी किसी भी दृष्टि से लोक-व्यवहार का विरोधी नहीं है । बल्कि वह तो लोकव्यवहार को सर्वथा सुव्यवस्थित रखने के लिए ही है । मिनटों में आप ये बातें ध्यान में ले लीजिये कि सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, असत्य न बोलना, मन-वचन-कर्म से किसी को दुःख न पहुँचाना, किसी का माल नहीं हड़पना, अनाचार-व्यभिचार नहीं करना और अपने आप बहुत-सा माल नहीं रखना आदि । अपरिग्रह मन का होता है । अस्तेय माने दूसरे का माल हड़प लेना और अपरिग्रह माने अपने हक का होने पर भी बहुत-सा माल अपने पास नहीं रखना । यह सार्वभौम महाव्रत है ।

जहाँ हम समाधि लगाते हैं, योगाभ्यास करते हैं, वहाँ सबके साथ व्यवहार करने में हमारे जीवन में ये वस्तुएं हानी चाहिए। यह लोकव्यवहार है। और गहराई में उतरें, तो हमारे व्यक्तिगत जीवन में इन्द्रियों का संयम रखना चाहिए, पवित्रता चाहिए, संतोष चाहिए, स्वाध्याय चाहिए और समता चाहिए। इस तरह हमारे व्यक्तिगत जीवन का निर्माण होगा। और आगे जायँ तो, शरीर स्वस्थ होना चाहिए, स्थिर होना चाहिए, दृढ़ होना चाहिए। इस प्रकार हम आसन में आ जायेंगे। हमारी क्रिया शक्ति नियंत्रण में हो, पाँव से हम गलत चलकर न जाएँ, हाथ से गलत काम न करें, जीभ से गलत न बोलें, इस प्रकार जब प्राणों पर संयम हो जाता है, तब क्रिया-शक्ति का नियन्त्रण हो जाता है। उसके बाद स्थिति यह हो कि हमारी इन्द्रियाँ-ज्ञानेन्द्रियाँ इन विषयों के सम्पर्क में रहने की आदी न हो जायँ। अब उनको विषयों की ओर से लौटाकर घर में ही रखो। जैसे हमारी बेटी-बहू दिन भर बाजार में घूमकर, दूकान-दूकान पर जाकर सौदा खरीदकर और पर्स खाली करके लौटती हैं, उसी तरह अपनी इन्द्रियों का लौटाना है, इसके लिए प्रत्याहार-हमारे जीवन में चाहिए। हम अपनी आँखों को, बुरा देखनेवाली आँखों को, चाट खानेवाली जिह्वा को, कोकाकोला पीनेवाली जिह्वा को काबू में रखें। जीभ जीभ में रहे। कान कान में रहे। यहाँ प्रत्याहार होता है। यहाँ तक लौटने की बात हुई।

अब देखो करने की बात। अपने चित्त को एक स्थान में बसाओ। दोनों अंगूठों के नाखून को दबाओ। और उनको छोड़कर देखो। मन कहीं नहीं जाएगा। आप अपनी जीभ तालु और उसको गद्दी के बीच में लटकाओ। मन कहीं नहीं जायेगा। विज्ञान भैरव कहता है कि **समाधिर्जायते सम्यक् नेत्रयोः स्तब्धमानयोः**। आँखों की पुतली स्थिर कर दीजिये। आपका मन कहीं नहीं जायेगा। एक स्थान में मन को स्थापित करने का नाम होता है धारणा और जो वृत्ति शान्त हो वही उदित हो—**तत्रैकान्तता**। अपने लक्ष्य की ओर मन जाने लगे, इसका नाम ध्यान और वस्तु के साथ ध्येय के साथ तन्मय हो जाना, इसका नाम समाधि। इसमें व्यवहार का विरोध कहाँ है? इससे आपको जो शक्ति प्राप्त होगी, चांगदेव ने इसके बल पर १४०० वर्ष तक मृत्यु को चुनौती था। मृत्यु उनको लेने के लिए आई, तो वह प्रवृत्ति और प्राकृत विचार को छोड़कर, अपने असंग द्रष्टा स्वरूप में बैठे रहे। मौत लौट गई। इस प्रकार १४०० वर्ष तक मृत्यु को लौटाते रहे। तो हमारे योगियों में ऐसी शक्ति होती है। ऐसे बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं और हैं। इस मंच पर भी मैं समझता हूँ स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज बैंगलोर से आए हुए हैं। १११ वर्ष उनके पूरे हो चुके हैं। ११२वाँ वर्ष चल रहा है। आप मंच पर बैठे हैं। तो हमारे सामने ये जो हमारे बड़े महाराज बैठे हुए हैं। उनकी सौ वर्ष की शताब्दी मनाकर हम खुश हो ही रहे

हैं। हम तो चाहते हैं कि इससे और अधिक वर्षों का दीर्घायु आपका हम मनावें। १२५ वर्ष की शताब्दी हमलोग मनाएँ। इसकी खुशी हमको भी होगी। हम १२५ के नहीं होंगे तो हम भी तो १०० के आसपास तो पहुँच जायेंगे, इसलिए हम इस शताब्दी के अवसर पर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और धर्म का, बल का, योग का, उपासना का जो बल जीवन में आता है, उसका चमत्कार उसका योगैश्वर्य लोगों के सामने रखने के लिए ये महापुरुष और बहुत दिनों तक हम लोगों के बीच में रहें। यही हमारी ईश्वर से प्रार्थना है, यही हमारी शुभकामना है।

परमपूज्य स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज के प्रवचन के बाद गुरु गंगेश्वर देवकी भोजराज कन्या विद्यालय, श्रोतमुनि निवास वृन्दावन को छात्राओं एवं अध्यापिकाओं ने मिलकर वेदमंत्रों का पाठ किया। बाद में योगासनादि का प्रदर्शन किया गया और मुख्य अतिथि के रूप में पधारे हुए, सदरेरियासत जम्मू काश्मीर, श्री कर्णसिंहजी ने एक मननीय भाषण किया। जिसका पाठ इस प्रकार है—

श्री करणसिंहजी का भाषण

'अध्यक्ष महोदय परम आदरणीय सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानंदजी महाराज, उपस्थित महामंडलेश्वर, प्रमुख विद्वान और साधुगण, माताओ एवं बहिनो! आपको यह आश्चर्य हो रहा होगा कि इतनी विद्वत् मण्डली में, जहाँ इतने बड़े-बड़े महामंडलेश्वर बैठे हुए हैं, मुझ जैसे गृहस्थी को कैसे बैठा दिया गया? और आज तो स्वामी सौ वर्ष के हो चुके हैं। मैं अभी पचास वर्ष का भी नहीं हुआ हूँ। लेकिन इसमें एक बड़ा गूढ़ रहस्य है, जो मैं आपको पहले ही बता देना चाहता हूँ, ताकि किसी को यह न लगे कि हमारे इस मंच पर करणसिंह कहाँ से आकर बैठ गए? दो-तीन बातें बताऊँगा। एक तो कोई भी कार्य तब तक संपूर्ण नहीं होता, जब तक हिमालय का कोई प्रतिनिधि वहाँ न हो। हिमालय का वर्णन कवि कालिदास ने कुमारसंभवम् के पहले ही श्लोक में किया है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

मैं उस हिमालय की गोद का रहनेवाला हूँ और आपकी इस बम्बई नगरी में मैं उस हिमालय का प्रतिनिधि बनकर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। दूसरा, कोई भी बड़ा कार्य होता है, वह ब्राह्मणों के आशीर्वाद के बिना नहीं होता। लेकिन आत्मबल के बिना भी संपूर्ण नहीं होता। हमारे वैदिक धर्म का मूल मंत्र है—

अग्रतः चतुरो वेदाः पृष्ठतः।

इसलिये मैं वर्णव्यवस्था की बात नहीं कर रहा हूँ। लेकिन एक ब्रह्मतेज और एक प्रकार से जो व्यावहारिक शक्ति है, उसका समन्वय हो, इस प्रकार की हमारी आशा है। तीसरी सबसे बड़ी बात यह है कि मेरी माताजी जो थी। माता

का सम्बन्ध सबसे घनिष्ठ होता है और मेरी माताजी के स्वामी गंगेश्वरानंदजी गुरु रहे हैं। इसलिये मैं एक प्रकार से अपनी मातृशक्ति के गुरु के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पितकरने के लिए यहाँ आया हूँ और बहुत प्रसन्न हूँ।

हमारे स्वामीजी महाराज ने तो कुछ आश्चर्य प्रगट किया कि बम्बई में साधू क्यों आए हुए हैं। बम्बई कोई ऐसा दुष्ट शहर तो नहीं है। थोड़ा बहुत दुष्ट तो है ही। सारे शहर कुछ सीमा तक दुष्ट होते हैं, लेकिन बम्बई बड़ा सुन्दर शहर है। यह समुद्र के तट पर है। मेरा अपना बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध बम्बई से है। मेरा जन्म विदेश में हुआ। सबसे पहले भारतमाता का दर्शन मैंने बम्बई में किया। सबसे पहले विद्यालय में जो गया वह बम्बई में गया। मेरा विवाह बम्बई में हुआ। भगवान की कृपा से हमारे पहले दो बच्चे पैदा हुए, वे बम्बई में पैदा हुए। और मेरे पूज्य स्वर्गवासी पिताजी महाराज हरिसिंहजी बम्बई में ही रहे और बम्बई में ही उनका देहान्त हुआ। इसलिए मेरे लिये बम्बई एक तीर्थस्थान है। और यह बड़ा सुंदर संयोग है कि सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानंदजी को हम यहाँ शताब्दी मना रहे हैं।

बहुत से महापुरुषों की शताब्दियाँ मनाई गई हैं, लेकिन हमारे सामने प्रत्यक्ष जो बैठे हों, सक्रिय हों, हमारे सामने दर्शन दे रहे हों, ऐसे महापुरुष की शताब्दी, मैं समझता हूँ, यह मानवजाति के लिए बहुत बड़ा वरदान है। एक प्रकार से इसको मैं एक सौभाग्य मानता हूँ मानव-जातिका, कि एक ऐसे महापुरुष जिन्होंने अपनी सारी आयु वेद के प्रचार–प्रसार में समर्पित कर दी, देश में ही नहीं विदेश में, भी जहाँ–जहाँ भारतीय संस्कृति व सभ्यता की छाप है, वहाँ स्वामी गंगेश्वरानंदजी का नाम पहुँचा हुआ है और इनके माध्यम से वेद का प्रकाश वहाँ फैला है, इसमें कोई दो मत होने की गुंजाइश नहीं है। और इसलिए इतने महापुरुष इनको श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जो आज इकट्ठे हुए हैं, यह उचित ही है।

आज मानवजाति एक चौराहे पर खड़ी है। प्राचीन टूट रहा है, नवीन का जन्म नहीं हो रहा और हमारी वर्तमान पीढ़ी जो है वह अपने आपको अतीत और भविष्य में कुछ लटकती हुई पा रही है। इस त्रिशंकु की तरह आकाश और पृथ्वी के मध्य में हम उलटे टँगे हुए हैं। हमें मार्गदर्शन नहीं मिल रहा है। इस भारतवर्ष में चारों ओर भ्रष्टाचार फैल रहा है, जिसका मूलमंत्र **'सत्यमेव जयते'** मुण्डकोपनिषद का वाक्य है। **'सत्यमेव जयते नानृतम्'** ......इत्यादि हमारा मित्र तो सत्यमेव है, लेकिन चारों ओर भ्रष्टाचार का हाहाकार मचा हुआ है। किसी भी क्षेत्र में आप देखें, हमें कहाँ से नया मार्गदर्शन होगा ? नया मार्गदर्शन हमारे सांस्कृतिक दर्शन से ही हो सकता है। जैसे गंगा हजारों

लाखों वर्षों से हिमालय की गोद से निकलते हुए समुद्र की ओर जाती है, इस प्रकार भारतीय संस्कृति और सभ्यता चल रही है, नई प्रेरणा दे रही है। भारतमाता को बचा रही है। अनेक उतार-चढ़ावों के बीच में एक नया पथ-प्रदर्शन कर रही है। आज फिर से वह समय आ गया है, जब हमें नई चेतना की आवश्यकता है और हमारी धरोहर में बहुत सारे रत्न हैं। सबसे बड़ा वरदान मैं "**योग**" को समझता हूँ, सब समझ सकते हैं कि यदि भारतीय संस्कृति का एक पक्ष लेना हो, एक शब्द लेना हो, जिसके जरिये भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार विदेश में हो सके, तो वह शब्द है 'योग।' योग के विषय में निष्णात बड़े-बड़े महात्मा यहाँ बैठे हैं। अतः इस विषय पर मेरा कुछ कहना उचित नहीं। मैं केवल यह प्रार्थना करूँगा कि मेरी योग की जो परिभाषा है, वह केवल एकमार्गीय नहीं। वह केवल अपने षडदर्शन का एक दर्शन नहीं।

योग वह मार्ग है जो आत्मा और परमात्मा को मिलाता है। हमारे प्राचीन शास्त्र में योग के चार मार्ग बताए गए हैं। एक ज्ञानयोग है, उसके अपने शास्त्र हैं—उपनिषद, ब्रह्मसूत्र इत्यादि। दूसरा भक्तियोग है—इसमें श्रीमद्भागवत है, रामायण है, सारा संत साहित्य इसके शास्त्र हैं। तीसरा कर्मयोग है—भागवद्गीता का अभी अभी उल्लेख हुआ। और चौथा राजयोग है, जिसमें पतंजलि के योगसूत्र प्रमुख हैं। ये सारे अलग-अलग मार्ग हैं, लेकिन लक्ष्य इनका एक ही है। लक्ष्य है आत्मा और परमात्मा का मिलन। अपने जीवन में भी हमें योग करना होगा। और मैं तो यह प्रार्थना करूँगा कि आज के मानव को चारों योगों का समन्वय करना चाहिए। आज के मानव में ज्ञान भी चाहिए। सत्य और असत्य का विवेक करना भी उसे सीखना चाहिये। आज के मानव को भक्ति चाहिए। आज के मानव को राजयोग का भी कुछ न कुछ उपयोग करना होगा और सर्वप्रथम बात है कर्मयोग, आज के मानव को कर्मयोग करना है। **यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवाः॥** तो योग के जितने मार्ग हैं, जब तक इनको हम एक नहीं करेंगे, तब तक आज का आधुनिक मानव आगे नहीं बढ़ेगा। तो हम इस योग में लगें जो कि एक विशाल योग है। और ऐसे महनीय कार्य में स्वामी गंगेश्वरानंदजी जैसे महापुरुषों का, जो इस मंच पर सुशोभित हैं, जो महामंडलेश्वर और महापुरुष हैं, इनका आशीर्वाद हमें प्राप्त होता रहे, ऐसी मेरी प्रार्थना है।"

इस अवसर पर **पंजाब के मुख्यमंत्री श्री दरबारासिंहजी** भी अतिथि विशेष के रूप में पधारे थे। आपने भी पूज्य गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट की और गुरुदेव के लिये दीर्घ आयुष्य की कामना की।

स्वामी चिदानन्दजी का प्रवचन

इस योग संमेलन में शिवानन्द डिवाइन लाइफ सोसायटी, ऋषिकेश से पधारे हुए स्वामी श्री चिदानन्दजी महाराज ने अपने अध्यक्षीय प्रवचन में कहा कि—

"भावना से कर्तव्य बड़ा है। यह बात अब आप समझेंगे। जब तक आप में साधु–समाज के लिए आदर है, तब तक आपकी परमपावनी मातृभूमि भारतमाता के लिए भविष्य अच्छा रहेगा, भविष्य उज्ज्वल रहेगा, भविष्य मंगलमय रहेगा। इसलिए बुद्धि और विचार–शक्ति भगवान ने भावना के साथ–साथ दिये हैं। जहाँ पर बुद्धि को काम करना चाहिए, वहाँ भावना काम करने लग जाए, तो गड़बड़ हो जायेगी। उसी तरह जहाँ पर भावना का काम है, वहाँ पर बुद्धि–प्रयोग करने लग जाए तो सब बिगड़ जाएगा।

जो **वेद भगवान्** अदृश्य रूप में थे, अव्यक्त अदृश्यरूप में जिसे केवल गुरुमुख से उसे सुन करके, मनन करके, अपनी श्रुति में रखकर, स्मरण में रखकर पीढ़ी–दर–पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को देती रही है। परम्परा से जो इस प्रकार अव्यक्त हैं, लिखित रूप में नहीं रहे, जिनके महान कार्य से ये वेद लिखित रूप में हमें प्राप्त हुए, वे गुरुदेव भगवान का ही स्वरूप हैं। ऐसे महान भगवान के साक्षात् अंशावतार वेदव्यास भगवान, बादरायण को हम नतमस्तक प्रणाम करते हैं। हम अपने भगवान को इस रूप में समर्पण करते हैं। और प्राचीनकाल में वेदव्यास भगवान ने हमारे कल्याण के के लिए वेदों को लिखित स्वरूप में तैयार किया, क्योंकि इनको मालूम हो गया था कि कलियुग आनेवाला है, मानव अल्पायुष्य हो जायेगा, और उसके अन्दर श्रुति–स्मृति रह नहीं जायेगी, इसलिए वे वेद को कंठस्थ करके अपने मन में नहीं रख सकेंगे। इसलिए उनको कुछ न कुछ करना पड़ेगा, ऐसा समझकर हमारी भलाई को सोच करके इसका प्रबन्ध करना चाहिए, हमारा कल्याण सोच करके वेदों को उन्होंने लिखित रूप में दिया। लिखित रूप में चार वेदों के रूप में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद को ग्रन्थ के रूप में बद्ध करके आनेवाली मानव–पीढी के लिए प्रस्तुत किया। और उन अलग अलग चार ग्रन्थों के रूप में कई शताब्दियों से—हजारों वर्षों से रहे हुए वेद को एक बृहद्ग्रन्थ के रूप में हमें सद्गुरुदेव ने संकलित करके कल्याण–सिद्धि का पथ हमारे सामने प्रस्तुत किया। अन्य धर्म के लोगों ने तो अपने–अपने पवित्र ग्रन्थों के दर्शन किये हैं, लेकिन लाखों, करोड़ों, जो सनातनी हिन्दू भाई हैं, उन्होंने अपने वेद को देखा भी नहीं है। वेद क्या होता है? सुना है वेद के बारे में, लेकिन देखा नहीं। दर्शन के लिए इन चारों वेदों को, सुन्दर नये कागज पर शुद्ध रूप में प्रकाशित करवाकर आपने मानवजाति पर परम उपकार किया है।

भारतवर्ष में काश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कटक तक, बर्मा से पाकिस्तान पर्यन्त ७०० स्थानों में वेद भगवान की आपके वरद हाथों से प्रतिष्ठा हुई है। और विदेश में १२५ भिन्न-भिन्न स्थानों में इस पुनित, पवित्र, दिव्य वेद भगवान की प्रतिष्ठा की है। अतः आपको आधुनिक वेदव्यास का ही अवतार मानने में अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस प्रकार साक्षात् व्यास भगवान-सा कार्य आपने अपने समय में किया है। हमारे समय में तो उसी कार्य को एक अद्भुतरूप में जिन्होंने किया, उस वेदमूर्ति के चरणारविन्द में मैं प्रणाम करता हूँ।"

श्रीमती इन्दिराजी का सन्देश

श्रीमती इन्दिरा गांधी व कमलापति त्रिपाठीजी के निकट के साथी और धर्मप्रेमी श्री कौशलकिशोर शर्मा मंच पर पधारे और श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं श्री कमलापति त्रिपाठीजी की शुभकामनाएं आपने निम्नदर्शित शब्दों में व्यक्त कीं——

'पूजनीय महामनीषी स्वामी गंगेश्वरानन्दजी के चरणों में मैं वन्दन करता हूँ और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि देश के कल्याण के लिये उनको दीर्घायु रखें। अपना कार्यक्रम अतिव्यस्त होने के कारण वह नहीं आ सकेंगी ऐसी सूचना मुझे मिली, अतः मैं आया हूँ। और श्रीमती इन्दिराजी की ओर से उनको वन्दन करता हूँ। और समस्त योगीराज महात्मा साधु सन्त जो यहां विराजमान हैं, उनको प्रधानमन्त्री की ओर से वन्दन करता हूँ।

मैं चाहता हूँ कि आप इस देश के कल्याण के लिये, एकता एवं अखण्डितता के लिये देश को मार्गदर्शन देते रहेंगे। और इसी देश के कल्याण के लिये आप नित्य आशीर्वाद देते रहेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ मैं इन्दिराजी की ओर से एवं पंडित कमलापतिजी की ओर से परमपूज्य स्वामी गंगेश्वरानन्दजी के चरणों में वन्दन करता हूँ।'

पू० गुरुदेव के आशीर्वाद

योग सम्मेलन में अन्त में आशीर्वाद देते हुए पूज्य गुरुदेव ने सुन्दर प्रवचन किया——

"ॐ स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।

उपस्थित मंडलेश्वर मंडल और उपस्थित योगीवर्ग व भगवद् भक्त भाइयों और बहिनो, जब बूढ़ा पहलवान हो जाय तो उसको यह नहीं कहना चाहिये कि कुश्ती लड़ो। और मैंने यह कटु परिणाम भी अनुभव किया है। जब दिल्ली का दरबार हुआ, उस समय ब्रिटिश सम्राट आये थे। उन दिनों मुसलमानों के एक पहलवान थे उत्कल्लु। हिंदुओं का पहलवान था किक्करसिंह। किक्करसिंह बूढ़ा हो चुका था। किक्करसिंह देखने में तो बृहदकाय था, और उत्कल्लू जा थे छोटे,

बहुत दुबले पतले, परन्तु किक्करसिंह पराजित हो गए। और इस पराजय का समस्त हिंदुस्तान ने अनुभव किया। कहीं जबरदस्ती मुझे पराजित न कर देना। अब इतनी बात जरूर है, लोग मुझे कहते हैं आप बोलो। मैं तो समझता हूँ कि पुरुषसूक्त में—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

आजकल मेरी वही स्थिति है। मैं अब सहस्रशीर्षा बन गया हूँ। कहीं डॉ. कर्णसिंह के, कहीं श्यामसुन्दर (सेक्रेटरी) के, कहीं ब्रह्महरिजी के तो कहीं चिदानन्दजी के मुख से मैं बोल रहा हूँ। जितने इन सन्तों के–वेदज्ञों के मुख हैं, वे सब मेरे ही मुख हैं। आपका भी दोष नहीं। आपका प्रेम विवश कर रहा है कि हम स्वामीजी के दो शब्द सुनें और आज के दिन कुछ बोलना भी जरूर चाहिये। मेरे ही जन्मदिन के उपलक्ष्य में भारत के ही नहीं, भारत के बाहर से भी जो हमारे इण्डियन भारतीय हैं, वे भी आये हुए हैं। इण्डियन भारतीय इस आशा में हैं, कि भारत गये, महाराजजी का दर्शन तो हुआ, पर उनका वचनामृत प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये एक–दो शब्द मुझे कहने होंगे।

सबसे प्रथम, जितने यहाँ महापुरुष पधारे हैं, मंडलेश्वर हैं, मैं उनका धन्यवाद करता हूँ। जैसा उनका स्वरूप है, उसके अनुरूप हमारी समिति सेवा नहीं कर सकती। अगर कोई भूल हो गई हो तो क्षमा करें। और यह भी कह दूँ कि आजकल जो नेता जाते हैं, तो इसलिये कि वहाँ से चंदा मिलेगा। हमारे मंडलेश्वर भी वहाँ जाते हैं कि लोग उनका सत्कार करें। यहाँ मेरी ओर से जैसा सत्कार होना चाहिये, वैसा सत्कार भी नहीं हो रहा। मंडलेश्वर की जो पूजा होनी चाहिये, वैसी पूजा भी नहीं हो सकती। पर एक बात जरूर है, ये सभी मंडलेश्वर मेरे साथ बहुत गहरा संबंध रखते हैं। कारण यह कि किसी का मैं विद्यागुरु हूँ, किसी का मैं दीक्षागुरु हूँ। किसी सम्प्रदाय के वयोवृद्ध गुरुदेव मेरे मित्र रहे हैं। एक तरह से जैसे भीष्म को पाण्डव–कौरव ही पिता नहीं कहा करते थे, सभी पितामह कहते थे। इसी तरह सभी सम्प्रदायों के मण्डलेश्वर मुझे भीष्म की तरह सम्मानित करते हैं। आज मंगलानन्दजी बोले। हमेशा वयोवृद्ध आदमी यही चाहता है कि अपने से जो कम उम्र के हैं, वे हमसे भी योग्य हों। आज मुझे पता चला कि मंगलानन्दजी में हमारे मित्र स्वामी विद्यानन्दजी की छटा, उनकी वक्तृत्वशक्ति कार्य कर रही है। बड़ा ओजस्वी भाषण था उनका। उनके भाषण ने सब लोगों में मंगल का वातावरण बना दिया है।

यहाँ लगभग ५५० जितने वेद और भागवत के विद्वान भी पधारे हैं। सब अलग अलग शास्त्रों के विद्वान हैं। इनमें एक हैं दर्शनों के, और व्याकरण के निष्णात कुलपति बद्रीनाथ शुक्लजी, मैं समझता हूँ कि कोई राजा महाराजा बुलवाता तो ये नहीं आते। राजा महाराजा क्या देगा? १०००–२००० रु. देगा। तो सबसे बड़ा उपहार है प्रेम! सबसे बड़ा धन

है प्रेम । भक्तों का प्रेम प्रभु को धराधाम पर बुला लाता है । मैं तो समझता हूँ कि मैं अकिञ्चन हूँ । जिसके पास कुछ न हो वह अकिञ्चन होता है । पैसा वैसे तो मेरी पॉकेट में रहता ही नहीं था । मैं जब विद्यार्थी था, बनारस में पढ़ता था । मेरे पास ट्रेन में जाने के लिये टिकट के पैसे नहीं होते थे । केवल स्टेशन से उतरकर टाँगों पर अपनी पाठशाला पहुँचता था । केवल चार आने हुआ करते थे । यह संत की दया है । घरवालों ने समझा कि यह काम का नहीं रहा । useless हो गया । परिवारवालों ने, आसपास के पड़ोसियों ने, नगर ने, प्रदेश ने सबने useless समझा । धन्य है गुरुदेव, जिनकी कृपा से useless व्यक्ति को केवल भारत के लिये ही नहीं, विश्व के लिये usefull बना दिया ।

जो काम किसी से न हो सके, वह सन्तों की कृपा किया करती है । सन्तों की कृपा क्या नहीं करती ? नाभा के राजा हीरासिंह एक जाट थे । बेचारे गाजर और मूली बेचा करते थे । एक अलखराम महाराज थे, जो बड़े सिद्ध पुरुष थे । उनके पास यह लड़का गया । वह युवक था । वे उसको हीरा कहा करते थे । यह अक्सर प्रार्थना किया करता था कि इस दुर्ग में एक लड़के का जन्म हुआ, वह महाराजा रणजीत सिंह-शेरे पंजाब, हो गया । मेरा जन्म भी इसी दुर्ग में हुआ, पर मैं इतना निर्धन गरीब हूँ, मुझे वह काम करना पड़ता है, जो एक साधारण साग—सब्जी बेचनेवाले किया करते हैं । सन्तों को आई मौज । तू क्या चिन्ता करता है । घर में जाओ, तुम्हारे लिये पत्र आ गया है, परवाना आ गया है । गवर्नमेन्ट ने लिखा है कि नाभा का कोई भी वारिस नहीं है । तुम्हीं सबसे समीप हो, तुम नाभा के राजा बना दिये गये । और हमारे डॉ. कर्णसिंह को पता भी नहीं होगा और इतिहास में यह बात आई भी नहीं होगी ।

एक बार महाराजा रणजीतसिंह के साथ ध्यानसिंह, और गुलाबसिंह अमृतसर में स्वामी प्रीतमदासजो के दर्शन करने गये । प्रीतमदास हमारे उदासीन अखाड़े के कर्णधार थे । उन्होंने उदासीन सम्प्रदाय को संगठित किया था । उनके साथ में एक दूसरे संत सन्तोषदास भी थे । यह दोनों की जोड़ी थी । प्रीतमदासजी ने महाराजा रणजीतसिंह से पूछा, 'यह ध्यानसिंह—गुलाबसिंह की जोड़ी कहाँ से आई ? ये सिक्ख तो नहीं है ।' रणजीतसिंह ने कहा, 'ये मेरे पास सर्विस करते हैं ।' प्रीतमदासजी ने कहा 'ये सेवक नहीं है, किन्तु राजा है राजा ।' और उसी दिनसे मानों उनका नाम राजा ध्यानसिंह और राजा गुलाबसिंह हो गया । सन्त की वाणी में कितना बल है ।

महाराजा रणजीतसिंह के साथ बाद में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संघर्ष हुआ, तब जम्मू—कश्मीर को भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने अधिकार में लेना चाहती थी । पर कम्पनी को भय था कि जम्मू—कश्मीर को अधिकार में लेना चाहेंगे, तो जिनमें रघु एवं राम के वंश का रक्त—संचार कर रहा है ऐसे—दोनों क्षत्रिय वीरों से

संग्राम ठान लेना पड़ेगा, तो पार नहीं पायेंगे । इस लिये कम्पनी के अधिकारियों ने सोचा और ध्यानसिंह तथा गुलाबसिंह के साथ मन्त्रणा की और कहा, 'लाहौर पर आक्रमण करने से हमारा जो खर्च हो गया है वह खर्च आप दे दें । जम्मू-कश्मीर का इलाका हम आपको दे देते हैं ।' यह तो मामूली बात थी । दोनों तैयार हो गये । और महाराजा रणजीतसिंह के सेवकों ने ईस्ट इण्डिया के द्वारा पंजाब के पददलित होने पर भी जम्मू-कश्मीर—जो उन दिनों में पंजाब का एक भाग था—उसकी रक्षा की । और यह सन्तों की शक्ति से सब सम्पन्न हुआ ।

मैं हरिद्वार जा रहा था । छोटा-सा बालक था, ११-१२ वर्ष की उम्र की भी। आँखों के न होने से मैं रास्ता भूल गया था । जहाँ मैं रास्ता भूल गया था, ठीक वहीं आजकल रामधाम बना है, मेरे गुरुदेव स्वामी रामानन्द की स्मृति में । मैंने कहा—"मैं रास्ता भूल गया हूँ । मुझे कोई मार्ग बतलाए ।" गुरुदेव आए, हाथ पकड़ा "बेटा रास्ता ही नहीं बताऊँगा, तुझे ब्रह्मकुण्ड तक तेरा हाथ पकड़ कर ले जाऊँगा ।" रास्ते में कहने लगे, "क्यों घबड़ाता है ? जो मार्ग को भूलेगा, उनको वेदों के द्वारा सच्चे मार्ग का प्रदर्शन किया जायेगा ।" मुझे कुछ विस्मय हुआ । "गुरुदेव मेरी आँखें नहीं हैं । आप मुझे कुछ तुलसी-रामायण वगैरह की चौपाइयाँ, कुछ सूरदास के पद याद करा दें । बगैर आँखों के संस्कृत भाषा, जिसे बड़े-बड़े विद्वान भी कहते हैं कि बड़ी कठिन है, मैं कैसे सीखूँगा ?"......पर है तो बड़ी सरल—मैंने दुनियाँ की कोई भाषा नहीं पढ़ी, न हिंदी, न इंग्लिश, केवल संस्कृत पढ़ी । जितनी शीघ्र संस्कृत सीख गया, उतना यत्न करने पर भी और कोई भाषा नहीं सीख पाया ।

मैं काशी में गया । मेरे एक मित्र थे । अन्त तक उनकी और हमारी अखण्ड मैत्री बनी रही । उनका नाम था स्वनामधन्य स्वामी असंगानन्दजी वेदान्ताचार्य । हरेराम आश्रम के संस्थापक थे आप । मेरा और उनका साथ ऐसा था, जैसे एक लड़का हो मैट्रिक में और दूसरा हो एम. ए. में । वे बड़ी अच्छी संस्कृत बोलते थे । बहुत गम्भीर भाषण करते थे । मेरे मन में इच्छा हुई कि गुरुदेव अथवा विश्वेश्वरनाथ की कृपा से क्या कभी वे दिन आयेंगे जब मैं भी इनकी तरह बोलने लगूँगा ? तो गुरुदेव ने पहले ही कहा था जो "लोगों का काम वर्षों में होता है, तेरा वह काम महिनों में होगा । लोगों का जो महीनों में होता है, वह तेरा काम दिनों में होगा । लोगों का जो काम दिनों में होगा, वह तेरा काम घण्टों में होगा ।" बाद में उस वेदान्ताचार्य महाराज ने, उस समय कुछ वेदान्त की पढ़ाई कम हो गई थी, तो खण्डनखण्डखाद्य की परीक्षा उन्होंने दी । वे कराची में मेरे साथ रहे और मेरे द्वारा ही उनकी ग्रन्थियों का—ग्रन्थ-ग्रन्थि यदक्वचित न्यासित मया विमोचन होता रहा । यह मैंने देखा सन्तों की वाणी व गुरु महिमा का प्रभाव ।

जो काम १२—१८ वर्षों में सीखा जाता है, वह काम मैं बनारस में ३ वर्ष रहकर सीखा। क्या दर्शन, क्या वेद, काव्य, व्याकरण, सारा संस्कृत साहित्य आत्मसात् हो गया। यह मेरा बुद्धि-बल नहीं, गुरुदेव की दया का प्रताप था।

और एक घटना बताऊँ। मैं लगा इंग्लिश सीखने। कैट, रैट लगा रटने। तो मुझे अपनी अंतराआत्मा ने रोक लिया। फिर कहा—'सन्त इसलिये बना है, विदेशी भाषा सीखता है? इसकी जगह गीता, विष्णु सहस्रनाम का पाठ किया जाय, तो कितनी पुण्योत्पत्ति है! क्यों विदेशी भाषा के पीछे अपना जीवन खराब करता है।' परन्तु फिर भी उस समय दिल में एक उमंग थी। उस समय के राजा—महाराजा, राजकुमार कालेजों में इंग्लिश पढ़ा करते थे। मेरी इच्छा थीं कि इन राजकुमारों को भारतीय संस्कृति के सच्चे भक्त बनाया जाय। दूसरी आकांक्षाएँ भी थीं, जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ ने भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रचार किया; मैं भी अपने जीवन में भारतीय संस्कृति का प्रचार कर भारतमाता का सच्चा बेटा बनूँ। गुरु महाराजजी कहने लगे—'बेटा, क्या करता है!' उन्हें इंग्लिश से बड़ी नफ़रत थी। कहते—'फेंक दे इस इंग्लिश के गीदड़ों को। फेंक दे इस डिक्शनरी को।' 'महाराज! किसी लोभ या लालच में तो नहीं कर रहा हूँ। मैं केवल भारतीय संस्कृति के प्रचार की लालसा से यह कर रहा हूँ।' उन्होंने कहा—लोगों ने इंग्लिश भाषा की सहायता से भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। तेरा काम बगैर इंग्लिश भाषा के हो जायेगा। और वह बात सत्य निकली। जामनगर के राजा दिग्विजयसिंह, इधर राजा नाहरसिंह, रणजीतसिंह, उनके पौत्ररत्न जयदीपसिंह, जो लोकसभा के आजकल सदस्य हैं। ये सब मेरे शिष्य हुए। गुरुदेव की कृपा से इन राजकुमारों में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने की सफलता मिली। जब जयदीपसिंह—प्रदीपसिंह का यज्ञोपवीत हो रहा था तो अनवरसिंह हँस पड़े। 'हम में यह शक्ति नहीं कि इन राजकुमारों को यज्ञोपवीत पहना सकें। यह आपकी ही शक्ति है कि इन राजकुमारों को ब्रह्मचारी वेश में बदल दिया।'

विदेश में गए। कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी में गए। बोस्टन में गए। कोलम्बो यूनिवर्सिटी, एक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में गए। वेदों की स्थापना हुई। और अगर मैं इंग्लिश भी सीख लेता तो शायद मेरी इतनी Higher English न होती। जब डॉ. कर्णसिंह जैसे प्रौढ़ विद्वान मेरे साथ हों, तो बतलाओ मुझे इंग्लिश की क्या जरूरत पड़े? जहाँ मैं उतरता, वहाँ एक ही नहीं, अपने भारतीय परिवार के सैकड़ों ही इंग्लिश के चोटी के विद्वान मेरे साथ रहा करते थे। हमारे एक वयोवृद्ध हैं आप्टेजी—जिनका पूरा नाम शिवराम आप्टे है। वे मेरे साथ थे।

उन्होंने अपना जीवन भारतीय संस्कृति में लगा दिया। उनकी इंग्लिश इतनी सुन्दर थी कि वहाँ के लोग मुग्ध हो जाते थे कि ये भारतीय इतनी सुन्दर इंग्लिश बोलते हैं। खैर यह तो भारतीयों की इतनी बड़ी बात नहीं। पहले भी यह ख्याति थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर बोला करते थे। राधाकृष्णन् बोला करते तो दाँतों तले अँगुली दबाकर कहते—'जन्म हमने विदेश में लिया, पर हमारी भाषा पर राधाकृष्णन या रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसा हमारा अधिकार नहीं। इंग्लिश का स्वरूप ही बदल दिया।

इसी तरह मैं मंडल के साथ अफ्रीका भी गया। नैरोबी गया। जमैका, पोर्ट ऑफ स्पेन भी गया। जार्ज टाऊन भी गया। उस समय स्वर्णसिंह विदेशमंत्री थे। यशवंतराय चौहान, जो महाराष्ट्र के रत्न हैं, हमारे डॉ. कर्णसिंह के बड़े समीपवर्ती हैं, उन्होंने दूतावास को लिख दिया—'हमारे सन्त वेद का संदेश लेकर आये हैं। वे आर्थिक दृष्टि से सहायता नहीं चाहते। आर्थिक सहायता के लिए बहुत सिंधी परिवार हैं। लेकिन आप उत्साहपूर्वक जितना इस संत का सन्मान कर सको, उतनी हमें प्रसन्नता होगी। और ऐसा ही हुआ। रमेश भण्डारी थाईलैण्ड में थे। दिन में भी आ जाते। फंक्शन में भी आ जाते। हमने स्थान--स्थान पर एक बात पर सविशेष जोर दिया। वेद विश्व का धर्मग्रन्थ है। उसमें विश्वकल्याण की भावना है। विश्व का संविधान चाहे तो वेद में मिल जायेगा। विश्व के प्रत्येक मानव को परस्पर मिलकर रहने का सन्देश वेद देता है। हमारे वेद में विश्व के समस्त मानव परिवार के लिये एक ही सन्देश है कि सब एक हो। परस्पर प्रेम और सद्भाव से रहो। न धर्म परिवर्तन की आवश्यकता है, न अन्य धर्मी के संहार की। धर्म के नाम युद्ध करना, कतल करना, एक दूसरे का संहार करना यह उचित नहीं है। वेद का धर्म तो यह सिखलाता है कि तुम मानवता के पुजारी बनो। हमारे वेद में यह जोरपूर्वक कहा है कि '**मनुर्भव** ।—मानव बनो' अरे मुमुक्षु बनो या न बनो। अरे तपस्वी बनो या न बनो। कम से कम मानव तो बन जाओ। मानवता की शर्त है विश्वव्यापी प्रेम करो।

प्रियं मा कृष्णु देवेषु प्रियं राजासु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उत आर्ये॥

—अ. वे. १–६२–१

शिक्षकदल को ब्राह्मण कोटि में रखा जाता है। रक्षक दल को क्षत्रिय कोटि में, वाणिज्यदल को वैश्य कोटि में, सेवकदल को शूद्र कोटि में। यह हमारी वर्णव्यवस्था

प. पू गुरुदेव को माल्यार्पण करते हुए पूज्य डोंगरेजी महाराज, साथ में सर्वश्री स्वामी भास्करानन्दजी, स्वामी गोविन्दानन्दजी एवं स्वामी अर्चिकानन्दजी

म. मं. अनन्तश्रीविभूषित सकल शास्त्र निष्णात स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज, पू. गुरुदेवका अभिनन्दन करते हुए, साथमें गंगेश्वर मीशनके मंत्री श्री स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज

महामण्डलेश्वर स्वामी श्री पूर्णानन्दजी महाराज, श्रीकृष्णनिवास, कनखल हरद्वार, एवं प. पू. सद्गुरुदेव

भारत साधु समाज के अध्यक्ष एवं गुरुमण्डलाधीश म. मं. स्वामी श्री रामस्वरुपजी महाराज तथा प. पू. स्वामी अखंडानन्दजी महाराज

है । चाहे लोग माने न माने । पर यह जादू है । जिस वर्णव्यवस्था के बिना काम नहीं हो सकता । अच्छा रक्षक सेना को हटा दो ! शिक्षक निकाल दो । धनी को निकाल दो । सेवकों को निकाल दो । क्या तुम्हारा समाज चल सकेगा ? मैं सबका प्रेमी हूँ । चाहे वह व्यापारी हो, चाहे रक्षक हो, चाहे शिक्षक हो या सेवक हो । अधिक क्या, सर्वस्य पश्यतः । प्राणीवर्ग का प्रेमी बनूँ । हे प्रभु मैं आपकी उपासना से और कुछ नहीं चाहता । हे प्रभु मेरे द्वारा विश्व के किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचे । सारा विश्व परस्पर प्यार करे ।

तुलसी इस संसार में सबसे मिलियो धाय ।
ना जाने किस भेष में नारायण मिल जाय ।

यह हमारी भारतीय संस्कृति है । एक बार मुझसे युरोप में लोगों ने प्रश्न किया । धर्मग्रंथ तो सबके हैं, आपके धर्मग्रन्थ में क्या विशेषता है ? यह प्रश्न किया था इटली में एक क्रिश्चियन भाई ने । ईश्वर का भजन करो । ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा । ये धार्मिक बातें तो प्रत्येक धर्मग्रन्थ में मिलेंगी । देश की रक्षा के लिये किस तरह संगठन हो ? लोकसभा, राजसभा, मंत्रीमण्डल, ये शासन के तीन प्रकार हैं । ब्रह्माण्ड शासन, पिण्ड शासन, समाज शासन । ब्रह्माण्ड शासन तो प्रभु की ओर से चल रहा है। उसीका अनुकरण पिण्ड शासन में है । उसीका अनुकरण इस समाज शासन में है। जिसको आजकल हम लोग लोकतंत्र शासन कहते हैं। पर वह लोकतंत्र कैसे हो ? संगठन कैसे दृढ़ हो, उसके १२ साधन हैं । इंडोनेशिया में adviser T. V. President सुजानु जो देशभक्ति के बड़े उपासक हैं, जब मैं उनके पास से विदा हुआ, महमूद अहमद राजदूत मेरे साथ थे । तब प्रेसिडेन्ट कहने लगे—महाराज अब इस कमरे में आपकी मुलाकात हुआ करेगी—मैंने कहा, "यह क्या बात है ?" उसका मतलब था, कमरे में बैठकर साधना करूँगा, ध्यान करूँगा । ध्यानराज्य में मुझे आपके दर्शन हुआ करेंगे । उसने पूछा कि देश को कैसे ऊँचा उठाया जाये ? ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १९१ अन्त के तीन मंत्र है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति ॥

ऋ. वे. १०-१९१-२, ३, ४

ये बड़े प्रसिद्ध मंत्र हैं। इन तीनों मंत्रों से यथा वः सुसहासति। जिससे तुम्हारा साहित्य संगठन हो। अच्छी तरह दृढ हो। उसके १२ साधन हैं उसे President को समझाया। उसका अनुवाद करते थे महमूद। उनमें बड़ी राष्ट्रभक्ति देशभक्ति देखी। वेदभक्ति देखी। जब मैं जाने वाला था। वहाँ हमारे सिंधी व्यापारियों ने इंडोनेशिया सरकार पर बड़ा अधिकार कर रखा था, आत्मसात् कर रखा था। इचार हमारे एम्बेडर थे। मुक्तिअली थे रिलीजियस–मंत्री। मैं हँसता था आपका नाम ही हिंदू–मुस्लिम एकता बतला रहा है। इंडोनेशिया सरकार व भारतीय सरकार दोनों की ओर से guard of honour द्वारा हमारा सत्कार किया। हमारे वेद भगवान एरोड्राम पर उतरे। मेरा ख्याल है यदि मैं इण्डिया में भी वेद भगवान को लेकर उतरूँ, तो हमारी परम परम वेद भक्त सरकार भी guard of honour नहीं देगी। मैं तो एक दिवाना-सा हूँ। तो बोलता ही नहीं। बोलता हूँ तो कुछ जानता नहीं, मेरे मुख से क्या निकला। गुरुदेव मेरे अंगसंग रहकर मेरे टूटे–फूटे वाक्यों की योजना बनाते हैं। लम्बा–चौड़ा विषय है। विश्व-मूर्ति की विश्वयात्रा ! द्वितीय खंड। उसमें ये सब बातें विस्तार से लिखी हैं। विश्वयात्रा में मुझे बड़ा आनंद आया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जहाँ Hindu ambassador थे, उन्होंने कम सहयोग दिया; मुस्लिम बन्धुओं ने अधिक सहयोग दिया। महमूद अहमद इण्डोनेशिया में थे। उन्होंने तिरंगा झंडा लगाया। समझो वे मोटर के ड्राईवर थे। पहचाने नहीं जा सकते कि मुस्लिम हैं या हिन्दू। सबसे उत्तम Port of Spain जिसे त्रिनिदाद कहते हैं। वहाँ मैं गया। युनिवर्सिटी के पुस्तकालय में वेद भगवान की स्थापना हो रही थी। मैंने कहा, "यह वेद भगवान मैं आपको gift दे रहा हूँ। हमारे वेदों का सिद्धान्त है। **मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे**। हम मित्र की दृष्टि से सबको देखें। भाई कोई समझे या न समझे हम तो प्रत्येक राष्ट्र को अपना मित्र समझते हैं। जब मित्र से मिला जाय तो कोई gift देनी चाहिए। घड़ी, पैन वगैरह तो वर्ष भर में नष्ट हो जाते हैं। हम तो आपको वह gift देने आये हैं, जिसके द्वारा बन्धुता, विश्वव्यापी प्रेम का संदेश पढ़कर सारा राष्ट्र एक हो जाय और कलह का अन्त हो जाय। वह gift भगवान वेद हैं। जो मैं आपको दे रहा हूँ। पर इसको देंगे हमारे भारत के प्रतिनिधि ये ambassador, जिनका नाम था बरकत अहमद। कहने लगे मैं संस्कृति मंत्री नहीं हूँ। आप भारत के प्रतिनिधि तो हैं। उन्होंने अपने हाथ में भगवान वेद लिया। कहने लगे आज पता चला हिंदू धर्म में कितनी उदारता है। जो भेंट दे रहा है वह मुस्लिम है। जिसको भेंट दे रहा है वह क्रिश्चयन है। धर्म पुस्तक हिंदुओं की है। वाह हिंदूधर्म तेरी उदारता ! सच्चे राष्ट्रभक्त बरकत अहमद कहने लगे : 'आप इटली तो गए होंगे ?" हाँ गया तो था। यूनिवर्सिटी

में पोप पुस्तकालय में मैंने वेद की स्थापना की। उन्होंने बाइबिल भेंट की। उसमें new व old Testament दोनों संग्रहीत हैं। वो बोले आपको नहीं मालूम होगा। जब old व new संग्रहीत किया गया तो कई मौतें हो गई। संघर्ष हुए और आपने इतने बड़े वेद ग्रंथ को संग्रहीत किया। पैसे की माँग नहीं की। भारत का मस्तक ऊँचा कर दिया। बगैर रूपये व संघर्ष के आप अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। एक बात मैं कहूँगा। काशी में चाहे बुद्ध गये, महावीर गये, आर्य समाज के दयानंद गए। काशी की मंडली उनके प्रतिपक्ष हो जाती। कबीर से भी झगड़ा रहा। जब मैं काशी में गया, काशी का कोई ऐसा विद्वान नहीं जिसने मुझसे प्रेम नहीं किया। सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बद्रीनाथ शुक्ल आज आये हुए हैं। मैं यह कहने में संकोच अनुभव नहीं करता। काशी में जैसे शिवकुमार थे उनके पीछे जैसे बाल सह्याद्रि उनके गुरु पहिले थे। इस तरह के हमारे ये विद्वान बद्रीनाथ शुक्ल हैं। इनके दर्शन आपने कल किये होंगे। आप भी शायद रंगमंच पर होंगे। उन्होंने योजना बनाई। तीन लेक्चर मैंने वेदों पर संस्कृत में किये। मुझे डर था कहीं गलती न हो जाए, शायद बोल भी न सकूँ। बरसों से अभ्यास छोड़ दिया है। पर विश्वनाथ भगवान की ऐसी कृपा हुई। वेद का मेरे पर ऐसा वात्सल्य था। वेद भगवान की कृपा से मैंने तीन लेक्चर किये। वहाँ के प्रसिद्ध पंडित थे देहरीरामजी। बड़े त्यागमूर्ति और उच्चकोटि के विद्वान। कहने लगे: 'स्वामीजी, हमने व्याकरण पर शब्देन्दुशेखर, प्रभा शेखर के परिष्कार पढ़े और हमने न्यायशास्त्र में गोलों की विवेचना, बलदेव की विवेचना, ये सब करारपत्र पढ़े। पर वेदों पर तो करारपत्र आपने ही बनाया। उनका कहना था कि वेदों पर आपके भाषण नहीं, ये तो एक प्रकार के वेदों के करारपत्र हैं। अब अगर कुछ समय रहेगा तो इन करारपत्रों को स्मरण करके वेदों पर भी जैसे विवेचनी परिष्कार पढ़ाया करते हैं, व्याकरण, न्याय पर इन करारपत्रों को पढ़ाया करेंगे। किसी ने जरा भी विरोध नहीं किया। मैं यह समझता हूँ जो मेरी धारणा है। वेदों में **मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। प्रियं सर्वस्य पश्यत। रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नः कृधि। रुचं सर्वेषु शूद्रेषु** । (यजुर्वेद अध्याय १८ मंत्र ४८) इत्यादि। अब अन्तरात्मा से आवाज आती है कि वेद के दिवाने, चुप कर, बूढ़े थक जायेगा।

देखा समय कर गया इन्कार। समस्त मंडलेश्वर के चरणों में करता हूँ नमस्कार। देखो, आशीर्वाद के द्वारा अपने प्यारे डॉ. कर्णसिंह को जो मेरी शिष्या माता तारा का लड़का है, उसका करता हूँ सत्कार।"

अन्त में श्री स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज ने आभार प्रवचन किया और योग संमेलन सुचारूरूप से सम्पन्न हुआ।

स्वागत समारोह

ता. १३ जनवरी को सायंकाल स्वागत समारोह का आयोजन था, ६ बजे से ९ तक क्रम चला। पहले आधे घण्टे के कीर्तन के बाद वाराणसी के श्री पंडित विश्वनाथदेव ने वैदिक मंगलाचरण किया। स्वागत अध्यक्ष श्री मुरलीधर आसवानी तथा श्री हरिभाई ड्रेसवाले थे। स्टेज मन्त्री, श्री गोविन्दराम सेउमल ने, अपनी सुन्दर भावपूर्ण शैली में आपका परिचय दिया। इस स्वागत समारोह का मङ्गल उद्‌घाटन, म. मं. श्री स्वामी ब्रह्महरिजी पुराणभास्कर, कनखल की चेतनदेव कुटिया के महन्तजी के करकमलों से हुआ। करीब सत्तर साल से आप जनता–जनार्दन के कल्याणार्थ समग्र भारत में भ्रमण कर, सनातन धर्म एवं आर्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते आये हैं, इतना ही नहीं, **भगवान् वेद** ग्रंथ का अनूठा प्रकाशन कर, विदेशों में भी भारत की सनातन–संस्कृति–साहित्य का विस्तृत दर्शन कराया है, जो आज तक कोई भी महापुरुष ने नहीं किया है। भारत की विभिन्न संस्थाओं के साथ आपका अति पुराना सम्बन्ध है। इस सुअवसर पर, इन संस्थाओं ने आपको माल्यार्पण कर अपनी दीर्घकालीन सद्‌भावना प्रकट की। पश्चात् हमारे अति श्रद्धेय, वंदनीय स्वामी श्री अखंडानन्दजी सरस्वती ने आपके दिव्य–जीवन की झाँकी, अति भाव–सम्मानपूर्ण शब्दों में अंकित की।

स्वामीश्री अखंडानन्दजी का प्रवचन—

जीवेम शरदः शतम्। हम सौ वर्ष तक जीयें। वहाँ उस अवधि को पूरा करके सचमुच शत शब्द का जो अर्थ है अनन्तता। संख्या स्वार्थे अनन्तत्वं च··· कोई भी गिनती अपने को तो बताती है। ···और ऐसे जो दीर्घायु पुरुष हैं उनको शताब्दी मनाने का हमारे जीवन में बार–बार अवसर प्राप्त हो। माने हम भी जीयें। इसका मतलब है कि वे तो जीयें, इनके आशीर्वाद से हम लोग भी बार–बार ऐसे ऐसे उत्सव मनाते रहें। ये जो महात्मा लोग हैं यहाँ बैठे हुए। ये भगवान के रूप हैं और श्रीमद्‌भागवत का हम प्रारम्भ करते हुए मंगलाचरण करते हैं। पाँच मिनट में आपको महात्म्य के मंगलाचरण का अर्थ सुनाता हूँ।

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥

भगवान सच्चिदानंद रूप हैं, इसका अर्थ है हमारे जीवन में जो सत् है, ज्ञान है, आनंद है उसके मूल हैं स्वयं भगवान। हमारे जीवन के लिए, सत्ता के लिए, जीने के लिए हमें भगवान चाहिए। जैसे भोजन के लिए अन्न चाहिए। पहिनने के लिए वस्त्र चाहिए। रहने के लिए घर चाहिए। रोगनिवृत्ति के लिए औषध

चाहिए। ये सब श्रीकृष्ण की सत्ता से ही हमें प्राप्त होता हैं। ये संत लोग वही देने के लिये इकट्ठा होते हैं। भगवान स्वयं चिद्स्वरूप है। सच्चिदानंदरूपाय वो ज्ञानस्वरूप हैं उनके लिए हमें अर्थविद्या चाहिए। धर्मविद्या चाहिए। कामविद्या चाहिए। मोक्षविद्या चाहिए। धन रहता है बाहर, कामना रहती है मन में। धर्म कहता है —'**विज्ञानं यज्ञं तनुते**' विज्ञानमय में। और नारायण उसके भी बाद मोक्षरूप आत्मा ज्ञानस्वरूप है। भगवान हमारे जीवन में अपनी सत्ता दें। लौकिक पारलौकिक और पारमार्थिक सुख के रूप में। भगवान हमें अपना ज्ञान दें। वेद के रूप में, शास्त्र के रूप में, विद्यालय के रूप में, वाचनालय के रूप में। ये सारे लौकिक कल्याण भगवद् सत्ता से ही प्राप्त होते हैं। भगवान की सत्ता हमारे जीवन में प्रगट हो। भगवान की चेतनता हमारे जीवन में प्रगट हो। आनन्द के एक मात्र उद्गम स्रोत है भगवान श्रीकृष्ण। **आनन्दं आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानात्। रसो वै सः। विज्ञानं आनन्दं ब्रह्म।** अभी आपने सुना ही। **आनन्दादेव खलु इमानि भूतानि जायन्ते।** वे आनन्द स्वरूप भगवान हमें संसार के बंधनों से मुक्त रखें। हमारी जो आवश्यकताएँ हैं उन्हें धर्म के अनुसार पूरी करें। कामनाएँ भी धर्म के अनुसार पूरी करें। संविधान वेद माने अलौकिक संविधान और उसके कानून हैं, संविधान हैं उसकी जो धाराएँ हैं वे, जो हमारी वासनाओं को नियंत्रित करने के लिए हैं। भगवान हमको आनन्द दें। आनंद के साथ साथ भगवान श्रीकृष्ण की विशेषता आपको ध्यान में होगी। उनके जीवन में केवल लौकिक या पारलौकिक आनन्द ही नहीं है। उनके जीवन में संगीत है। उनके जीवन में वाद्य है। उनके जीवन में नृत्य है। उनके जोवन में अभिनय है। उनके जीवन में राज्यों का उत्थान और पतन है। विश्व उत्पत्यादि हेतवे वे निर्माता हैं, वे निर्माण करते हैं। वे पोषक हैं पुष्ट करते हैं। जिनका संहार करना होता है—दोष दुर्गुणों का—उनका संहार भी करते हैं। एक बात पर ध्यान देना। पापत्रय विनाशायी पाप होता है दूसरा, और ताप होता है दूसरा। पाप करने से ताप होता है। पाप माने जिससे अपनी रक्षा न हो। पा धातु से अपादान अर्थ में प प्रत्यय होकर पाप शब्द बनता है। जो हमारी रक्षा के विरुद्ध है। दूसरों की रक्षा के विरुद्ध हो, हमारे लिए अहितकारी हो दूसरों के लिए भी अहित करती है। उसकी निवृत्ति करना तो भगवान का काम ही है। लेकिन उस पाप का जो ताप आ गया है, उस ताप को दुःख को अर्थात् प्रारब्ध को नष्ट करनेवाले हैं भगवान श्रीकृष्ण। वे केवल पाप कर्मों के ही निवर्तक नहीं, लेकिन किए हुए पापों का जो फल दुःख के रूप में, शोक के रूप में, भय के रूप में हमारे जीवन में आ रहा है उससे वे निवृत्त करनेवाले हैं। ऐसे भगवान श्रीकृष्ण को हम सिर झुकाते हैं। सिर झुकाने का अर्थ है कि उनमें जो सद्भाव है, चिद्भाव है,

आनन्दभाव है, उनमें जो प्रारब्धनाशक शक्ति है, वह हमारे जीवन में आवे और हम अपने अहंकार को झुकाकर, बिना किसी भेदभाव के संकीर्णता का परित्याग करके ये भिन्न–भिन्न मजहब, ये भिन्न–भिन्न फिरके, ये भिन्न–भिन्न प्रान्तीयताएँ, राष्ट्रीयता, भाषावाद, ये सब पार्टीबन्दियों, राजनीति, ये सब लोगों के अकल्याण में, उनके अन्दर भय उत्पन्न करने में संलग्न हैं उनका निवारण होकर भगवद्भाव का, श्रीकृष्णभाव का हमारे जीवन में प्रागट्य हो, इसके लिए इन सब महात्माओं की उपस्थिति आज दूसरे लोग मिशनरी के रूप में अपने–अपने मजहब, सम्प्रदाय धर्म के रूप में प्रचार कर रहे हैं। हम लोग इस अलगाव को अभी नहीं छोड़ेंगे तो उनके सामने हम अपने धर्म की, संस्कृति की रक्षा नहीं कर पावेंगे। इसलिए हम लोगों को चाहे किसी आचार्य के अनुयायी हों, किसी शास्त्र को मानते हों, चाहे किसी भी प्रक्रिया से ईश्वर की उपासना करते हों। हम सब लोगों को मिलकर ऐसे ढंग से काम करना चाहिए कि वर्तमान परिस्थिति में उपयोगी हो। आगे हो हमारे १५ वर्ष, २० वर्ष, २५ वर्ष बाद जो बालक तैयार हों उनके जीवन का निर्माण हो। हम केवल पीछे ही पीछे न देखें, आगे भी देखें कि भविष्य में होनेवाला क्या है? तो साधुओं की सम्मति पर जो साधुओं का संघात साधुमण्डल इकट्ठा है, गृहस्थ लोग साधुओं के अनुयायी हैं, साधुओं के प्रेमी हैं, वे भी इकट्ठा हैं। सबके हृदय में ये शुभ संकल्प हों और यह वेद का पारायण, यह श्रीमद्भागवत का पारायण, ये सन्तों का महोत्सव, यह महायोग केवल हमलोगों के लिए नहीं, संपूर्ण विश्व के लिए कल्याणकारी हो। हम एक जाति के लिए, प्रान्त के लिए, एक भाषा के लिए, यहाँ तक एक राष्ट्र के लिए भी नहीं समग्र मानवता, विश्व की समग्र मानवता के कल्याण के लिए ऐसे आयोजन करते हैं और इनका फल दृश्य–अदृश्य के रूप में संपूर्ण विश्व को मिलता है। भगवान करें ये आयोजन अभी तो हों ही और आगे भी इस प्रकार का आयोजन हो और लोगों को कल्याण-मार्ग में संचालित करें। महाराजजी के चरणों में, ये तो हमारे पिता हैं, हमारे गुरु हैं, इनके उत्सव की अध्यक्षता हमारे लिए क्या? हम तो इनकी आज्ञा का पालन करने के लिए यहाँ आए हैं। और डोंगरेजी के आग्रह से क्योंकि वे हमसे बहुत प्रेम करते हैं, १५–२० वर्ष से तो उनके आग्रह से यहाँ आया हूँ।

स्वामी श्री अखंडानन्दजी महाराज पू. गुरुदेव को तो अपने गुरु ही मानते आये हैं। एवं मैं देखती हूँ कि वर्षों से अपने जन्मदिन पर आपको प्रणाम करने आते हैं। स्वयं ज्ञानमूर्ति होने पर भी उनकी नम्रता एवं वाक् माधुरी सबके लिये अनुकरणीय है। पश्चात् गुरुदेव के प्रेमी संतों एवं भक्तों ने भी, अपनी अपनी श्रद्धा–भावना एवं कृतज्ञता प्रकट की। समुद्र के तरंगें मस्ती में

आकर जैसे एक दूसरी के ऊपर से उल्लंघन कर आगे बढ़ती है, यही आंतरिक स्थिति भक्त-हृदय भावों की होती है। परंतु स्तोता असंख्य और समय को अल्पता के कारण विवश थे। कौन ऐसा होगा जो अपने प्रेमास्पद के गले में, प्रेम का पुष्पहार पहना कर प्रसन्न नहीं हो ! अपितु इस पूर्व क्रम को भी बरबस स्थगित करना पड़ा आपकी वृद्धावस्था के कारण। रात को साढ़े आठ बजे, महाराष्ट्र के प्रशासन मंत्री, माननीय श्री बाबूराव काले ने अध्यक्षपद से भाषण किया। अंत में आपके श्रीमुख से आशीर्वचन सुनने के लिये उत्सुक जनता को, आपने अपनी सुमधुर, कृपामृत निर्झरिणी में आप्लावित कर, असीम आनंद प्रदान किया। आप तो प्रभु ! साक्षात् वेद-वीणावादिनी माता सरस्वती हो; या सूर्य-चंद्र नक्षत्रादि को प्रकाशित करनेवाले पूर्ण परात्पर ब्रह्म ! एक निश्चय हमें अवश्य है कि आप वेदों के संपूर्ण ज्ञाता हैं। महाभारत में यह कहा है—

सर्वे विदुर्वेदविदो वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
वेदे निष्ठा ही सर्वस्य यद् यदस्ति च नास्ति च॥

(म. भा. शा. २७०-४३)

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

(म. भा. १२-२३३-२४)

अर्थात् वेदों का ज्ञाता सब कुछ जानते हैं, क्योंकि वेद में सब कुछ प्रतिष्ठित है। जो ज्ञातव्य अर्थ अन्यत्र है या नहीं है, उस साध्य साधनादि समस्त वर्णनीय अर्थों को निष्ठा वेदों में है। अतः वेदवाणी दिव्य है, नित्य है एवं आदि अंत रहित है। सृष्टि के आदि में स्वयंभू परमेश्वर द्वारा उसका प्रादुर्भाव हुआ है तथा उसके द्वारा धर्म, भक्ति आदि की समस्त प्रवृत्तियाँ सिद्ध हो रही हैं। इसलिये **वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम।** कहकर हमारे पूज्य महर्षियों ने वेदों की अपार महिमा अभिव्यक्त की है। उसी बल पर हम आपके स्वरूप को पहचानते हैं।

प्रभु के आशीर्वाद

स्वागत समारोह में आशीर्वाद देते हुए प्रभु ने कहा कि—

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥

उपस्थित भगवद्भक्त भाइयों और माताओं वह शताब्दी महोत्सव बम्बई की ही नहीं, भारत को समस्त जनता की ओर से मनायो जाय। क्या कलकत्ता, क्या मद्रास, बैंगलोर, देहली, अमृतसर, लुधियाना, सब नगरों के कहाँ तक नाम लें ? सब नगरों

के प्रतिनिधि गुरुबंधु उपस्थित हुए हैं। मुझे आज ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे वयोवृद्ध प्रियशिष्य गुरु सहायी सहगलजी की भावना थी कि गुरुभाइयों का संमेलन किया जाये। उनका यह स्वप्न साकार हो गया। इस उत्सव को सफल बनाने में डोंगरेजी भी किसी से पीछे नहीं। उन्होंने अपने श्रीमद्भागवद्सप्ताह के द्वारा बम्बई की जनता को भागवतकथा के प्याले भर भर के पिलाये। मैं एक बात और कह दूँ, इस शताब्दी की यह विशेषता है कि यहै शताब्दी महोत्सव किसी भी एक पार्टी का नहीं। जैसे लोकसभा में सभी पार्टी के सदस्य होते हैं यह एक ही पार्टी के नहीं। यह भी फकीरों का हैं। सज्जनो, कांग्रेस आई के सदस्य और अर्स के सदस्य, हमारे कालेजी कांग्रेस आई के सदस्य हैं। डा. कर्णसिंह कांग्रेस अर्स के हैं। सदाजीवितजी हिंदू विश्व परिषद के कर्णधार हैं। बहुगुणाजी भी किसी पार्टी के हैं, मैं उनकी पार्टी का नाम नहीं जानता। जैसे लोकसभा में कोई एतराज नहीं, किसी पार्टी का सदस्य आ सकता है। हमारी फकीरिया पार्टी में किसी को भी एतराज नहीं। रुकावट नहीं। किसी पार्टी का भी आकर इस स्टेज पर अपनी विचारधारा को प्रकट कर सकता है। काम यह बड़ा कठिन नजर आ रहा था। आर्यसमाजी भाइयों ने शताब्दी मनाने का निश्चय किया। सनातन धर्मी होते हुए भी उस शताब्दी का उद्घाटन मुझे करना पड़ा। प्रतापशूरजी वल्लभजी भाई थे। मैं तो संत हूँ। संत तो सभी के हैं। सन्त सनातनधर्म के भी और आर्यसमाज के भी। वसुधैव कुटुम्बकम्। क्या एशिया, क्या अफ्रिका, योरोप, अमेरिका, क्या आस्ट्रेलिया। यह पृथ्वी पाँच खण्डों में विभक्त है, इसलिए वेद में कहा पंचजनाः। पांच प्रान्त के लिए। ५ भाग में विभक्त यह पृथ्वी—उसके मनुष्यो, मेरे आह्वान को सुनो। मेरी सभा में भाग लो। यह काम तो बड़ा कठिन था। इसमें बम्बई की सब संस्थाओं ने पूरा सहयोग दिया। हमारी साधुबेला के महन्त गणेशदासजी मिलने आए। स्वामी हरिनामदासजी की शताब्दी मैंने भी, अपने चिरन्तन श्रद्धेय परम मित्र जिनके साथ मनायीथी। उनसे मेरा विचारैक्य था, उदासीन संप्रदाय को ऊँचा उठाने के लिए जैसे स्वामी हरिनामदासजी महाराज यत्न करते थे वैसे मैं भी उनका साथी था। हमारा ट्रिब्यूनल था। देहरादून महन्त लक्ष्मणदास थे। साधुबेला महन्त हरिनामदासजी और तीसरा मैं था, उनका चरणसेवक। ये दोनों तो चल दिए। यह भी ख्याल नहीं किया कि गंगेश्वर को अकेला छोड़कर क्यों जा रहे हैं? पर चिन्ता की बात नहीं भगवान की इच्छा थी। मैंने पढ़ा पढ़ाया। सनातन धर्म का प्रचार किया। आश्रमों का निर्माण किया। दुर्ग्याना कमेटी सरोवर में एक नूतन नहर का निर्माण किया, पर वेद भगवान की इच्छा थी मेरी सेवा तो तूने की नहीं, जो मानवमात्र का कर्तव्य है। योरोप के मैक्समूलर, अमेरिका के बड़े-बड़े प्रोफेसर वेद की सेवा करते हैं। तूने भारतीय होते हुए वेद पर कुछ कार्य नहीं किया। मैं

भी चला जाता, पर **वेद भगवान** ने मुझे जाने नहीं दिया। साधुबेला के महन्त गणेशदासजी का सहयोग बड़ा प्रशंसनीय है । आर्यसमाजी शताब्दी प्रबन्धकों को भी बड़ी चिन्ता थी। महाराज बम्बई में स्थान का अभाव है। उन्होंने कहा कि जो बाहर से इतने सदस्य आयेंगे, उनको ठहराया कहाँ जाये ? गणेशदासजी कहते थे। महाराज १०० संतों को तो साधुबेला में मैं ठहराऊँगा और कहा, नहीं उनका प्रबन्ध भी कर दिया । उपर शामियाना लगा दिया । गोदले बिछा दिए। पलंग लगा दिए और बहुत से अतिथि वहीं विराज रहे हैं । इसी तरह वरली दरबार। श्रीचन्द्र मंदिर वाले महाराज दरबार । पंच परमेश्वर ठहरा हुआ है । १०० से अधिक निर्वाण महापुरुष हैं। मैंने कहा—'वहाँ ठहरेंगे।' श्यामसुन्दर लल्लूभाई कहने लगे। हमारा दरवाजा तो सबके लिए खुला है। चाहे दो सौ आये, चाहे चार सौ आयें। और मारवाडी समाज को धन्यवाद है। जो मारवाड़ी वाड़ियाँ केवल मारवाडी को ही दिया करते हैं, दूसरों को नहीं । राधेश्यामजी पोद्दार-इनके सहयोग से सब की सब वाडियाँ इन्होंने इस उत्सव के लिये बुक कर लीं। एक सज्जन गए वाड़ियाँ बुक करवाने। कहते हैं—'महाराज मैं वाडी को क्या बुक कराऊँ ? जिस जगह पहुँचूँ कहते हैं, यह वाड़ी स्वामी गंगेश्वरानंदजी के लिए बुक हो चुकी । मारवाड़ी समाज को भी धन्यवाद है, पंजाबी समाज तो मेरे साथ रहा ही करता है। इस शरीर का जन्म पंजाब प्रदेश में ही हुआ है। अधिक सिंध व गुजरात । क्या दक्षिण भारत क्या उत्तर भारत । दोनों भारत के यहाँ सदस्य उपस्थित हैं। केवल यही नहीं, जो हमारे इण्डियन व्यापारी दक्षिण पूर्व एशिया, इस्ट साउथ एशिया, सिंगापुर, हाँगकांग, इन्डोनेशिया, मलेशिया, बालोद्वीप, जापान, अमेरिका, आफ्रिका, लंडन, क्या अधिक, जो सबका नाम लें। जो विदेश में रह रहे हैं। उन सज्जनों को धन्यवाद है। बड़ी दूर से वे इसमें भाग लेने आये और सच पूछा जाये इसकी सफलता में जो आर्थिक सहायता है वे विदेशी सज्जन अधिक कर रहे हैं। बड़ा उत्साह बतला रहे हैं। और महाजन धाम ने भी ऐसा ही कहा—महाराज जितना चाहो मेरे यहाँ ठहराओ। एक सिंधी धर्मशाला है खार में। उसने भी ऐसा ही वचन दिया है । मैं समझता हूँ हमारे पास बम्बई की भिन्न-भिन्न जनता की उदारता के कारण इतना स्थान हो गया कि दस हजार आदमी भी आ जायें तो हम ठहरा सकते हैं। अच्छा अब अधिक कुछ कहने का नहीं। भाई, एक परिवार यहाँ विशिष्ट है चयनराय उत्तमचन्द परिवार। जब मैं वेद स्थापना के लिए विश्वयात्रा में निकला तो उसी परिवार ने एक लाख बत्तीसहजार रु. तो टिकट का खर्चे किया और जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ उसी परिवार की ओर से खर्चे हुआ। इस शताब्दी महोत्सव को सफल बनाने में चयनराय परिवार का ही विशेष हाथ और सहयोग है। इस समय वकील हसमत, जो मेरे शिष्य हैं,

उनका भी स्मरण करना आवश्यक है। उन्होंने इसमें बहुत मनोयोग दिया। अपनी वकालत छोड़कर दिन-रात इसी में लगे हुए हैं। और चयनराय परिवार के दामोदर भाई, केवलराम, मुरलीधर, गिरधर, पीताम्बर प्रायः चारों भाई उपस्थित हो गए थे। कार्यवश दो चले गये, दो यहाँ हैं। मिठू, लाजू ये भी चयनराय उत्तम चंदानी परिवार के हैं। इन्होंने भी बड़ा साथ दिया। बहनों की तो बात ही क्या करूँ। हमारी माता माधुरी और उनकी पुत्रवधुयें कमला वगैरह सबने दिल खोलकर इसमें सहयोग दिया। कुछ लोगों ने कहा दिल्ली मनाओ। कुछ कहते थे अमृतसर, कुछ कलकत्ता, पेटलाद, मद्रास। कलकत्ता हमारे परमसेवक भोजनगरवाले रामनारायण भूरामल, सालनपुरवाले रामलुभाया हैं। एक हमारा मीरपुरी किस्सू है, जो नेपाल से आया है। और रेवा वगैरह सब सिंगापुर से हैं। डॉ. लूला है। अब किसके किसके नाम लिये जायँ ? इस उत्सव को सफल बनाने के लिए सभी ने सहयोग दिया। हमारे आज के जो अध्यक्ष हैं मुरलीधर भाई, गोविंदभाई बालचन्द। इनको तो कहना क्या ? ये तो हमारे अंगसंग ही रहते हैं सदा। जहाँ महाराज, 'जहाँ राम तहँ अवधनिवासू।' इन परिवारों का क्या ? लोकूमल है। सेठ किशन चन्द मगनानी है। ये तो मैं कहीं भी जाऊँ। आबू जाऊँ तो वहाँ भी साथ साथ, वृन्दावन जाऊँ तो वहाँ भी साथ। पहाड़ों में चला जाऊँ तब भी साथ हैं। इन्होंने भी बहुत ही दिल-खोलकर सेवा की। और हमारे वेदान्त मण्डल के बच्चू भाई जो इस महोत्सव समिति के सदस्य हैं और भी जितने वेदान्त मण्डल के सदस्य हैं, भारत साधु समाज के हरिनारायण वगैरह, शिवानन्द डिवाइन सोसायटी, मैं तो समझता हूँ यह तो पूरी फकीरी गवर्नमेन्ट है। सब पार्टियों ने साथ दिया। सब परिवारों ने साथ दिया। अब मैं अधिक कुछ नहीं कहता हूँ जिन-जिन परिवारों ने, जिन-जिन महापुरुषों ने, जिन-जिन सन्तों ने सहयोग दिया। एक तो एक सौ ग्यारह वर्ष के स्वामी ब्रह्मानंदजी बैंगलोर से आए हैं। मुझसे दो वर्ष कम बाबा बालमुकुन्द जी, जिन्होंने मेरे आदेश से इन्दौर में आश्रम की स्थापना की व रोगियों का रोग दूर करने के लिए हॉस्पिटलों की स्थापना की, वे मुझ से दो वर्ष कम हैं। इधर वे १११ वर्ष के है। दोनों ने मुझे बीच में ले लिया। आनंदमयी माँ भी मेरा ख्याल है नब्बे वर्ष से कम नहीं होगी। वयोवृद्ध संतों ने अपने वयोवृद्ध साथी का अच्छा साथ दिया। मैं इस चेष्टा में ही रहा कि जितने अधिक संतों का दर्शन हो सके, मुझे भी दर्शन हो जायेंगे व मेरे बम्बई प्रेमी उन वयोवृद्ध सन्तों का चरणस्पर्श कर अपने मानवजीवन को सफल बना लेंगे। अरे भाई ये संत जिनको ढूँढने के लिए London, France से पूछते हैं कि महाराज सन्त कहाँ मिलेंगे। हिमालय में मिलेंगे। मैंने कहा, "हिमालय में वे अब नहीं रहे। हिमालय छोड़कर बम्बई में आ गए। अब मैं समस्त बम्बई की जनता को विशेषतः

उन संस्था को, उन परिवारों को, जिन्होंने मेरा विशेष सहयोग दिया है। मैं चाहता हूँ प्रभु के चरणों में उनकी अटल भक्ति हो और मैं तो अब चाहता हूँ संसार से किसी प्रकार छूटी मिले और वे भी शतजीवी हों। जब गुरुदेव सौ वर्ष के हैं, तो चेले का कर्तव्य है गुरु की नकल करना। सबके सब संत शतं वर्षाणि जीवन्तु। अरे भाई जाने दे। अच्छा एक बात हँसी की बतलाऊँ। कई लोग उदास हो रहे होंगे। ये महाराज १०० वर्ष के हो गए होंगे। कब चल दें! अरे भाई, मैं कहीं जाने वाला भी नहीं। अच्छा यह बात है क्यों? भगवान और भक्त। ऐसा लिखा है भगवान और भक्त एक हैं। दोनों के बीच में से भेद की दीवारें गिर जाया करती हैं। जो भगवान के चरित्र हैं, उन्हीं का अनुकरण, उन्हीं का अनुसरण उनके भक्त किया करते हैं। मैं हूँ भगवान कृष्ण का एक छोटा-सा दासानुदास भक्त। एकादश स्कन्ध भागवत के छठे अध्याय में लिखा है। देवों ने आकर श्रीकृष्ण महाराज से कहा, "महाराज हमको भूला ही दिया। वैकुण्ठ रिक्त पड़ा है। ब्रह्मलोक में कहते हैं शून्यता आ गई है। **यदुवंशे उत्तीर्ण भवतां पुरुषोत्तम।** हे पुरुषोत्तम, यदुवंश में आपको अवतार लिए १२५ वर्ष हो गये। अब कहते हैं इन भारतीय भक्तों के प्रेम में फँसकर हमें भूला न देना। इससे पता चलता है मेरे प्रभु १२५ के वर्ष रहें। अब हम शताब्दी क्या, १२५ वर्ष की शताब्दी भी हम मनायेंगे और एक ही मेरा कहना है कि अगर मूल को जला डाला जाये तो शाखा, पत्ती, फल, फूल सब हरे भरे रह सकते हैं। क्या भागवत, क्या पुराण, क्या संस्कृति, सबका मूल है वेद। यदि वेद का प्रचार करेंगे और वेद की जड़ों में जल सींचेंगे। ये भारतीय संस्कृति जैसे वेद अजर अमर हैं। यह भी अजर अमर बन जायेगी। अब कुछ विशेष कहने की जरूरत नहीं; मैं बूढ़ा हूँ। घण्टा डेढ़ घण्टा बैठना पड़ा। अब आप सबको आशीर्वाद देता हुआ कल फिर १४ तारीख को वेदान्त सम्मेलन, ता. १५ को संस्कृत सम्मेलन, ता. १६ को राष्ट्रीय एकता सम्मेलन, १७ को विश्व शान्ति सम्मेलन, १८ को वेदयज्ञ—भागवत पारायण यज्ञ के पारायण की समाप्ति होगी। अब आपको वंचित नहीं रखा जायेगा। कुछ लोगों के मन में भावना रह गई कि हम पूरा स्वागत नहीं कर सके। शाम को उस दिन फिर स्वागत की झांकी देखने को मिलेगी।

राष्ट्रीय एकता संमेलन

ता. १४ तथा १५ जनवरी को नित्य का कार्यक्रम चलता रहा। शाम को संस्कृत संमेलन तथा वेदांत संमेलन अनुक्रम से हुए, जिसमें श्री भाई शंकर पुरोहित आदि विद्वानों ने प्रवचन किये। दोनों संमेलनों में आप उपस्थित थे। ता. १६ जनवरी को प्रातःकाल का क्रम पूर्ववत् चलता रहा। सायंकाल सात से नव तक

राष्ट्रीय एकता संमेलन था। उसमें शास्त्रार्थ महारथी श्री पंडित मधवाचार्यजी के सुपुत्र, वेद भाष्य निर्माता आचार्य श्रीकण्ठजी अध्यक्ष पद पर विराजमान् थे एवं स्वागताध्यक्ष थे श्री पंडित वीराचार्यजी। श्रद्धेय श्री पंडित प्रेमाचार्यजी के हस्त से इस सम्मेलन का उद्घाटन हुआ, सर्वप्रथम शाम को सात बजे कीर्तन हुआ। पश्चात् स्वागताध्यक्ष पंडित वीराचार्यजी ने अपना स्वागत भाषण किया। श्री पंडित प्रेमाचार्यजी ने भी राष्ट्रीय एकता संमेलन के उद्घाटन के भाषण में येही विचार व्यक्त किये कि किसी भी राष्ट्र के उत्थान एवं अभ्युदय के लिये विचार, वाणी एवं वर्तन का समन्वय अति आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति, गृह एवं समाज के संगठन की शिला पर ही राष्ट्र रूपी इमारत मजबूत खड़ी हो सकती है। वेदों में भी बारम्बार यही निर्देश है। उनके भाषण पश्चात् १ घण्टा हमारे श्रद्धेय विद्वान संतों म. मं श्रीस्वामी सोमेश्वरानंदजी अध्यक्ष, गीताभवन, नवा शहर, म. मं. वीतराग श्री स्वामी अभयानंदजी, गीता भवन राजस्थान, म. मं. स्वामी गोपालमुनि हृषिकेश म. मं. श्री स्वामी सर्वज्ञमुनिजी, गंगेश्वर धाम, दिल्ली के प्रवचन हुए। रात को ८ से ८.३० तक हमारे मुख्य अतिथि, लोकसेविका पूर्णिमा बहन पकवासा का भाषण हुआ। अध्यक्ष आचार्य श्रीकण्ठजी के भाषण पश्चात् स्वामी गोविंदानंदजी के आभार–वचन के साथ उस दिन का कार्यक्रम पूरा हुआ। ११ दिन, सतत् प्रातः सात से लेकर, रात्रि को ९ बजे तक यह महोत्सव चलता रहा, पर प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या में बाढ़ आती रही। अंत में इतने विशाल पण्डाल में भी मानव–मेदनी समाती नहीं थी। सोलह कला–पूर्ण चंद्र जहाँ प्रकाशित हो, मानव सागर कैसे अधिकाधिक नहीं उमड़ता रहेगा! साथ में हजारों संत–महात्मा, ब्राह्मण विद्वानों के रूप में विभिन्न देवगण उपस्थित हों, वहाँ पूजारी स्तोता एवं संगीत प्रेमी रसिक भक्तजन उनके पूजन–प्रशस्ति–प्रसादार्थ (आशीर्वाद) दौड़ जाय, तो क्या आश्चर्य! प्रभु की अनोखी लीला समझ में नहीं आती, नटवर की यह नित्य नूतन नर्तन–लीला! सब कुछ करते हुए भी सदा निवृत्त, और कुछ नहीं करते हुए भी सब में प्रवृत्त! मनुष्यों की वहाँ गति नहीं, उनके कर्म होते हैं, ईश्वर की लीला। परंतु भक्त–प्रेमियों को तो सदैव सुन्दर रस माधुरीपूर्ण, दिव्यानंद प्रदायक है।

इस अवसर पर मुझे गुरुदेव ने वेद में, जो विश्व का संविधान दिखाया है, वह याद आता है। उसका निर्देश इस प्रकार हो सकता है—

वेद में विश्व का संविधान

वेद किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का नहीं किन्तु विश्व का संविधान है। आज हम अपने राष्ट्र के गीत गाते हैं। किन्तु वेद तो समग्र भूमण्डल के गीत गाता है। अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त इसका प्रमाण है। वहाँ स्पष्ट शब्दों

में ऋषि कहता है—'**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**'। वह अपने को किसी देश का पुत्र नहीं कहता, समस्त पृथिवी का पुत्र बतलाता है। वेद में देश जैसा कोई विभाग नहीं है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के अन्तिम सूक्तों में संवनन नामक ऋषि अखिल विश्व के लिए सर्वथा अपेक्षित और सर्वथा स्पृहणीय धन—रत्नादि वस्तुओं की कामना करनेवाले मन्त्र का दर्शन करता हुआ कहता है—

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥

—ऋ० १०–१९१–१

अर्थात् अग्रणी देव, हे परमात्मन्! आप सभी मानवों को चारों ओर से सम्मिलित करते हैं। आप स्वयं वैश्वानर के रूप में सभी प्राणियों को व्याप्त किये हुए हैं। आप पृथ्वी के वेदस्वरूप स्थान में ऋत्विजों के साथ चमकते रहते हैं। आप हमें धन—रत्नादि सुलभ करावें।

इस मन्त्र में 'विश्वानि वसूनि' के द्वारा नीतिकारों ने निम्नलिखित आठ रत्न परिगणित किये हैं—

बन्धुं मेधां यशो ब्रह्म वेदान् रत्नं भगं व्रतम्।
आहराग्ने धनान्यष्टौ नत्वा त्वा प्रार्थनामहे॥

—वेदोपदेशचन्द्रिका, श्लोक १०१

अर्थात् वे आठ रत्न हैं—बन्धु, मेधा, यश, ब्रह्म (मन्त्र), वेदचतुष्टयी, रत्न, भग (ऐश्वर्य) और व्रत।

इस अष्टविध ऐश्वर्य का उपभोग किसी सुनिर्धारित व्यवस्था के बिना शक्य नहीं। अतः ऋषि तीन और मन्त्रों का दर्शन करता है, जिनमें ऐसी सुन्दर व्यवस्था का विधान है कि अन्याय, उत्पीड़न आदि के द्वारा विघटन की आशङ्का ही नहीं रह जाती। वास्तव में यह नियम—व्यवस्था और कुछ नहीं, विश्वराज्य का संविधान ही कहा जायगा। ये तीनों मन्त्र निम्नलिखित हैं—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

—ऋ० १०–१९१–२–४

यहाँ उपक्रम के रूप में '**सं गच्छध्वम्**' विधान संघ का सूचक है तथा उपसंहार के रूप में 'यथा वः सुसहासति' नामक संघ के ऐकमत्य का प्रतिपादक है।

द्वितीय मन्त्र में संघटन के तीन साधन बताये गये हैं। श्रुतिमाता अपने मानव पुत्रों को उपदेश के रूप में सुनाती है—'**सं गच्छध्वम्**'—हे मेरे पुत्र मानव ! आप सब एक सूत्र में आबद्ध हो जायँ, विश्व-हित के लिए अपना सुदृढ़ संघटन शीघ्र ही साध लें। संघटन के ये तीन साधन हैं—

१. **सं वदध्वम्**—आप लोग साथ-साथ बोलें, अर्थात् परस्पर का विरोध त्यागकर एक ही भाषा बोलने का यत्न करें।

२. '**सं वो मनांसि जानाताम्**'—आप लोगों को संवादयुक्त वाणी एक हो। इतना ही नहीं, आपके अन्तःकरण भी एक विषय को जानें अर्थात् एकविध (राष्ट्र के हितकारी) अर्थ को आप सब जानें।

३. '**देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते**'—जैसे विश्वराज्य के अधिकारी सूर्य आदि देव अथवा पिण्ड ब्रह्माण्ड के रूप से पिण्डराज्य के अधिकारी चक्षु आदि इन्द्रियों में अधिष्ठित सूर्य आदि देव समस्त साधन सम्पत्ति के प्राप्त्यर्थ अपने विभागों का बिना प्रमाद के संचालन करते हैं, ठीक वैसे ही आप सब मानव एकमत होकर, परस्पर के विरोध या वैमनस्य को छोड़कर समाज, राज्य या प्रजातन्त्र का शासन सफलता से करते रहें।

वास्तव में यह विश्व एक महान् राज्य है, जिसमें भिन्न-भिन्न विभागों के अधिकारी, मन्त्रिगण अपने-अपने विभागों को कुशलता से चलाते रहते हैं।

जैसे आज के प्रजातन्त्र के शासन में राष्ट्रपति, लोकसभा के अध्यक्ष, प्रधान मन्त्री, अन्य मन्त्रिगण अपने-अपने शिक्षा, रक्षा, स्वास्थ्य, खाद्य, उद्योग आदि विभाग चलाते हैं, विश्वराज्य में भी वही व्यवस्था चालू है। जो निम्नलिखित है।

विश्वराज्य के शासनाधिकारी

राष्ट्रपति : परब्रह्म।

उपराष्ट्रपति : परमात्मा।

प्रधानमन्त्री : अदिति (प्रकृति=देवमाता, जो विश्वराज्य के मन्त्री एवं उपमंत्रियों का निर्माण करनेवाली आदिशक्ति है)।

ध्येय : तीनों पुरुषों (विराट् पुरुष, समाज पुरुष और व्यक्ति पुरुष) के बीच शान्ति-सौमनस्य स्थापना।

संसद के अध्यक्ष : सदसस्पति।

उपाध्यक्ष एवं लघु-समितियों के अध्यक्ष : क्षेत्रपति।

विश्वराज्य के मन्त्रिमण्डल की रूपरेखा निम्नलिखित है—

शिक्षामन्त्रालय : जातवेदा अग्नि—**शिक्षामन्त्री**। ब्राह्मणस्पति—**उप-शिक्षामन्त्री**। बृहस्पति—**शिक्षासचिव**।

सुरक्षामन्त्रालय : इन्द्र—**रक्षामन्त्री**। उपेन्द्र—**उपरक्षा मन्त्री**। रुद्र—**सेनाध्यक्ष**। ४९ मरुत्—**सैनिक**।

स्वास्थ्यमन्त्रालय : अश्विनौ—**स्वास्थ्यमन्त्री** (एक शल्यकर्म या सर्जरी का चिकित्सक और दूसरा औषधि-चिकित्सक या मेडिकल चिकित्सक)। **औषधि**—औषधियों का व्यवस्थापक। **सोम**—औषधियों का व्यवस्थापक। सोम औषधियों का राजा **सचिव**। **अन्नम्**—उत्तम खानपान का प्रबन्ध करनेवाला संयोजक। **गौ**—राज्य में उत्तम दुग्ध, नवनीत, घृतादि की व्यवस्थापक।

खाद्यमन्त्रालय : पूषा—**खाद्यमन्त्री**। सूर्य—**शोधमन्त्री** सविता आदि १६ आदित्य—**सहायक सचिव**।

अर्थमन्त्रालय : भग—अर्थमन्त्री।

उद्योगमन्त्रालय : विश्वकर्मा—उद्योगमन्त्री। वास्तोष्पति—गृहनिर्माणमन्त्री। त्वष्टा—शस्त्रास्त्रनिर्माणमन्त्री। लघुकुटीर-उद्योग-मन्त्री।

जलयानमन्त्रालय : वरुण—यानमन्त्री। चन्द्रमा—मानस-समाधानमन्त्री। पर्जन्य-कृषिमन्त्री। आपः सचिव। नद्यः व्यवस्थापक।

जीवन-मन्त्रालय : वायु—जीवनमन्त्री।

प्रकाश-मन्त्रालय : विद्युत्—प्रकाशमन्त्री।

स्त्री-मन्त्रालय : उषा—बालिका-संरक्षण-मन्त्री।

बालमन्त्रालय : वेन—बालक-संरक्षणमन्त्री।

गुप्तचर-मन्त्रालय : क (प्रजापति)—गुप्तचर-मन्त्री।

वाहन-संचार-मन्त्रालय : अश्व—वाहनसंचार-मन्त्री।

द्वितीय मन्त्र में तो श्रुति माता ने संवनन-ऋषि के द्वारा उपदेश दिया है। उसके तृतीय मन्त्र में विश्व राज्य के राष्ट्रपति ने राष्ट्र का संविधान बनाने का जो प्रस्ताव रखा है, उसका रूप मिलता है।

द्वितीय मन्त्र के तीन साधन १. एक प्रकार का संवाद २. परस्पर के मन के ऐकमत्य से अवबोध तथा ३. अन्य विभागों में हस्तक्षेप न करते हुए अपने विभागों के हितों का संरक्षण। इन तीन साधनों के साथ तीसरे मन्त्र में निर्दिष्ट छः साधन जोड़ने से राष्ट्र के संविधान के नव साधन प्राप्त होते हैं।

इस विश्व राज्य का राष्ट्रपति प्रस्ताव रखता हुआ कहता है—'समानं मन्त्रम् अभिमन्त्रये वः'—मैं राष्ट्रपति की तरह विश्वपति समान मन्त्रणा द्वारा पारित (निर्णीत) आपके प्रस्ताव को अनुमति देता हूँ, अर्थात् सर्वसम्मत प्रस्ताव पर राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर पूर्वक सादर स्वीकृति प्रदान संघटन का एक मुख्य साधन है।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मत होना चाहिए, इसका निर्देश करते हैं—

१. **समानो मन्त्रः**—मन्त्रणा, राष्ट्रहितार्थ गुप्त मन्त्रणा एक ही प्रकार की हो, उसमें ऐकमत्य बना रहे। मत विभेद या विघटन न हो।

२. **समितिः समानी**—कार्यकारिणी या विषयविचारिणी सभा एकविध हो अर्थात् सदस्यों के बीच वैमनस्य न हो।

३. **समानं मनः**—सदस्यों के मन भी एक समान सदृश हों। परस्पर के मन में विपरीत भाव न हों।

४. **सह चित्तमेषाम्**—इन सदस्यों के चित्त भी एक निश्चय के साथ समान, सुदृढ़ हों। इस प्रकार के समिति के सदस्यों के वार्तालाप, समिति के मत, सदस्यों के मन और निश्चय चारों साधन समान होंगे, तभी राष्ट्रपति के सामने सर्वसम्मत प्रस्ताव को रखा जायेगा।

५. **समानं मन्त्रम्**—प्रस्ताव को सभापति स्वीकृत करेंगे।

६. **समानेन वो हविषा जुहामि**—'हूयते दीयते इति हविः' इस व्युत्पत्ति से हवि का अर्थ है पुरस्कार। समान—सदृश, अर्थात् जिसने जैसा राष्ट्र का हित किया। उसके अनुरूप राष्ट्रीय पुरस्कार द्वारा सभी राष्ट्रसेवकों को राष्ट्रपति के रूप में मैं प्रसन्न करता हूँ। महाभाष्यकार ने 'जुहोमि'—का अर्थ प्रसादन यानी प्रसन्न करना भी बताया है और वही अर्थ यहाँ विवक्षित है।

इस प्रकार सर्वसम्मति प्रस्ताव को रखकर एक राष्ट्र के सेवकों को प्रसन्नकर, चतुर्थ मन्त्रों के द्वारा राष्ट्रपति सभी सदस्यों को परस्पर सहकार और निष्कपट व्यवहार रखने को कहते हैं।

१. **समानी व आकूतिः**—आपके अभिप्राय, प्रतिक्रिया, संकल्प या निश्चय समान हों।

२. **समाना हृदयानि वः**—आप लोगों के हृदय समान रूप से सरल, निष्कपट हों।

३. **समानमस्तु वो मनः**—आप लोगों का मन एक समान हो, अर्थात् आप जो कार्य करें उसमें मन का अनुराग एक समान बना रहे।

इस मन्त्र में आकूति से अभिप्राय है संकल्प, हृदय से भाव तथा मन से कार्यतत्परता—इन तीनों में समानरूपता बतलाकर मन, वचन और कर्म को एकवाक्यता का निर्देश किया है अर्थात् ये भी तीन साधन हैं।

प्रस्तुत तीनों मंत्रों के द्वारा उपक्रम और उपसंहार के रूप में विश्व संविधान का आदर्श उपलब्ध होता है।

द्वितीय मन्त्र के तीन, पहले मन्त्र के छह तथा चतुर्थ मन्त्र के तीन साधनों को जोड़ने से विश्व-राष्ट्र की सुरक्षा में बारह साधन अत्यन्त उपयुक्त और हितकारी हैं।

गो-संमेलन

ता. १७ जनवरी को प्रातःकाल का नित्यक्रम चलता रहा। शाम को **'गोसंमेलन'** का आयोजन था। उसमें हमारे हृषिकेश निवासी म. श्री स्वामी गोपाल मुनिजी, स्वागताध्यक्ष थे। अध्यक्षपद पर, दिल्ली, गंगेश्वरधाम के म. श्री स्वामी सर्वज्ञमुनिजी, एम. ए. अध्यक्ष, तथा कनखल के मानव कल्याण आश्रम के अध्यक्ष, पू. ललिताम्बा मुख्य अतिथि रूप में उपस्थित थे। शाम को प्रथम थोड़ा कीर्तन क्रम के बाद, कनखल के म. मं. श्री स्वामी माधवाचार्यजी के करकमल से गोसंमेलन का उद्घाटन हुआ। तत्पश्चात् लोकसेविका दिल्ली-निवासी गुलाबबहन ने अपने गुरु-भाव सुंदर शब्दों में व्यक्त किये। परम गोभक्त श्री गवानंदजी तथा अन्य गोभक्त, संतों एवं विद्वानों ने गोरक्षा, तथा गो-वर्धन के विषयमें अपने अपने विचार व्यक्त किये। पश्चात् ललिताम्बा ने भी उपरोक्त विषय में दो शब्द कहें। अंत में अध्यक्ष स्वामी सर्वज्ञमुनिजी ने अपने भाषण में बताया कि गो-वध विरोध के उपलक्ष्यमें प्रधान मन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी एवं श्री गुलजारीलाल नन्दाजी के साथ गोरक्षा के विषय में विचार-विमर्श के लिये, गुरुदेव सन् १९६६, १९ अगस्त को, हवाई जहाज से दिल्ली पधारे। माननीय राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसेन, श्रीसुब्रह्मण्यम्, श्री शरदप्रसाद मित्र, श्री मनुभाई शाह आदि से बातचीत कर बम्बई वापस आये। पू. संत तुकडोजी महाराज, स्वामी चिन्मयानंदजी, प्रतापसिंह आदि को एक सभा भाई बालचंद के बँगले में नियोजित की, और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मुख्य संचालक गुरु गोलवालकरजी ने पूरा सहयोग दिया। तब गुरुदेव ने समय समय पर पंद्रह चक्कर दिल्ली लगाये। एक बार तो अपनी जयन्ती का उत्सव भी छोड़कर चले गये थे। महापुरुषों का जीवन सर्वथा परमार्थलक्षी होता है, यह प्रत्यक्ष प्रतीति-रूप आपके समग्र जीवन के सत्कार्य का सूचक है।

इस गो-सम्मेलन में पू. गुरुदेव ने गो और गोपति श्रीकृष्ण के बारे में बड़ा ही मार्मिक प्रवचन किया। यथा—

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्त ये। ऋ. वे. १—१—९

वेद हमें भागवत्शक्ति को प्रेरणा दे रहा है। शुक्ल यजर्वेद अध्याय १ कंडिका १. **ध्रुवाऽस्मिन् गोपतो स्याम**। नाना प्रकार को जो प्रजा है। हे प्रभु जो गोपाल हो। गोपतौ उस गोपाल कृष्ण में ध्रुवा स्यात् अनन्य भक्ति से सम्पन्न हो जाऊँ। वेद को प्राणीमात्र को आज्ञा है। हे प्राणी वर्ग, तुम यदि अपना जीवन सफल करना चाहते हो तो श्रीकृष्ण परमात्मा के चरण के अनन्य भक्त बन जाओ। तो यहाँ तो गोपते लिखा है। गोपते का अर्थ है गोपाल। गोपाल तो साधारण व्यक्ति भी होता है। जो गौओं का पालन करे।

अटल भक्ति करने के लिये अनन्य भक्ति करने के लिये जिस गोपाल की हमने चर्चा को वो गोपाल क्या है, **कृष्णोऽसि** जो कृष्ण नामधारी हैं। **खरेष्ठा**—जिसके बड़े कोमल चरण हैं। लक्ष्मीदेवी जिसके चरणों में माखन लगाती रहती है। वैकुण्ठधाम छोड़कर भक्तों के प्रेमवश खरेष्ठा—जहाँ कंकड़—पत्थर पड़े हैं बड़े—बड़े काँटे हैं। कंकड़ आदि से आकीर्ण जो व्रजभूमि है उसमें निवास करता है। अपने भक्तों के प्रेमवश मैं कई बार कहा करता हूँ कि नये—नये विज्ञान निकले। विज्ञान बहुत प्रगति कर रहा है। तरह—तरह के यन्त्रों का आविष्कार कर रहा है परन्तु श्री डोंगरेजी के द्वारा, श्रीमद् भागवत द्वारा जो डोंगरेजी महाराज लोगों के हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम पैदा कर रहे हैं। वह प्रेम सबसे बड़ा यन्त्र है, जो निराकार प्रभु को वैकुण्ठ से खींचकर साकार बना देता है। अपने इष्टदेव का जो कीर्तन करे, अपने इष्टदेव का जो जनता में संदेश प्रसार करे, अपने इष्टदेव का अनन्य भक्त बनने का प्रयत्न करे। मैं डोंगरेजो को कोटिशः धन्यवाद करता हूँ, जिनकी प्रेममयी भागवत कथा के श्रवण से आजकल के आधुनिक नास्तिक, तार्किक भी सच्चे श्रीकृष्ण भक्त बन गये। डोंगरेजी ने केवल गुजरात में ही नहीं, सभी प्रान्तों में कभी वृन्दावन में, कभी बद्रीनारायणमें, कभो हिमाचलमें, कभी उत्तर भारतमें, कभी दक्षिण भारतमें समस्त देश में कथा करके जनता को भगवान कृष्ण प्रभु के चरणों का सच्चा स्नेही और सच्चा प्रेमी कृष्णभक्त बना दिया। इससे अधिक और मेरे लिये प्रसन्नता की बात क्या हो सकती है? इधर तो हुई इष्टदेव की दृष्टि उधर क्या है? मुझे भगवान कृष्ण ने प्रेरणा दी कि मेरी जो वाणी, मेरा जो नाम, जिस वाणी से गोविंद पड़ा। **गां वेद वाचं विन्दति इति गोविन्दः**। पहिले पहिल शेषशायी विष्णु के रूप में जिनको वेद वाणी का आविर्भाव हुआ। पहिले प्रभु के पास वेद रहे। उन्होंने

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहणोति तस्मै। उन्होंने वेदों की रचना की फिर अपने सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्मा को वेदों का उपदेश दिया। **गां विन्दति इति गोविन्द।** वेदवाणी के सार को गीता के रूप में बदल दें। वेद वाणी को जो प्राप्त करे उसीका नाम गोविन्द। वेद के कारण नाम गोविन्द पड़ा। वेद प्रभु को बड़े प्यारे हैं। जब वेदों को हयग्रीव राक्षस ब्रह्मा से छीनकर चला गया। अब पता चला। भगवान विष्णु लड़ने गए। वह पराजित होता नहीं। उसको वरदान मिला। तुम्हें वही मार सकेगा जिसका घोड़े का मस्तक हो। हयग्रीव ही हयग्रीव का संहार कर सकता है। जिन प्रभु के वदनारविन्द को देखते हुए अघाते नहीं। लक्ष्मीदेवी जिन भगवान के कमलमुख की ओर टकटकी लगाकर देखती हैं। भगवान के जिस मुख से चारों वेद निकल रहे हैं, उस मुखारविन्द को बदल दिया। घोड़े का मुख बना लिया। किसलिये किया ऐसा? वेदों की रक्षा के लिए। जब वह हयग्रीव बन गए तो हयग्रीव राक्षस का संहार हो गया। अपनी लक्ष्मी के प्रिय, भक्तों के प्रिय मुख को इसलिए भगवान ने बदल दिया कि वेदों की रक्षा हो। उसी वेद का ५००० वर्ष से पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे वेदवेत्ता ब्राह्मणों के द्वारा यथावत प्रचार होता रहा। उन्होंने अपनी मुखरूपी कंदरा में वेदों को छिपाया। विदेशियों के शासन में भी वेदों का विनाश नहीं होने दिया। वेदवेत्ता ब्राह्मणों के चरणों में मैं प्रणाम करता हूँ। उसी वैदिक परम्परा की रक्षा के लिए हमारे कन्धे से कन्धा मिलाकर आजकल श्रीरामचन्द्रजी डांगरे कार्य कर रहे हैं। मथुरा में गोपाल पाठशाला है, जिसमें बड़े-बड़े विद्वान तैयार हुए हैं। उदय प्रकाश जिन्होंने यजुर्वेद पर भाष्य लिखा, वह भी मथुरा के रहे। वह पाठशाला टूट रही थी। मैंने वेद की स्थापना की। मुझसे भी लोगों ने प्रार्थना की। कहा कि महाराज मथुरा में जो वेद पढ़ते हैं, उन वेदवेत्ता ब्रजवासी बालकों को खाने का, भोजन का बड़ा क्लेश है और ये पाठशाला यदि सहायता न होगी तो कुछ दिनों में समाप्त हो जायेगी। और उन विद्वानों ने कहा—महाराज हमने पीढ़ी दर पीढ़ी रक्षा की, अब क्या करें? हमारे लिये कुछ बनता नहीं। डोंगरेजी वृन्दावन थे। कथा को। मैं भी वहीं था। दर्शन तो नहीं हुए। परस्पर मुलाकात भी नहीं हुई। इन्होंने फौरन मथुरा गोपाल पाठशाला को प्रति मास रु. ५००) इसलिए भेजना शुरू किया कि उस पैसे के द्वारा पेट भरकर विद्यार्थी वेदाभ्यास कर सके। फिर गोकर्ण बहुत पुराना **भगवान् वेद** का पठन-पाठन का केन्द्र है। वहाँ के कुछ ऋग्वेदी ब्राह्मण यहाँ बुलाए हैं। एक अथर्ववेदी विद्वान भी वहाँ का आया है। जोगलेकर शास्त्री वहीं के हैं। मैंने तो वह पाठशाला गोकर्ण की टूट न जाए, इस लिए बैंगलोर में जब धर्मवीर गवर्नर थे, उन्हें प्रेरणा दी। उनके पुरुषार्थ से सरकार की सहायता मिल गई। उस पाठशाला की रक्षा हो गई। अब पाठशाला को सरकार ने मदद दी।

अब वेदाभ्यासी जो छात्र हैं वे खाएँ कहाँ ? बिना खाए तो कबीर ने भी कह दिया। भूखे भक्ति न कोजे। प्रभु माला अपनी लीजे। भक्त कबीर कहते हैं— महाराज अपनी माला ले लो। मैं भूखे पेट माला नहीं फेरता। तो भूखे पेट वेदाभ्यास कैसे हो ? गोस्वामी तुलसीदासने भी कहा है: **"भूखे भजन न होहिं गोपाल !"** एक मगनलाल वकील थे, अब शायद स्वर्गवासी हो गए। वह आप मुझे मिले, मैं गोकर्ण जा रहा हूँ, डोंगरेजी की आज्ञा से। वहाँ अन्नक्षेत्र चालू किया जायेगा। त्र्यंबक में भी अन्नक्षेत्र चालू किया। इस प्रकार परम्परा से आ रही जो वैदिक पाठशालाएं हैं वे कहीं बन्द न हो जायें, वे रुक न जायें। वे पाठशालाएं रुक गईं तो वेदाभ्यास कैसे हो सकेगा ? वेदविद्या का विलोप हो जायेगा। इस चिन्ता में मैं हूँ, वैसे ही डोंगरेजी भी हैं। एक ही बीमारी के बीमार हैं हम दोनों। उन्हें भी यही चिन्ता लगी रहती है कि वेदविद्या का विलोप न हो जाय। ये तो ब्राह्मण का कर्तव्य है। मैं तो साधू हूँ। साधू गुणातीत होता है। यद्यपि मेरा कर्तव्य नहीं है। मैं कर्मयोगी नहीं हूँ। संन्यासी जोगी हूँ। पर जब वेदविद्या विलुप्त होने लगी, मुझसे सहन नहीं हो सका। मैं साधू होते हुए भी कर्मक्षेत्र में उतरा। एक बात जितने यहाँ बैठे हैं, मैं सबके सामने कहता हूँ कि गुजरात को यह बड़ा गौरव है। जब मैं गुजरात में कदम रखता हूँ, मैं पूछता हूँ: ऋग्वेदी कहाँ मिलेंगे ? मेरठ में मिलेंगे। जब मैं पूछता हूँ: 'सामवेदी ?' शुक्लतीर्थ में मिलेंगे। जब पूछता हूँ: यजुर्वेदी—'महाराज ये मिल जायेंगे आपको सूरत–अहमदाबाद में।' चारों वेदों के विद्वान अगर कहीं मिल सकते हैं तो गुजरात में ही मिल सकते हैं। मैं रामेश्वर गया वेद की स्थापना को। श्रृंगेरी मठ के श्री शंकराचार्य के मठ में। उन्होंने तार दिया कि स्वामी गंगेश्वरानन्दजो के आते ही आपलोग इनको आज्ञा मेरी आज्ञा समझो। शास्त्री सब मिल गए। मैंने पूछा—यहाँ वेद के विद्वान कितने हैं ? कहते हैं—महाराज ऋग्वेदी तो मिलेंगे। कृष्ण यजुर्वेदी—मिलेंगे। सामवेदी तो नहीं मिलेंगे। अथर्ववेदी तो मिल हो नहीं सकेगा। ये तो काशी का गौरव है, क्यों ? वहाँ सब देशों के विद्वान हैं। ऋग्वेद के प्रखर पंडित हैं हमारे प्रेमी विश्वनाथ वामनदेव। दुःख की बात है, उनका बड़ा भाई श्रीकृष्ण वामनदेव, जिसे समस्त ऋग्वेद का अभ्यास था, अथर्ववेद पर भी उनका पूरा अधिकार था, क्या ब्राह्मण ग्रन्थ, क्या आरण्यकग्रन्थ, क्या सूत्रग्रन्थ उन सब पर उनका पूरा अधिकार था, एक बार मेरे पास आए, मैंने प्रयोग शास्त्रों की टेप उनसे की। कुछ दिन हुआ वो चल बसा। उनके रिक्त स्थान की पूर्ति होना बड़ा कठिन है, पर भगवान विश्वनाथ से प्रार्थना है कि भगवान विश्वनाथ उनके पुत्रों को गंगाधर आदि पुत्रों को वही दिव्य शक्ति दें, जैसे श्रीकृष्ण वामनदेव दिव्य शक्ति सम्पन्न रहे। महाराष्ट्री भी वहाँ हैं। दक्षिण भारत के विद्वान भी वहाँ

हैं । जैसे हमारे सुब्रह्मण्यम् शास्त्री । वहाँ सभी प्रान्तों के विद्वान हैं । उसी प्रान्त के चारों वेदों के विद्वान हैं । पर जहाँ दूसरे प्रान्तों के विद्वान नहीं केवल उसी प्रान्त के विद्वान हैं । चारों वेदों के विद्वान गुजरात में मिल जायेंगे । मैं भी इसका उत्तरदायित्व देता हूँ और उनसे अनुरोध करता हूँ कि आप गुजरात में चारों वेदों को रक्षा करें । इस गुजरात का गौरव कहीं विलुप्त न हो जाए । केवल डोंगरेजी को ही नहीं, डोंगरेजी के प्रेमी हमारे नडिआद का मंडल आया हुआ है और भी गुजरात के बहुत हैं । मैं भी इसमें सहयोग दूँगा । ऐसी व्यवस्था की जाए ! हम संतराम महाराज से भी प्रार्थना करते हैं । एक वेद पाठशाला नडियाद में रहे । एक वेद पाठशाला श्रीकृष्णशंकर शास्त्री ने खोल दी भागवतनगर में । एक चाणोद में अच्छी पाठशाला है । एक शुक्लतीर्थ में हो । ताकि विभिन्न केन्द्रों में चारों वेदों का स्वाध्याय सुरक्षित रहे । बस इस कार्यसे कलियुग में इतना संतोष नहीं । **असंतुष्टा द्विजा नष्टाः** । जब संतोष न रहे तो ब्राह्मण के ब्राह्मणत्व का नाश हो जाता है । संतोषमूर्ति डोंगरेजी धर्म का प्रचार करते हैं । ऐसे संतोषी ब्राह्मण के द्वारा गुजरात के इस गौरवरक्षा में चारों वेदों के प्रचार प्रसार में किसी प्रकार की कमी नहीं आएगी । संत के नाते डोंगरेजी को आशीर्वाद करता हूँ । वे अपने प्रयत्न से भक्ति के बल पर गुजरात में ही नहीं, गुजरात में वेदों की रक्षा करते हुए यत्र–तत्र वेद प्रचार में मेरा अवश्य सहयोग दें । मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ । अधिक जिम्मेवारी उन पर । अब इस प्रार्थना के साथ मैं अपना प्रवचन समाप्त करता हूँ ।

नाऽस्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद् भाव्यं तद् भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतद् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मनान्तरेऽपि
त्वद् पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥

न मैं धर्म का विशेष आग्रह करता हूँ कि मैं बहुत बड़ा धार्मिक हूँ । न मैं धन का संग्रह चाहता हूँ । न सांसारिक पदार्थों में रुचि रखता हूँ । यद् भाव्यं तद् भवतु पूर्व कर्मानुरूपं—यदि पूर्व कर्मानुसार अपराध किए उनका दण्ड भी मैं अवश्य भोगूँगा । बड़े खुले दिल से आप दण्ड दें । किसी सिफारिश क्षमा या याचना नहीं करूँगा । आपके दिए हुए दण्ड को मैं सहर्ष भुगत लूँगा, पर मेरी एक प्रार्थना जोरदार शब्दों में है । मैं चाहे मनुष्य रहूँ, चाहे पशु–पक्षी योनि में चला जाऊँ । हे कृष्ण प्रभो आपके चरण की अटल भक्ति बनी रहे । आपकी मेरी और सबकी अटल भक्ति बनाने का डोंगरेजी का प्रयास है । जो भागवत सुनेगा वह श्रीकृष्ण का अटल भक्त बन ही जायेगा । वेद के ऋषियों ने भी यही माँगा है, जो कुछ मैंने कहा ।

वे प्रार्थना कर रहे हैं। प्रभु, तुमने जगत निर्माण किया। आप सर्वशक्तिमान हैं। हम आपसे कोई मुक्ति को कामना नहीं करते। ना हम मुक्ति चाहते हैं। एक चीज माँगते हैं। आपके हम सच्चे भक्त बन जायें।

अन्त में स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज ने सबका आभार माना और सम्मेलन को पूर्णाहुति घोषित की।

गुरु पादुकार्चा संमेलन

इस प्रकार १० दिन ऐसे सुन्दर कार्यक्रम में बीत गये। ता. १८ जनवरी को मध्याह्न १२ बजे, परम श्रद्धेय श्री डोंगरे महाराज की श्रीमद्भागवत् कथा, श्री मद्भागवत–पारायण, चतुर्वेद पारायण तथा पञ्चदेव महायागों की पूर्णाहुति हुई। सायंकाल का कार्यक्रम विशेष महत्व का रहा, क्यों कि गुरुचरण पादुका की स्थापना होनी थी। लेखिका रतनबेन ने आरस की यह गुरुचरण–पादुका का निर्माण किया। सुन्दर श्वेत आरस की चौरस चौकी पर अंकित प्रफुल्लित पद–रेखा पर ये कोमल चरण–युग्म प्रतिष्ठित है एवं आगे गो–मुख रखा है, ताकि चरणोदक उसी मुख से बाहर निकल जाय। यह एक अनोखा, आकर्षक उच्चकोटि की गुरु–भावना का उज्ज्वल प्रतीक है। आपकी वृद्धावस्था एवं दुर्बल शरीर का ख्याल रखते हृदय में यह स्फुरणा हुई कि ऐसी कोई व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे आपको गुरु–पूजन के समय लेशमात्र भी श्रम न पड़े एवं प्रेमी भक्त शिष्यों को भी आपके पूजन–अर्चन का समाधान एवं संतोष प्राप्त हो सके। अतः आपकी ही दिव्य प्रेरणा द्वारा यह अमूल्य कृति बनी, इसकी मुझे अपार प्रसन्नता है। पादुका सुरक्षित रखने के लिये एक सुन्दर काष्ठ–मन्दिर भी बनवाया, जिसमें यह चरण स्थापित किये गये। मंदिर के ऊपर के अर्ध भाग में, चन्दन को फ्रेम में एक साथ **भगवान् वेद** एवं गुरुदेव के आकर्षक मनोहर रंगीन चित्र रखे गये, ताकि दर्शकों को एकत्र दर्शन हो सके। मंदिर के शिखर पर वेदी–वंश का विजय–ध्वज फहराता रहेगा और मूलपुरुष सनत्कुमार, अविनाशीमुनि, जगद्गुरु आचार्य श्रीचंद्र, स्वामी रामानंदजी एवं सद्गुरु गंगेश्वर की अमर कीर्ति की गाथा गाता रहेगा। इन पाँचों विश्वविभूतियों के अति भावनापूर्ण चित्र लेखिका ने तैयार किये हैं, एवं गुरुदेव की इच्छानुसार, आचार्य श्रीचंद्र तथा दादागुरु स्वामी रामानंदजो के चित्र, राजवाना के समाधि मंदिर में, वृन्दावन में एवं दिल्ली के गंगेश्वर–धाम में स्थापित है। फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी को दादागुरु स्वामी रामानंदजी का जन्मदिन, प्रतिवर्ष आपकी उपस्थिति में बहुत प्रेम–भाव से मनाया जाता है, इससे भी मुझे बहुत आनंद है। भावना राज्य में गुरु शिष्य का पूर्ण अद्वैत–भाव होता है, परन्तु व्यवहार में अगर द्वैत–भाव न

हो तो गुरु–सेवा कैसे होगी ! जो कुछ इस शरीर द्वारा होता है, आपके ही संकल्प एवं प्रेरणा द्वारा संपूर्णतया सञ्चालित है। सर्वथा समर्पित होने पर, शिष्य का शेष अपनापन रहता ही नहीं। इसलिये मैं या लेखिका शब्द व्यवहारिक रीति से ही हैं, अध्यात्म या परमार्थ–दृष्टि से तो गुरु–शिष्य एक हैं, और इससे भी आगे कहूँ तो न गुरु है न शिष्य ! अस्तु।

आज सायंकाल का श्री गुरुपादुकार्चा संमेलन हुआ। जिसकी गरिमा के लिये मैंने उपर्युक्त विवरण भक्त प्रेमियों के हृदय को सरस बनाने की वृत्ति से लिखा। प्रथम कीर्तन हुआ। उस समय स्वागताध्यक्ष थे भक्तवर श्री मुरलीधर आसवानी, अध्यक्ष थे माननीय श्री बाबूराव काले, मंत्री श्री हरिभाई ड्रेसवाला एवं मुख्य अतिथि लेखिका श्रीमती रतनबहन थी।

प्रतिवर्ष हम आपकी जन्म–जयंति चर्चगेट स्थित हॉकी–ग्राउण्ड में मनाते आये हैं। इस वर्ष क्रॉस–मैदान में ही जन्म–शताब्दि महोत्सव मनाया था। अतः अलग स्थान नहीं रखा था। वैसे तो आपके जन्मदिन के दूसरे या तीसरे दिन आपका जन्मोत्सव मनाते थे, तदनुसार हमने ता. १३ जनवरी को ही निश्चित रखा था। परन्तु आपने कहा कि गुरु–पादुकार्चा के साथ ही उत्सव मनाया जाय तो अधिक सुन्दर होगा। इसलिये इन दोनों उत्सवों की पारस्परिक शोभा एवं दीप्ति थी।

प्रतिवर्ष नये–नये भाव मेरी आत्मा स्फुरित करती थी। एक वर्ष बड़ी आकर्षक नैया, दूसरे वर्ष सप्ताश्वयुक्त सूर्य–रथ, तीसरे वर्ष नीलकमल आसन के ऊपर नीलकमल छत्र, तो एक साल शेष–शय्या, ऐसे नित्य भिन्न-भिन्न प्रकार की सुन्दर सजावट करती रही। ये सब कलादृष्टि से तो अवश्य ही मोहक एवं संतोषजनक लगती, परन्तु लगती थी निर्जीव जब तक आप उस पर विराजमान् नहीं होते थे। सौभाग्यकांक्षिणी नवोढा को अनेक विध रत्न–शृंगार से सजाने पर प्रसन्नता तो जरूर होगी अपितु जब तक उनके पतिदेव से हस्त–मिलाप न हो तब तक उसका समस्त सौंदर्य निखर नहीं उठता। हाँ तो इस बार मैंने दो पूर्ण पंख फैलाये हुए नृत्य करते मयूरों का बहुत ही मनोहर आसन बनवाया था। उनके कोमल कण्ठ में मोती का हार पहनाने से उनका सौन्दर्य और भी प्रस्फुरित होता है। जब आप उस मयुरासन पर विराजमान हुए तब मेरा हृदय अलौकिक आनंद से उभर उठा। मानो ये मयुर जिस प्राण–धन की प्रतीक्षा में खड़े हैं, उस जीवन–धन, गुरु–धन के निकटतम दर्शन से हर्षान्वित बनकर नाच उठेंगे तो मेरे नयन–चकोर आप आनंदघन गुरुदेव को निहारते कैसे हार जायेंगे; मेरा मन–मोर नाचे बिना कैसे रहेगा ! अन्त में यही हुआ कि मन–नयन दोनों ने अपने द्वार द्वारा, यह दीप्तिमान् आनंदघन को हृदय स्थित

नित्य चेतन में विलीन कर दिया। यह अनुभवगम्य हैं जो केवल असीम गुरुकृपा दृष्टि से ही कोई भाग्यशील जीव जो प्राप्त होती है।

उपस्थित वंदनीय संत–मुनिजन, विद्वद्–समाज एवं जनता बहुत भारी संख्या में उपस्थित थी। १२ दिन के सतत् वेद तथा भागवत्–पारायण तथा पञ्चदेव महायाग द्वारा, यहाँ की भूमि एवं समस्त वातावरण अति पावन एवं शुद्ध बन गया था। अमृत की एक बूंद भी जैसे मानव को दिव्यानंद प्रदान करती है, आपका असीम अनुग्रह एवं कृपा प्रसाद रूप, इतने महाभागों के दर्शन, सत्संग, पूजन एवं आशीर्वाद हमलोग कहाँ पा सकते थे? इस साधारण स्थान, देवस्थान में सब तीर्थधाम के रूप में परिवर्तित हो चुका है। उसके भाग्य की भी क्या सराहना की जाय। अस्तु।

गुरु–चरण–पादुका का मंदिर मँच पर रखा गया था। उसका उद्घाटन आपके परमभक्त श्री गोविंदराम आसवानी ने बहुत भाव से किया। सुंदर पुष्पहार चरणों पर रखकर हम प्रणाम कर बैठे। पश्चात् श्रद्धेय संत एवं आपके भक्तगण ने अपनी अपनी श्रद्धाञ्जली एवं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। समय के अभाव से, वक्ताओं को संक्षेप में ही कहना पड़ा। तदुपरांत, आप भी काफी अशक्त होने पर अधिक श्रम भी नहीं उठा सकते थे। वैसे ही यह ११ दिन का कार्यक्रम आप के लिए तो निःसंदेह परिश्रमयुक्त था।

आज तक मैं प्रायः पूर्व उत्सवों में भाषण देने शायद दो बार ही खड़ी हुई, क्योंकि मुझे इतना कुछ न तो ज्ञान है, न अभ्यास, न इच्छा भी। परंतु आपकी शताब्दि पर, मुख्य अतिथिरूप में मुझे कम से कम सौ शब्द आपको गुणावली रूप कहना ही था, इसलिये सादर समर्पित किये।

रतनबहन का प्रवचन :

अतिथि विशेष लेखिका श्रीमती रतनबहन थीं। उन्होंने प्रवचन किया—

परमादरणीय गुरुदेव, वंदनीय संत एवं विद्वद्गण, भाइयों तथा बहनों;

आज सद्गुरु–शताब्दि महोत्सव उनके पावन चरण–पादुका प्रतिष्ठा से और भी शोभायमान् बन रहा है। जहाँ–जहाँ प्रभु के चरण पड़ते हैं, वह भूमि अति भाग्यवान् एवं पवित्र हो जाती है। भक्तों के हृदय–पटल में नित्य विराजित गुरु-पद-पंकज की महिमा एवं तज्जनित आनंद अवर्णनीय है। उनका उज्ज्वल प्रकाश सौन्दर्य एवं परिमल भक्त–हृदय को सदैव आनंद–प्लावित रखते हैं। श्रीमद्भागवत् में लिखा है—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

मनुष्यों पर अनुग्रह करने के लिये, आप मानव-देह धारण करके, ऐसी क्रीड़ाएँ करते हैं जिन्हें सुनकर मानव तल्लीन हो जाय। आज ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि आपने **भगवान् वेद** के रूप में ऐसी सुन्दर देह धारण की, जिसके दर्शन मात्र से जीव का उद्धार हो जाय।

इस महोत्सव की दिव्यता के विषय में साक्षात् देवी सरस्वती भी अपनी लेखनी में असमर्थ ही रहेगी। ऐसी अनुभूति होती है कि पूर्ण चन्द्र के दर्शन से, जैसे महासागर उल्लसित एवं तरंगित होता, उछलता है, आपके दर्शन पाते ही, यह अथाह मानव-सागर आपका मंगलमय स्पर्श पाने के लिये उमड़ रहा है। इस संसार-सागर स्थित रत्न रूप अनेक संत मुनिजनों के दुर्लभ दर्शन, हमें अनायास ही, इस शुभ पर्व पर प्राप्त हो रहा है, जो सब तीर्थ-धामों की यात्रा से भी सुलभ नहीं होता है।

वास्तव में, यह विशाल वेद-नगर, जगद्गुरु आचार्य श्रीचंद्र की देव-भूमि है। कर्म-भक्ति एवं ज्ञान की त्रिवेणी रूप, पञ्चदेव यज्ञ, सामूहिक वेद-पारायण तथा रसमय श्रीमद्भागवत का कथा स्रोत बह रहा है। पतितपावनी, त्रितापहारिणी भगवती गंगा, मानो साक्षात् शिव स्वरूप, सद्गुरु गंगेश्वर से मुखरित होती, संतप्त जीवों को परम शांति, संतोष एवं आनन्द प्रदान कर रही है। असंख्य नर-नारी, हरद्वार में, अपने हृदय रूप दोने को, भाव सुमनों से भर कर प्रेम-दीप प्रज्ज्वलित कर, उस गंगा के पवित्र प्रवाह में बहाते हैं, जो नृत्य करता हुआ, अन्त में अपना संदेश पहुँचा कर, प्रीतम रूप प्रकाश अर्णव में विलीन हो जाता है। यह एक अति नैसर्गिक दृश्य हमें कितनी गहरी, शिक्षास्पद प्रतीति कराता है!

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद का यह सुंदर मंत्र है—

'तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्यः।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥

ऋ. वे. १-५०-४; अ. वे. १३-२-१९; २०-४७-१६

हे सद्गुरु सूर्य! आप सबके तारक-उद्धारक हैं। समग्र विश्व को देखते हैं और प्रकाश को पैदा करनेवाले हैं। इस रमणीय विश्व को आप प्रकाशित करते हैं। आप मूर्तिमान सूर्य-राशि ही नहीं, उन दोनों को भासमान् करनेवाले पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं, जिनका पार स्वयं वेद भी पा नहीं सकते।

नंदनंदन रससागर भगवान् श्रीकृष्ण ने समरभूमि में शंख-ध्वनि कर, कौरव सेना को सावधान की। भीषण युद्ध में रक्त की नदियाँ बह गईं एवं अस्त्र-शस्त्रों की अग्नि-ज्वालाओं से आकाश छा गया। परंतु आपने वेद-शंख की मधुर-

ध्वनि द्वारा, एशिया, यूरोप, अफ्रिका, अमरीका एवं आस्ट्रेलिया रूप, 'पंचजना' को, निद्रा से जगाकर, और वेदामृत की गागरें भर भर के, स्वयं अपने कर कमलों से पिलाकर, अपनी त्रिताप संतप्त संतानों को तृप्त किया। उन जगे हुए जीवों को अपनी वेद–गिरा–गंगा द्वारा ज्ञान प्रदान कराकर उनके अंधकारमय जीवन को उद्भाषित किया।

सौभाग्यवश मैं आपकी दोनों विदेश–यात्राओं में साथ थी। मैंने देखा, प्रत्येक स्थान में आपके पावन दर्शन एवं भाषण सुननकर लोक मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। आँखों से हर्षाश्रु बहाते, आनंद अतिरेक में आपका जयजयकार पुकार रहे थे। समस्त दिशाएं उस मधुर ध्वनि से झंकृत हो उठती थीं।

इतनी वृद्धावस्था होने पर भी, एक नवयुवक की शक्ति, साहस एवं उत्साह को शरमाये ऐसा अद्‌भुत वेद–प्रचार–प्रसार विश्वभर में कर, उदासीन संप्रदाय की उज्जवल आचार्य परंपरा के प्रचंड सूर्य आपने गुरु गंगेश्वर का नाम विश्व के इतिहास में अमर किया है। ऐसा अद्‌भुत शताब्दि महोत्सव 'न भूतो न भविष्यति', एवं हम सब अत्यन्त गौरवान्वित एवं कृतज्ञ हैं।

अन्त में—

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकमूर्तये॥

जो शुद्ध चिन्मयरूप से मन तथा वाणी से परे हैं, तथा जो व्यावहारिक दृष्टि से मन एवं वाणी के विषय हैं; जो अनंत विभूतिरूप हैं, तथा जो अपरिमित दया की मूर्ति है, ऐसे मेरे सद्‌गुरुदेव के चरण–कमलों में शत कोटि प्रणाम करती हूँ।

सद्‌गुरुदेव के आशीर्वाद

इस संमेलन में पूज्य गुरुदेव ने इस प्रकार आशीर्वचन दिया—

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।

उपस्थित वेदभक्त भाइयो और बहिनो आप लोगों ने बड़े–बड़े विद्वानों के मुख से वेद–ध्वनि सुनी और प्रवचन सुने। एक भक्त ने सोचा जब हम पूजा करते हैं, तो महाराज को बैठना पड़ता है। चन्दन लगाते हैं। माला डालते हैं तो एक गुरु पादुका बना दी। जो फूल माला पहिनाना चाहें चन्दन लगाना चाहे, चन्दन तो वहाँ लगाना भी ठीक नहीं रहेगा। फूलमाला भी डाले और अपना मनोरथ पूरा करें। दत्तात्रेय महाराज हैं जो आदिगुरु हैं, उन्हीं की पादुका

की पूजा गिरिनार में होती है । आबू में होती है । शायद इसी भावना से किसी भक्त ने यह मंदिर बनाया, जिसका उद्‌घाटन हमारे प्यारे भक्त गोविंद ने किया । अब वेदों का क्या रहस्य है, क्या तत्त्व हैं, यह तो गीता ने ही बतला दिया । **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः** । सभी वेद मेरा ही प्रतिपादन करते हैं चाहे ऋग्वेद को उठाओ, चाहे यजुर्वेद को, चाहे सामवेद को, चाहे अथर्ववेदको । किसी भी वेदमन्त्र को क्यों न पढ़े उसमें कृष्ण का ही प्रतिपादन दृष्टिगोचर होगा । मैंने अपनी पुस्तकों में यह प्रमाणित किया है कि इन सभी वेदों के मन्त्रों के अर्थ कृष्णपरक हैं । सबसे बड़ा वेदमंत्र जिसे हम वेदमाता कहते हैं, गायत्री कहते हैं, उसमें भी श्रीकृष्ण का प्रतिपादन है । यह मैं पहिले एक दिन कह चुका हूँ । अब अधिक कुछ नहीं कहता । आप लोगों में श्रीकृष्ण की अटल भक्ति हैं इसलिए मैंने संतों को कष्ट दिया । हमारे दो अखाड़े हैः एक पंचायती बड़ा अखाड़ा और एक पंचायती नया अखाड़ा । उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा के श्रीमहंत ब्रह्मऋषि सारी जमात को लेकर पूर्ण पंच परमेश्वर के साथ इस यज्ञ—इस उत्सव में पधारें । नया अखाड़ा कुछ दूर था. वह आ न सका । उन्होंने अपने मुख्य प्रतिनिधि व उस संस्था के प्रेसिडेन्ट गुलवन्तदासजी को भेजा । गुलवन्तदासजी बहुत से पंजाबी महन्तों को साथ लेकर यहाँ पहुँचे हुए हैं । अब बम्बई वासियों ने जो संतों की सेवा की विद्वान ब्राह्मणों की पूजा की उसको भुलाया नहीं जा सकता । अब हमारे बाबूराम काले जो अनन्य गुरुभक्त हैं, उन्होंने कहीं आना जाना ही रोक रखा है । इतने दिनों सरकारी कामों से अब समय निकालकर ये गुरु महाराज की शताब्दी महोत्सव में भाग लिया । मैं उन्हें आशीर्वाद देता हूँ, वे सच्चे गुरुभक्त व प्रभुभक्त बने । बम्बई की जनता ने जो मेरे आदेश का मानकर इस यज्ञ में सन्तों की, विद्वानों की, सेवा की उसके बदले बम्बई को जनता को ही नहीं समस्त भारत को जनता को आशीर्वाद देता हूँ । बस इसी तरह वेदों में प्रेम बना रहे । श्रीकृष्ण चरणों में अनुराग स्थित हो । केवल बम्बई में ही नहीं, इसी ढंग से १०८ वेद पारायण प्रत्येक नगर में हों। मेरे मित्र ज्ञानगिरिजी हिमाचल प्रदेश भाखड़ा नाँगल के सन्निकट रह रहे हैं । उन्होंने हिमाचल का कायाकल्प;कर दिया । कहीं जहाँ औषधि का दुःख है, रोगी है, वहाँ डॉक्टर हो नहीं हॉस्पिटल खोल दिए । जहाँ गाँवों में शिक्षा का प्रबन्ध नहीं था, वहाँ स्कूल का प्रबन्ध कर दिया । जहाँ लोगों को आने-जाने का कष्ट था, वहाँ सड़क बना दी । श्रीनगर में अमरनाथ गुफा के पास एक बहुत बड़ा स्थान बना दिया । अगर वर्षा पड़े तो यात्री उसमें अपना आश्रय ले सके । वे आए । उनको मैंने कहा—आपके यहाँ भी वेद पारायण होना चाहिए । वे इतने शीघ्र क्रियाधारी हैं । बोलते हैं पीछे, कार्य को पहिले कर डालते हैं । स्वामीजी मुझे निश्चित तिथि

बतलाओ क्या, बसंत पंचमी को १०८ वेद पारायण रख दूँ। मैंने कहा कि स्वामीजी, आपको धन्यवाद है, परन्तु मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मुझ में अब शक्ति नहीं, मैं थक गया हूँ ज़रा आगे कोई तिथि बढ़ाओ। संभव है दिवाली के आसपास १०८ वेद पारायण होंगे। और इसी प्रकार प्रत्येक नगर में, प्रत्येक ग्राम में जब वेदध्वनि होगी तो आपका राष्ट्र वेदों के मंत्र के प्रभाव से समृद्ध होगा, इसमें शांति का साम्राज्य होगा, यदि सच्ची वेदभक्ति हम में बनी रही। अब मैं तो बहुत ही वृद्ध हो गया हूँ। आपने देख ही लिया, बोल भी अधिक नहीं सकता हूँ। सभा में लेटता अच्छा नहीं होता। मैंने समझा, चलो शेषशायी भगवान भी लेटे हुए ही हैं। उनका अनुकरण करते हुए मैं लेट ही रहा और धन्यवाद है वहाँ की जनता को कि ग्यारह दिन हो गए, थके नहीं लोग। रविवार को टी. वी. देखने का बड़ा शौक़ होता है और टी. वी. वालों ने यहां टी. वी. लाकर उनको दिखा दी। इसे भुलाया नहीं जा सकता! रेडियो, टी. वी., दोनों ने ही वेद भगवान की इधर सेवा की और इस यज्ञ का पूर्ण चित्र लोगों के सामने प्रस्तुत किया। मारीशश व सूरिनाम का दृश्य यहाँ प्रस्तुत कर दिया। जब मैं मारीशस गया, तो ऐसा नहीं कि दो चार मिनट प्रसारण हो। वहाँ के प्रधानमंत्री पाँच दिन मेरे साथ रहे। घण्टों भर रेडियो पर और टी. वी. पर प्रदर्शन होता रहा। कैसे वेद की स्थापना हो रही है। क्या वेदों पर प्रवचन हो रहे हैं। सूरिनाम में तो थोड़ी-सी जनता है। पाँच लाख होगी या तीन-चार लाख होगी। आधे से अधिक हिंदू हैं। वहाँ तो हमारा राज्य हो रहा। जब भी रेडियो पर बोलो। सारे छोटे देश में क्या ग्राम, क्या शहर, क्या स्कूल, क्या मंदिर, सब जगह सुनाई देता था, वही दशा टी. वी. की थी। मारीशस में और सूरिनाम में रेडियों व टी. वी. ने रेडियो, टी. वी. द्वारा हमारी वेद स्थापना का प्रचार हुआ। भारत ने समझा हमारा वेदभक्त देश है। छोटे छोटे देश हमसे जब आगे बढ़ रहे हैं, तो हम पीछे क्यों रहें वेद प्रचार के लिए। इसी भावना से हमारी रेडियो और टी. वी. भी वेद प्रचार के लिए आकृष्ट हुए। बोलो भारत माता की जय। भगवद्भक्त कृष्ण भगवान के भक्तों की जय।

अध्यक्ष पद से माननीय श्री बाबूराव काले ने, अपना भाषण किया। पश्चात् श्री स्वामी गोविंदानंदजी वेदांताचार्य के आभार-प्रदर्शन करने पर, यह महिम महोत्सव सहर्ष, निर्विघ्न समाप्त हुआ।

नडियाद की सेवा

एक आवश्यक बात का उल्लेख करना मैं भूल गई हूँ। नड़ियाद के प्रसिद्ध संतराम-मंदिर के ब्रह्मलीन श्री जानकीदासजी महाराज के साथ आपका बहुत पुराना

मधुर संबंध रहा । उनके स्थान पर विराजित महंत श्री नारायणदास भी उच्च कक्षा के संत हैं एवं आपको अपने गुरु—तुल्य मानकर, अति स्नेह—सद्भावपूर्ण व्यवहार रखते हैं। मुझे भी संतराम मंदिर एवं पूज्य महंतजी के दर्शन का सौभाग्य दो-तीन बार मिला है। इस शताब्दि महोत्सव में उन्होंने आपको पूरा सहयोग देने के लिये, अपने परम सेवक श्री जयंतिभाई जोशीके साथ अन्य ५० स्वयं सेवकों को ठीक समय पर बम्बई भेजे थे और उन्होंने हमारे स्वामी आनंद भास्करजी, स्वामी गोविंदानंदजी आदि मुख्य कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर, बहुत प्रेम से सहयोग दिया। देवगढ़ बारिया से आपके पुराने स्नेही संत श्री नटवरलालजी, जो बड़े ही कार्यदक्ष, विवेकी एवं दूरदर्शी हैं, वह भी सहयोगी थे । प्रसिद्ध साधु—बेला के श्रद्धेय महंत श्री गणेशदासजी, जिनके साथ भी आपका बहुत पुराना संबंध है, उन्होंने बड़ी उदारता से, आगंतुक संत-महात्माओं का, अपने महालक्ष्मी स्थित संन्यास आश्रम में, निवास एवं खानपानादि को पूरी व्यवस्था की थी । इन सबका सौजन्य एवं औदार्य—पूर्ण सहयोग के लिये मैं गुरुदेव की ओर से हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करती हूँ, जिनके सहयोग के बिना ऐसा विशाल कार्य सफल नहीं हो पाता । और भी अन्य संस्थाएँ, जिन्होंने इस जग—पावन सुअवसर को सफलता प्रदान की है, उन सब का मैं हृदय से धन्यवाद करती हूँ। इसके अतिरिक्त आपके विदेश निवासी प्रेमी भक्तों, श्री नारी पोहानी, श्री रेवाचंद मीरपुरी, श्रा सीरुमल दादलानी, श्री मुरलीधर चेनराय एवं परिवार, श्री जोहनी मीरचंदानी, श्री राम आडवानी आदि जो दूर—दूर से प्रेमवश पधारकर, गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुए, उन सब सुभागी शिष्यों को गुरुदेव की ओर से धन्यवाद तथा आशीर्वाद देती हूँ कि वे दीर्घायु बनकर, लौकिक एवं पारमार्थिक ऐश्वर्य को प्राप्त हों ।

भारत के कोने—कोने से भी अनेक प्रेमी संतों, विद्वानों तथा शिष्य-परिवार ने इस महोत्सव में सहर्ष तन-मन-धन से सहयोग दिया है, उनका भी यहाँ पर मैं आभार व्यक्त करती हूँ। अहमदावाद से श्री डाहीबहन, कमलाबहन, मनुभाई पटेल, श्रीमति प्रभाबहन पटेल, श्रीमति नीलम एवं डॉ. गौतम पटेल, सूरत से श्री हसमुखलाल रेशमवाले सपरिवार, श्रीमति लता एवं डॉ. राजेन्द्र नाणावटी, नडियाद से श्री बाघजी भाई देसाई, बड़ौदा से श्री ठाकोरभाई पटेल, दिल्ली से श्री किसन चंद वधवा सपरिवार, श्री बी. एस. त्रिखा, श्री चूगानी, श्री अमरसिंह, श्रीमति संतोष तथा मधुसूदन, पुष्पाबहन, अमृतसर से श्रीमति रेशमोबहन, लुधियाना से श्री सुरेन्द्र दुगल श्रीनगर से विश्वनाथ सहगल सपरिवार के नाम उल्लेखनीय हैं । विशेष उल्लेखनीय है श्री बालचन्द पमनानी और उनका सारा परिवार जो प्रतिवर्ष पू. गुरुदेव की तन, मन एवं धन से सेवा करता है। वैसे तो बसें भर—भर के उपर्युक्त स्थानों से जनता

भाग लेने के लिए उपस्थित थी, परंतु सबकी नामावली देना असंभव है, अतः उदार वाचक-गण मेरी इस असमर्थता पर नाराज न होकर क्षमा ही करेंगे ।

सद्गुरु जन्म-शताब्दि महोत्सव वास्तव में वेद-स्वरूप गुरुदेव की ही अपने विश्वरूप संतान पर असीम कृपा-दया दृष्टि तथा वात्सल्य का ज्वलंत प्रतीक है। ऐसा अभूतपूर्व महोत्सव, ऐसा अति सुभग लोकोत्तर दर्शन, न कभी हुआ है, न होगा ।

त्वं यज्ञेषु ईड्यः ।

अब आपके पुण्यमय जीवन-चरित का यह तीसरा भाग यहाँ पूर्ण हो रहा है अतः जैसे प्रारंभ में गुरु-स्तुति रूप मँगलचरण है, वैसे अंत में भी मेरे प्रभु की गरिमा-गान एवं समस्त विश्व को ओर से चरण–वंदना करके विराम करूंगी । **भगवान् वेद** की चेतन–प्रतिमा रूप आपकी महिमा भी, वेद की पावन ऋचा द्वारा **ही** व्यक्त होगी ।

दिव्य गुण निकेतन सर्वशक्तिसंपन्न सदगुरु के गुणों की अवधि नहीं । उनको गणना न आजतक किसी ने की, न किसी में करने को क्षमता हो सकती है। वेद गुरु अनंत है, इसलिये आपके गुण भी अनंत हैं । भागवत् का कहना है—

सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
माशीस्तथानुभजतः　　पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमर्थ भगवन् परिपाति दीनान्
वाश्रेव　वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥

—श्रीमद् ८–८–१७

आपके चरणारविंद पाना अलभ्य लाभ है । उनकी प्राप्ति के पश्चात् प्राप्तव्य कुछ रहता ही नहीं; आप स्वयं ही अनुग्रह करने के लिये कातर रहते हैं और भक्तों के कल्याण साधन के लिये उसी प्रकार आतुर बैठे रहते हैं, जैसे रँभानेवाली गाय अपने छोटे बच्चे की ओर । इस उपमा के अंदर कितना वात्सल्य, कितनी व्यग्रता छिपी है । इसीलिये आप हमारे कल्याणार्थ उन सब रूपों को धारण करते हैं, जिन स्वरूप में वे आपको देखना चाहते ।

भक्ति में महात्म्य-ज्ञान की भी अपेक्षा रहती है। दैवीमीमांसा में लिखा है—**'माहात्म्यज्ञानमपेक्ष्यम्'** । आप जैसी भगवद्स्वरूप विश्व-विभूतियों की लीला सुनकर या पढ़कर, प्रेम-प्रीति का उद्भव होता है, मनोहर लीलाओं से अनुराग जाग उठता है । हम आपके शरणागत भक्त-शिष्यगण, आपके विधविध लीला कार्यों का स्मरण कर गद्–गद् हो जाते हैं और आपके सतत् स्मृति जल-सिञ्चन से हमारी श्रद्धा-भावना पल्लवित, तथा अधिक बलवान् बनती है। किसी भी अवतारी महापुरुष

का माहात्म्य जाने बिना, मनुष्य को ज्ञान ही कैसे हो सकता है कि उन्होंने अवतार धारण कर क्या क्या लीलाएँ कीं । इसी आंतरिक प्रेरणा से मैं आपको वर्षों तक बिनती करती रही कि आप अपने जीवन–चरित को लिखने की मुझे आज्ञा दें । परंतु पूरे सात वर्ष तक आपने इस प्रस्ताव का स्वीकार नहीं किया । यह मैं अवश्य मानती हूँ कि पूर्ण ज्ञानी पुरुष नित्य अद्वैतभाव स्थित होने पर, शरीर, मन, इन्द्रियाँ प्राणादि से पृथक रहते हुए, अपनी सहज स्वरूप स्थिति में आनंद-निमग्न रहते हैं । जैसे सागर सदा परिपूर्ण रहता है, न किसी को बुलाता है, न किसी के पास जाता ही है, हाँ, जो उनके तटपर पहुँच कर, जो कुछ अच्छा-बुरा कार्य करे; कोई सूर्य पूजा करे, पुष्पमाला पहनाये, या कोई स्नान करे, तो कोई अपने मैले वस्त्र धोये, पानी में कचरा भी विसर्जन करें, परंतु सागर किसी भी पवित्र, अपवित्र कृति से न तो प्रसन्न होकर उपहार देता है न नाराज होकर दण्ड ! इसीलिये कि वह सदा निज स्वरूप-स्थित है; उसकी गहराई एवं विशालता कोई नाप नहीं सकता इतना महिमा युक्त है ।

वर्षों से आपके जीवन सागर-तट पर खड़ी मैं आपको अद्‌भुत, अवर्णनीय महिमा को, आपके अंतस्तल–स्थित असंख्य दीप्तिमय रत्न-राशि को देखती, मेरी हृदय–गुहा में संजोती रही हूँ । सन् १९६३ के आखिर में आप दयानिधान तो हैं ही, जीवन-चरित के मेरे प्रस्ताव को प्रसन्नता से स्वीकार करते, सहर्ष लिखने की अनुज्ञा दी एवं साथ साथ सब आवश्यक बातें भी बताई । आपके इस अनुग्रह से मेरा हृदय भर गया, मैं नतमस्तक हो गई ।

यह इसलिये लिख रही हूँ कि आप अपने भक्त, रसिक-प्रेमियों के रिझाने के लिये एवं साथ ही विश्व-कल्याणार्थ इस धराधाम पर अवतरित हुए हैं, यह सत्य, आपके पावन जीवन-चरित्ररूप दिव्य दर्पण के विना प्रगट नहीं हो सकता था । बिना सद्‌गुरु के परमार्थ संभव ही नहीं है । जैसे चंद्र के बिना चाँदनी नहीं, सूर्य के बिना किरणें नहीं, बिना आँखें दर्शन नहीं, बिना मथे मक्खन नहीं, तो बिना गुरु परमार्थ भी नहीं । और तो क्या, श्रीमद्‌भागवत् में श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कुन्तीदेवी ने कहा था कि 'जो परमहंस मुनि हैं, ये तुमको प्राप्त नहीं कर सकते । भक्ति-योग का विधान करने के लिये यदि तुम स्वयं आने की कृपा नहीं करते, तो जीव के लिये अन्य कोई उपाय नहीं ।' कुरूप में किसी भाग्यवान् के ही ऊपर श्रीकृष्ण कृपा करते हैं । वस्तुतः सद्‌गुरुरूप में उनकी इस कृपा को ग्रहण करना ही भक्ति-पथ की साधना में सिद्धि-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है ।

आप अशरण शरण हैं। हम सब सर्वतोभावेन आपके शरणागत हैं। प्रार्थना है कि—

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा।
त्वं यज्ञेषु ईड्यः॥

—ऋ. ८-११-१०, यजु० ८-१६, अथर्व० १६

इस वैदिक प्रार्थना के साथ, मैं वाचकवृन्द से यही नम्र अनुरोध करती हूँ कि यह '**योगेश्वर गुरु गंगेश्वर**' चरित्र को साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का ही चरित्र मानकर, उसकी रम्य पावन लीलाओं का नित्य स्मरण, पठन-पाठन करते रहें, उनके अनुपम गुण-रत्नावलि के सुभग अलंकार से सदैव विभूषित रहने का प्रयास करें, एवं उनको त्रिलोक पावनी ज्ञान-गंगा में अवगाहन कर, अद्वैत-आनंद प्राप्त करें।

पंचायती बडा अखाडा के श्रीमहंत श्री ब्रह्मऋषिजी प्रवचन करते हुए

महाराष्ट्र राज्य के मंत्री श्री बाबूराव कालेजी साथ में सर्वश्री गोविन्दभाई आसवानी, स्वामी गोविन्दानन्द, श्री मुरलीधर आसवानी एवं श्री जेकिशनदास पमनानी
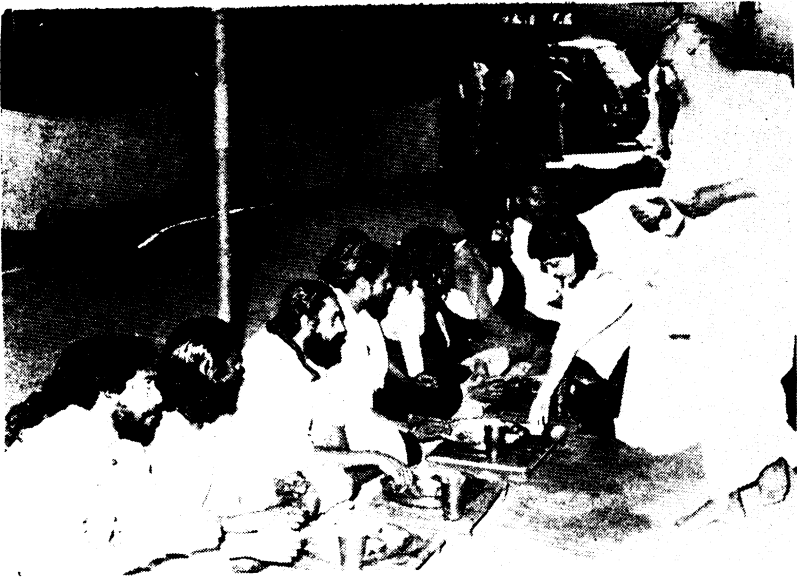
पंचायती बडा अखाडा उदासीन हरद्वार के कुठारीजी स्वामी श्री गोपालदासजी और जमात के संत

जन्म शताब्दी महोत्सव में भंडारे का दृश्य

लेखिका का जीवन और सर्जन

परिशिष्ट–१

(डॉ. जगन्नाथ शर्मा, (एम. ए.; पीएच. डी.; डी. लिट्) ने अपने **'उदासीन सम्प्रदाय के हिन्दी कवि और उनका साहित्य'** नामक टंकित शोध ग्रंथ कि जिसका मेरठ विश्वविद्यालय में डी. लिट्. के हेतु स्वीकार किया गया है, उसमें श्रीमती रतन बहन फोजदार के लिए जो गौरवपूर्ण विधान किये हैं, उनमें से अवतरित आंशिक उद्धरण वाचकों की सेवा में यहाँ प्रस्तुत है।—संपादक)

श्रीमती रतन फोजदार (जन्म १९०९ ई.)

श्रीमती रतन फोजदार, जिन्होंने स्वयं अपना नाम रतन बहन फोजदार लिखा है, आजकल १५, लिलीकोर्ट, ११३, जे. टाटा रोड, बम्बई–२० में रह रही हैं। आप उदासीन सम्प्रदाय के महान् विद्वान एवं दार्शनिक श्री गंगेश्वरानंद की शिष्या हैं।

आपका जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया सन् १९०९ को अपने नाना जी के घर 'वढवाण' (आज का सुरेन्द्रनगर, गुजरात) में हुआ था। आपकी पूज्यमाता श्रीमती कान्ता एवं, पिता श्री वरजीवनदास सरैया थे। इनके परिवार में पिता जी की एक विधवा बहन 'सूरज' रहती थी, जिसकी आध्यात्मिक रुचि का सीधा प्रभाव रतन जी पर पड़ा था। रतन जी के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा में इस महान् महिला का योगदान रहा है।

लेखक ने जब रतन बहन को पत्र लिखा कि कृपया अपना जीवन और रचनाएँ भेज दीजिए, तो उन्होंने अपना संक्षिप्त जीवन परिचय और रचनाएं प्रेषित कर मुझे अनुगृहीत किया। आपके अनुसार "मुझे बचपन से ही चित्रकला एवं संगीत का भारी शौक था, मानो कोई पूर्वजन्म के ही संस्कार हों। सोने में सुगंध की भाँति मेरे वत्सल पिता का योगदान मेरे इन गुणों को और विकसित करने लगा। पिताजी ने इन कलाओं में विकास करने हेतु एक शिक्षक नियुक्त किया जिससे मैंने दो वर्ष शिक्षा प्राप्त की और १९२४ व १९२५ में क्रमशः 'एलिमेण्ट्री' एवं 'इण्टरमीडिएट' आर्टस की परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लीं। पिताजी इस पर बहुत प्रसन्न हुए। स्कूल में भी मैं इन कलाओं में प्रथम आती थी। १९२८ में मैट्रिक पास किया।

सन् १९२७ में छोटी बहन का विवाह हुआ, किन्तु दुर्भाग्यवश १९२९ में क्रूर काल ने उस कोमल कली को कवलित कर लिया। सारा परिवार शोक-सागर में डूब गया और मेरे मन पर इस घटना से गम्भीर चोट लगी। इस प्रहार से 'आह से निकला होगा गान' के अनुसार काव्य का स्फुरण हुआ। यही दुःखद प्रसंग मेरी रचना-धारा का आदि शृंग बन गया।

सन् १९३१ में मेरा विवाह हमारी जाति के प्रतिष्ठित सज्जन सोलिसीटर श्री मोतीलाल फोजदार के सुपुत्र श्री हसमुखलाल के साथ सम्पन्न हुआ। मेरे श्वसुर उच्च कोटि के भक्त संगीतकार भी थे। स्वामी नारायण के मन्दिर में वे परिवार के अन्य सदस्यों को भी साथ रखा करते थे। बिना पूजा किसी को भोजन नहीं करने देते थे। यह मेरा सौभाग्य ही था कि ऐसे शिक्षित धर्म-वैभव सम्पन्न परिवार से मेरा सम्बन्ध जुड़ा था। मेरे पतिदेव तो सचमुच देवता ही थे। धर्म-प्रेमी, परोपकारी, उदारचित्त सत्यनिष्ठ एवं नम्र। हमारा दाम्पत्य जीवन सुखद, सरल और प्रेमपूर्ण था। १९३९ ई० में एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्री नीना और पतिदेव के स्वास्थ्य-सुधार के लिए १९४७ के जून मास में हम तीनों स्विटरजरलैण्ड गए। मेरे माता पिता दो मास पूर्व भ्रमणार्थ अमेरिका गए थे। वहाँ से वे हमारे पास जिनेवा आ पहुँचे और ३ नवम्बर को सब भारत लौट आए।

सन् १९४२ से ही मेरा मन उदास रहने लगा। किसी आध्यात्मिक संस्कार साधना की स्मृति उठने लगी। साधारणतया दुःख-आपत्ति के कारण जीवन में क्षणिक वैराग्य की लहर आ जाती है, परन्तु मेरा जीवन तो सब ओर से परिपूर्ण, सब सुख-सम्पन्न था। सब कुछ होने पर जीवन में एक वस्तु का अभाव खटकता रहता था। उन दिनों मेरा जीवन भक्तिनी मीरा की इस उक्ति का प्रतिबिम्ब बन गया था—"मीरा की प्रभु पीर मिटे जब वैद साँवरिया होय।" दिनांक ९-११-१९४७ को मेरे पतिदेव और मैंने स्वामी गंगेश्वरानन्दजी से दीक्षा ली।

रचनाएँ—ऊपर कहा जा चुका है कि रतन बहन फोजदार की काव्य-लेखन रुचि सन् १९२७ से प्रकट होने लगी थी। इनकी छोटी-मोटी काव्य कृतियाँ ३५ से ४० तक बतलाई जाती हैं जिनमें से अनेक हस्तलिखित रूप में ही होंगी। अब तक प्रकाशित काव्य-संकलनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) गंगाधारा—१९४८ में कवयित्री की यह प्रथम रचना प्रकाशित हुई जो अध्यात्म भाव सम्पन्न भक्तिगीतों का संकलन है। मुक्तक काव्य है।

(२) **प्रेम रतन**—यह रचना अनूदित है। वियोगी हरि कृत 'प्रेमयोग' नामक हिन्दी रचना का गुजराती में अनुवाद मात्र है।

(३) **आचार्य श्रीचन्द्र**—प. सीताराम चतुर्वेदी की रचना 'जगद्‌गुरु आचार्य श्रीचन्द्र' की प्रेरणा से लिखे गए गीतों का संग्रह है।

(४) **योगेश्वर गुरु गंगेश्वर**—यह एक गद्य-रचना है, अतः हमारा प्रतिपाद्य नहीं।

(५) **गुरु-स्तुति-रतन**—५० पृष्ठों की यह पुस्तक रतन बहन के भक्ति गीतों का संग्रह है। यह गुजराती और हिन्दी दोनों में प्राप्त है।

कवयित्री की काव्य रचनाओं पर विहंगम दृष्टि डालने से विदित होता है कि जीवन की भावुकता और कला के सुन्दर समन्वय ने उन्हें प्रभावोत्पादक बनाने में पूर्ण योगदान किया है। महादेवी की भाँति कवयित्री चित्रकला में भी दक्ष हैं। अतः इसका प्रभाव इनके काव्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'बरसो आनंद घन' नामक गीत में ग्रीष्म के बिम्ब द्वारा ही वर्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है जो लक्षणा से अध्यात्म ज्ञान पिपासा की द्योतक है। छोटी-छोटी पंक्तियों में विस्तृत भाव भरना कवयित्री की विशेषता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

बरसो बरसो आनंद घन
नीरस सागर सर सरिता सब
सूख गए उपवन ॥ १ ॥ बरसो०

चातक स्वाती जल के प्यासी,
स्वाति सिवा के नहि अभिलासी,
जायँ न त्यागी तन ॥ २ ॥ बरसो०

पपिहा पीयु पीयु पुकारे,
गगन निहारी विरह बिसारे,
तुम हो जीवन घन ॥ ३ ॥ बरसो०[1]

रतन बहन का काव्य कोमल और गम्भीर है। एक स्थान पर वे कहती हैं कि यह धरती दुःख दावानल की प्रचण्ड ज्वालाओं से अभिभूत है। उसका वक्षस्थल छिन्न-भिन्न हो रहा है। हे घनश्याम ऐसी स्थिति में आपका विरह अग्नि में काष्ठ का काम कर रहा है। उसकी इस करुणावस्था का वर्णन असम्भव है। आप से

(१) गुरु-स्तुति रतन, पृ० २९

प्रार्थना है कि सब इसकी सहायता करें। अपनी शीतल सुधा–धारों से उसकी दाह–वेदना को दूर करके उसे पुनः नवजीवन प्रदान करें। आपके भक्तों और अनन्य प्रेमियों के हृदय सरोवर आपके विरह के कारण नीरस हो गए हैं। मुख पर प्रतिबिम्बित उदासीनता इनकी व्यथा को व्यक्त कर रही है—

अति संतप्त भई है धरती।
विरह व्यथा अब जाय न बरनी।
कैसे होय मिलन ॥[1]

रस सुधामृत धार बहाइयो
नीलाम्बर अवनि पै बिछाइयो
पूरो नव चेतन ॥

ठहरो दूर न अब आवो नेरे।
मधुकरी मांगत नैनन मेरे।
रतन प्राण जीवन ॥

इस कवयित्री की रहस्याभिव्यक्ति बहुत प्राणवान है। मिलन के प्रसंग में अपने हृदय की प्रसन्नता प्रकट करने में वे तनिक भी संकोच नहीं करती, अपितु चिल्ला कर कह उठती है कि मेरे हृदय के उपवन में बसन्त ऋतु खिल उठी है। मेरे स्मृति जल से सींची हुई प्रेम लता विलस रही है और उस पर सद्गुणों के सुमन महक उठे हैं। आनंद की लहरें जीवन से उठती हैं और पुष्पों की सुगंध चतुर्दिक प्रसारित हो गई है। उदाहरणार्थ—

उर उपवन सखि खिली बसंत।
प्रेम लता मम स्मरण सलिलता।
सिंचन को विलसंत ॥

सुन्दर सद्गुण सुमन सुहावें।
आनंद मंद सुगंध बहावें॥
नाम मधुर मन कोकिल कूजति—
कीर्तन केलि करंत ॥[2]

गुरु–स्तुति रतन के पद कहीं कहीं तुलसी की विनय पत्रिका के आरम्भिक देवोपासना के पदों की भाँति संस्कृत विशेषणों की परिगणना मात्र बन कर रह गए हैं।

(१) गुरु–स्तुति रतन, पृ० २९
(२) वही पृ० ३०

यथा—

साकार सुन्दर रूप भूतल भक्त वृन्द विहारणम् ।
प्रभु–पाद–पंकज–गंध लौलुप भृंग जीवन धारणम् ॥[1]

इस प्रकार के अनेक उदाहरण फोजदार बहन के काव्य में प्राप्त होते हैं, जिनसे विदित होता है कि इनका काव्य भाव और कला दोनों दृष्टियों से सुन्दर और आकर्षक है । रतन बहन उदासीन सम्प्रदाय के नन्दन वन में उस पारिजात पौधे की भाँति हैं जो सर्वत्र अपने परिमल का प्रसारण करता रहता है । यद्यपि इस कवयित्री की समस्त रचनाएँ प्राप्त नहीं हो सकीं परन्तु जितने गीत भी उपलब्ध हुए हैं उनमें उनके भावुक हृदय का कवि जितना मधुर है उतना ही संगीतपूर्ण, जितना कलात्मक है उतना ही आकर्षक और जितना प्रेम सम्पन्न है उतना ही गम्भीर भी ।

—डा० जगन्नाथ शर्मा कृत "उदासीन सम्प्रदाय के हिन्दी कवि और उनका साहित्य" नामक टंकित शोध ग्रंथ (मेरठ विश्वविद्यालय में डी० लिट० हेतु स्वीकृत) से अवतरित आंशिक उद्धरण ।

(१) गुरु–स्तुति रतन, पृ० ३१

लेखिका का विदेशयात्रा बाद प्रवचन

परिशिष्ट–२

विश्वयात्रा के बाद भारत पहुँचने पर बम्बई वासियों के समक्ष **श्रीमती रतनबहन फोजदार** द्वारा दिया गया प्रवचन—

हमारी विश्वयात्रा ता. १२ एप्रिल से लेकर ३१ जुलाई को पूर्ण हुई। **भगवान् वेद** की असीम कृपा तथा पूज्य गुरुदेव के अगण्य प्रेमी भक्त शिष्यों का तन–मन–धन से संपूर्ण सहयोग एवं सेवा भावना से हमारी यात्रा सुचारु रूप में सुसंपन्न हुई।

बम्बई में गुरु गंगेश्वर इन्टरनेशनल वेद मिशन के सदस्यों ने विदेश–निवासी अपने अपने स्नेही स्वजनों के घरों में, पू. गुरुदेव एवं उनके अन्य साथियों की इतनी सुंदर व्यवस्था कर रखी थी, कि इतना लम्बा प्रवास होने पर भी हमलोग सर्वथा स्वस्थ रहकर, भिन्न-भिन्न स्थानों के निश्चित कार्यक्रम को सफल बना सके। सिंधी, गुजराती, पंजाबी जनता ने अपूर्व भावभक्ति, प्रफुल्लित मन–हृदय से जो सुंदर सेवा की, मधु लोलुप भ्रमर बन, गुरुदेवर के शब्द सुमनों की सौरभ एवं रस का आस्वादन किया, उनके दिव्य दर्शन से जो अगम्य आनंद की अनुभूति की, वह अवर्णनीय है। गूंगे को गुड़ दो और पूछा कि कितना मीठा है ! कोई बता सकेगा ! यह तो केवल अनुभवगम्य ही है।

नैरोबी, लंडन, बर्मिंगहाम, मान्चेस्टर, लीड्स, लेस्टर, झुरीक, रोम, लेगोस, न्यूयोर्क, वोशिंग्टन, बोस्टन, मोन्ट्रीअल, टोरन्टो, शीकागो, वेन्कुअर, सान फ्रांसीस्को और लोस एन्जेलीस एवं आगे वेस्ट इन्डिझ में मायामी, मोन्टीगोबे, किन्गस्टन, ज्योर्जटाऊन, सुरीनाम (परामारीबो) तथा पोर्ट ऑफ स्पेन (Trinidad) होते हुए, ता. २६ जुलाई को हमलोग लंडन पहुँचे।

इन देशों में, विभिन्न मंदिरों में, आश्रमों में, विश्व विद्यालयों तथा पुस्तकालयों में, रामकृष्ण मिशन में और कुछ गृहस्थी भक्तों के घरों में **भगवान् वेद** की प्रतिष्ठा पू. वेद स्वरूप, पू. गुरुदेव के करकमलों से की गई। उस समय स्वर्गीय दृश्य बना रहता था, मानो उस धन्य, परम पुनित मंगल अवसर पर तैंतीस कोटि

देवता भी लालायित बन वहाँ उपस्थित होते थे। जनता में एक अद्भुत आनंद लहरी छा जाती थी, सूर्योदय के समय सरोवर में खिले हुये सरोज के समान, नर-नारिओं का मुखकमल आपके दर्शन मात्र से ही प्रफुल्लित दीखते थे। पश्चात् आपकी वेद-गिरा-गंगा के अस्खलित प्रवाह में श्रोताजन सचमुच डूबते-उतराते परम शक्ति एवं शीतलता का अनुभव करते अघाते ही नहीं थे। पूर्णिमा का पूर्णचंद्र सोमरस की धारा बहाता हो तो भला कौन ऐसा रसिक प्रेमी होगा जो उस अमृत का पान करने में तृप्ति अनुभव न करे! यही दिव्य दशा मेरी भी हुई एवं सर्वत्र मुझे दृष्टिगोचर हुई। निर्मलाबहन लंडन में परम प्रेमी-भक्त श्री मुरलीधर तथा पिताम्बर चेनराय (कमलाबहन) लेगोस में उनके दो बड़े भ्राता श्री गिरिधर तथा दामोदर को जो पू. गुरुदेव एवं साथियों की तन-मन-धन से, अपना व्यवसाय छोड़कर, हार्दिक सहयोग के साथ सेवा में संलग्न रहे हैं, उनके लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं है, मैं केवल इतना ही कहूँगी कि वे चारों भ्राता अपने कुल-दीपक एवं भारत के भूषणरूप हैं, बर्मिंगहाम में १ सप्ताह हम डॉ. सुरेश वशी एवं प्रतिभा के घर में बहुत आनंद से ठहरे, दोनों अति प्रेमी-नम्र एवं सेवाभावी हैं, झुरिक में स्वामी ओमकारानंद के Divine Life Centre में तीन दिन रहे, वहाँ पर चौबीस घण्टों वेद-ध्वनि से आकाश गूँजता रहा, जर्मन, फ्रेन्च, स्वीस के युवक-युवतियाँ काफी संख्या में आश्रम का समस्त कार्य संचालन सुचारु रूप में सहर्ष करते देखे, स्वामीजी स्वयं २२ घण्टे काम कर, केवल दो घण्टे विश्राम करते हैं, होम हवन के साथ श्रीसूक्त, पुरुष सूक्त तथा रुद्राध्यायी का पाठ स्पष्ट अति शुद्ध स्वरों में, छोटी-छोटी बालिकाओं से जब गुरुदेव ने सुना तब प्रभु को अति आश्चर्ययुक्त प्रसन्नता हुई, क्यों कि इतनी कोमल वय में, इतनी निश्चलता एवं लगन इन विदेशी पुत्रियों में देखकर प्रसन्नता क्यों न होगी! कुछ क्षोभ भी था कि भारत की प्रौढ़ संतान को भी जहाँ 'वेद' क्या है इतना ज्ञान नहीं वहाँ इन विदेशियों को धन्यवाद है जो दिनरात भारतीय संस्कार समृद्धि से संपन्न बन, अपने अमूल्य जीवन को कृतार्थ कर रहे हैं। हाँ, अवश्य ही, उनके उत्थान का मूल पथ-प्रदर्शक भी हमारा भारतीय संत-समाज ही है, इस सत्य को भूलना न होगा।

विस्तार-भय से, यहाँ केवल उल्लेखनीय सेवकों का ही नाम निर्देश करती हूँ। न्यूयार्क के हमारे अति प्रेमी उत्साही सेवाभावी नवयुवक श्री नारी पोहानी ने अमरीका की समस्त यात्रा के कार्यक्रम को कुशलतापूर्वक सफल बनाया; वाशिंग्टन में प्रेम बालामा, टोरन्टो में श्री नारायण डाडलानी, श्री नटवरलाल ठाकोर, वेन्कुवर, श्री रामकृपलानी (Trinidad), श्री नानक दरियाजानी, श्री शाम सानी (मायामी) श्री प्रभुलाल राठी (मांग्रोआल) आदि ने हार्दिक सेवा-सत्कार किया। बम्बई के

भक्त शिष्य गण में भी श्री अर्जनदास दासवानी, भाई मथुरादास वसियामल, श्री मुरलीधर–गोविंद आस्वानी, श्याम कृपलानी, श्री हशमतराय तथा ईश्वरभाई वकील, श्री मथुरादास चावला, श्री किशनचंद मगनानी, बालचंद, जयकिशनदास तथा लछमन पमनानी और हमारी केटीबहन सीप्पी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं; वैसे तो मेरे गुरुदेव श्रीचंद्र अगणित नक्षत्र निहारिकाओं के धवल तेज से सुशोभित हैं।

विदेश में स्थित, भारतीय राजदूतों ने भी अति सम्मानपूर्ण सहकार दिया। रोम के पुस्तकालय में **भगवान् वेद** भेंट किया। पेपल कमिशन के प्रेसिडन्ट कार्डीनम पिग्नेडोली ने पू. गुरुदेव के साथ चर्चा की, एवं बाइबल की एक प्रत सप्रेम भेंट की। विभिन्न विदेशी धर्माधिकारियों ने बड़े सम्मान एवं हार्दिक प्रेम से सने हुए शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त की, समस्त विश्व को एक प्रेमसूत्र में बाँधकर, एक छत्र साम्राज्य स्थापित कर, प्राणीमात्र का जीवन सत्यम् शिवं सुंदरम् बना देने का गुरुदेव का यह अपूर्व प्रयास अतुलनीय है।

प्रायः सब स्थानों में, गूढ़ वैदिक तत्त्वों का सरलता से स्पष्टीकरण करते हुए, जो अति मननीय एवं रसपूर्ण प्रवचन आपने किये, उनको सबने टेप कर लिया, इतना ही नहीं, आपने चारों वेदों की सर्वप्रथम एक एकाऋचा या मंत्र पढ़े, पश्चात् सब शांतिपाठ टेप कराये, ताकि प्रतिदिन प्रातःकाल वह टेप द्वारा वेद मंत्रों की सुमधुर सुरावली से आकाश गुँजता रहे। देखिये, कितना प्रगाढ़ वेदानुराग! कितनी प्रबल विश्व–मंगल भावना! हम आपके श्री चरणों में सदैव नतमस्तक हैं।

आक्रा घाना में भी आप एक दिन अपने भक्तों की प्रार्थना पर पधारे। वहाँ एक हिन्दू मंदिर में ज्ञानानंद नामक आफ्रिकन साधु का, आफ्रिकन भाई बहनों के साथ, अत्यंत भावपूर्ण **ॐ नमः शिवाय** का कीर्तन देख हम सबको बहुत प्रसन्नता हुई। Divine Life Society के आद्य स्थापक ब्रह्मलीन स्वामी शिवानंदजी के एक शिष्य से वह दी में उन्होंने दीक्षा ली थी। टोरन्टो में स्वामी ज्योतिर्मयानंदजी का Divine Life Centre नाम का आश्रम है, वहाँ भी अमेरीकन–जनता ने स्वामीजी के सतत् प्रयास से प्रशंसनीय धार्मिक प्रगति की है। उनके प्रेस में नयी नयी धार्मिक शिक्षाप्रद पुस्तकें छपती रहती हैं।

Trinidad में, वहाँ के मुख्य प्रतिष्ठित पुरुषों ने तथा विद्वानों ने पूज्य गुरुदेव की वेदयात्रा के संस्मरणरूप 'Reflections on the Vedas' शीर्षक एक छोटी–सी पुस्तिका तत्काल छपाई, जिसमें वहाँ के सनातन धर्म महासभा के President General Dr. D. Omah Maharaj; Governor General Sir Ellio Clarke, President of the Senate Dr. Wahid Ali, House of Representatives के speaker

Mr. C. Thomasos, Port of Spain के Mayor श्री Laxmidatta Shivaprasad, Indian High Commissioner, Dr. Barkat Ahmed, Professor of Indian Studies J. C. Jha तथा Sanatan Dharma Maha Sabha के Assistant Secretary श्री सुरेन्द्रनाथ कपीलदेव ने वेद–विषयक अपनी विचार धारा व्यक्त की है। Trinidad से ये पुस्तकें हमें मिल जाने पर आपको वितरण की जायेगी।

San Fransisco में The Brotherhood of Man Honor Award Rev. Dr. C. Mohler Block जो Director of Religious Institute हैं, तथा Brother Charles जो Bishop of the world temple हैं, उन्होंने मानपत्र दिया।

महापुरुषों के स्वाँग में पूर्ण परात्पर ब्रह्म नंदनंदन श्रीकृष्णचंद ही अपनी अनुपम लोला द्वारा, अपने भक्त–प्रेमियों का दिव्यानंद की अनुभूति कराते रहते हैं।

आज के मंगल दिन, हम सब यही दृढ़ संकल्प करें कि हमारे आराध्यदेव के आदेशानुसार, हम प्रतिदिन प्रेमपूर्वक **भगवान् वेद** का दर्शन पूजन करें, वेद का पठन–पाठन करें और करायें एवं वेद–विदित निष्काम कर्मों द्वारा, अपने अमूल्य मानव–जीवन को ज्ञान–प्रदीप प्रगटा कर, परमानंद को प्राप्ति करें।

हमारे गुरुदेव "यावच्चंद्रदिवाकरौ" तक हमें सतत् अपने दिव्य दर्शन का आनंद प्रदान करते हुए भारत को ही नहीं, समग्र विश्व को हमारी आर्य–संस्कृति एवं वैदिक साहित्य सनातन–धर्म प्रदीप से उद्भासित रखें, यही प्रार्थना है।

महापुरुषों के स्वाँग में पूर्ण परात्पर ब्रह्म नंदनंदन श्री कृष्णचंद ही, अपने भक्त–प्रेमियों को दिव्यानंद प्रदान करने के लिये, नित्य नूतन लीला करते रहते हैं।

इतनी वृद्धावस्था में भी, विश्व कल्याण के लिये, आपने अथक परिश्रम किया है, उसके लिये हम वेद का दर्शन–पठन, पूजा–नित्य स्वाध्याय आदि का दृढ़ संकल्प कर, तदनुसार क्रियात्मक जीवन बनाने में सदैव तत्पर रहें, वेद विहित निष्काम कर्मों द्वारा, संशोधित हृदय–पटल वेद–सूर्य की दिव्य–प्रभा से उद्भासित बनें तो वही आपकी सच्ची स्तुति एवं शरणागति की सार्थक प्रतिध्वनि हो सकती है।

अंत में इस दीन को भी विश्व–यात्रा का, एवं विभिन्न देशों में निर्वासित, सेवा–भाव संपन्न, प्रेमियों का मिलन, धर्म–प्रेमी विद्वान नर–नारियों का एवं उच्च कोटि के संतों का जो दुर्लभ समागम प्राप्त हुआ, यह परम सौभाग्य केवल आपकी अनंत कृपा का ही मधुर फल है। आपके श्री चरणों में कोटिशः प्रणाम के साथ, यह भावना सुरभित शब्द सुमनावली समर्पित करती हूँ।

विविध अभिनन्दन-पत्र

परिशिष्ट-३

अनन्त श्री विभूषित वेददर्शनाचार्य महामंडलेश्वर सद्गुरुदेव श्री गंगेश्वरानंदजी महाराज विश्व भर में वेद प्रचारार्थ अविरत प्रवास करते रहे हैं। आपको अनेकानेक स्थानों पर मानपत्र दिये गये हैं। उनमें से कतिपय प्रतिनिधिरूप मानपत्र यहाँ पर प्रस्तुत हैं।

अभिनन्दनपत्र-१

॥ श्री द्वारिकाधीशो विजयते ॥

ॐ स्वस्ति श्रीमतां निखिलमहीमंडलाचार्यचक्रचूडामणिसर्वतन्त्रस्वतन्त्रयतिपतिदिनेशानां, निरवद्यवेदविद्याविनतितान्तःकरणानाम्, अशेषसद्गुणगणसभाश्रयाणां, भारतीयसंस्कृतिसंस्कृतसंरक्षणपरायणानाम्, अनतिसाधारण—वाग्वैदुष्य—वैभवविभूषितानाम्, अतिगहनतमवेदवेदाङ्गोपनिषद्दर्शनविमर्शनदर्शितनिरतिशयशेमुषीविलासानाम्, आर्यमानवसंस्कृतिसनातनधर्म—प्रत्यवतिष्ठमानवादिवारणकण्ठीरवाणां, शिष्यप्रशिष्यप्रख्यापितकीर्त्तिकलापानामखंडभूमण्डलमंडलायमानवैदिकधर्मप्रचारप्रसारार्थबद्धपरिकराणाम्, नवनवतितमेऽब्दे प्रविविक्षूणां, विद्याज्ञानवयोवृद्धानामनवरतलोकोपकारनिरतहृदयानां, सहजसौजन्यदानदाक्षिण्यादिगुणगणालंकृतानां, वेदब्रह्मपादारविन्दमकरन्दास्वादनपरकमनोमधुपानां, सततशास्त्रानुशीलनशुद्धमनस्सुमनस्सुविराजितसुरसरस्वतीसेवाहेवाकिनां, हैयङ्गवीनमसृणहृत्पटलानां द्व्यशीत्युत्तरैकशततमानामुदासीन सम्प्रदायाचार्यमहामण्डलेश्वराणामभिनववेदोद्धारकाणां, तत्र श्रीस्वामिगंगेश्वरानन्दचरणारविन्दयोरिन्दिन्दिरायताम्।

राजस्थानान्तर्गतहिंदुस्थानाभिमान अनंतधर्मकर्मदानभक्तिविद्याशौर्यकेन्द्रेऽस्मिन्नुदयपुरे प्रवर्त्तमानचतुर्वेदवाङ्मयस्वरूपवेदभगवतः प्रतिष्ठापनसमारोहावसरे अनंतकोटिब्रह्मांडदंडनायकप्रभुवर्य श्री द्वारिकाधीशसन्निधौ स्थलमंदिरे समायोजित प्रशस्तिसुमनोऽञ्जलिसमर्पणक्षणे सादरं सगौरवं सभक्तिश्रद्धञ्च विश्राणितमिदम्।

॥ अभिनन्दन–पत्रम् ॥

परमसम्मान्याः वेदविद्याधनवदान्यधन्याः श्रीस्वामिपादाः !

भारतीयसंस्कृतिसंस्कृतसेवासंरक्षणपरायणोदयपुरस्थपौराणां पुरस्तात् श्रीमद्गुणगणार्णवस्मरणपराः हर्षातिरेकान्विताः वयं केवलं तत्रभवतां दिव्यावदानानुरणनपरायणमेव स्वान्तःकरणमाकलय्य कानिचिद्भावावेश समर्पकाणि प्रस्खलितानि पदानि श्रीमत्सेवायामुपायनीकुर्मः । द्व्यशीत्युत्तरशततमाः उदासीनसम्प्रदायाचार्याः वेदमूर्त्तयः ।

"**आचार्यवान् पुरुषो वेद आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापत्**" प्रतिपादयतीति श्रुतिः । अनया रीत्या शास्त्रार्थप्रवचनपटुः स्वीयाचारव्यवहारादिभिः परेषामप्याचारादिप्रवर्तको यो भवति महात्मा स एव महापुरुष इति सिद्धान्तसरणिमनुसृत्य आशैशवादेव वेदब्रह्मणोऽनवरत समाराधनेन न केवलं स्वात्मानमेवोपकृतम् अपितु महीतलस्थमानवमात्रं ज्ञानमार्गं मोक्षमार्गं चोपदिशन् वैदिकसंस्कृतेः अक्षुण्णप्रचार–प्रसार–द्वारा वैदिकवाङ्मयस्वरूपचतुर्वेदानां महाग्रन्थानां वेदमन्दिरेषु प्रतिष्ठापनविधिना तज्ज्ञानज्योतिः मुमुक्षूणां लोकहिताय सर्वजनसुलभकारि फलतः विश्वस्मिन्विश्वे (भारते विदेशेषु च) श्रीमद्भिः नवशतसंख्यातोऽप्यधिकानाम् अर्थात् सहस्रपरिमितानां वेदमन्दिराणां प्रतिष्ठापनद्वारा प्रत्यक्षमेव सत्यापितः भगवत्–श्रीकृष्णमुखारविन्दविनिस्सृतः सुदृढसमुद्घोषः यत् "**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।**" इति संसाधयन् अन्यदपि भगवद्वचः सत्यापितं यत् "**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥**" इत्यप्यहो श्रीमतां श्लाघनीयता एव । एतेन सुसिद्धमेव यत् "**विष्णोरंशाः महात्मनः ।**"

सततपःपूतविग्रहाः पुण्ययशोधामाः ।

'अयं महान् प्रमोदावसरः यदद्य अनेकशास्त्रनिष्णातानां भूर्लोके देशविदेशेषु च सर्वत्रस्वधर्मध्वजसमुज्जृम्भायमाणानां, अव्याहतगतीनां, द्विजकुलावतंसानां वेदमूर्त्तीनां श्रीस्वामिगंगेश्वरानन्दपादानां सुमनस्विनां मानसैः सुमनोभिरभिनन्दनार्थं स्वागताभ्युदयाञ्जलिं समर्पयामः ।

गंगेश्वरानन्दमहानुभावान्, वेदावतारानभिनन्दयामः ।
गेयाः ऋचाः कण्ठगताः विधाय, ये ऋग्यजुः सामगणान् जपन्ति ॥
श्वलन्ति ये भाष्ययुतां त्रयीं च, निःशंक भावेन विदाम्बरेषु ॥
राराध्यते योऽखिललोकतत्त्वं वेदस्वरूपं स्थिरचित्तभावात् ॥
नवप्रतापांकुरचक्रकान्त्या, सतां मनस्सुस्थिरतां प्रयच्छ–
न्दहन्ति लोके कलिदोषपुञ्जाननन्तकालार्जितदुःखबीजान् ॥

मलेशिया–फ्रांस–मरीशसेषु सिंगापुर–स्विट्जरलैण्डकेषु ।
हाङ्काङ्–कनाडा–त्रिनिडाड्–जुमेका–फिलीपिनेन्डोनेशियेटलीषु ॥
नुकोर्नियेङ्ग्लैण्ड–सु–सूरिनाम–यू० एस० ए० —गुय्यनराष्ट्रकेषु ।
भास्वन्ति ज्योतींषि चतुर्मुखस्य प्रोक्तस्थलेषु श्रुतिभावितानि ॥
वान्तं सुवेदस्य गभीरज्ञानं पाश्चात्यदेशाः नितरामदन्ति ।
वेदात्मकं ब्रह्ममयं प्रकामं वैदेशिकास्ते सततं श्रयन्ते ॥
दाक्षायणीशकृपयोक्तदेशेष्वष्टाधिकाशीतितमेषु तत्र ।
वदान्य मान्यैर्गुरुभिः श्रुतीनां संस्थापितानीह च मन्दिराणि ।
तापत्रयाणां विनिवारकाणां लोकोपकारे च परायणानाम् ।
राकेशतुल्यामितभासमानां, शान्तात्मनां स्वागतमाचरामः ।
नमन्ति लोकाश्च तवाङ्घ्रिपद्मे, बद्धादरास्त्वां सततं श्रयन्ते ।
भिया भवाम्भोधिरनन्तकष्टान् संस्मृत्य देवं शरणं व्रजन्ति ।
नताः समस्ताः सुरभारतीयाः प्रकाशमानं खलु हृद्यभावा–
न्वयायुतं त्वां विनिवेदयन्ति, कृतज्ञभावं मनसा सदैव ॥
या यच्द्रयेते दिवि सूर्यचन्द्रौ, गंगादिनद्यः प्रवहन्ति यावत् ।
मोमुद्यमानाः भुवि संश्रयध्वं, इयं हि वाञ्छा गुरुवर्यपादाः ॥
इमे च सर्वे विबुधास्त्वदीयं हृदाभिनन्दन्त्यनिशं दयालो ।
पुरेऽपि लोकास्सकलाः भवन्तं कार्त्तार्थ्यमामोदपराः भजन्ते ॥
मेवाडस्य नु एकमात्रसुरवाक्–केन्द्रे स्थले मन्दिरे ।
सर्वे संस्कृतिसंस्कृताभ्युदयने बद्धावधानः इमे ।
उन्मीलद् भवभावसौरभमयं श्रीमत्कराम्भोरुहे ।
वाचामेव निवेदयन्ति विकसत्–पद्मप्रसूनाञ्जलिम् ॥
मेवाडमण्डलेशाः मुरलीमनोहराश्च, प्रेम्णाभिनन्दयन्तः सम्प्राप्य वेदमूर्तिम् ।
निखिलान् समागतांश्च सुस्वागतं चरन्तः कुर्वन्ति धन्यवादान् वेदानुरागिलोकान् ।

—श्रीमतां कृपाभिलाषिणः—

मेवाडमण्डलेश्वर मुरली मनोहर·
शरणशास्त्री
निम्बार्क गंगा सोसायटी
स्थलमन्दिरम्, उदयपुरम्
दिनांक २ नवम्बर १९७७ बुधवासरः

षड्दर्शनसम्प्रदायाचार्यपथानुयायिनः
विश्वहिन्दूपरिषत्सभ्याः संस्कृतानुरागि-
विद्वत्समाजः सम्भ्रान्तनागरिकाश्च
उदयपुर

अभिनन्दन पत्र-२

पंचनदस्थ-खन्नानगरीये श्री सरस्वती-संस्कृत-महाविद्यालये

वेद-स्थापना-समारोहे

"अभिनन्दनम्"

महामण्डलेश्वर श्री १००८ गङ्गेश्वरानन्द महाभागानाम्,

धन्यो विशुद्ध-चरितो विबुधाग्रगण्यो
दान्तो वदान्य हृदयोऽखिललोकवन्द्यः ।
धर्म-प्रचार-निरतोऽतितरां दयालुः
गङ्गेश्वरो विजयते श्रुतपारदृश्वा ॥१॥

ख्यातोऽवदातधिषणो विदुषां वरेण्यः
सौजन्य-शीलमति-कान्तिगुणैरुपेतः
मेधा-क्षमा-सरलता-समता विवेकैः
गङ्गेश्वरो विजयते श्रुतपारदृश्वा ॥२॥

वेदाः पुरा भगवता बहुधा विभक्ताः
व्यासेन विष्णुवपुषा समयानुरूपम् ।
पारायणादि सुविधां सकलां समीक्ष्य
एका प्रतिर्विरचिता सुधिया त्वया वै ॥३॥

कीर्तनीयगुणैरेभिः कीर्त्यं भागवतोत्तमम् ।
नमामः परया भक्त्या मूर्धन्यं सर्वयोगिनाम् ॥४॥

धन्यं यशस्य मायुष्यं दर्शनं ते सुमेधसः
बाह्यमाध्यात्मिकं चैव पातकं विधुनोतु नः ॥५॥

यशसो मूर्तरूपं ते वेदो यं पौरुषं वपुः
प्रतिष्ठां लभतां लोके मनसो मोहनाशनम् ॥६॥

आद्यं भगवतो रूपं वाङ्मयं सर्वदेहिनाम्
तमस्त्वज्ञानजं हन्यात् श्रुतं गीतं विचारितम् ॥७॥

प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रत्यट्टं प्रतिमन्दिरम् ।
आदर्श-पुस्तकं तेऽद्य कीर्तिस्तम्भो विराजताम् ॥८॥

भवदीय :—

श्री सरस्वती संस्कृत महाविद्यालयीय :
परिवार :

दिनाङ्क :—
४-४-१९७२

अभिनन्दन पत्र—३

॥ ॐ श्रीविद्या परम् भूषणम् ॥

वेदाचार्यो दर्शनाचार्यः मुख्यः त्यागी ज्ञानी मण्डलाधीश्वरो यः ।
कारुण्येन ब्रह्मनिष्ठोऽदिशन्नो भूयों धर्मं श्रीलगंगेश्वरोऽयम् ॥

स्वदेशतिमिरापहं प्रथितकीर्तिमार्योत्तमं
चिदात्मनिपरं सनातन नृधर्मधूर्धारिणम् ॥
प्रभूतभवभूतिभाविभवभातभव्यौजसं
नमाम हृदयेन तं सुयतिराजगंगेश्वरम् ॥

प्रवरमुकुटमणिमरोचिमञ्जरीचर्चितचरणयुगल, श्रीपूज्यपाद, धर्ममार्तण्ड, ब्रह्मनिष्ठ, वेददर्शनाचार्य, महामण्डलेश्वर

स्वामी श्री १००८ श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज

—की पुनित सेवा में—

परम पूज्य स्वामीजी !

लगभग डेढ़ मास से आपने अपने धार्मिक प्रवचनों द्वारा यहाँ की जनता का बड़ा ही उपकार किया है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह इन्दौर नगर का परम सौभाग्य है कि आप जैसे महापुरुष का यहाँ शुभागमन हुआ है। यहाँ की जनता सदा के लिये आपकी चिरऋणी रहेगी।

आप पूर्ण त्यागी होकर भी सनातन धर्म की पवित्र सेवा के लिये देशान्तरों में परिभ्रमण करते हुए अपने पवित्र उपदेशों द्वारा पथभ्रष्ट जनता को सच्चामार्ग दिखाने का पूर्ण परिश्रम करते हैं।

आपकी प्रगाढ विद्वत्ता, ज्ञान की जगमगाती ज्योति, धार्मिक गूढ़ रहस्यों को समझाने की प्रणाली और भाषा माधुरी अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। धर्म और भक्ति की तो आप साक्षात् मूर्ति हैं।

आपके प्रवचन के समय ऐसा प्रतीत होता है कि श्री गंगा व यमुना की वेगवती धारा सदृश श्री सरस्वती के गुप्त तथा अटूट भण्डार से श्री सरस्वती का पुण्य प्रवाह प्रकट हो रहा है।

जिन जिज्ञासु सज्जनों ने आपके मुखकमलनिर्गत श्री सरस्वती की पुनित धारा में स्नान किया है, वे अपनापन भूलकर मुग्ध हो जाते हैं। जिनको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे भलीभाँति इस अनुभव से परिचित हैं।

इस युग में इस समय ऐसे सच्चे त्यागी, सदाचारी, विद्वान और भक्त सूरदास जैसे महापुरुष की भारत को नितान्त आवश्यकता है।

आपने केवल प्रवचन द्वारा ही भारतीय जनता का उपकार नहीं किया है, अपितु कई स्थानों पर संस्कृत विद्यालयों की स्थापना करके सनातन धर्म की दिव्य जागृति का पूर्ण श्रेय प्राप्त किया है।

आपके पूर्ण कृपापात्र दर्शनरत्न स्वामीजी श्री सर्वानन्दजी महाराज की भी विद्वत्ता और योग्यता प्रशंसनीय है।

धर्म मार्तण्ड स्वामीजी !

आपके उपकार के बदले में ऐसे कोई शब्द नहीं दिखाई देते जिससे आपका आभार प्रदर्शन किया जावे। केवल श्रद्धा और भक्ति के साथ 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' के आधार पर आपकी सेवा में यह अभिनन्दन रूप पुष्प-पत्र सादर समर्पित करते हैं और अखिल ब्रह्मांड नायक जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे आपको सनातन धर्म की सेवा के लिये दीर्घायुष्य प्रदान करें।

इन्दौर निवासी सनातन धर्मावलम्बी
जनता की ओर से समर्पक

सं. १९९३, फाल्गुन वद ९
शनिवार
इन्दौर

शास्त्री कृष्णराय शुक्ल काव्यतीर्थ
रामेश्वरदास घीसालाल चौधरी
जमनादास गिरधारीलाल बगड़िया

अभिनन्दन पत्र–४

भगवान वेदो विजयतेतमाम्

मंगलनिधि सौजन्य सुधामय महामहिमशाली परमपूज्य प्रातः स्मरणीय परमहंस परिव्राजकाचार्य वेद दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री १००८ स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज के कर कमलों में

समर्पित अभिनन्दन पत्र

हे मंगल निधे परोपकारी, भारत का गौरव भारत देश के धर्म के प्रचार तथा विशेष रूप से परोपकार में रहा है। आपने स्थान–स्थान पर धर्म प्रचार के लिये बड़े बड़े आश्रमों का निर्माण किया है जैसे (१) अहमदाबाद में श्री वेद-मन्दिर (२) देहली में श्री गंगेश्वर धाम (३) अमृतसर में श्री रामधाम (४) हरिद्वार में श्रीराम धाम ऐसे और बड़े–बड़े नगरों में धर्मप्रचारक आश्रम बनवाये हैं। हजारों सन्तों तथा ब्राह्मणों को विद्याध्ययन करवाकर श्री सनातन धर्म के प्रचार क्षेत्र में प्रचार का कार्य किया है। जीवन के उषाकाल से लेकर आज तक आप परहित में निरत रहे हैं। आप वेद, उपनिषद तथा शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। अब अपने जीवन के स्वर्ण समय में आपके द्वारा जो रात–दिन अथक परिश्रम के पश्चात्, तीन वर्ष बनारस में रहकर, विद्वान् वेद-पाठियों के सहयोग से और असंख्य धन का विनियोग करके विश्व के कल्याणार्थ चारों वेदों का मूल एकत्रित करा के अभूतपूर्व ग्रन्थ रत्न श्री वेद भगवानजी प्रकाशित करवाया।

इससे आपकी यश–पताका दिगदिगन्त में और भी उज्ज्वल बन कर लहरा उठी है और अनन्त काल तक लहराती रहेगी। आपके इस निस्वार्थ उपकार को विश्व कभी भूल नहीं सकेगा। भगवान वेदरूपी भागीरथी का अक्षरदेह में अवतरण करनेवाले वर्तमान युग के भगीरथरूप में आपका दर्शन करके हम सब आपका हार्दिक स्वागत करते हैं और आपके करकमलों में यह अभिनन्दन–पत्रिका समर्पित करते हैं।

समस्त श्री सनातन धर्म तथा गीता भवन के सदस्य तथा अवलम्बी देहरादून की जनता की ओर से यह अभिनन्दन प्रस्तुत करते हम परम कृपालु परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको दीर्घ आयु दें और आपका स्वास्थ्य बनाये रखें, जिससे विश्व को आपके द्वारा अधिक लाभ पहुँचता रहे।

इति शुभम्!

प्रधान :
सरदारीलाल ओबरोय
श्री सनातनधर्म सभा तथा गीता भवन पीपल मण्डी

मंत्री :
विश्वनाथ सभ्रवाल

दिनाङ्क १–११–१९७१ **देहरादून**

अभिनन्दनपत्र-५

अमरीका, यूरोप, आफ्रिका, वेस्ट इन्डिज तथा अन्य पूर्वीय देशों में भगवान् वेद की स्थापना करके पत्यावर्तित पूज्यपाद वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामीश्री गंगेश्वरानन्दजी महाराज, उदासीनवर्य, के परम पावन पादपद्मों में सादर सप्रणति समर्पित

ॐ अभिनन्दन-पत्र ॐ

हे मंगलमूर्ति !

गंगा अनाविल जलराशि से भारतभूमि को अभिसिंचित करती है और आपने वेदविद्या की ज्ञानभागिरथी से अशेष विश्व को अभिसिंचित किया है। वेद चतुष्टय को एक ही ग्रन्थ में **भगवान् वेद** के रूप में संपादित करके आपने विश्व में सुमहनीय चमत्कार का सर्जन किया। आज समग्र संसार को गोष्पदी करके विविध भूखण्डों में **भगवान वेद** को स्थापना की। इसमें आक्सफर्ड, लंडन, केम्ब्रीज, अमरिकन, बोस्टन, शिकागो, केलिफोर्निया, मीयामी आदि विश्वविद्यालय, इन्डियन लायब्रेरी, वेटिकन लायब्रेरो ऑफ पोप घ पायस, पब्लिक लायब्रेरी ऑफ न्युयोर्क, अमरिकन लायब्रेरी कान्ग्रेस तथा अमरोका, स्विट्झर्लेन्ड आदि स्थानों के योगाश्रम सविशेष उल्लेखनीय हैं।

हे ज्ञानोदधि !

पूर्ण पुरुषोत्तम नन्दनन्दन श्री कृष्णचन्द्र गीता में कहते हैं कि धर्म की ग्लानि हाने पर धर्म को संस्थापना करने को मैं अवतार धारण करता हूँ। **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्** और कार्य-कारण को अभेद स्वीकार करते हुए यह कहने में कोई अत्युक्ति नहों कि वेद और धर्म एक हैं। और वेद की स्थापना के लिये आपका आविर्भाव हुआ है। क्योंकि आधुनिक युग में वेद और वेदपाठियों को परंपरा क्षोण हो रही थी।

हे विश्वमानव !

भगवती श्रुति कहती है—

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो, यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव, यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्र ॥

—ऋ. वे. २-१२-९

अर्थात् जिसके बिना प्रजा विजय प्राप्त नहीं कर सकती, मन के कामादि शत्रुओं से युद्धरत प्रजा अपने रक्षणार्थ जिसको पुकारती है, जो आज विश्व का प्रतिनिधि बना हुआ है और जो भक्त-हृदय-स्थित अज्ञान-तिमिर का ज्ञानदान से उन्मूलन करता है, हे सज्जनो, वह इन्द्र है। इस भूतल में आप साक्षात् इन्द्र हैं। कारण इन्द्र शब्द की परिभाषा में ध्वनित अशेष विशेषताओं से आप विभूषित हैं: **इदं करणात् इन्द्रः**—जिसने यह **भगवान् वेद** का संपादन किया है। **इदं दर्शनात् इन्द्रः**—जिसने इस वेदविद्या के निगूढ़ रहस्यों का दर्शन किया है। **इन्द्रः शत्रुणां दारयिता** (यास्काचार्य) जो शिष्यों के आन्तरिक रिपुओं को विदीर्ण करता है। **आदरयिता च याज्वनानाम्**—यज्ञादि धर्मकार्य करनेवालों का जो आदर करता है, वह इंद्र है। वेद में उल्लिखित **विश्वमानुषः** की कल्पना को आज आप चरितार्थ करते हैं। समग्र विश्व को वेदविद्यारूपी सेतु द्वारा आपने एक किया है।

हे वेदविभु !

हम आपके **महतोऽपि महीयान्** कार्य की भूरि भूरि स्तुति करते हुए अपने अन्तःकरण की विमल भावनाओं एवं आदर के प्रतीकरूप यह अभिनन्दन पत्र श्री बृहद् गुजरात संस्कृत परिषद् के कुलपति एवं गुजरात के वरिष्ठ न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री धीरूभाई ए. देसाई के द्वारा समर्पित करते हैं। और प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि आप दीर्घायु बनकर जनता का निरंतर कल्याण करते रहें।

हम हैं आपके कृपाकांक्षी

चन्द्रकान्त मो. जगाभाईवाला, पोपटलाल भालकिया, नन्ददास हरिदास, मोहलाल बीमावाला ए. के. शाह, शिरीष एच. देसाई ट्रस्टी, वेद मन्दिर ट्रस्ट

मनुभाई पी. ठक्कर अध्यक्ष, श्री बृहत् गुजरात संस्कृत परिषद्

विजयनारायण सोमानी अध्यक्ष, राजस्थान सेवा समिति

वीरूमल खुशालदास अध्यक्ष, सिन्धी समाज

हरिगोपाल भाटिया उपाध्यक्ष, श्री पंजाबी सेवा समाज

स्वामी नारायणदास, स्वामी मनुवर्य, मन्त्री, भारत साधु समाज, गुजरात शाखा

आचार्य विष्णुदेव पंडित अध्यक्ष, गुजरात वेद परिषद्

गिरिजाशंकर जोषी अध्यक्ष, गुजरात विद्वद् परिषद्

गौतम पटेल अध्यक्ष, संस्कृत संसद्

रविवार २१-९-७५, दिनेश हॉल, अहमदाबाद

अभिनन्दनपत्र–६

Your Holiness Ved Darshanacharya
Mahamandaleshwar Sad Guru Swami

SHRI GANGESHWARANANDAJI MAHARAJ, UDASIN

We are honoured by your visit to New York !

"O ! great Sanyasi, you belong to the Udasin Sampradaya which claims its origin from Shri Sanat Kumar—one of the four sons of the Prime Creator Brahmadeo,

O ! disciple of **Swami Shri Ramanandji Maharaj,**

Prajna–Chakshu 95 years old great saint, within three years, you mastered 'Vyakaran,'. 'Nyaya,' 'Vedas,' 'Upanishads' and other scriptures—which would have taken 20 years by any talented student with eye-sight. By compiling all the four 'Vedas' in one volume—"Veda Bhagwan," you have done a great favour to mankind !

After establishing 600 Veda Mandirs in India and then embarking upon a project of presenting the "Veda Bhagwan" to Universities and Libraries all over the world, you will be honoured and remembered by posterity for times immemorial !

May God grant you, O ! **Param Pujya Swami Gangeshwaranandaji Maharaj,** a long healthy life, so that you may be able to confer on our family, friends and humanity your choicest blessings !

with deep respect and regard
the Indian Community of New York,

presents this "Maan Patra" to your Holiness
on Sunday, June 15, 1975.

अभिनन्दनपत्र–७

પરમ આદરણીય વંદનીય પૂ. સદ્‌ગુરુ સ્વામીશ્રી ૧૦૮ સ્વામીશ્રી ગંગેશ્વરાનંદજી અને સાથે પધારેલ સન્માનનીય સત્સંગી સ્વામીશ્રીઓ,

રણછોડજી મંદિરના પવિત્ર રજત જયંતિ પ્રસંગે આપના પુનિત પગલા આ ભૂમિ પર પાડવા અને આપના જ્ઞાનામૃતનો લાભ આપવા બદલ બારિયા નગરપંચાયત અને નગરજનો ધન્યતા અનુભવે છે. આપે આપના જ્ઞાન અને દર્શનનો લાભ આપી નગરજનોમાં સંસ્કાર, ધર્મ, શ્રદ્ધા અને કર્તવ્ય પરાયણતાનું ભાથું આપ્યું છે, તેને લીધે અમે ધન્યતા અનુભવીએ છીએ. પૂ. કુપદકુંવરબા ધર્માનુરાગી છે અને તેમને લીધે જ આવા પ્રસંગો નગરને પ્રાપ્ત થતાં રહયાં છે. પૂ. નટવરલાલ મહારાજે પણ મંદિરના વિકાસમાં મોટો ફાળો આપ્યો છે.

પરમકૃપાળુ પરમાત્માને અમારી પ્રાર્થના છે કે બારિયા નગરને આપના દિવ્ય જ્ઞાન પ્રકાશનો લાભ મળતો રહે અને નિરંતર આવો લાભ અર્પવા પ્રભુ આપને દીર્ઘાયું બક્ષે.

એજ, અમે છીએ

દેવગઢ બારીઆ નગરજનો વતી,

સભાપતિ, નગર પંચાયત, દેવગઢ બારીઆ.

॥ श्रीगुरुचरणकमलकुञ्जकूजनम् ॥
॥ श्री गंगेश्वराष्टकम् ॥

आचारः प्रथमैव धर्मगदितो वर्णाश्रमाणां परः
कर्तव्यं मनुजैर्यदिष्टमनघं तत्सत्परं बोधितम् ।
येनायायि विशुद्धवेदखचितं ज्ञानं परं निर्मलं
वन्देऽहं यतिराजराजमुकुटं गंगेश्वरं सद्गुरुम् ॥१॥

यैर्नष्टं कलिकालकुण्ठितधियां मोहान्धकारं घनं
व्याख्यानैर्विविधैर्जनोपकरणैर्वेदाधिपारंगमैः ।
ब्रह्म क्षत्रविशाञ्च वैदिकविधिः सन्दर्शिता धर्मतः
वन्देऽहं यतिराजराजमुकुटं गंगेश्वरं सद्गुरुम् ॥२॥

अर्थापादरजोपमाश्च कलिताः कामाः कलौ कुण्ठिताः
धर्मो येन धृतः ससात्त्विकबलैर्मोक्षे मनो योजितम् ।
आम्नायार्थयुतेन शास्त्रविधिना संचूर्णिता नास्तिकाः
सोऽयं सिंहसमः सदा विजयते गंगेश्वरः सद्गुरुः ॥३॥

क्व श्रीमद्पदवाक्यमानग्रथिता षाड्दर्शनी भारती
क्व वाशुद्ध मदीय तुच्छमनिषा निन्द्यानिशं वैखरी ।
नाहं वेदविदाञ्च तत्त्वगदने मूढः स्वयं शक्तिमान्
बालानां गदनं यथैव पितरो गृह्णन्तु गुरवस्तथा ॥५॥

घासीरामपरैश्च सुज्ञवणिजैः सेवापरैः सज्जनैः
यैरेवाखिलधर्मकर्मकुशलैर्गुर्वर्थसद्गुंफितम् ।
श्रीमद्गङ्गविहंग–रंग–रसिकं ज्ञानप्रदानंकृतं
ते सर्वे सुखिनो भवन्तु सततं कृष्ण प्रसादाद्भुवि ॥६॥

गुरुचरण सकाशाल्लब्ध संविल्लवेन
विरचितपदबन्धो बन्धनिर्मोक्षणाय ।
प्रभवतुमनुजानां प्रत्यहं चैव पाठा–
दिति गुरुचरणेषु प्रार्थयेऽहं तुलेशः ॥७॥

शुद्धाशुद्धस्वरूपोऽहं स्तुतिभावो हि मामकः ।
गुरुचरणकमलेषु भृंगरूपेण राजताम् ॥८॥

प्रयोजक :—
पं. तुलाशंकर शर्मा धर्मशास्त्राचार्य
प्रधानाध्यापक
श्री बालाजी गणेश संस्कृत पाठशाला

फा. कृ. ९ शनिवार सं. १९९३
इन्दौर

परिशिष्ट–४

महामहीम श्री वाई. बी. चन्द्रचूड, प्रधान न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय, का प्रवचन

His Holiness Shri Swami Gangeshwaranandji Maharaja, the saint-mandal and other religious devotees,

This is a very joyous and auspicious occasion. A number of scholars and religious leaders from different parts of the world have assembled here to celebrate the birth centenary of Swami Gangeshwaranandji who is one of the finest exponents of the Vedas. He has compressed four Vedas in one unique volume called Bhagawan Veda and he has established 800 centers of learning in different parts of the world; 600 in India and 200 in other countries. His scholarship has been acknowledged all over the world. The Government of Uttar Pradesh gave him a generous award which he donated to the University of Varanasi for promoting the study of the Vedas. He has established various institutions for the propagation of Sanskrit and for facilitating a better understanding of the Vedas. The students of these institutions are provided with scholarships, free lodging and boarding. Recently the Swamiji's disciples have started a college of Vedas and have founded a Veda-temple in New-York.

The Swamiji believes in and propagates that the Vedas are a true source of all religious movements in the

world. He has made it the mission of his life to spread the message of the universality of the Vedas. These beautifully decorated grounds are reverberating to-day with the chanting of Veda-mantras. I feel greatly honoured to have been asked to participate in this function which is arranged to felicitate Swamiji, one who is completing the century of his illustrious life.

This Geeta Conference has a message to give to the strife-torn-world.

The message will act as a beacon light and will lead to the path of co-existence for all mankind over the earth. Mankind has grown neither more modest nor more tolerant, still slays its fellow beings in the name of God and religion or because others possess a mind differently oriented or directed, and though we are willing to perceive that truth resides everywhere and cannot be any one's monopoly, we are still presumptuous enough to condemn all who differ from us. It is, therefore, essential to understand precisely the spirit in which we ought to approach the teachings of the Geeta.

In the first place truth may be one and eternal but it cannot be enslaved, encaged in a single trenchant formula, a strait–jacket. Truth cannot be found in its entirety in a single scripture or in the tenets of a single religion. The perception of truth does not, therefore, demand the intolerant exclusion of its exposition in other religious philosophies. The human

intellect is ever engaged in a new quest and that is why scholars put here different meanings on the teachings of the Geeta from time to time. What we must therefore do to profit ourselves is try to appreciate and practise the living truths which the Geeta contains rather than further confounding the luminous metaphysical theory which it expounds. One such truth स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः । i. e. devotion to his duty is the highest form of salvation or bliss.

The Geeta contains little that is merely local or temporal. Its teaching is profound and universal. If we recreate the spirit of the Geeta and re-live it we will benefit by its teachings more than by engaging ourselves in academical disputations or theoretical dogmas. Only those scriptures which can thus be constantly re-lived and reviewed can be meaningful and of living importance to common humanity. The rest remains as a monument to the past. In the words of Shri Aurobindo, 'Mankind belongs not to the past but to the future.' We must therefore approach the Geeta in order to discover its living message which alone can help us to attain material welfare and spiritual perfection.

On behalf of all of you, I wish the Swamiji many more years of health and happiness. May his life inspire us to live upto the tenets and teachings of the Swamiji himself and of the Geeta.

Namaste.

स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज का प्रवचन

ता. १०-१-८१ के दिन गीता संमेलन में वीतराग तपोमूर्ति **स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज** ने बताया कि मनुष्य के भावों का कोई अन्त नहीं है। हरि के बारे में भी **'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता'** जैसी स्थिति है। फिर उसके बारे में क्या कहा जाय ? भगवद्‌गीता एक सारग्रन्थ है। और मनुष्य उसके आधार पर चले तो मनुष्य का कल्याण हो जाय।

गीता का वास्तविक आरम्भ दूसरे अध्याय के ११वें श्लोक से होता है। शंकराचार्य भी यहीं से भाष्य का आरम्भ करते हैं। यहाँ शुरू के बीस श्लोकों में मनुष्य की अनुभूति का वर्णन है। शरीर नाशवंत है, शरीरी अविनाशी है। ध्यान देने की बात है कि टीकाकार यहाँ आत्मा-अनात्मा की बात है, ऐसा कहते हैं, लेकिन इन २० श्लोकों में कहीं भी आत्मा या अनात्मा शब्द का प्रयोग ही नहीं है।

भगवान इस शरीर को अनित्य एवं नाशवंत बताते हैं। यह शरीर प्रतिक्षण विनाश के गर्त में जा रहा है। जितना समय गया वह वापस नहीं आयेगा। इसलिये इस क्षणभंगुर नाशवंत शरीर को लेकर निश्चिन्त कैसे बैठे हो ! भगवान् तो कहते हैं **अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्**। यह संसार अनित्य है, सुखरहित है, दुःखालय है, दुःखालय में सुख ढूँढ़ना यह अत्यन्त मूर्खता है। प्रतिक्षण मृत्यु हमारी ओर दौड़ती आ रही है। इसमें सुख कहाँ। **यतः भजस्व माम्**—मेरा भजन करो।

यह मनुष्य देह हमें प्राप्त हुई है, इसके द्वारा कर्मजन्य सिद्धि बहुत बहुत जल्दी होती है।—

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवता।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥

इसी शरीर से मनुष्य बन्धन में पड़ता है और इसी शरीर से मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है। जो सावधानी से भगवद् चरणों का आश्रय लेता है, उनका जीवन सफल हो जाता है।

गीता के आरम्भ में **'कार्पण्यदोषोऽपहतस्वभावः'** कहकर अर्जुन भगवान की शरण में गया था। बाद में प्रभु ने उपदेश दिया। अन्यथा सारा जीवन प्रभु के साथ रहा, लेकिन उपदेश देने का प्रसंग ही उपस्थित न हुआ। अन्त में भगवान ने कहा **'मामेकं शरणं व्रज'** और **'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'** तन, मन, धन या अन्य किसी भी पदार्थ का आश्रय लिया तो रोना पड़ेगा। प्रभु का आश्रय लो तो शोक से छूट जाओगे।

अर्जुन ने युद्ध के समय प्रभु की शरण में जाते समय **'न योत्स्ये'**—मैं नहीं लड़ूँगा' यह कहा, वह भगवान को बहुत बूरा लगा। भगवान ने कह दिया कि **'यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।'** यहाँ तू अहंकार की शरण में है, मेरी शरण में नहीं। इसीलिये भगवान ने उसको सर्वगुह्यतम और परम ज्ञान बताया। और सर्वगुह्यतम पद गीता में एक बार ही आया है। यह सर्वगुह्यतम क्या है। भगवान ने हमारे सद्भाग्य से बताया है कि—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
ममेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

मेरे में मनवाला हो और मेरी पूजन कर। मेरा भक्त हो जा, मुझे नमस्कार कर। चार बातें ही बताकर कहते हैं—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

अर्जुन को प्रभु पूछते हैं कि तूने ध्यान से सूना। और अर्जुन कहते हैं "आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया।" **'त्वत् प्रसादात् मयाच्युत'** प्रभु की कृपा तो सब पर है, लेकिन सबका मोह नष्ट नहीं होता है। वर्षा सर्वत्र होती है, लेकिन उसी पात्र में एकत्रित होती है जो सन्मुख होता है। अतः सच्चे हृदय से हम प्रभु सन्मुख हो जायँ। अनन्य चेता बनकर जो प्रभु का सतत स्मरण करते हैं उनके योगक्षेम का वहन प्रभु करते हैं। अतः प्रभु के हजारों नामों में से किसी भी नाम का सतत जप करो और प्रभु से प्यार करो।

जीवन में अनुकूल स्थिति मिले तो अच्छा और प्रतिकूल स्थिति मिले तो और बढ़िया। आप कहेंगे कैसे? प्रतिकूल स्थिति में आदमी फँसता नहीं। पुराने पाप नष्ट होते हैं और नये होते नहीं। अनुकूल स्थिति में फसावट होती है और

पुराने पुण्यों का क्षय होता है। इस लिए हर हाल में प्रसन्न रहना चाहिये। माँ बच्चे को गोदी में लेकर स्नान कराती है और बच्चा रोता है, माँ उसकी परवा नहीं करती है। बाद में अच्छे कपड़े पहनाती है। और माँ–बच्चा दोनों प्रसन्न होते हैं। अतः भगवान कष्ट देते हैं, वह तो हमें स्नान कराते हैं। भगवान की मरजी में अपनी मरजी मिला दें, यही शरणागति की पहचान है। ब्रह्माजी ने कहा है—

'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥'

श्रीमद् भागवते १०–१४–८

सब सहन करते हुए जो प्रभु को प्रेम से नमस्कार करता है, वह मुक्तिपद का अधिकारी होता है।

किसी चीज की प्राप्ति के लिये प्रभु की शरण नहीं लेनी चाहिये। वह प्रभु की शरण नहीं, वह तो उस वस्तु की शरण हो जायेगी। और यह तो व्यभिचार है। प्रभु की भक्ति तो अव्यभिचारिणी होनी चाहिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी जिस आश्रम में, जिस वर्ण में हैं, जो जहाँ है भाई, बहन अपना–अपना कर्तव्य ठीक तरह से करें, उनका पालन उत्साह से करें। क्योंकि भगवान ने बड़े जोर से कहा है—

'यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥'

जिससे संसार उत्पन्न हुआ और जिससे संसार पूरा व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्मों से पूजन करना चाहिये। आपके पास जो भी हो, जैसे भी हो, आप प्रभु की शरण लो। प्रभु कहते हैं—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'**—जो मेरी शरण जैसे होते हैं, मैं भी उसका वैसा ही भजन करता हूँ। अतः हम जैसे प्रभु की शरण लेते हैं प्रभु हमें शरण लेने को तैयार होते हैं। आप प्रभु के दास बनो, प्रभु आपके दास बन जाते हैं।

संसार की माया से ममता छोड़कर प्रभु से प्यार करो। एक बार एक सज्जन संत के पास जाकर कहते हैं कि भगवान की माया ने मुझे फँसा दिया। तब संत बोले: 'राम राम राम राम।'

'क्यों महाराज! आप ऐसा कहते हो?' सज्जन ने प्रश्न किया।

'भाई कहते हो प्रभु की माया और फँसते हो अपनी माया में! मेरे प्रभु की माया फँसानेवाली नहीं है। माया को आप कहते हो प्रभु की और मानते हो अपनी। ऐसा बेईमान तो फसेगा ही। बैंक में करोड़ों रुपये पड़े हैं, उनकी चिन्ता हमें नहीं होती, लेकिन जो १००-२०० रुपयों को हम अपना मान लेते हैं, उसकी चिन्ता होती है। तो प्रभु की नहीं, अपनी माया हमें फँसाती है। दोष खुद का है, जो भगवान की वस्तु को अपनी मानता है। भगवान ही अपने हैं, संसार अपना नहीं है। अतः '**मामेकं शरणं व्रज**' मानकर प्रभु की शरण में जाओ। गीता का सार यही है कि भगवान की शरण में हो जायँ।

अविनाशीधाम—एक परिचय

परिशिष्ट—५

जगद्‌गुरु श्रीचन्द्राचार्या विजयतेतराम् ।

माउन्ट आबू राजस्थान का एक प्रसिद्ध पर्वतीय रमणीय स्थल है, जहाँ गर्मी के दिनों में आसपास के लोग सैर और विश्राम के लिये आते रहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से तो यह एक अति पुरातन, पवित्र तपोभूमि है। अनेक ऋषि मुनि एवं साधकों ने उसकी गहरी गिरि-कन्दराओं में दीर्घकाल तपस्या कर स्वरूप चिन्तन द्वारा साक्षात्कार का दिव्यानंद प्राप्त किया है।

गगनस्पर्शी गिरिशृंग, सैनिकों की छटा से चारों ओर खड़े उच्च वृक्षों की हारमाला, प्रातःकाल पक्षियों का मधुर कलरव, उदय और अस्ताचल पर भगवान भास्कर की नित्य नूतन लालिमा, मंदिरों में बजते अति मधुर घण्टनाद आदि आबू के प्राकृतिक शांति और सौन्दर्य के प्रतीक हैं। अचलेश्वर के समीप गुफा में राजा गोपीचन्द तथा भर्तृहरि के दर्शन आज भी भाविक साधकों को होते हैं।

कई वर्षों से मेरे गुरुदेव स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी उदासीन माउन्ट आबू में प्रतिवर्ष एप्रिल से जून तक, स्वास्थ्य-रक्षणार्थ एवं वेद—उपनिषदादि धर्मग्रन्थों के परिशीलन के लिये निवास करते आये हैं। मैं भी प्रायः प्रतिवर्ष कुछ समय निकाल कर, आपके दर्शन—सत्संग—सेवा में उपस्थित रही हूँ। आपके भक्त प्रेमीजन भी उस समय छुट्टियों में आपके सानिध्य में सेवा प्राप्त्यर्थ आ जाते हैं। सन् १९४७ में आपने यहाँ कैलास भवन का बंगला आश्रम बनाने के लिये खरीदा था। अतः अतिथियों के निवास की सुविधा की दृष्टि से आपने उसमें आवश्यक परिवर्तन कर ऐसा अनुकूल बना दिया कि, संत, विद्वद्‌गण एवं भक्त प्रेमी स्वतंत्रतापूर्वक आश्रम में रहकर सेवा, स्वाध्याय और सत्संग के अनेकविध अनुपम लाभ उठाते आये हैं।

'अविनाशीधाम'

५ वर्ष पूर्व ही आपने यह आश्रम, जो प्रथम कैलास भवन था, उसको 'अविनाशीधाम' के रूप में परिवर्तित कर दिया। जब बाहर, मुख्य द्वार पर मेरी

दृष्टि पड़ी, तब मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने गुरुदेव से सविनय पूछा, 'प्रभु आश्रम का नाम अविनाशीधाम कैसे हो गया ?" उन्होंने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बताया कि, 'पुत्री, तुम्हारा प्रश्न यथार्थ है। उसके पीछे जो उदासीन संप्रदाय का पुरातन गौरवपूर्ण इतिहास खड़ा है, वह मैं बताऊँ।" कहकर निम्नदर्शित रसप्रद कथा सुनाई।

"अविनाशी मुनि उदासीन संप्रदाय के मूल प्रवर्तक थे। आपका जन्म १६ वीं शताब्दी में वि. सं. १५१४ में अजमेर निवासी एक विद्वान ब्राह्मण के घर हुआ था। शैशव से ही आप विद्यानुरागी थे, आपने वेद–वेदाङ्गविद्या प्राप्त कर ली। कभी-कभी आपके गहरे हृदय-सागर में ऐसे कठिन प्रश्न तरंग उठते थे, जिनका शमन समर्थ विद्वान भी करने में असमर्थ रहे। आप जीवन और मृत्यु के वास्तविक तत्त्व पर अधिक ध्यान दिया करते थे। एक दिन यात्रा के लिये आप घर से अचानक चल पड़े एवं घूमते-घूमते पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पर सौभाग्यवश आपको वेदमुनि के दर्शन हुए। उनसे अपने अनेक जटिल प्रश्नों का सुन्दर समाधानयुक्त प्रत्युत्तर सुनकर अति संतुष्ट एवं प्रसन्नचित्त होकर आपने २४ वर्ष की छोटी आयु में ही वि. सं. १५३८ में वेदमुनि से उदासीन धर्म की दीक्षा ली। गृहस्थी धर्म से तो आप प्रथम ही उदास थे।

यात्रा के सम्बन्ध में दूसरी घटना इस प्रकार है। आबू पर्वत पर आपने उस अग्निकुंड के स्मारक चिह्न देखे, जिनमें से वेद–विद ब्राह्मणों ने म्लेच्छों के विध्वंस के लिये परमार, सोलंकी, परिहार और चौहान इन चार क्षत्रियों को उत्पन्न किया। इन्हीं चारों के वंशधरों ने म्लेच्छों से भारत की पर्याप्त रक्षा की। उस कुण्ड के दर्शन से आप के मन में विचित्र विचार तरंगित होने लगे। आपने मन ही मन सोचा दैवगति कैसी विचित्र है। हम उन्हीं भूसुरों के वंशज होते हुए भी, आज एक भी ऐसे क्षत्रिय–कुमार को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं, जो म्लेच्छ द्वारा पददलित हो रही इस पुण्यभूमि भारत की रक्षा कर सके। कुछ समय तक आप उन्हीं निराशा-जनक विचारों में निमग्न रहें, अंत में इस दृढ़ निश्चय पर आये कि यद्यपि हम क्षत्रियों को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं, अपितु देश और जाति की सेवा में अपना समस्त जीवन समर्पित करने में स्वतंत्र एवं समर्थ हैं। अतः वहाँ पर ही, आपने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर देश एवं जाति की सेवा में संलग्न रहने को शपथ ली। महापुरुषों का कथन है कि "उत्साही के सहायक ईश्वर स्वयं होते हैं।" पुरुषार्थ करना मानवमात्र का परम कर्तव्य है। इन्हीं विचारों के प्रवाह में बहते हुए अविनाशो मुनि को वहाँ पर वेदमुनि के दर्शन हुए। पश्चात् आपने उनको सद्गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया। गुरुमंत्र लेकर चतुर्थाश्रम में प्रवेश किया।

मुनिजी के दो मुख्य लक्ष्य

अब आप हिंदू धर्म के प्रचार में अपनी सारी उत्साहशक्ति से जुट गये। अपने पूर्वजों की तरह आपके जीवन के दो मुख्य लक्ष्य थे। प्रथम जनता में धार्मिक भावों का पुनरुत्थान करना। द्वितीय, नैतिक स्थिति में उत्पन्न त्रुटियों को दूर करना। धार्मिक प्रचार कार्य की सुव्यवस्था तथा नैतिक परिस्थिति के सुधार की ओर अपना रुख बदलना चाहते थे, तो आपको इस विषय की अधिक चिंता थी कि आपकी धार्मिक प्रवृत्ति कहीं रुक न जाय। उन दिनों इस्लाम धर्म के प्रचारक मौलवी, मुल्ला और पीरों ने अपने छलकपट के जाल द्वारा सरल हिंदू जनता की रुचि को इस्लाम धर्म को ओर आकर्षित कर रखा था। अतः वे अपने प्रचार कार्य को ऐसा सुसंगठित बनाना चाहते थे कि उसके अस्खलित प्रवाह द्वारा मुस्लीम धर्म की चुड़ में से समस्त हिंदू जनता मुक्त बन कर अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त कर सके। किसी होनहार व्यक्ति के बिना यह कार्य कठिन ही नहीं, अपितु असंभव था, इस सत्य को आप अच्छी तरह जानते थे।

आपकी मनोरथपूर्ति

इसी शुभवासना को लेकर प्रचार-कार्य करते आप पंजाब पहुँचे। परम पिता परमात्मा की कृपा से आपका चिरकाल का संकल्प सिद्ध हुआ। जिस अमूल्य रत्न को खोज में आप वर्षों से पर्यटन करते रहे, वह पंजाब की पवित्र भूमि में ही प्राप्त हो गया। सूर्यवंशी वेदीवंशावतंस क्षत्रिय कुमार श्री श्रीचन्द महाराज के मिलन से आप कृतकृत्य हो गये। संसार की समस्त राजलक्ष्मी पाकर जैसे एक याचक आनन्दित होता है, इससे अनेक गुना आनन्द एवं प्रसन्नता आपको हुई। पूर्ण विश्वास हो गया कि अब यह मेरा संकल्प सिद्ध करेगा। भगवान् श्रीचन्द्र ने भी गुरु परंपरा की पावन परिपाटी परिपालनार्थ आपसे श्रौत चतुर्थाश्रम उदासीन धर्म की दीक्षा ली तथा आपकी आज्ञा के अनुसार विधिपूर्वक मुनिवेश धारण कर लिया।

ऐतिहासिक दृष्टि से अविनाशी मुनि ने धर्मप्रचार की तरह नैतिक क्षेत्र में भी बहुत कार्य किया। उन दिनों में अपने भाई पृथ्वीराज और जयमल की क्रूर नीति से त्रस्त होकर राणा सांगा अपने विपत्ति के दिन बीहड़ वनों में बिता रहे थे। वहाँ पर उनको सौभाग्यवश आपके दर्शन हुए। आपकी सेवा सुश्रूषा में व्यस्त होने के कारण वह अपनी दुःखद स्थिति को भूल गया। आप के करुणायुक्त सुन्दर सदुपदेश एवं प्रोत्साहन से उसमें नवजीवन का संचार हो गया। उसके मन में यह भाव दृढ़ हो गया कि विदेशियों के आक्रमणों से जब तक भारतभूमि सुरक्षित नहीं हो सकती, तब तक जीवन वृथा है। इस घटना के विस्तार भय के

कारण, संक्षेप में इतना ही कहना है कि वि. सं. १५८३ में बाबर ने भारत पर एक भारी आक्रमण किया एवं अंत में राणा सांगा के विश्वसनीय मंत्रोदूत शिलादित्य की पिशाचिता के परिणामस्वरूप जयलक्ष्मी बाबर के हाथ आ गई। राणा सांगा पराजित होकर चित्तौड़ नहीं गया। उसी वर्ष राणा इस संसार से चल बसे।*

अविनाशीमुनि की प्रशंसनीय राष्ट्रसेवा

चतुर्थाश्रमी होने पर भी आपके पवित्र हृदय में देश के लिये अपूर्व प्रेम एवं उसकी रक्षा के हेतु अद्‌भुत साहसवृत्ति थी। आप चाहते तो आबू की उपत्यकाओं में अपना समग्र जीवन ईश्वर–चिंतन में शांतिपूर्वक बिता सकते थे, परंतु नहीं, आपको रगरग में राष्ट्र-प्रेम का रक्त बह रहा था। तभी तो आपने मुगल सम्राट बाबर एवं इब्राहीम लोदी के संघर्ष दरम्यान, रणवीर राजपूत राणा सांगा को सहायता के लिये, राजपूतों को प्रोत्साहित एवं संगठित कर, बाबर की सेना को भयभीत कर दिया, परिणामस्वरूप बाबर ने राणा को अधीनता स्वीकार करने का संदेश भेजा। परंतु जैसे पहले ही बताया गया कि शिलादित्य के कपटपूर्ण व्यवहार से अनेक राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए एवं राणा सांगा की हार हुई। उनकी मृत्यु के पश्चात अविनाशी मुनि का उत्साह भंग हो गया। अतएव ग्लानियुक्त हृदय से वे आबू पर्वत पर जाकर, ब्रह्म–चिंतन में लीन रहने लगे। आपको पूर्ण विश्वास था कि श्रीचन्द आपके सत्य संकल्प को अपनी दिव्य शक्ति द्वारा सिद्ध करके ही रहेंगे। ऐसी अति प्रसन्न अवस्था में आप कुछ समय बिता कर ब्रह्मलीन हो गये।"

गुरुदेव के श्रीमुख से प्रवाहित इस अति भावपूर्ण रसिक ऐतिहासिक कथा ने मेरे केवल कर्ण को ही नहीं, नयन, मन और वाणी को भी पावन कर, एक दिव्य आनंद की अनुभूति कराई। मेरे गुरुदेव की उदासीन परंपरा में कितने कीर्तिपूर्ण–दीप्तिपूर्ण महापुरुष हुए, जिन्होंने चतुर्थाश्रमी एवं निवृत्तिमय–जीवन होने पर भी, अपने देश एवं जाति के लिये, आजीवन प्रवृत्ति को अपनाते हुए, असंख्य जीवों के अन्धकारमय जीवन को प्रदीप्त एवं आनंद से परिपूर्ण बनाया।

* ईश्वर की दया एवं आपके शुभाशीर्वाद से वि. सं. १५६८ में पिता की मृत्यु के पश्चात् महाराणा सांगा चित्तौड़ का शासक बन गया। उनके विश्वविख्यात शौर्य एवं सद्‌गुणों से समग्र राजपूत जाति उन्हें हृदय से चाहती थी। राजपूतों के वीर नेता बन कर उन्होंने शत्रुओं से १८ लड़ाइयाँ लड़ीं। आप भी राजपूतों को मातृभूमि की रक्षा के लिये अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा प्रोत्साहित करते रहे।

मेरी जिज्ञासा बढ़ी। मैंने गुरुदेव से पूछा, 'प्रभु, आप तो अविनाशीमुनि की श्रौत उदासीन गुरु परंपरा के ज्वलंत वेद भास्कर हो, आबू को यह पुरातन तपा-भूमि वेदमुनि, अविनाशीमुनि, आचार्य श्रीचन्द प्रभुजो की पावन पदरज एवं दिव्य स्पंदन से प्लावित है। अतः अवश्य ही आपका मन–हृदय भी उन विभूतियों के सूक्ष्म आंदोलनों से आकर्षित एवं धर्म–संदेश वाहक होगा।'

आपकी मुखमुद्रा उनकी दिव्य स्मृति–सौरभ से प्रफुल्लित हो उठी। आपने कहा कि, 'हाँ पुत्री, तुम्हारा यह अनुमान सर्वथा सत्य है। यहाँ के निवास दरम्यान कई बार मुझे उन विश्ववंद्य विभूतियों के दर्शन, प्रेरणा एवं आदेश प्राप्त हुए हैं। इस **भगवान् वेद** के प्रचार–प्रसार के कार्य का आदेश अपने आराध्य सद्‌गुरु स्वामी रामानंदजी की ओर से ही मुझे प्रथम प्राप्त हुआ था तथा वेदी सद्‌कुल कमल, दिवाकर, आचार्य श्रीचन्द्र भी सतत प्रेरणा करते रहे हैं। परिणामस्वरूप **'भगवान् वेद'** ग्रंथ का छपना, वेद का भारत एवं विदेशों में प्रचार–प्रसार का पुण्य कार्य, उनका हिन्दी भाष्य लेखन, ब्राह्मण आरण्यकादिका विस्तृत विवेचन, आदि सब मेरे आराध्यों के ही प्रसाद हैं। मुझे उन्होंने अपना दिव्य करण बना कर, जिन अलौकिक कार्यों द्वारा संसार के त्रिविध ताप संतप्त मानव का जीवन–पथ प्रकाशित किया है, उसके लिये मैं उनका अभिवादन करता हूँ।'

गुरुदेव के साथ इस अति गौरवप्रद एवं सुखद वार्तालाप से मेरे रोम–रोम हर्ष से पुलकित हो उठे। आप जैसे स्वतः सिद्ध महापुरुषों का सानिध्य एवं सत्संग आपके **'अविनाशी धाम'** में नित्य विराजित अविनाशी आत्मस्वरूप (श्रीकृष्ण) की अनुभूति हमें कराने में अवश्यमेव समर्थ हैं।

अविनाशी मुनि के १७वें स्थान में मेरे दादागुरु, स्वामी रामानंदजी एवं १८वें स्थान में आप विराजमान हैं। भारतवर्ष में उदासीन संप्रदाय के विभिन्न स्थानों में मठ एवं आश्रम स्थापित हैं। उन सब के मान्य महंतों से मेरी सविनय प्रार्थना है कि वे अपने धर्म संप्रदाय शिरोमणि अविनाशी मुनि की परमोज्ज्वल स्मृति में नये अविनाशो धाम निर्माण करें या स्थित आश्रमों एवं मठों को अविनाशा धाम नाम से आलेखित करें।

इस प्रकार अति प्राचीन, सनतकुमार से लेकर, आज तक की उदासीन परंपरा को अर्वाचीन पीढ़ी के हृदय–पटल पर अविनाशी–मुनि का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप बना रहे।

पू० गुरुदेव प्रेरित ट्रस्ट और आश्रम

परिशिष्ट-६

संस्थापक—**वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज, उदासीन**

मन्त्री—**स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य**

१. रामधाम सत्संग धर्मार्थ ट्रस्ट, अमृतसर, २५-३-१९५३
शिव मन्दिर, रतन चन्द रोड, अमृतसर
२. उदासीन रामधाम साधना ट्रस्ट, हरिद्वार, १०-५-१९५३
३. जसलोक गंगेश्वर धाम, निरंजनी अखाड़ा रोड, हरिद्वार
४. ईश्वरी बाई आलमचन्द धर्मशाला, जस्साराम रोड, हरिद्वार
५. उदासीन सद्गुरु रामानंद ट्रस्ट, वृन्दावन. ४-५-१९५३
६. गुरु गंगेश्वर देवकी भोजराज कन्या विद्यालय, वृन्दावन
७. गुरु गंगेश्वर वेद दर्शन संस्कृत विद्यालय, वृन्दावन
८. गुरु गंगेश्वर गौशाला, वृन्दावन
९. गुरु गंगेश्वर निहालचन्द मीरपुरी धर्मार्थ औषधालय, वृन्दावन
१०. गुरु गंगेश्वर श्रौत अग्निहोत्र यज्ञशाला, वृन्दावन
११. गुरु गंगेश्वर वैदिक शोध संस्थान, वृन्दावन
श्रौत-मुनि निवास, वृन्दावन
१२. स्वामी गंगेश्वरानन्द कृष्णानंद शिक्षा ट्रस्ट, काशी, १५-५-१९५३
१३. उदासीन संस्कृत विद्यालय, काशी
१४. पूरण पुस्तकालय, वाराणसी
१५. उदासीन स्वामी रामानन्द प्रेस, काशी
ढुँढीराज गली, वाराणसी
१६. कैलास भवन (अविनाशी धाम), माउण्ट आबू (राजस्थान)
१७. वेद मन्दिर ट्रस्ट, अहमदाबाद
१८. श्री चन्द्र औषधालय, अहमदाबाद
१९. श्री चन्द्र पुस्तकालय, अहमदाबाद
कांकरिया रोड अहमदाबाद

२०. महाराजा जोरावरसिंह और महारानी चमन कुँवर बा ट्रस्ट, नासिक,
 २३-१२-१९५०
२१. वेद दर्शन गुरु गंगेश्वर संस्कृत विद्यालय, नासिक
 गंगेश्वर धाम (ओम् प्रकाश बंगला), त्र्यम्बक रोड, नासिक
२२. गुरु गंगेश्वर ओमकार जनसेवक ट्रस्ट, बम्बई
२३. उदासीन सद्गुरु जनकल्याण ट्रस्ट, बम्बई, २१-८-१९५८
२४. सद्गुरु गंगेश्वर इण्टरनेशनल वेद मिशन, बम्बई
 तुलसी निवास, डी. रोड, चर्च गेट, बम्बई
२५. गीता भवन, मनोरमा गंज, इन्दौर, १७-१२-१९५८
२६. सद्गुरु गंगेश्वर धाम, दिल्ली (गुरु गंगेश्वर आध्यात्मिक ट्रस्ट)
२७. योगेश्वर गुरु गंगेश्वर चैरिटेबिल ट्रस्ट, दिल्ली
 १३. ईस्ट पार्क, अजमल खाँ पार्क, करोल बाग, नई दिल्ली
२८. गुरु गंगेश्वर चतुर्वेद संस्थान, दिल्ली
२९. गुरु गंगेश्वर प्रकाश नैय्यर धर्मार्थ औषधालय, दिल्ली
 १३, ईस्ट पार्क एरिया, अजमल खाँ पार्क, करोलबाग, नई दिल्ली
३०. सद्गुरु स्वामी श्री रामानंदजी का समाधि स्थान,
 सुन्दर धाम, रजवाना, जि० लुधियाना
३१. गुरु गंगेश्वर अमर विद्या ट्रस्ट, कलकत्ता

गुरु-गंगेश्वर ग्रन्थ माला

परिशिष्ट—७

लेखक—वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर सद्गुरु देवश्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज उदासीन

१. प्रसून १—सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानन्दजी के लेख तथा उपदेश
सम्पादक—स्वामी शङ्करानन्दजी

२. प्रसून २—योगेश्वर गुरु गंगेश्वर, लेखिका रतन फोजदार
सम्पादक—गोविन्द राम सेठ आसवानी

३. प्रसून ३—मात्राशास्त्र

४. प्रसून ४—सद्गुरु स्वामी गंगेश्वारनंदजी के लेख तथा उपदेश
सम्पादक—स्वामी गोविन्दानन्द

५. प्रसून ५—आनन्द वृन्दावन चम्पू

६. प्रसून ६—आदर्श महात्मा स्वामी शान्तानन्दजो

७. प्रसून ७—वेदोपदेशचन्द्रिका, सम्पादक—स्वामी गोविन्दानन्द वेदान्ताचार्य

८. प्रसून ८—भगवान् वेदः, सम्पादक—वेद दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्दजी

९. प्रसून ९—अथर्ववेदीय कुन्ताप सूक्त समन्वय भाष्य
सम्पादक—स्वामी सुरजनदासजो, साहित्य, व्याकरण, वेदान्त, सांख्य योगाचार्य, एम. ए., स्वामी गोविन्दानन्द, वेदान्ताचार्य

१०. प्रसून १०—गोपीगीत, सम्पादक—स्वामी गोविन्दानन्द वेदान्ताचार्य, डॉ. गौतम पटेल

११. प्रसून ११—भगवद्गीता और वेद गीता

१२. प्रसून १२—शुक्लयजु संहिता समन्वय भाष्यम् प्रथमोऽध्यायः

१३. प्रसून १३—शुक्लयजु संहिता समन्वय भाष्यम् द्वितीयोऽध्यायः

१४. प्रसून १४—शुक्लयजु संहिता समन्वय भाष्यम् तृतीयोऽध्यायः
सम्पादक—स्वामी सुरजनदास, सह सम्पादक—स्वामी गोविन्दानन्द, स्वामी आनन्द भास्कर

१५. प्रसून—१५ विश्वमूर्ति की विश्व यात्रा—लेखक—स्वामी गोविन्दानन्द
१६. प्रसून—१६ शतपथ ब्राह्मण द्वितीय काण्ड
१७. प्रसून—१७ सामवेद संहिता पूर्वार्चिक }
१८. प्रसून—१८ सामवेद संहिता उत्तरार्चिक } सम्पादक मण्डल—स्वामी आनन्द भास्कर, स्वामीगोविन्दानन्द, गोविन्द नरहरि बैजापुरकर,
१९. प्रसून १९—योगेश्वर गुरु गंगेश्वर, भाग–२ लेखिका रतन फोजदार
सम्पादकः गौतम पटेल
२०. प्रसून २०—वामन सामवेद, रामभाष्य एवं भाषानुवाद संहिता
प्रकाशन—गुरु गंगेश्वर चतुर्वेद संस्थान, मन्त्री स्वामी गोविन्दानन्द
२१. शुक्ल यजुर्वेद सनातन भाष्य—भाष्यकार—सद्गुरु अनन्त श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दोदासीन एवं माधवाचार्यजी
सम्पादक—स्वामी गोविन्दानन्द वेदान्ताचार्य एवं प्रेमाचार्यजी, शास्त्री, एम. ए.
२२. सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज जीवन–झाँकी तथा अभिनन्दन पद्य पुष्पाञ्जलि, लेखक–नवल किशोर कांकर
२३. Rig-Veda-A Study by His Holiness Swami Shri Gangeshwaranand-Udaseen. Publishers-Swami Shree Govindanand Vedantacharya
२४. शुक्ल यजुर्वेद–१९ से ४० अध्याय।
२५. श्रौतमुनि–चरितामृत–स्वामी गंगेश्वरानंदजी महाराज
२६. श्री चन्द्र-दिग्विजय–लेखक पं अखिलानन्दजी
२७. संक्षेप शारीरिक
२८. श्री श्री चन्द्राचार्य (गुजराती)
२९. वेद के दार्शनिक सूक्त–लेखक : पं. विष्णुदेवजी
३०. वेद नो वारसो (गुजराती), लेखक : पदमावती देसाई
३१. वेद मन्दिर प्रवेशिका, लेखक : शास्त्री योगिन्दानन्दजी
३२. गुरुस्तुति, रतन, लेखिका : श्रीमती रतनबहन फोजदार

परिशिष्ट–८

वेदैकवेद्यता प्रभोः

(पूज्य गुरुदेव की संस्कृत शैली एवं विद्वता का परिचय प्राप्त हो, इस हेतु से यह लेख यहाँ प्रस्तुत है।)

॥ ॐ नमो ब्रह्मणे ॥

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि॥

(ऋ० १०.१८६.२)

वेदं सभेदं प्रतिपद्य सारं संसारखेदं यततेऽपनेतुम्।
कामादि जेतुं क्षमते च येन प्रख्यातकीर्तिं भुवि तं प्रपद्ये ॥ १ ॥

स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्ति मनीषिणः।
यदुपास्तिमसावत्र परमात्मा निरूप्यते ॥ २ ॥

(न्या० कु० १.२)

निपुणो लोकनिर्माणे सर्वज्ञः सर्वशक्तिकः।
भूतपञ्चकमादाय धर्माधर्मनिमित्तकः ॥ ३ ॥
स्रष्टा भर्ताऽथ संहर्ता नियन्ता जगतां पतिः।
तस्य वेदैकवेद्यत्वं प्राहुर्वेदान्तवेदिनः ॥ ४ ॥
वेदानुमानमेयत्वं मन्वते तर्कपण्डिताः।
पञ्चानां पञ्चभिर्ध्वस्ताः पञ्च विप्रतिपत्तयः ॥ ५ ॥
मुधा वाक्कलहो नायं चेतोविक्षेपकारकः।
उपासनैव क्रियते प्रभोरेषा विचारणा ॥ ६ ॥
न्यायचर्चेयमीशस्य मननव्यपदेशभाक्।
उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तराऽऽगता ॥ ७ ॥

(न्या० कु० १.३)

न्यायकुसुमाञ्जलौ पञ्चभिः स्तबकैः पञ्चानां चार्वाक–मीमांसक–सौगत–जैन–साङ्ख्यानां पञ्च विप्रतिपत्तयः—ईश्वरो नास्ति, १. अलौकिकस्य परलोकसाधनाभावात्, २. अन्यथाऽपि तदनुष्ठानसम्भवात्, ३. तदभावावेदकप्रमाणसद्भावात्, ४. सत्त्वेऽपि तस्याप्रमाणत्वात्, ५. तत्साधकप्रमाणाभावाच्चेति श्रीमदुदयनाचार्येण क्रमशो निरस्ताः।

अयमभिसन्धिः—तार्किकचक्रचूडामणिचुम्बितचरणो लब्धसपर्यः श्रीमदुदयनाचार्य-स्तामिमां भावुकभगवत्प्रणयरसास्वादविघातिनीं विशालां पञ्चतयीं विप्रतिपत्तिविषलतां विततां सत्तर्कसहस्रधारेण निशितानुमानकुठारेण समूलं चिच्छेदेति ।

प्रथम-विप्रतिपत्ति-निरसनम्

तथाहि—चार्वाको ब्रूते, प्रत्यक्षमेव प्रमाणमिति । तच्च ईश्वरसाधनाय न प्रक्रमते, रूपादिहीनत्वात् तस्य । नाप्यसौ मनोवेद्यः, सुखादिवत् मनोधर्मत्वाभावात् । नापि परलोकसाधनाऽदृष्टद्वारकस्तदभ्युपगमः, अस्मन्नये प्रत्यक्षातिरिक्तप्रमाणाऽनभ्युपगमेन अदृष्टस्य खपुष्पकल्पवत्वात् । तस्मात् कुतः परलोकः ? कुतस्तरां धर्माधर्माख्यं तत्सा-धनमदृष्टम् ? कुतस्तमां वा अचेतनस्य तस्य चेतनाधिष्ठानपूर्वकत्वेन त्वदभिमतस्य ईश्वरस्य प्रतिपत्तिरित्येवंतात्पर्यकां प्रथमां विप्रतिपत्तिं निरस्यति—

सापेक्षत्वादनादित्वाद् वैचित्र्याद् विश्ववृत्तितः ।
प्रत्यात्मनियमाद् भुक्तेरस्ति हेतुरलौकिकः ॥

(कुसुमाञ्जलौ १.४)

सापेक्षत्वादिति । अयमर्थः—अलौकिकः=अतीन्द्रियः । धर्माधर्मसंज्ञोऽपूर्वापर-पर्यायो यागादिना स्वर्गादिजनने मध्ये कश्चिद् व्यापारोऽस्ति यम् 'अदृष्ट'नाम्ना व्यपदिशन्ति तैर्थिकाः । तत्र हेतून् दर्शयति—सापेक्षत्वात्=कादाचित्कत्वात् । 'कार्यं सकारणकं कादाचित्कत्वात् भोजनजन्यतृप्तिवत्' इत्यनुमानं पर्यवस्यति । अनेन सापेक्षत्वेन कारणमात्रं कार्यस्य साधितम् ।

ननु कार्यस्य घटादेः दण्डादिकारणं सदातनं कादाचित्कं वा ? नाद्यः, तथा सति घटादेः सदोत्पादप्रसङ्गात् । नापि द्वितीयः, कादाचित्कत्वे तत्कारणपरम्परा कादाचित्की अभ्युपेतव्या । तथा चानवस्था स्यात् इत्याशङ्कां निराचष्टे—अनादित्वादिति । बीजांकुरादिन्यायेन प्रामाणिकी अनवस्था न दूषणमावहतीति तात्पर्यम् ।

ननु कारणाभ्युपगमेऽपि नाऽपूर्वं कारणम् । किं तर्हि ? ब्रह्म प्रकृतिर्वा तथाऽस्तु, इत्याशङ्कां निराकरोति—वैचित्र्यादिति । तथा च 'कार्यं विचित्रकारणवद् विचित्रकार्यत्वात् विचित्रतन्तु-निर्मित-विचित्रपटवत्' इत्यनुमानम् । अनेन अनुमानेन विचित्रजगद्धेतुः विचित्रकारणम् अपूर्वमेव आस्थेयम् ।

ननु तर्हि दृष्टं यागादिकमेव स्वर्गादिहेतुरस्तु, किमजगलस्तनायमानेन अपूर्वेणे-त्यनुशयं परिहरति—विश्ववृत्तित इति । विश्वेषां परलोकेच्छुनां यागादौ प्रवृत्तितः स्वर्गादिसाधनत्वज्ञानं यागादौ लोके प्रवृत्तिकारणम्, इष्टसाधनत्वज्ञानस्य प्रवृत्तिहेतुत्वात् ।

यागादेश्च चिरविनष्टस्य तत्कालपर्यन्तावस्थायिनं मध्यवर्तिनं कञ्चिद् अपूर्वव्यापारमन्तरा दुर्घटमिति यागादेः स्वर्गादिसाधकत्वासम्भवाद् अदृष्टं सिद्ध्यति । वक्ष्यति चाऽऽचार्यः-

चिरध्वस्तं फलायाऽलं न कर्माऽतिशयं विना ॥ इति ॥

(न्या० कु० १.९)

अनुमानप्रयोगश्च—'यागः सव्यापारः करणत्वात् कुठारादिवत्' इति ।

ननु तदपि न भोगसमानाधिकरणम् । किं तर्हि ? भोग्यनिष्ठमेव अङ्गीकार्यम् । तथात्वे न काचित् क्षतिरिति संशयं निराचष्टे—प्रत्यात्मनियमाद् भुक्तेरिति । भुक्तिः =भोगः, सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारः । स च प्रत्यात्मनियतः । तस्मात् समवायेन भोगं प्रति समवायेन अदृष्टं कारणमिति कार्य-कारणभावाभ्युपगमेन यत्समवेतमदृष्टं तत्रैव समवायेन भोगनिष्पत्तिः, न सर्वत्र । अन्यथाऽतिप्रसङ्गो दुष्परिहरः स्यात्, सर्वान् प्रति भोग्यनिष्ठत्वे तस्याऽविशेषादिति ।

पुनः प्रत्यवतिष्ठते—अकस्माद् भवति, न किञ्चित्-सापेक्षं कार्यम् । आह च गौतमः—**अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्'** (न्यायसूत्रम् ४.१.२) इति । तदेतत् परिहरति—

हेतुभूतिनिषेधो न स्वानुपाख्यविधिर्न च ।
स्वभाववर्णना नैवमवधेर्नियतत्वतः ॥

(न्या० कु० १.५)

इदमैदंपर्यम्—'अकस्माद् भवति' इत्यस्य कोऽर्थः ? किं हेतुवाचिना किंशब्देन नञोऽन्वयाद् हेतुभिन्नाद् अहेतोर्भवति इति ? आहोस्वित् धात्वर्थे भवने नञोऽन्वयेन हेतोर्न भवतीति ? अथवा किंशब्दः स्वातिरिक्तहेतुवचनः, तथा सति स्वातिरिक्तहेतोर्न भवति, स्वस्माद् भवति इति ? अथवा नञ्संवलितः किंशब्दोऽलीकवाची, तथा च अलीकाद् भवतीति ? अथवा अकस्मादिति अखण्डमव्ययपदम्, स्वभावादिति तदर्थः, एवञ्च स्वभावाद् भवतीति ? त एते पञ्चविकल्पाः । इमान् निराचिकीर्षुराह—हेतुभूतिरिति ।

हेतुभूतिरिति विकल्पद्वयनिषेधः । स्वानुपाख्येति । स्वम्=कार्यम् । अनुपाख्यम् =अलीकम् । तस्माद्विधिः=कार्योत्पत्तिः । न च=नैव । स्वस्मात् स्वोत्पत्तेर-संभवात् । अलीकस्य तुच्छत्वेन अकिञ्चित्करत्वात् । अनेन द्वितीयपादेन अलीकहेतु-कत्वे पर्यवसन्नयोः तृतीय-चतुर्थविकल्पयोर्निषेधः । स्वभावेति तृतीयचरणेन पञ्चमविकल्पनिरासः ।

एकहेलयैव सर्वान् विल्पान् निराकर्तुं चतुर्थचरणमारचयति अवधेरिति । नियतत्वत इति । नियताऽवधिकत्वात् कार्यस्य, पूर्वोक्तेषु पञ्चसु कार्यस्य अनुत्पादः सदोत्पादो व

प्रसज्येत । मम तु नायं दोषः, कार्यान्यवहितपूर्वक्षणवर्तिकारणकलापस्यैव स्वोत्तरकाले कार्यजनननियमादिति निष्कर्षः ।

ननु ईश्वरस्य जगज्जनने अदृष्टस्य सहकारिकारणताऽङ्गीकारे शास्त्रविरोधः स्यात्। शास्त्रे हि कारणप्रस्तावे शक्ति-प्रकृति-मायाऽविद्यादिशब्दाः प्रयुक्ताः । ते च अदृष्टातिरिक्तां भगवतो दुर्घटघटनापटीयसीं दिव्यां मायाशक्तिमाचक्षन्ते । तत्राह—

इत्येषा सहकारिशक्तिरसमा माया दुरुन्नीतितो,
मूलत्वात् प्रकृतिः प्रबोधभयतोऽविद्येति यस्योदिता ।
देवोऽसौ विरतप्रपञ्चरचना-कल्लोल-कोलाहलः,
साक्षात् साक्षितया मनस्यभिरतिं बध्नातु शान्तो मम ॥

(न्या० कु० १.२०)

इत्येषेति । यस्य ईश्वरस्य सहकारिशक्तिः=सहकारिकारणम् । एषा = माया, मायाशब्दलक्ष्यमदृष्टम्, सैव प्रकृतिः । मूलत्वात्=कारणत्वात् । प्रबोधभयतः, भयशब्देन विरोधसूचनेन तत्त्वज्ञानप्रतिबद्धत्वात् 'अविद्या' इति । उदिता=उक्ता । असौ देवः मम मनसि साक्षादभिरतिम्=स्वविषयकसाक्षात्कारिज्ञानम् । बध्नातु=उत्पादयतु । तं विशिनष्टि—विरतेति । प्रपञ्चः=मिथ्याज्ञानादिः, तस्य रचनाकल्लोलः=तत्परम्परा, तस्य कोलाहलः=किंवदन्ती विरता यस्मात् स तथा । साक्षितया=साक्षीभूय, साक्षित्वं च निर्णयकत्वात् ।

अयमभिसन्धिः—'रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्' (ऋ० ३.५३.८), 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (ऋ० ६.४७.१८), 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्' (श्वेताश्व० ४.१०), 'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः' (गीता ३.२७), 'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वेताश्व० ६.८), 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः' (कठोप० २.७) इत्यादौ जगत्सहकारिकारणे प्रयुक्ताः मायादिशब्दाः 'सिंहो माणवकः' इतिवत् गौण्या वृत्त्या लाक्षणिकाः । तथा हि—'भगवतः शक्तिः असमा=विचित्रा विचित्रगुणयोगात्' शक्तिशब्दोऽदृष्टे लाक्षणिकः । दुरुन्नेयत्वसादृश्यात् मायाशब्दः, तत्त्वज्ञानविरोधित्वाद् अविद्याशब्द, प्रकर्षेण करोतीति कारणत्वसाम्यात् प्रकृतिशब्दश्च तथा । एवमन्यत्रापि ऊहनीयम् ।

द्वितीय–विप्रतिपत्ति–निरसनम्

प्रथमे स्तबके विंशतिकारिकाभिः अदृष्टाधिष्ठातृतया ईश्वरं संसाध्य प्रथमा विप्रतिपत्तिर्निरस्ता । सम्प्रति वेदस्य पौरुषेयत्वेन ईश्वरकर्तृकत्वं संसाध्य द्वितीय–विप्रतिपत्ति–निरासाय उपक्रमते—

प्रमायाः परतन्त्रत्वात् सर्गप्रलयसम्भवात् ।
तदन्यस्मिन्नविश्वासान्न विधान्तरसम्भवः ॥

(न्या० कु० २.१)

अयमभिप्रायः—अत्र मीमांसकः प्रत्यवतिष्ठते, अन्यथाऽपि—ईश्वरं विनैव, यागाद्यनुष्ठानं कर्तुं शक्यम्, तस्य वेदगम्यत्वात् । वेदस्य च प्रामाण्यं नित्यनिर्दोषत्वादेव, न तु ईश्वरप्रणीतत्वात्, येन वेदवक्तृतया ईश्वरः सिद्ध्येत् । न च वेदे स्वरूपसत्प्रामाण्यं न प्रवृत्तिकारणमिति वाच्यम्, महाजनपरिग्रहेणैव प्रामाण्यग्रहसम्भवादिति । तं निराकरोति—प्रमाया इति । परतन्त्रत्वात्=पराधीनत्वात् । तच्च ज्ञानसामान्यकारणातिरिक्तकारणाधीनत्वम् । अनुमानप्रयोगश्च—'प्रमा ज्ञानसामान्यकारणातिरिक्तकारणजन्या कार्यत्वे सति ज्ञानविशेषरूपत्वात् अप्रमावत्' इति । शाब्दप्रमायां च ज्ञानसामान्यातिरिक्तं कारणं वक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञानलक्षणो गुण एव । स च गुणो गुणत्वात् क्वचित् समवेतः, स एव भगवान् ईश्वरो वा । आह च न्यायमञ्जरीकारः[1]

वेदस्य पुरुषः कर्ता नहि यादृशतादृशः ।
किन्तु त्रैलोक्यनिर्माणनिपुणः परमेश्वरः ॥
स देवः परमो ज्ञाता नित्यानन्दः कृपान्वितः ।
क्लेश–कर्मविपाकादि–परामर्श–विवर्जितः ॥ इति ॥

यदुक्तं महाजन-परिग्रहेण नित्य-निर्दोषिताऽऽहितवेदप्रामाण्यज्ञानं यागादिप्रवृत्तिकारणमिति । तदपि अपेशलमित्याह—सर्गप्रलयसम्भवादिति । अत्र सर्गशब्देन जन्यभावानां परिग्रहः । सृष्टौ समुत्पन्नानां जन्यभावानां सर्वेषां प्रलयोपपत्तेरिति । अयं भावः—प्रलयानन्तरं सर्वेषु भावेषु विनष्टेषु महाजनपरिग्रहाऽसम्भवेन पुनः सर्गादौ लब्धात्मनि वेदे प्रामाण्याऽग्रहाद् यागादौ प्रवृत्तेरभावेन वैदिकयागादिव्यवहारस्य विलोपापत्तेरिति ।

ननु पूर्वसर्गाभ्यस्त–योगजधर्मानुभावत् लब्धसार्वज्ञ्यादिविद्वांसः कपिलादय एव वेदकर्तारः, किं परमेश्वरेण ? इत्याशङ्कां निराचष्टे—तदन्यस्मिन्नविश्वासादिति । यः खलुः परमेश्वरे मनःप्रत्ययं नादधाति, तस्य कथं नाम ईश्वरातिरिक्ते कपिलादौ विश्वासः ? अपि च, लाघवाद् एक एव वेदकर्ता भगवान् आस्थेयः । नानाकर्तृकल्पना तु गौरवपराहतेति भावः ।

१. न्यायमञ्जरी : जयन्तभट्टकृता । प्रका० मेडिकल हाल यन्त्रालयः वाराणसी; संवत् १९५१ वै०, पृ० १९० ।

उपसंहरति— न विधान्तरेति । निर्दोषवेदद्वारकत्वस्य योगधीसम्पादित-सार्वज्ञ्य-कपिलादिद्वारकत्वस्य च निराकरणात् प्रकारान्तरस्य च असम्भाव्यत्वात् मीमांसको 'गले-पादुका' न्यायेन वेदकर्तारं परमेश्वरमभ्युपगच्छेदेवेति । अत ऊर्ध्वम्—

वर्षादिवद् भवोपाधिवृत्तिरोधः सुषुप्तिवत् ।
उद्भिद्-वृश्चिकवद् वर्णा मायावत् समयादयः ॥

(न्या० कु० २.२)

इति द्वितीयकारिकया प्रलयबाधकं निरस्य—

जन्मसंस्कार-विद्यादेः शक्तेः स्वाध्यायकर्मणोः ।
ह्रासदर्शनतो ह्रासः सम्प्रदायस्य मीयताम् ॥

(न्या० कु० २.३)

इति तृतीयकारिकया 'वेदादिसम्प्रदायः अत्यन्तमुच्छिद्यते, ह्रासमानत्वात् प्रदीपवत्' इत्यनुमानप्रयोगं तत्साधकत्वेन प्रदर्शितवान् । प्रलय-सदसत्त्व-विभावना, वेदपौरुषेयत्वाऽपौरुषेत्व-विवेचना, प्रामाण्य-स्वतस्त्वपरतस्त्व-वर्णना च महद्भिस्तत्तद्-दर्शनाचार्यैः आकारग्रन्थेषु सविस्तरं कृतैवेति तत एवाऽवसेया । विस्तरभयाद् विरम्यते ।

द्वितीयस्तबकार्थमुपसंहरन् प्रार्थयते—

कारं कारमलौकिकाद्भुतमयं मायावशात् संहरन्,
हारं हारमपीन्द्रजालमिव यः कुर्वञ्जगत् क्रीडति ।
तं देवं निरवग्रह-स्फुरदभिध्यानानुभावं भवं,
विश्वासैकभुवं शिवं प्रति नमन् भूयासमन्तेष्वपि ॥

(न्या० कु० २.४)

तृतीय–विप्रतिपत्ति–निरसनम्

सौगतो विप्रतिपद्यते—यथा भूतले घटाभावोऽनुपलब्ध्या गृह्यते तद्वदनुपलब्ध्या ईश्वराभावोऽपि गृह्यते । यदि च धर्माऽधर्मादिविलयापत्तिभिया योग्यानुपलब्धेरेव अभावग्राहकत्वाद् ईश्वरस्याऽयोग्यत्वेन तया न तदभावप्रतिपत्तिरित्युच्यते, तदा शशशृङ्गस्यापि अयोग्यत्वात् तदभावः कथं प्रतिपत्तव्य इति तं निराचष्टे—

योग्याऽदृष्टिः कुतोऽयोग्ये प्रतिबन्धिः कुतस्तराम् ।
क्वाऽयोग्यं बाध्यते शृङ्गं क्वाऽनुमानमनाश्रयम् ॥

(न्या० कु० ३.१)

अयमभिसन्धिः—योग्याऽदृष्टिः=योग्यानुपलब्धिः अयोग्यपरमात्मनि। कुतः=कथं भवेत्, न सम्भवतीत्यर्थः। शृङ्गं तु योग्यमेव, तस्येन्द्रियग्राह्यत्वात्। यदि तत् स्यान्नूनमुपलभ्येत। यतो नोपलभ्यते, अतस्तदभावः साधकाभावादेव प्रतिपद्यते। ईश्वरे तु न तथा, बहुशः साधकप्रमाणानां पञ्चमस्तबके वक्ष्यमाणत्वात्।

ननु 'ईश्वरो न कर्ता, शरीरप्रयोजनाभिसन्धानशून्यत्वात्' इत्यनुमानेन ईश्वराभावोऽनुमेय इत्याशङ्क्याह—क्वाऽनुमानमिति। सत्यम्, कर्तृत्वव्यापक-प्रयोजनाभिसन्धानविरहेण कर्तृत्वविरहः परमेश्वरे शक्यानुमानः, व्यापकाभावे व्याप्याभावस्य सर्वत्रानुमितिदर्शनात्। यथा धूमव्यापकवह्निविरहेण धूमाभावोऽनुमीयते। परं पृष्टो भवान् इदं व्याचष्टामः, कर्तृत्वाभावानुमाने पक्षीकृतः परमेश्वरः सिद्धोऽसिद्धो वा? असिद्धश्चेत् तदा आश्रयासिद्धिः। द्वितीये धर्मिग्राहकमानेनैव कर्तृत्वाभावाऽनुमानबाधः। तस्मात् तदनुमानमनाश्रयमसिद्धपक्षकं क्व कुत्र स्यात्?

चतुर्थ-विप्रतिपत्ति-निरसनम्

दिगम्बरः पर्यनुयुङ्क्ते—प्रथमतस्तावद् ईश्वर एव नास्ति प्रमाणागम्यत्वात् 'प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धिः' इति दार्शनिकानां समयात्। भवत्प्रसादनाय कथञ्चित् तदभ्युपगमेऽपि न तस्य प्रमाणत्वम्। प्रमा च अगृहीतग्राहि ज्ञानम्। ईश्वरज्ञानं च अधिगतार्थगमकत्वात् न प्रमा। अतः ईश्वरे न प्रमाकरणत्वम्, न वा तत्कर्तृत्वम्। तस्माद् भावनेव ब्रूयाद् यदप्रमाणपुरुषस्य वचसि कः श्रद्धधीत? फलतो वेदः ईश्वरवाक्यं श्रद्धास्पदमिति भवतां रिक्तं वचः। तत्राऽऽह—

अप्राप्तेरधिकप्राप्तेरलक्षणमपूर्वदृक्।
यथार्थोऽनुभवो मानमनपेक्षतयेष्यते॥

(न्या० कु० ४.१)

कारिकेयं विव्रियते— अपूर्वदृक्=अगृहीतग्राहि ज्ञानम्। अलक्षणम्=प्रमालक्षणं न भवति। अप्राप्तेः=धारावाहिकबुद्धावव्याप्तेः। तत्र हि द्वितीयादिप्रत्ययेषु गृहीतग्रहणमेव। भ्रमेऽतिव्याप्तिरपि, इत्याह—अधिकप्राप्तेरिति अतिव्याप्तेः; भ्रान्तिज्ञाने इति शेषः। तत्र अगृहीतशुक्तिशकलादेर्धर्मितया अगृहीतरजतत्वादेश्च प्रकारतया मानात् स्वाभिमतं लक्षणमाह—यथार्थानुभव इति। यथार्थानुभवो मानम्—प्रमा, इष्यते=अङ्गीक्रियते, स्मृतिवत् तस्य अन्यानपेक्षितत्वात्। स्मृतेः प्रामाण्यं हि स्वजनकानुभवसमानविषयतया अनुभवप्रामाण्याधीनम्। अनुभवस्तु न तथेति भावः।

पञ्चम-विप्रतिपत्ति-निरसनम्

पञ्चमी विप्रतिपत्तिर्मुख्यतः साङ्ख्यानाम् । तत्राऽन्येऽपि समाना एव । यतः सर्वेऽपि ईश्वरानङ्गीकर्तारः साधकप्रमाणं न पश्याम इत्यातिष्ठन्ते । अतः सर्वेषामेकहेलयैव निरासाय पञ्चमस्तबके प्रथमकारिकया नवाऽनुमानानि सङ्गृह्णाति—

कार्याऽऽयोजन-धृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात् सङ्ख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः ॥

(न्या० कु० ५.१)

व्याख्यायते—कार्यम्=कार्यत्वलिङ्गकसकर्तृकत्वानुमानम् । आयोजनम्=सर्गाद्यकालीन—द्व्यणुकारम्भकपरमाणुद्वयसंयोगजनकं कर्म (क्रिया) । धृतिः गुरुत्ववतां पतनाभावः । आदिपदेन विनाशसङ्ग्रहः । पदात्=घटादिपदप्रयोगात् । प्रत्ययतः--प्रामाण्यतः । श्रुतेः=वेदात्, वाक्यात्=वाक्यत्वादिति भावप्रधानो निर्देशः । सङ्ख्याविशेषात्=द्व्यणुकपरिमाणजनकपरमाणुनिष्ठद्वित्वसङ्ख्यातः । विश्वविदव्ययः—विशिष्टं साध्यम् । तेन नित्यसर्वविषयकज्ञानवान् सर्वज्ञः परमात्मा सिद्ध्यतीत्यर्थः । 'सूचीकटाह'न्यायेन प्रथममनुमानानि अष्टौ आयोजनादिशब्दसंसूचितानि लिख्यन्ते । पश्चाद् विशेषविचारार्हं प्रथमानुमानं वक्ष्यामः । तथाहि—

१. सर्गाद्यकालीन द्व्यणुकारम्भक-परमाणुद्वयसंयोगजनकं कर्म चेतनप्रयत्नपूर्वकं कर्मत्वाद् अस्मदादिशरीरक्रियावत् ।

२. ब्रह्माण्डादि पतनप्रतिबन्धकीभूतप्रयत्नवदधिष्ठितं धृतिमत्त्वाद् वियति विहङ्गमधृतकाष्ठवत् ।

३. ब्रह्माण्डादि प्रयत्नवद्विनाश्यं विनाशित्वात्, पाट्यमानपटवत् ।

४. घटादिसम्प्रदायव्यवहारः स्वतन्त्रपुरुषप्रयोज्यः व्यवहारत्वाद् आधुनिकलिप्यादिव्यवहारवत् ।

५. वेदजन्यज्ञानं कारणगुणजन्यं प्रमात्वात् प्रत्यक्षादिप्रमावत् ।

६. वेदाः पौरुषेया वेदत्वाद् आयुर्वेदवत् ।

७. वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वाद् अस्मदादिवाक्यवत् ।

८. द्व्यणुकपरिमाणं संङ्ख्याजन्यं परिमाणप्रचयाजन्यत्वे सति जन्यपरिमाणत्वात्, तुल्यपरिमाणकपालद्वयारब्धघटपरिमाणात् प्रकृष्टतादृशकपालत्रयारब्धघटपरिमाणवत् । अणुपरिमाणं तु न कस्यापि परिमाणस्य जनकं नित्यपरिमाणत्वाद्, अणुपरिमाणत्वाद्वा । एवञ्च सर्गादौ द्व्यणुकपरिमाणहेतु-परमाणुनिष्ठद्वित्वसङ्ख्या च नास्मदाद्यपेक्षाबुद्धिजा । अतस्तदानीन्तनाऽपेक्षाबुद्धिः ईश्वरस्यैवेति ।

सम्प्रति प्रधानतमं कार्यलिङ्गकानुमानमुपाहृत्य विशेषतो विवेचयामः—

क्षित्यादि कार्यं सकर्तृकं कार्यत्वाद् घटादि वदिति ।

अत्र विद्वन्मुकुटमणयो न्यायमञ्जरीकाराः—'विविध-विकल्प—जालजटिलं' भयङ्कर-कुतर्कनिकरविषधरविजृम्भणसहायं विशालकायं भावुकहार्दिक-दुस्सह-दुःखदहनदीपनदक्षं पूर्वपक्षं समुद्भाय तत्क्षणं तत्तत्क्षणक्षमं सत्तर्क-पीयूषधारासहस्रवर्षकं भगवदाराधकमनोहर्षकं यथासंविधानं समाधानमाचचक्षिरे । सम्प्रति विचित्रं तदीयवागाहवचित्रं किञ्चित् प्रस्तूयते ।

वादी निम्नलिखिताभिप्रायकेण वाक्यकदम्बकेन प्रत्यवतिष्ठते—भवतां जगदीश्वरो जगत्कर्ता अशरीरः शरीरी वा ? सशरीरत्वेऽपि तदीयं शरीरं नित्यं कार्यं वा ? कार्यत्वेऽपि स्वकार्यं स्वातिरिक्तेश्वरकार्यं वा ? सर्वथाऽपि नोपपद्यते अशरीरत्वपक्षः, कुत्रापि अशरीरस्य कार्यं प्रति कर्तृत्वादर्शनात् दृष्टविरोधेन सुतरां प्रत्याख्यानात् । शरीरत्वाङ्गीकारेऽपि तदीयशरीरस्य नित्यत्वं दुर्भणम्, 'ईश्वरदेहोऽनित्यः देहत्वात् चैत्रदेहवत्' इत्यनुमानेन विनाशित्वप्रतिपत्तेः । स्वस्य स्वकार्यत्वाभिधानं केवलं दुस्साहसम् । नहि पटुरपि नटबटुः स्वस्कन्धमारोढुं प्रभवति । ईश्वरान्तरकार्यत्वपक्षे तस्य तस्य शरीरस्य अन्यान्येश्वरकर्तृत्वं वाच्यम् । ततश्च ईश्वरानन्त्यमापद्येत । भवतु को दोषः ? मानाभाव एव ।

अपि च—एकेश्वरस्य साधने पर्याकुलतामुपगतो भवान् कथमनन्तान् ईश्वरान् साधयितुं प्रभवेत् । तत्रैते पूर्वपक्षश्लोका भवन्ति[1]—

अशरीरस्य कर्तृत्वं दृश्यते नहि कस्यचित् ।
देहोऽप्युत्पत्तिमानस्य देहत्वाच्चैत्रदेहवत् ॥१॥

स्वयं निजशरीरस्य निर्माणमिति साहसम् ।
कर्त्रन्तरकृते तस्मिन्नीश्वरानन्त्यमापतेत् ॥२॥

व्यापारेण जगत्सृष्टिः कुतो युगशतैरपि ।
तदिच्छां चानुवर्तन्ते न जडा परमाणवः ॥३॥

अवाप्तसर्वानन्दस्य रागादिरहितात्मनः ।
जगदारभमाणस्य न विद्मः किं प्रयोजनम् ॥४॥

सर्गात् पूर्वं हि निःशेष-क्लेशसम्पर्क—वर्जितः ।
नास्य मुक्ता इवात्मानो भवन्ति करुणास्पदम् ॥५॥

करुणामृतसंसिक्तहृदयो वा जगत् सृजन् ।
कथं सृजति दुर्वार—दुःखप्राग्भार—दारुणम् ॥६॥

---

१. न्यायमञ्जरी, पृ० १९०-९४ (प्रमाणप्रकरणम्) ।

न च क्रीडाऽपि निःशेषजनताऽऽतङ्ककारिणी ।
आयासबहुला चेयं कर्तुं युक्ता महात्मनः ॥७॥

उद्भवाऽभिभवौ तेषां स्यातां चेदीश्वरेच्छया ।
तर्हि सैवाऽस्तु जगतां सर्गसंहारकारणम् ॥८॥

इत्यनन्तरगीतेन नयेनेश्वरसाधने ।
नहि तद् दृश्यते कार्यं तं विना यन्न सिद्ध्यति ॥९॥

न च प्रसिद्धिमात्रेण युक्तमेतस्य कल्पनम् ।
निर्मूलत्वात् तथा चोक्तं प्रसिद्धिर्वट्यक्षवत् ॥१०॥

अत एव निरीक्ष्य दुर्घटं
जगतो जन्म-विनाशडम्बरम् ।
न कदाचिदनीदृशं जगत्
कथितं नीतिरहस्यवेदिभिः ॥११॥

इति प्राप्ते समादध्महे—

आस्ताम् अशरीरस्यैव कर्तृता, न तत्र कश्चिद् दोषमनुभवामः । न च कस्यचित् कुत्रचिद् अशरीरस्य कर्तृत्वमदृष्टचरमिति वाच्यम्; स्वशरीरप्रेरणे स्वात्मनोऽशरीरस्य कर्तृत्वदर्शनात् । न च कर्तृत्वे सव्यापारतो स्यात्, न हि निर्व्यापारस्य कर्तृत्वं सम्भवतीति वाच्यम्; व्यापारविरहेऽपि इच्छामात्रेण कर्तृत्वोपपत्तेः । ज्ञानेच्छा-कृतिमत्त्वस्यैव कर्तृत्वाङ्गीकारेण तस्येश्वरेऽनपायात् । यद्यत्र भवान् ब्रूयात्—

कुलालवच्च नैतस्य व्यापारो यदि कल्प्यते ।
कथं चाचेतनो भावस्तदिच्छामनुवर्तते ॥

तदाऽस्माभिरपि एष श्लोको वक्तुं सुशक एव—

यथा ह्यचेतनः काम आत्मेच्छामनुवर्तते ।
तदिच्छामनुवर्त्स्यन्ते तथैव परमाणवः ॥[1]

यस्तु प्रयोजनविकल्पः किमर्थं सृजति जगन्ति भगवानिति, सोऽपि न पेशलः, स्वभाव एवैष भगवतो यत् कदाचित् सृजति, कदाचिच्च संहरति विश्वमिति ।

अथ पुनर्नियतकाल एषोऽस्य स्वभाव इति चेत् ? आदित्यं पश्यतु पण्डितम्मन्यो यो नियतकालमुदेति, अस्तमेति च । प्राणिकर्मसापेक्षमेतद् विवस्वतो रूपमिति चेद् ?

१. न्यायमञ्जरी पृ० २०२ ।

ईश्वरेऽपि तुल्यः समाधिः । तथा चोक्तम्—

क्रीडार्थेऽपि जगत्सर्गे न हीयेत क्रियार्थता ।
प्रवर्तमाना दृश्यन्ते न हि क्रीडासु दुःखिता ॥इति॥

अथवा—

अनुकम्पयैव सर्ग-संहारौ आरभतामीश्वरः ।

ननु अनुकम्पया परमेश्वरो जगत् सृजतीति वदतस्तव न त्रपा ? दुःखबहुलां सृष्टिं सृजतः परमात्मनः का नाम अनुकम्पा ? अनुकम्पा चेत् सुखिन एव सर्वान् जनान् स उत्पादयेत् । यदि वा विरमेदेव भाविनो दुःसहदुःखदहनदह्यमानमनसो जनानालोच्य दयाद्रुतचेताः परमेश्वर इति चेन्न । कर्मसापेक्षत्वेन दत्तोत्तरत्वात् ।

तथा हि—शुभाशुभसंस्कारानुविद्धा एवाऽऽत्मानः । ते च धर्माधर्म–निगड-संवृतत्वाद् अपवर्गपुरद्वारप्रवेशमलभमानाः कथं नानुकम्प्याः ? अनुपभुक्तफलानां कर्मणां न प्रक्षयः । सर्गमन्तरेण च तत्फलभोगाय नरकादिसृष्टिमारभते दयालुरेव भगवान् । उपभोगप्रबन्धेन परिश्रान्तानामन्तराऽन्तराविश्रान्तये जन्तूनां भुवनोपसंहरणमपि करोतीति सर्वमेतत् कृपानिबन्धनमेव ।

ननु च युगपदेव सकलजगत्-प्रलयकरणमनुपपन्नम्, अविनाशिनां कर्मणां फलोपभोगप्रतिबन्धासम्भवादिति चोदितम् । न युक्तमेतत्, ईश्वरेच्छाप्रतिबद्धानां कर्मणां स्तिमितशक्तीनामवस्थानात् तदिच्छाप्रेरितानि कर्माणि फलमादधति, तदिच्छाप्रतिबद्धानि च तत्रोदासते । कस्मादेवमिति चेत् ? अचेतनानां चेतनाधिष्ठितानां स्वकार्यकरणाऽनुपलब्धेः ॥

ननु तेषामेव कर्मणां कर्तार आत्मनश्चेतना अधिष्ठातारो भविष्यन्ति । यथाऽऽह भट्टः श्लोकवार्तिके सम्बन्धाक्षेपे (श्लोक ७५) — 'कर्मभिः सर्वजीवानां तत्सिद्धेः सिद्धसाधनम्' इति । नैतदेवम्; नैते अधिष्ठातारो भवितुमर्हन्ति, बहुत्वात् विरुद्धाभिप्रायत्वाच्च । तथा हि—एक एव कश्चित् स्थावरादिविशेषो राजादिविशेषो वा प्राणिकोटीनामनेकविधसुखदुःखोपभोगस्य हेतुः स तैर्बहुभिरव्यवहिताभिप्रायैः कथमारभ्येत, तेषामेकत्र संभावनाभावात् । प्राकृतपुरुष-परिषदोऽपि क्वचिदेव सकलसाधारणोपकारिणि कार्ये भवत्यैकमत्यम्, न सर्वत्र । महा-प्रासादाद्यारम्भे बहूनां तक्षादीनामेक–स्थपत्यानुशयावर्तितं दृश्यते । पिपीलिकानामपि मृत्कूटकरणे तुल्यः कश्चिदुपकारः प्रवर्तकः, स्थपतिवदेकाशमानुवर्तित्वं वा कल्प्यम् । इह तु तत्स्थावरं शरीरं केषाञ्चिदुपकारकारणम् इतरेषामपि भूयसामपकारकारणमिति । कथं तौ सम्भूय सृज्यते ? अनधिष्ठितानां त्वचेतनानामारम्भकत्वमयुक्तमेव । तस्मादवश्यमेकस्तेषां कर्मणामधिष्ठाता कल्पनीयः ।

यदिच्छामन्तरेण भवन्त्यपि कर्माणि न फलजनने प्रभवन्ति, अत एवैक ईश्वर इष्यते, न द्वौ बहवो वा, भिन्नाभिप्रायतया लोकानुग्रहोपघातवैशसप्रसङ्गात् । इच्छा-

श्री सद्गुरुदेव की जन्मशताब्दी में निर्मित
जगद्गुरु श्री चन्द्राचार्य, वेदनगर

जन्मशताब्दी महोत्सव में उपस्थित संत, महंत एवं गृहस्थीगण
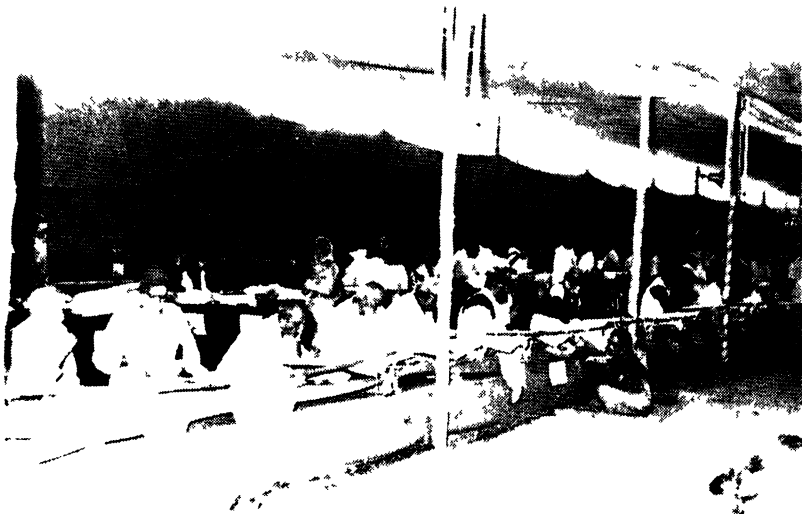
जन्म शताब्दी में आयोजित १०८ चतुर्वेद पारायण

सेठ श्री लछमनदास पमनानी द्वारा सद्गुरुदेव को भगवान् वेद की भेंट

विसंवादसम्भवेन च ततः कस्यचित् सङ्कल्पविघातद्वारकानैश्वर्यप्रसङ्गादित्येक एवेश्वरः। तदिच्छया कर्माणि कार्येषु प्रवर्तन्ते इत्युपपन्नः सर्गः। तदिच्छाप्रतिबन्धात् स्तिमितशक्तीनि कर्माण्युदासते इत्युपपन्नः प्रलयः। एवञ्च यदुक्तम्—

तस्मादद्यवदेवात्र सर्गप्रलयकल्पना।
समस्तक्षयजन्मभ्यो न सिद्ध्यत्यप्रमाणिका॥

इत्येतदपि न साम्प्रतम्।

तिष्ठतु वा सर्ग-प्रलयकालः। अद्यत्वेऽपि यथोक्तनयेन तदिच्छामन्तरेण प्राणिनां कर्मविपाकानुपपत्तेरवश्यमीश्वरोऽभ्युपगन्तव्यः। इतरथा सर्वव्यवहारविप्रलोपापत्तेः।

तदुक्तम्—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख-दुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥ इति॥

(महाभा० वन० ३०.५८)

नन्वेवं तर्हि ईश्वरेच्छैव भवतु कर्त्री संहर्त्री च, किं कर्मभिरिति। मैवम्। कर्मभिर्विना जगद्वैचित्र्यानुपपत्तेः। कर्मनैरपेक्ष्यपक्षेऽपि त्रयो दोषाः प्रसक्ता एव, १. ईश्वरस्य निर्दयता, २. कर्मचोदनाऽऽनर्थक्यम्, ३. अनिर्मोक्षप्रसङ्गश्चेति। तस्मात् कर्मणामेव नियोजने स्वातन्त्र्यम्, ईश्वरस्य न तन्निरपेक्षत्वम्। किं तादृशैश्वर्येण प्रयोजनमिति चेन्न। न प्रयोजनानुवर्ति प्रमाणं भवितुमर्हति। किं वा भगवतः कर्मापेक्षिणोऽपि भृत्यकर्मानुसारेणवेतन—पारितोषिकादिकं प्रयच्छतो भूपालस्यैव न क्षीयते प्रभुत्वमित्यलं कुतर्कलवलिप्तमुखनास्तिकालापपरिमर्दनेन। अत्रैते श्लोका भवन्ति—

द्वेषो दुःखमधर्मश्च संस्कारश्चापि भावना।
नैते नित्यनिजानन्दे तिष्ठन्ति परमात्मनि ॥१॥

ज्ञानमिच्छा कृतिर्धर्मः सुखमात्यन्तिकं तथा।
नित्यानित्यनिजानन्दे वर्तन्ते परमेश्वरे ॥२॥

पुंसामसर्ववित्त्वं हि रागादिमलबन्धनम्।
न च रागादिभिः स्पृष्टो भगवानिति सर्ववित् ॥३॥

इष्टानिष्टार्थसंभोगप्रभवाः खलु देहिनाम्।
रागादयः कथं ते स्युर्नित्यानन्दात्मके शिवे ॥४॥

तस्मात् कुतार्किकोद्गीतदूषणाभासवारणात्।
सिद्धस्त्रैलोक्यनिर्माणनिपुणः परमेश्वरः ॥५॥

ये त्वीश्वरं निरपवाददृढप्रमाण-
सिद्धस्वरूपमपि नाभ्युपयन्ति मूढाः ।
पापाय तैः सह कथाऽपि वितन्यमाना
जायेत नूनमिति युक्तमतो विरन्तुम् ॥६॥

परोद्भावितानां हेत्वाभासानां निरसनम्

इतः परं कुसुमाञ्जलौ अनुमाने परोद्भावितानां हेत्वाभासानां निरासाय प्रयत्यते। आस्तिकानां दार्शनिकानां कोपनिर्भरं वचोनिकरमाकर्णयन्नपि स्वस्वान्ततान्तध्वान्तज-भ्रान्तप्रत्ययः परः पुनः प्रत्यवतिष्ठते—अत्रानुमाने पञ्च षड् वा दोषाः। यथा—
१. बाधः, २. सत्प्रतिपक्षः, ३. साध्याप्रसिद्धिः, ४. विशेषविरोधः, ५. व्याप्यत्व-सिद्धिः, ६. अनैकान्तिकत्वञ्च। तथाहि—

१. घटादिदृष्टान्तानुरोधेन शरीरविशिष्टस्यैव कर्तृत्वमायाति। तस्य च क्षित्यादौ पक्षे बाधः।

२. ईश्वरस्य शरीराभावेन विशेषणाभावप्रयुक्तशरीरविशिष्टकर्तृजन्यत्वलक्षणविशिष्ट-साध्याऽभावात्। 'क्षित्यादिकं कर्मजन्यं शरीराजन्यत्वात्' इति, 'ईश्वरः कर्ता न भवति अशरीरत्वात्' इति च सत्प्रतिपक्षः।

३. कर्तृत्व—शरीरित्वयोः सहचारदर्शनगृहीतया 'यत्र यत्र कर्तृत्वं तत्र तत्र शरीरित्वम्' इति व्याप्त्या कर्तृत्वावच्छिन्ने कर्तृमात्रे शरीरित्वसिद्ध्या अशरीरिकर्तृ-जन्यत्वस्य साध्यस्याऽप्रसिद्धिः।

४. निरुक्तव्याप्त्या शरीरी कर्ता उपस्थाप्यः। पक्षधर्मताबलाच्च क्षित्यादौ पक्षे अशरीरी कर्ता समुपस्थाप्यते। ततश्च व्याप्तिपक्षधर्मतोपस्थाप्ययोर्विशेषयोर्विरोधः।

५. क्षित्यादौ कार्यत्वेन कर्तृजन्यत्वसाधने शरीरजन्यत्वमुपाधिः, सोपाधिको हेतु-र्व्याप्यत्वासिद्ध इति लक्षणानुसारेण व्याप्यत्वासिद्धिश्च।

सव्यभिचारोऽपि उपाधिना हेतौ साध्यव्यभिचारोपस्थापनात्।

तानेतान् दोषान् कारिकया परिहरति आचार्यः—

न बाधोऽस्योपजीव्यत्वात् प्रतिबन्धो न दुर्बलैः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्विरोधो न नासिद्धिरनिबन्धना ॥

(न्या० कु० ५.२)

अस्य विवरणमिदम्—ईश्वरे शरीराभावेन त्वदुक्तबाधो न, अधिकरणज्ञानं विना अभावज्ञानं न सम्भवति। अतो धर्मिसाधकस्य कार्यत्वस्य अधिकरणज्ञानजनकतया अवश्यापेक्षणीयत्वेन प्रबलत्वात्।

सत्प्रतिपक्षोऽपि न प्रसज्यते, शरीराजन्यत्वप्रतिपक्षहेतोः शरीरांशवैयर्थ्याद् व्याप्यत्वासिद्धया दुर्बलत्वादित्याह—प्रतिबन्धो न दुर्बलैरिति। हीनबलैः प्रतिहेतुभिः, प्रतिबन्धः=प्रतिरोधः सद्धेतोर्न सम्भवति। एतेन—'ईश्वरो न कर्ता शरीरित्वात्' इति सत्प्रतिपक्षोऽपि निरस्तः।

साध्याप्रसिद्धिरपि नाशङ्कनीया; तदापादिकां पूर्वोक्तां यत्र यत्र कर्तृत्वं तत्र तत्र शरीरित्वमिति कर्तृत्वावच्छिन्ने शरीरित्वसाधिकां व्याप्तिमपेक्ष्य पक्षधर्मतासहकारात् विपक्षबाधकतर्कावताराच्च कार्यत्वव्याप्तेर्बलवत्त्वेन तया व्याप्त्यां कार्यत्वव्याप्तेः प्रतिबन्धः= प्रतिरोधोऽशक्यः। अत एव 'दुर्बलैः' इति मूले बहुवचनप्रयोगः। बहूनां बाध—सत्प्रतिपक्षप्रतिव्याप्तीनां दुर्बलत्वस्याऽभिप्रेतत्वात्।

अपि च—विशेषविरोधाऽसम्भव एव, शरीरित्वकर्तृत्वव्याप्त्युपस्थापितस्य शरीरिकर्तृत्वस्य विशेषस्य पक्षधर्मतोपस्थापितेन अशरीरिकर्तृत्वेन विरोधो वाच्यः। तत्र पृष्टो भवान् व्याचष्टां स विशेषः उपस्थितो वा ? आद्ये तस्य शरीरकर्तृत्वसमानाधिकरणस्य उपलब्धेर्न विरोधः, असहोपलब्धयोरे विरोधदर्शनात्। द्वितीये येन विशेषेण विरोधमुद्भावयसि तस्य विशेषस्याऽनुपस्थापनात् स्वाश्रयस्यैव विहरेण विरोधः कुतस्त्य इत्यभिप्रेत्याऽऽह—सिद्ध्यसिद्ध्योर्विरोध इति।

सिद्ध्यसिद्ध्योः विशेषोपस्थितौ तदनुपस्थितौ च उपाधिं निराकरोति नासिद्धिरिति। उपाधिप्रयुक्ता व्याप्यत्वासिद्धिरपि न; शरीरजन्यत्वोपाधिना क्षित्यादौ पक्षे स्वाभावेन कर्तृजन्यत्वाभावसाधने विपक्षबाधकस्य तर्कस्याऽभावात्। क्षित्यादिकं न कर्तृजन्यं शरीराजन्यत्वात् इत्यनुमानस्य अप्रयोजकत्वेन उपाधेरकिञ्चित्करत्वात्।

अयमभिसन्धिः—उपाधिर्हि स्वव्यभिचारेण हेतौ साध्यव्यभिचारं स्वाभावेन वा साध्याभावमनुमापयति। तथा च 'कार्यत्वहेतुः सकर्तृकत्वव्यभिचारी तद्व्यापकशरीरजन्यत्वव्यभिचारित्वात्' इति 'क्षित्यादिकं न सकर्तृकं शरीराजन्यत्वात्' इति वाऽनुमानप्रयोगः पर्यवसेत। तदुद्वयमपि अकिञ्चित्करम्, विपक्षबाधकतर्काभावेन अप्रयोजकत्वात्। व्यभिचारादिशङ्कानिवर्तकतर्को हि विपक्षबाधकतर्कः, तस्य अत्राऽभावात्। विपक्षबाधकतर्कशून्यत्वमेव अप्रयोजकत्वम्। तस्माद् असिद्धिः, उपाधिसमुद्भावितव्याप्यत्वासिद्धिर्वा नाऽऽशङ्कनीया। यतोऽनिबन्धनानिबन्धनं विपक्षबाधकतर्कस्तद्रहिता। तस्माद् विपक्षबाधकतर्काभावेन छिन्नमूलोपाधिसमुद्भावितव्याप्यत्वासिद्धिः कथं स्यादिति।

न च कृषीवल—बीजवपन—हलकर्षणादिव्यापारमन्तरा स्वतः समुत्पन्ने अकृष्टजाततृणादौ कर्त्रदर्शनेन कार्यत्वहेतुर्व्यभिचारीति वाच्यम्, तस्य पक्षसमत्वेन पक्षकक्षानिक्षिप्ततया पक्षे व्यभिचारोद्भवनस्य अदोषत्वात्।

प्रकारान्तरेण व्यभिचारापादनं तन्निरसनञ्च विशेषविरोधः, सत्प्रतिपक्ष-कालात्ययापदिष्टानां हेत्वाभासानां च निरसनं न्यायमञ्जरीतः (पृ० १८२) अवसेयम् ।

तत्रैते विद्वन्मनःप्रसादका व्यभिचारोत्सादकाः श्लोकाः—

तेनाऽनुमानगम्यत्वान्न कर्तुर्नास्तिताग्रहः ।
तदभावाद् विपक्षत्वं क्षित्यादेरपि दुर्भणम् ॥१॥

लिङ्गात् पूर्वं तु सन्देहो दहनेऽपि न वार्यते ।
तथा सति प्रपद्येत धूमोऽप्यननुमानताम् ॥२॥

अथाऽस्य लिङ्गाभासत्वं क्षित्यादौ कर्त्रदर्शनात् ।
धूमेऽपि लिङ्गाभासत्वं तत्र देशेऽन्यदर्शनात् ॥३॥

ननु तं देशमासाद्य गृह्यते धूमलाञ्छनः ।
अनयैव धिया साधो चरस्व शरदः शतम् ॥४॥

यत्पश्चाद् दर्शनं तेन किं लिङ्गस्य प्रमाणता ।
अनर्थित्वाददृष्टे वा कृशानौ किं करिष्यति ॥५॥

(पृ० १८२)

आचार्याः प्रार्थयन्ते—

इत्येवं श्रुतिनीतिसंप्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते
येषां नास्पदमादधासि हृदये ते शैलसाराशयाः ।
किन्तु प्रस्तुतविप्रतीपविधयोऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः
काले कारुणिक त्वयैव कृपया ते तारणीया नराः ॥

(न्या० कु० ५.१८)

अस्माकं तु निसर्गसुन्दरचिराच्चेतो निमग्नं त्वयी,
त्यद्धाऽऽनन्दविधौ तथापि तरलं नाद्यापि सन्तृप्यते ।
तन्नाथ त्वरित विधेहि करुणां येन त्वदेकाग्रतां
याते चेतसि नाप्नुवाम शतशो याम्याः पुनर्यातनाः ॥

(न्या० कु० ५.१९)

वेदान्ति–नय–प्रदर्शनम्

आस्ताम् आस्तिकचक्रचूडामणिः, तार्किकानां भगवत्प्रणयविजृम्भिता-ऽनल्पानुमानप्रयोगादिकल्पनाऽऽयासः । सम्प्रति प्रतिज्ञातपूर्वं वेदान्तिनये वेदैकवेद्यत्वं भगवत

उपपादयामः । तथाहि—

त्रिलोकालङ्कारः ब्रह्मसूत्रभाष्यकारा विद्वद्वृन्दारकवृन्द-वन्दितचरणाः समेऽपि आचार्य-चरणाः श्रीशङ्कर-भास्कर-रामानुज-माध्व-निम्बार्क-वल्लभ-रामानन्द-श्रीचन्द्रप्रमुखाः परमेशस्य शास्त्रैकगम्यत्वं प्रतिपादयामासुः । अत एषाऽऽह शुद्धाद्वैतमार्तण्डः श्रीपुरुषोत्तमपण्डितप्रवरः अणुभाष्यस्य स्वकीयप्रकाशव्याख्याने (पृ० ७०)— 'एवं सिद्धान्तमुक्त्वा आधुनिकानामन्येषां भाष्यकृतां ब्रह्मणः कर्तृत्वस्य शास्त्रैकप्रमाणकत्वांशे विप्रतिपत्त्यभावात् तन्मतानुवादमकृत्वा केषाञ्चिद् वैशेषिकाद्यनुसारिणां मतमनुवदन्ति 'केचिद्' इत्यादिना परपक्षतक्षणविचक्षणाः श्रीवल्लभाचार्याः—

'केचिदत्र जन्मादिसूत्रं लक्षणत्वादनुमानमिति वर्णयन्ति । अन्ये पुनः श्रुत्यनुवादकत्वमाहुः । सर्वज्ञत्वाय श्रुत्यनुसार्यनुमानं च ब्रह्मणि प्रमाणमिति । तत्तु 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इति केवलोपनिषद्वेद्यत्वादुपेक्ष्यम्, अनधिगतार्थगन्तृत्वात् प्रमाणस्य ।'

इति द्वितीयसूत्रभाष्ये बभाषिरे । ते हि 'जन्माद्यस्य यतः', 'शास्त्रयोनित्वात्' इत्यनयोः सूत्रयोरैक्यं मन्वते । तदवलोकनेन तन्नये वेदैकगम्यत्वस्य स्फुटप्रतिपत्तिरेव विचित्रशेमुषीजुषां विदुषाम् ।

वेदबाह्यनिराकरणचातुरीचणाः परमेशसमर्थनैकजीवितव्रताः श्रीरामानुजाचार्याः तृतीये 'शास्त्रयोनित्वात्' इति सूत्रे प्रतिजज्ञिरे—

"अतः प्रमाणान्तरगोचरत्वेन शास्त्रैकविषयत्वात् 'यतो वा इमानि······' इत्यादिवाक्यमुक्तलक्षणं ब्रह्म प्रतिपादयतीति सिद्धम् ।"

(श्रीभाष्य, पृ० ६७७)

भास्करमतमननम्

वैशेषिकाः 'जगत्कार्यं सावयवत्वात्, महत्त्वे सति क्रियावत्त्वात्, महत्त्वे सति मूर्तत्वाच्च घटवत्' इति कार्यत्वं संसाध्य 'जगद् बुद्धिमत्पूर्वकं' कार्यत्वात् इति निखिलजगत्कर्तारं परमेश्वरमनुमिन्वन्ति ।

तन्मतेन ईश्वरानुमेयत्वमाशङ्क्य साधकस्य कार्यत्वहेतोः हेत्वाभासत्वेन तन्मतं निरस्य शास्त्रैकगम्यत्वमुपपादयाञ्चक्रिरे भास्कराचार्याः ।

तेषामयमाशयः—'जगत् न बुद्धिमत्कारणपूर्वकं कार्यत्वाद् बीजोत्पन्नाङ्कुरवत्' इति साधारणो हेतुः । किञ्च-जगता सह ईश्वरसम्बन्धस्य अत्यन्तापरिदृष्टत्वेन साध्यस्य पक्षधर्मत्वाभावादयं विरुद्धोऽपि । यस्य कस्यापि बुद्धिमतः साधने सिद्धसाधनत्वञ्च ।

तथा घटादिदृष्टान्तबलेन कार्यत्वसमानाधिकरणस्य अनीश्वराऽसर्वज्ञशरीरेन्द्रियादिमत्कर्तृकत्वस्य सिद्ध्या विवक्षितेश्वरासिद्धिश्च । तादृशजीवसिद्ध्या अर्थान्तरत्वेनापि तदसिद्धिश्च ।

न चैवं घटादिदृष्टान्तेन शब्दे कृतकत्वादनित्यत्वसाधने दृष्टान्तीयानां पाच्यत्वादीनामापत्त्याऽनुमानोच्छेदप्रसङ्गः । लिङ्गिनः शब्दस्य प्रमाणान्तरगोचरत्वेन शब्दे पाच्यत्वादीनां निवृत्त्या तदनुच्छेदात् ।

अन्यन्तापरिदृष्टे ब्रह्मणि त्वन्वय–व्यतिरेक–परिशुद्धानां तेषां निवर्तकस्याभावेन तादृशधर्मापत्तेरनिवार्यत्वात् । अतः शास्त्रैकसमधिगम्यं ब्रह्म इति ग्रन्थेन ।

भास्कर–नय–निरासः

श्रीरामानुजाचार्याः भास्करदर्शितदूषणेषु शैथिल्यं प्रदर्श्य 'विवादाध्यासितं भू–भूधरादिकं स्वनिर्माणसमर्थकर्तृत्वपूर्वकं कार्यत्वात् सार्वभौम–सदनवत्; 'धर्माऽधर्मौ चेतनाधिष्ठितत्वेनैव फलोपधायकौ अचेतनत्वाद् वास्यादिवत्' इत्यादीनि भूयांसि चान्यानि अनुमानानि समुपन्यस्य प्रचण्डतर्कदण्डेन तान्यपि अपसार्य लोकोत्तरप्रकारेण शास्त्रैकसमाधिगम्यत्वं भगवतः स्थापितवन्तः । स च प्रकारस्तृतीयसूत्रीय श्रीभाष्यादेव अवसेयः । विस्तरभयात् नेह प्रतन्यते ।

किं बहुना, हेत्वाभास–प्रतिभास–राहुग्रासत्रासनिर्जिगमिषु प्राणम् अनुमानप्रमाणं नालमीश्वरसाधनाय इति शास्त्रैकसमधिगम्यत्वं निष्प्रत्यूहं सिद्ध्यति । आचार्यन्तरवचांसि तु समानार्थकानीति प्रयोजनाभावात् नोपन्यस्तानीति सर्वमवदातम् ।

सर्वदर्शनेषु ईश्वराभ्युपगमः

वेदोपजीवीनि न्याय-वैशेषिक-योग-साङ्ख्य-कर्ममीमांसा-ब्रह्ममीमांसानामधेयानि षड्दर्शनानि सुप्रख्यातान्येव । सप्तमं शाण्डिल्यादिनिर्मितं भक्तिदर्शनम् । तेषां क्रमेण सप्त भूमिकाः—१. ज्ञानदा, २. संन्यासदा, ३. योगदा, ४. लीलोन्मुक्ति, ५. तत्पदा, ६. आनन्दपदां, ७. परात्परा चेति । एतासां लक्षणादिकं गंगेश्वग्रन्थमालायाश्चतुर्थे पुष्पे 'दर्शनसमन्वय' मूर्ध्नि निबन्धे द्रष्टव्यम् ।

दर्शन-समन्वय-समर्थनम्

अतिथिस्वागत-न्यायेन विषयविशेषाध्यापन न्यायेन च विषयान्तरस्य अनिरूपणेऽपि न सार्वज्ञ्यहानिः, न वा तदनभ्युपगमप्रसङ्गः । महर्षयः सर्वपदार्थाभिज्ञा अपि स्व-स्वभूमिकानुसारेण पदार्थनिरूपणाय भगवता विनियुक्ताः । यथा सप्तकक्षगृहे विभिन्नद्वारेषु पित्रादिविनियुक्ताः पुत्राः । तेषु यस्मिन् द्वारि यः स्थितः स तत्रैव

अतिथिस्वागतं कुरुते, नान्यत्र । यद्यप्यसौ स्वगृहस्य सर्वाणि द्वाराणि वेत्त्येव । नहि द्वारविशेषे स्वागतकरणेन द्वारान्तरानभिज्ञता तेषां तत्र दृश्यते । को नु नाम जनः स्याद् यः स्वगृहवृत्तान्तं न विजानीयात् ? यथा च विद्यालये विभिन्नासु कक्षासु विषयविशेषाध्यापनाय नियुक्ताः शिक्षकास्तमेव विषयमध्यापयन्ति, न विषयान्तरम् । नैतावता तेषां विषयान्तरानभिज्ञता समापतति । दृश्यते हि लोके गणितेतिहास-भूगोल-विज्ञान-दर्शनादिबहुविषयनिपुणोऽपि शिक्षकस्तमेव विषयविशेषं पाठयति यदर्थं स नियुक्तः, न च विषयान्तरम् । एवं स्वदर्शनभूमिकानुसारेण पदार्थनिरूपणपरा अस्माकं महर्षयः । स्व-स्वभूमिकानुपयुक्तपदार्थं यदि ते न निरूपयेयुः, तदाऽपि न वक्तुं शक्यं यत् ते तत्पदार्थमेव न जानन्ति, न वाऽभ्युपगच्छन्तीति । स्वभूमिकानुपयोग एव तद्दर्शने तत्पदार्थाऽनिरूपणे, कारणम्, नाज्ञानम्, न वा तदनङ्गीकरणञ्च ।

एवं साङ्ख्य-मीमांसकावपि स्वभूमिकानुपयोगात् परमेश्वरं न निरूपितवन्तौ । न तावता तेषामीश्वराऽनङ्गीकारः शक्यशङ्कः ।

सांख्यसूत्राणां गूढतात्पर्यवर्णनम्

न च साङ्ख्यप्रवचनाख्ये साङ्ख्यदर्शने 'ईश्वरासिद्धेः' इत्यादीनि सूत्राणि स्पष्टमेव ईश्वरं निराकुर्वंते । व्याचक्षते च तथैव तानि विज्ञानभिक्षुमहोदयास्तद्भाष्यकारा इति वाच्यम्, भावानवबोधात् । गूढार्थानि हि तानि सूत्राणि । नूनं वत्स ! अर्वाचीन-भाष्यकृत व्याख्यानदर्शनात् भ्रान्तोऽसि । अवधत्स्व मनाक् । प्रदश्यते साम्प्रतं गूढमाकूतम्—

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ।

(सा॰ द॰ १.९०)

चान्द्रभाष्यम्—योगिनां लौकिकप्रत्यक्षातिरिक्तम् अलौकिकं योगबलात् सम्पद्यते तदेव 'अबाह्यप्रत्यक्षम्' इत्याख्यायते । तस्य साङ्ख्यज्ञानभूमौ प्रत्यक्षं अनुपयुक्तस्यापि अङ्गीकारे न कश्चिद् दोषः ।

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः ।

(सा॰ द॰ १.९१)

ननु निष्प्रयोजनस्य अङ्गीकरणमेव दोष इत्याशङ्क्याऽऽह—लीनेति । लीनपदम् अनागतादेरुपलक्षकम् । लीनादिवस्तुभिः अतीन्द्रियाऽऽनागतसूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टपदार्थैन समं लब्धातिशयस्य योगबलावाप्तालौकिकप्रत्यक्षविशेषस्य सम्बन्धात् ।अतीन्द्रियातीतादि-

वस्तुजातावगाहनात् निष्प्रयोजनाङ्गीकारलक्षणदोषाभावः। न तत्सर्वथा निष्फलम्, यतोऽतीन्द्रियपरमेश्वरादिसिद्धिरेव तत्प्रयोजनमिति भावः।

ईश्वरासिद्धेः। (सां० द० १.९२)

ननु लौकिकप्रमाणादेव परमेश्वरसिद्धौ किं तेन ? इत्याशङ्क्याह—ईश्वरेति लौकिकप्रमाणेन ईश्वरस्य सिद्धिविरहात् न निष्प्रयोजनत्वं तस्येत्यर्थः।

'मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः। (सां० द० १.९३)

तथाहि—ईश्वरो मुक्तो बद्धो वा ? बद्धश्चेत् कथं जगत् स्रष्टुं क्षमेत। अथ मुक्तस्तदा शान्तसङ्कल्पतया अभिमानविरहात् न जगत् कुर्यादित्युभयथाऽपि जगत्-कर्तृत्वासम्भावात् न कार्यलिङ्गकानुमानलक्षण-लौकिकप्रमाणेन जगत्कर्तृतया तत्सिद्धिः। प्रत्यक्षप्रमाणं तु रूपादिहीनत्वात् न तत्र पदमादधातीत्याह—मुक्तबद्धयोरिति। बद्ध-मुक्तयोरन्यतरस्य बद्धो मुक्तो वा इत्यनयोः पक्षयोः कस्यापि युक्तिसहत्वाभावात् तस्येश्वरस्य न सिद्धिः।

उभयथाऽप्यसत्करत्वम्। (**सां० द० १.९४**)

उभयथाऽपि बद्धत्वे मुक्तत्वे वा निरुक्तयुक्तिबलाद् असत्करत्वं सत् सत्त्वेन उपलभ्यमानं जगत् तत्कर्तृत्वभावः अनुमानात् जगत्कर्तृत्वेन नेश्वरस्य सिद्धिरिति यावत्।

'मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्य वा।' (सां० द० १.९५)

ननु तर्हि अप्रामाणिकत्वात् नास्त्येव परमेश्वर इत्याशङ्क्याह—मुक्तात्मेति। मुक्तात्मा=वामदेवादिः। उपासासिद्धः, उपासो=उपासना, तया समासादिताऽणिमादिव्यैश्वर्य-जैगीषव्यादियोंगविशेषः। तथाच लोके दृष्टमहिमैव स्तूयते। ईश्वरश्च स्तुतो मुक्तै सिद्धैश्च। तस्मात् लौकिकप्रमाणविरहेऽप्यसौ तैरलौकिकप्रत्यक्षबलतः जगदीश्वरसाधनात् साङ्ख्यदर्शनस्य परमास्तिकत्वं सिद्ध्यति। एवञ्च उपर्युक्तसूत्रतात्पर्यम् अनवबुद्ध्यमानानां केषाञ्चिद् विज्ञानभिक्षुप्रमुखटीकाकृतां सांख्यदर्शने ईश्वरानङ्गीकारकलङ्कलेपनमज्ञानविजृम्भितम्।

भगवति मीमांसकस्य श्रद्धातिरेकः

मीमांसादर्शनेऽपि यज्ञप्रधानं तद्दर्शनं सत्पदाख्यभूमिकानुसारेण प्रयोजनाभाव एव ईश्वराऽनिरूपणे हेतुः, न तदनभ्युपगमः। तथाहि—'ब्रह्मदानेऽविशिष्टमिति चेत्' (ब्र० सू० १०.३.७०), 'यदि तु ब्रह्मणस्तद्दानं तद्विकारः स्यात्' (१०.३.७२), 'ब्रह्माऽपीति चेत्' (१२.१.३६) इति सूत्रेषु श्लिष्टं ब्रह्मशब्दं प्रायुङ्क्त। यो हि अनेकार्थः शब्दः स श्लिष्ट इति मन्यन्ते रसिकशिरोमणयः। तस्य शब्दस्य चैष निसर्गो

यत् प्रकरणप्रतिपन्नमर्थं शक्त्या अर्थान्तरञ्च व्यञ्जनयाऽवगमयति, इति। तदित्थमुत्पश्यामः। चतुर्वेदपारदृश्वानं ऋत्विग्विशेषं बोधयितुं श्लिष्टं ब्रह्मशब्दं प्रयुञ्जानो महर्षिः स्वदर्शन-भूमिकानुसारेण अनपेक्षितत्वेऽपि तच्छब्दप्रयोगेन जगन्नियन्तारं परमाराध्यं परमेशानं व्यञ्जयन् तदस्तित्वे दृढं मनःप्रत्ययं तत्र स्वकीयां महतीं श्रद्धां च प्रकाश्याञ्चक्रे।

अलङ्कारमुकुटमणेर्विश्वनाथस्य 'वाच्यातिशायिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्' (साहित्यदर्पणे ४.५४) इति वचोऽनुसृत्य आलङ्कारिकनये व्याच्यमपेक्ष्य व्यङ्ग्यस्य विशिष्टं स्थानं वरीवृत्यते। शक्त्या बोध्योऽर्थो वाच्यः, व्यञ्जनया च बोध्योऽर्थो व्यङ्ग्यः। श्रद्धातिरेकादेव वाच्यतया जैमिनिमुनिना जगदीश्वरो न निर्दिष्टः। अत एव तेषां भगवति विश्वासातिरेकोऽन्यान् दर्शनकृतोऽपेक्ष्य महीयानिति गम्यते।

तदीयं भक्तहृदयमनयाऽऽशङ्कया वेपते स्म यद् यदि श्रद्धेयं समर्चनीयचरणं जगदीश्वरं वाच्यतया निर्दिशेयम् तदा वाच्य-यागादिसमकक्षतया भगवतो महती अवधीरणा स्यात् अतो मन्ये, स्वदर्शने वाच्यात् धर्माद् उच्चसिंहासने समासीनं जगदीश्वरं विधातुमनाः महर्षिर्व्यञ्जनया तं निर्देष्टुं विवशो बभूव। अत एव प्राचीना अर्वाचीनाः लघीयांसो महीयांसश्च मीमांसाचार्याः स्व-स्वग्रन्थारम्भे ईश्वरस्य मङ्गलं समाचेरुः। तेष्वत्र अनवद्यानि कतिपयानि मङ्गलाचरणपद्यानि उद्ध्रियन्ते—

सूर्यनारायणं वन्दे देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
गुरूनधिगतार्थांश्च निरन्तरमहं भजे ॥१॥

(मीमांसापरिभाषा: कृष्णयज्वा)

वासुदेवं रमाकान्तं नत्वा लौगाक्षिभास्करः।
कुरुते जैमिनिनये प्रवेशायाऽर्थसङ्ग्रहम् ॥२॥

(अर्थसङ्ग्रहः—लौगाक्षिभास्करः)

जत्कृपालेशमात्रेण पुरुषार्थचतुष्टयम्।
प्राप्यते तमहं वन्दे गोविन्दं भक्तवत्सलम् ॥३॥

(न्यायप्रकाशः- आपदेवः)

नत्वा श्रीत्रिपुरामम्बां तत्पुत्रं श्रीगणाधिपम्।
जैमिनिं भाष्यकारं च कुर्वे वृत्तिं सुबोधिनीम् ॥४॥

(जैमिनीयसूत्रवृत्तिः-रामेश्वरसूरिः)

यद्ब्रह्म प्रतिपाद्यते प्रगुणयत्तत्पञ्च मूर्तिप्रथां,
तत्रायं स्थितमूर्तिमाकलयति श्रीबुक्क···क्ष्मापतिः।
विद्यातीर्थमुनिस्तदात्मनि लसन्मूर्तिस्त्वनुग्राहिका,
तेनास्य स्वगुणैरखण्डितपदं सार्वज्ञ्यमुद्योतते ॥५॥

(जैमिनीयन्यायमाला ११.३—माधवः)

लक्ष्मी-कौस्तुभवक्षसं मुररिपुं शङ्खासिकौमोदकी-
हस्तं पद्मपलाशताम्रनयनं पीताम्बरं शार्ङ्गिणम् ।
मेघश्याममुदारपीवरचतुर्बाहुं प्रधानात् परं
श्रीवत्साङ्कमनाथनाथममृतं वन्दे मुकुन्दं मुदा ॥६॥

(शास्त्रदीपिका-पार्थसारथिः)

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे ॥७॥

(श्लोकवार्तिकम्-भट्टकुमारिलः)

अत एव च मीमांसक-मानसराजहंसः सकलदर्शन-कानन-पञ्चाननः श्रीखण्डदेवः क्षमां ययाचे 'भाट्टदीपिकायां देवताधिकरणे स्वदर्शनभूमिकामनुसृत्य—'देवविग्रहादिकं निराकृत्यान्ते मम तु वदतो दुष्यति वाणी, हरिस्मरणमेव शरणम्' इति वाक्यसन्दर्भेण ।

शिष्टदर्शनेषु ईश्वरस्य स्फुटनिर्देशः

सप्तमं भक्तिदर्शनं कृत्स्नमेव भगवन्निरूपणैकनिष्ठमिति तत्रत्यकतिपयवाक्योपन्यासायासो निष्प्रयोजन एव । न्याय-वैशेषिकयोग-वेदान्तदर्शनानां कानिचित् वचांसि समुपन्यस्यन्ते ।

ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्

(न्या० द० ४.१.१२)

पुरुषोऽयं समीहमानो नावश्यं समीहाफलमाप्नोति । तेनाऽनुमीयते, पराधीनं पुरुषकर्मफलाराधनमिति । यदधीनं स ईश्वरः । तस्मादीश्वरः कारणमिति ।

(वात्स्यायनभाष्यम्)

संज्ञाकर्मत्वस्मद्विशिष्टानाम् ।
प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मणः ॥

(वैशे० सू० २.१.१८.१९)

संज्ञा=नाम, कर्म=कार्यं क्षित्यादि, तदुभयम् । अस्मद्विशिष्टानाम्=ईश्वर महर्षीणां सत्त्वेऽपि लिङ्गम् । घट-पटादिसंज्ञानिवेशनमपि ईश्वरसङ्केताधीनमेव । यः शब्दो यत्रेश्वरेण सङ्केतितः, स तत्र साधुः । तथा च सिद्धं संज्ञाया ईश्वरलिङ्गत्वम् । एवं कर्म कार्यमपि ईश्वरे लिङ्गम् । तथाहि—क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद् घटवदिति उपस्कारे शङ्करमिश्रः ।

वैशेषिकदर्शन—भाष्यकाराः श्रीप्रशस्तपादाचार्या अपि मुक्तिसाधनतत्त्वज्ञानावसरे 'तच्चेश्वरनोदनाभिव्यक्ताद् धर्मादेव' इत्याहुः । ते च 'सृष्टिप्रलयहेतुपरमाणुस्पन्दनमपि त्रिभुवनस्वामीश्वराऽलौकिकेच्छाविलसितमेव' इत्यपि मेनिरे ।

'क्लेश-कर्म-विपाका-ऽऽशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' इति योगदर्शनसूत्रं (१.२४) तु सुप्रथितमेव ।

ब्रह्मसूत्रकारा अप्याहुः—'फलमत उपपत्तेः' (वे० द० ३.२.३८) । अतः= जगदीश्वरात् । फलम्=कर्मणः फलम् । उपपत्तेः=अचेतनात् चेतनाधिष्ठितादेव फलजननसम्भवात्, तत्प्रदाता जगदीश्वर एवेति तात्पर्यम् ।

ईश्वरसाधका वेदमन्त्राः

प्रभोर्वेदैकवेद्यतासाधनोपक्रमे वेदातिरिक्तावेद्यत्वं प्रदर्श्य सम्प्रति वेदवेद्यत्वं मन्त्रैः कतिपयैः साध्यते । अथैते वेदमन्त्रा भवन्ति—

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्व-
दृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः
प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥

(ऋ० १०.८१.१, तै० सं. ४.६.२.१; शु० य० माध्य० १७.१७)

अस्यार्थः—जुह्वत्=प्रलयकाले संहरत् । ऋषिः=अतीन्द्रियद्रष्टा । होता= स्वात्मनि जगल्लक्षणाहुतिप्रक्षेप्ता । न्यषीदत्=सृष्टेः पूर्वमेक एव निषण्णः । आशिषा=सिसृक्षया ।

(चान्द्रभाष्यम्)—द्रविणम्=धनम्, तदुपलक्षितप्रपञ्चभोगजातम् । कुर्वाणः=सृजनं जीवानां कर्मफलभोगायेति । प्रथमच्छदवराम्—स्वकीयं पारमार्थिकं स्वरूपमाच्छादयन् अवरान् स्वसृष्टविविधप्राण्यन्तःकरणप्रदेशानित्यर्थः ।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं
कतमत् स्वित् कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा
वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥

(ऋ० १०.८१.२; तै० सं० ४.६.२.४; वाजे०० शु० य० १७.१८)

अत्र सायणः—पूर्वमन्त्रे जगत् प्रलयकाले संहृत्य पश्चात् सिसृक्षायां सर्वं सृष्ट्वा तत्र प्रविष्ट इत्युक्तम् । अत्र तस्याऽद्वितीयस्य अधिष्ठानजगदुपादानकारणाद्यसम्भवात् सृष्टिरचनाऽनुपपन्नेत्याक्षिपति । लोके हि घटं चिकीर्षुः कुलालो गृहादिकं किञ्चित्स्थान-मधिष्ठाय मृद्रूपेण आरम्भकद्रव्येण चक्रादिरूपैरुपकरणैर्घटं निष्पादयति तद्वदीश्वरस्य जगदाश्रयद्यावापृथिव्योरुत्पादनवेलायामधिष्ठानं किं स्विदासीत्, किं नामाऽभूत्, न किञ्चिदित्यर्थः ।

तथा तयोरारम्भणं कतमस्वित्। आरभ्यते अनेनेति आरम्भणम् उपादानकारणं तदपि कतमद् भवेद्—तदपि नेत्यर्थः। यद्यपि संभवेदारम्भणं कथासीत्—कथमभूत्, किं स्वयं सदसद्वा भवेदित्यर्थः। उभयमपि नोपपद्यते। सच्चेद् अद्वैतभङ्गप्रसङ्गः। असच्चेत् सदात्मकयोर्द्यावापृथिव्योरुपादानानर्हत्वात् 'नान्यत् किञ्चन मिषत्' इत्यादि (ऐ० उ० १.१) श्रुतेश्चेत्यभिप्रायः। यतो यस्मादधिष्ठानाद् आरम्भणाच्च। विश्वचक्षाः सर्वद्रष्टा विश्वकर्मा परमेश्वरो भूमिं जनयन् वर्तते। तथा द्याम्=दिवम्। व्यौर्णोत्=व्यवृणोत्, सृष्टवान्। महिना=स्वमहत्त्वेन किं स्विदासीदिति।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥

(ऋ० १०.८१.३; अथर्व० १३.२.२६; वा० यजु० १७.१९;
तै० सं० ४.६.२४; तै० आ० १०.१.३)

(चान्द्रभाष्यम्)—पूर्वमन्त्रेण जगत्सृजनमाक्षिप्य अनेन समाधत्ते—विश्वत इति। विश्वतश्चक्षुः=सर्वतो व्याप्तलोचन। उत=अपि च। विश्वतोमुखः, एवमग्रेऽपि। एतेन सर्वात्मकत्वात् कुलालादिवैलक्षण्येन अधिष्ठानाद्यभावेऽपि स क्षमते जगत्स्रष्टुमित्यभिप्रायः। स एवंविधः परमेश्वरः। बाहुभ्यां सं धमति=सम्यक् व्याप्नोति। धमतिरत्र व्याप्तिकर्मा। द्यां पतत्रैः=गमनशीलैः पादैः संधमति इत्यनुषङ्गः। तथा च बाहुभ्यां दिवं पादैश्च पृथिवीं संव्याप्नोतीत्यर्थः। द्यावाभूमीति पदं समस्तं सं धमति इत्यनेन सम्बध्यते। 'जनयन्' इत्यन्वाय तदनुवर्तते। अपि वा देहलीदीपक-न्यायेन तत्पदमुभयत्राऽन्वेति। द्यावाभूमि द्यां पृथिवीं च। जनयन्=उत्पादयत्। देवः=द्योतमानः। एकः=असहायः। परमात्मनः सृष्टिं समर्थयामास भगवान् बादरायणः—'उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि' (२.१.२४), 'देवादिवदपि लोके' (२.१.२५) इति सूत्राभ्यां दृष्टं क्षीराद् असहायाद दध्यादिकं श्रुतञ्च। शास्त्रे देवादिभ्यः साधनान्तरं विनैव सङ्कल्पमात्रेण विविधपदार्थसृजनमिति तदभिप्रायः।

महीधरस्तु—बाहुभ्यां=बाहुस्थानीयाभ्यां धर्माधर्माभ्यां सं धमति। धमतिः गत्यर्थः। सङ्गच्छते, संयोगं प्राप्नोति। पतत्रैः पतनशीलैः अनित्यैः पञ्चभूतैश्च सङ्गच्छते धर्माधर्मरूपैर्निर्मितैः पञ्चभूतरूपैरुपादानैश्च। साधनान्तरं विनैव सर्वं सृजतीत्यर्थः। यद्वा धर्माधर्माभ्यां भूतैश्च सं धमति सङ्गमयति जीवान्, विजन्तत्वं ज्ञेयमित्याह।

किं स्विद् वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्
यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥

(ऋ० १०.८१.४; वा० य० १७.२०; तै० सं० ४६.२.५;
तै० ब्रा० २.८.९.६)

अत्र उव्वटः—किं स्वित् । अयमपि मन्त्रः प्रश्नरूपः । किं पुनस्तद्वनम्, कश्च स वृक्ष आस अभूत् । यतः द्यावापृथिवी । निष्टतक्षुः=तक्षतिः करोतिकर्मा । बहुवचनं पूजार्थम् । यस्माद् वृक्षात् द्यां च पृथिवीं च निष्कृष्य चकार । यदि हि वनं वृक्षो वा भवेत्, तदा एवमप्याशङ्क्येत । तक्षाणो हि वृक्षात् चमसादीन् निष्कर्षयन्ति । अयं त्वात्मा आरम्भण ऊर्णनाभिवदित्यभिप्रायः । विस्मितः ऋषिर्द्वितीयं प्रश्नं करोति । हे मनीषिणो मेधाविनः, मनसा पर्यालोच्य पृच्छत इत् उ तत् एतदयोनि पदत्रयस्यार्थः । यदत्र यद्यर्थः । यदि अध्यतिष्ठत् यत् भुवनानि भूतजातानि सह द्यावापृथिवीभ्यां धारयन् उपरिष्टादास्ते ।

सायणस्तु—बहुवचनव्यत्ययं मन्वानः परमेश्वरप्रेरिता जगत्स्रष्टारा यतो यस्माद् वनात् यं वृक्षमादाय द्यावापृथिवीं निष्टतक्षुः, तक्षणेन द्यावापृथिव्यौ निष्पादितवन्तः, तद्वनं किं स्वित् किं नाम स्यात् । तथा क उ स वृक्ष आस—कस्तादृशो महान् वृक्षोऽभूत इति व्याख्यातवान् । अस्य (ऋ० १०.८१) सूक्तस्य शिष्टास्त्रयो मन्त्रा अपि भगवत्परा एव । विस्तरभयात् नेह लिख्यन्ते ।

वेदमाताऽपि आह—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

(ऋ० ३.६२.१०; वा० य० ३.३५; २२.९, ३०.२, ३६.३;
तै० सं० १.५.६.४; ४.१.११,१; तै० आ० १.११.३;
सा० प्र० ६ अर्ध० ३, सूक्त १० मं० १)

(सायणभाष्यम्)—यः सविता देवो नोऽस्माकं धियः=कर्माणि, धर्मादिविषया वा बुद्धीः । प्रचोदयात्=प्रेरयेत् । तत्=तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य । देवस्य=द्योतमानस्य । सवितुः=सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्य । आत्मभूतं वरेण्यम्=सर्वैरुपास्यतया ज्ञेयतया च संभजनीयम् । भर्गः=अविद्या–तत्कार्ययोः भर्जनाद्भर्गः स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः । धीमहि=योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहमिति वयं ध्यायेम । यद्वा=तदिति भर्गोविशेषणम् । सवितुर्देवस्य तत् तादृशं भर्गो धीमहि । किं तदित्यपेक्षायामाह—य इति । लिङ्गव्यत्ययः, यद् भर्गो धियः प्रचोदयादिति तद् ध्यायेम इति समन्वयः ।

यद्वा—यः सविता=सूर्यः, धियः=कर्माणि, प्रचोदयात्=प्रेरयति, तस्य सवितुः सूर्यस्य प्रसवितुः, देवस्य=द्योतमानस्य सूर्यस्य, तत्=सर्वैः दृश्यमानतया प्रसिद्धम्, वरेण्यम्=सर्वैः संभजनीयम, भर्गः=पापानां तापकं तेजोमण्डलम्, धीमहि=ध्येयतया मनसा धारयेम ।

यद्वा—भर्गशब्देन अन्नमभिधीयते। यः सविता देवो धियः प्रचोदयति, तस्य प्रसादाद् भर्गोऽन्नादिलक्षणं फलम्, धीमहि=धारयामः, तस्याऽऽधारभूता भवेमेत्यर्थः ।

पुरुषसूक्तम् ऋग्वेदे अथर्ववेदे च षोडशर्चम्, सामनि आरण्यकाण्ड—चतुर्थखण्डान्तर्गतं पञ्चर्चम्, शुक्लयजुषि च द्वाविंशत्युचम् (ऋ० १०.९०; अथर्व० १९.६, यजु० ३१; सा० आरण्यकाण्ड, खण्ड ४, मन्त्र २.७)। अस्यवामीयं सूक्तं द्वापञ्चाशदृचं (ऋ० १८.१६४ न जनीयं सूक्तं पञ्चदशर्चम् अन्तिमवर्जं च प्रतिमन्त्रमन्ते 'स जनास इन्द्र' इति वाक्यसमलङ्कृतम् (ऋ० २,१२), नासदीयं सूक्तं (ऋ० १०.१२९) सप्तर्चम्, प्रतिमन्त्रं 'महद्देवानामसुर त्वमेकम्' इति चतुर्थपादोपेतम् महद्देवीयं द्वाविंशत्यृचं सूक्तं (ऋ० ३.५५), अन्यानि च सूक्तानि (ऋ० १.१५४, त० १५६, ४.४०, १०.८२, १०.१८६ सूक्तानि) ईश्वरेन्द्रशब्दयोः ऐश्वर्यार्थकधातुनिष्पन्नत्वेन समानार्थकत्वात् । सामनि ऐन्द्रपर्वणि (२,३,४) त्रयोऽध्यायाः, अथर्ववेदस्य कृत्स्नानि त्रीणि काण्डानि (१३, १५, १६) क्रमशः चतुःसूक्ताऽष्टादशसूक्त—नवसूक्तात्मकानि सम्भूय एकविंशतिसूक्तानि द्वादश—चतुर्दश—सप्तदशाऽष्टादश—विंशवर्जमन्येषां काण्डानामेकसप्तति (७१) सूक्तानि च परमेश्वरपराण्येव ।

यथा—

काण्डम्	सूक्तम्	सूक्तयोगः
१.	१३, २०, ३२	३
२.	१, २, ११, १६, ३४	५
३.	१६	१
४.	१, २, ११, १४, १६, २०	६
५.	१, २, ६, ९, १०, ११	६
६.	१, २, ३१, ३३—३६, ८०, १११, १२३	१०
७.	१—५, ९, १४, १५, १७, २१, २२, २४—२६, ४०, ४१, ४४, ६३, ६७, ७१, ८३, ८७, १०३, १०५, १०६	२६
८.	९	१
९.	९, १०	२
१०.	२, ७, ८	३
११.	७, ८	२
१९.	३, ५, ६, ४३, ५१, ७२	६
	योग	७१

किं बहुना—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।' (ऋ० १.१६४.४६)

'सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं
'रूपं रूपं मघवा बोभवीति
मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् ।' (ऋ० ३.५३.८)

'यो देवानां नामधा एक एव ।' (ऋ० १०.८३.३)

'यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।' (ऋ० १०.८३.६)

'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।' (ऋ० १०.११४.५)

इत्यादि मन्त्रवर्णेभ्यः परमेश्वर एव इन्द्रादिनामधेयं धारयति, वज्रहस्तपाशहस्त-दण्डहस्तविविधविग्रहं गृह्णातीत्यतः १६० इन्द्रादिदेवानां स्तावकाः चतुर्वेदीयशाकलमाध्यन्दिनकौथुमशौनकसंहिताचतुष्टयस्य पुनरुक्तसंख्याविरहिताः १८२५४ मन्त्राः सर्वज्ञत्वादिसंवलितानवधिकातिशयकल्याणगुणसागरे निखिलहेयप्रत्यनीकस्वरूपे जगन्नियन्तरि श्रुतिनीतिसंप्लवसलिलप्रक्षालननिरस्तसमस्ताशङ्कातङ्ककलङ्कपङ्के भगवति पर्यवस्यन्ति ।

अत एव श्रूयते—सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति ।' (कठोप० २.१५) । स्मर्यते च—'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' (गीता १५.१५) इति ।

निरस्तान्यनुमानानि वेदैकवेद्यताऽऽस्थिता ।
श्रूयते स्मर्यते चापि वेदावेदैरिति क्रमात् ॥
नानुमानानि साधूनि हेत्वाभासत्वदर्शनात् ।
तस्माद् विद्वद्भिरास्थेया वेदैकवेद्यता प्रभोः ॥

आह च स्वयमेव भगवान् वेदो वेदैकप्रामाणिकतां परमेशितुः—

'यस्मात् कोशादुदभराम वेदं
तस्मिनन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण
तेन मा देवास्तपसावते ह ॥

(अथर्व० १९.७२.१)

फलोपसंहारः ।

'तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ।'

(ऋ० १.२२.२१)

विपन्यवः=स्तोतारो भक्तिमन्तः । जागृवांसः=विगतनिद्रा, दर्शननिवृत्ताविद्यास्तत्त्वदर्शिनः । एतेन भक्ति–ज्ञान–समुच्चयान् मोक्षावाप्तिरिति सूचितम् ।

नानानिबन्धसिन्धोर्यद् रत्नं यत्नसमाहृतम् ।
उपहारीकृतं तेन प्रीयतां भगवन्मुनिः ॥

परिशिष्ट–८ का हिन्दी अनुवाद

परमेश्वर एकमात्र वेद–वेद्य है

हे सर्वगामी सर्वव्यापक परमात्मन् ! आप हमारे पिता भी हैं, भाई भी हैं, सखा भी हैं। ऐसे हमारे सर्वस्वभूत आप अपनी सेवा कराकर हमारा जीवन सफल करें।

जिसकी कृपा से समस्त वाङ्मय के सारभूत अङ्गोपाङ्ग सहित वेदों का ज्ञान प्राप्त कर मानव इस भूमण्डल पर सांसारिक कष्टों को मिटाने का यत्न करता है और काम-क्रोधादि षड्रिपुओं पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है, उन विश्व-विश्रुत परमात्मा की शरण जाता हूँ ॥१॥

मनीषी विद्वान जिसकी उपासनाको स्वर्ग और मोक्षका मार्ग बतलाते हैं, यहाँ उसी परमात्माका निरूपण किया जा रहा है ॥२॥

सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा अत्यन्त कुशल लोकनिर्माता है। वह प्राणियों के धर्म और अधर्म के आधार पर पाँच भूतों को लेकर जगत् का सर्जन करता है, नियमन करता है, भरण-पोषण और संहार करता है, अतएव जगत्पति है ॥३-४॥

वेदान्तवेत्ता उस जगत्पति परमात्मा को एकमात्र वेदवेद्य बतलाते हैं, जबकि तार्किक विद्वान् उसे वेद और अनुमान प्रमाण से वेद्य मानते हैं। उन्होंने ईश्वर विरोधी पाँच दार्शनिकों की पाँच विप्रतिपत्तियों को पाँच स्तबकों द्वारा निरस्त कर दिया है ॥५॥

परमेश्वर-सम्बन्धी यह विचारणा चित्तविक्षोभकारी सारविहीन वाक्–कलह मात्र नहीं है, प्रत्युत इस रूप में यह उसकी उपासना ही की जा रही है ॥६॥

नैयायिक शिरोमणि श्री उदयनाचार्य भी इसी की पुष्टि करते हुए कहते हैं— परमेश्वरविषयक यह न्यायचर्चा अर्थात् न्यायकुसुमाञ्जलि का प्रणयन उसका 'मनन' ही कहा जायेगा। भगवद्विषयक श्रवण के पश्चात् यह भगवान की मननात्मिका उपासना ही की जा रही है ॥७॥

न्यायशास्त्र के सुविख्यात विद्वान् श्रीमदुदयनाचार्य ने अपने न्यायकुसुमाञ्जलि नामक प्रौढ़तम ग्रन्थ के पाँच स्तबकों में चार्वाक, मीमांसक, बौद्ध, जैन और सांख्य इन पाँच दार्शनिकों की ईश्वरविषयक पांच विप्रतिपत्तियाँ दिखाकर प्रमाण और

युक्तियों से उनका प्रौढ़ता के साथ समाधान किया है। क्रमशः इन विप्रतिपत्तियों के स्वरूप इस प्रकार हैं—

१. ईश्वर नहीं है, क्योंकि अलौकिक पदार्थ परलोक का साधन नहीं हो सकता।

२. उसका अन्यथा भी अनुष्ठान सम्भव है।

३. ईश्वर का अभाव बतलानेवाले प्रमाण पाये जाते हैं।

४. अस्तित्व होने पर भी वह प्रमाण नहीं हो सकता।

५. ईश्वर का साधक कोई प्रमाण नहीं है।

इन पाँचों विप्रतिपत्तियों का समाधान क्रमशः निम्नलिखित है।

प्रथम विप्रतिपत्ति का निरास

प्रथम विप्रतिपत्ति प्रस्तुत करते हुए चार्वाक कहता है कि एकमात्र प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। वह ईश्वर की सिद्धि के लिए समर्थ नहीं, क्योंकि ईश्वर रूपादि से हीन है। तात्पर्य यह है कि बाह्य और आन्तर दो प्रकार के प्रत्यक्षों के बीच बाह्य प्रत्यक्ष के लिए वस्तु का रूपादिमान् होना अनिवार्य होता है। ईश्वर में रूपादि न होने से उसका बाह्य प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। ईश्वर का मन द्वारा प्रत्यक्ष अर्थात् आन्तर प्रत्यक्ष भी सम्भव नहीं, क्योंकि जैसे मनके धर्म सुखादि मनद्वारा आन्तर प्रत्यक्ष होता है, वैसे ईश्वर कोई मन का धर्म नहीं, कहें कि परलोक के साधन धर्माधर्मरूप अदृष्ट के द्वारा उसका अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है, अर्थात् परलोक के साधन धर्माधर्म है और वे अचेतन होने से किसी चेतन ईश्वर है, तो यह नहीं कहा जा सकता। कारण, हमारे मत में प्रत्यक्ष से अतिरिक्त कोई प्रमाण ही नहीं है, अतः धर्माधर्मरूप अदृष्ट हमारे मत में गगनकुसुमवत् असत् ही है। इसलिए परलोक कहाँ ? कहाँ धर्माधर्मरूप उसका साधन अदृष्ट ? और कहाँ उस अचेतन अदृष्ट के अधिष्ठान रूप में ईश्वर की सत्ता ?

उदयनाचार्य चार्वाक की इस प्रथम विप्रतिपत्ति का निरास करते हुए कहते हैं—

सापेक्षत्वादनादित्वाद् वैचित्र्याद् विश्ववृत्तितः।
प्रत्यात्मनियमाद् भुक्तेरस्ति हेतुरलौकिकः॥

(न्या० कु० १.४)

इसका आशय यह है कि अग्निहोत्रादि करने मात्र से स्वर्ग प्राप्त होता है। किन्तु याग समाप्त होने के बहुत दिनों बाद शरीर छूटने के पश्चात् ही वह स्वर्ग मिलता है। अतः याग साक्षात् स्वर्ग का साधन नहीं बन पाता। अतएव शास्त्रकारों का कहना है कि यागादि से धर्माधर्मरूप जो अदृष्ट पदार्थ उत्पन्न होता है, उसीके माध्यम से याग स्वर्ग का साधन बन पाता है। इस धर्माधर्म को ही

'अदृष्ट' कहा जाता है। इस अदृष्ट को मानने के लिए आचार्य प्रथम हेतु बतलाते हैं—'सापेक्षत्वात् ।' इसका अर्थ है 'कादाचित्कत्वात्' अर्थात् कदाचित् ही कभी होने से। भाव यह है कि इस हेतु को प्रस्तुत कर आचार्य अनुमान करते हैं 'कार्य सकारण कादाचित्कत्वात् भोजनजन्यतृप्तिवत्' अर्थात् जैसे भोजनजन्य तृप्ति कदाचित् ही, भोजन के पश्चात् ही होती है, अतः उसका कारण भोजन सिद्ध होता है, वैसे ही प्रत्येक कार्य भी कादाचित्क होने से किसी कारण से जन्य रहता है, फलतः अदृष्ट का अस्तित्व सिद्ध है।

यदि कोई कहे कि घटादि कार्य का कारण दण्डादि सदातन (नित्य) है या कादाचित्क ? यदि नित्य कहें तो घटादि को सदैव उत्पन्न होते रहना चाहिए। यदि कादाचित्क कहें तो उसकी कारण-परम्परा भी कादाचित्क (कभी कारण होगा तो कभी नहीं) माननी होगी। फलतः अनवस्था हो जायेगी। अतएव कहते हैं—'अनादित्वात्'। भाव यह है कि यह अनवस्था अप्रामाणिक नहीं मानी जाती, जैसे कि बीजांकुर की अनवस्था अप्रामाणिक नहीं होती। बीज से अंकुर होता है या अंकुर बीज, यह क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है, अतः यह अनवस्था दोषावह नहीं, वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिए।

यदि कहें कि इस तरह कार्य का कोई कारण होता है, यह तो हम मान लेते हैं। किन्तु वह असाधारण कारण नहीं। ब्रह्म या प्रकृतिरूप साधारण कारण को ही उसका कारण मान सकते हैं, तो इस पर कहते हैं—'विचित्रपटवत्'। भाव यह है कि जैसे विचित्र तन्तुओं से निर्मित पट विचित्र हुआ करते हैं वैसे ही कार्य भी चित्र-विचित्र होने से उनके कारण भी चित्र-विचित्र ही हो सकते हैं, कोई एक ब्रह्म या प्रकृति नहीं।

यदि कहें कि तब तो स्वर्गादि का कारण दृश्यमान यागादि हो माना जाय। बकरी के गले में लटकने वाले स्तन की तरह निरर्थक अपूर्व या अदृष्ट रूप कारण मानने की क्या आवश्यकता है ? तो इस पर कहते हैं—'विश्ववृत्तितः'। भाव यह कि सभी परलोकार्थियों की याग में प्रवृत्ति देखी गयी है, अतः स्वर्गादि का साधन यागादि हैं, ऐसा मानना चाहिए। कारण, परलोकविषयक किसी कार्य में किसी की प्रवृत्ति तभी होती है जब उसे उस कार्य में अभीष्ट साधन होने का ज्ञान होता है। यागादि कर्म तो सम्पादित होने के अनन्तर हो नष्ट हो जाते हैं और स्वर्ग बहुत दिनों बाद मिलता है। अतः स्वर्ग मिलने तक याग का सम्बन्ध बनाये रखने के लिए याग से जन्य कोई अपूर्व या अदृष्टनामक पदार्थ मानना अनिवार्य हो जाता है। तभी स्वर्गादि इष्ट के साधनार्थ जनसाधारण की

यागादि में प्रवृत्ति संगत हो सकती है । इस प्रकार अदृष्ट पदार्थ सिद्ध हो जाता है । आचार्य इसी बात को अपनी इस कारिका से स्पष्ट करते हैं--

चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना ॥ इति ॥

अर्थात् चिरकाल से नष्ट यागादि साधन अदृष्टरूप अतिशय बिना फल बनने में समर्थ नहीं हो सकता । इसी बात को स्पष्ट करने के लिए वे अनुमान बतलाते हैं—'यागः सव्यापारः कारणत्वात् कुठारादिवत्' अर्थात् जैसे छेदन करने में हाथ उठाना, वृक्षादि पर गिराना आदि व्यापार द्वारा ही कुठार कारण होता है, वैसे ही याग भी अदृष्टरूप व्यापार द्वारा ही स्वर्गादि का साधन हो सकता है ।

यदि कहें कि इस प्रकार अदृष्ट मानना अनिवार्य होने पर भी उस अदृष्ट का अस्तित्व भोग्य पदार्थ में हो मान लिया जाय, भोग्य के समानाधिकरण अर्थात् भोगाधिकरण भोक्ता में नहीं, तो इस सन्देह के निवारणार्थ कहते हैं—'प्रत्यात्मनियमात् भुक्तेः' । भुक्ति का अर्थ है भोग्य, सुख-दुःख का साक्षात्कार । वह नियमतः आत्मा में ही रहता है । इसलिए समवाय सम्बन्ध से, भोग के प्रति समवाय सम्बन्ध से अदृष्ट कारण है । इस प्रकार कार्यकारण भाव मान्य होने से, जिसमें अदृष्ट समवेत होगा, वहीं समवाय सम्बन्ध से भोग होगा, सर्वत्र नहीं । अन्यथा अतिप्रसंग होगा अर्थात् चाहे जिसे चाहे जो भोग प्राप्त होते रहने का प्रसंग प्राप्त होगा । कारण, अदृष्ट भोगवस्तु में मानने पर वह सबके लिए समान ही रहेगा ।

पूर्वपक्षी पुनः शंका करता है कि कोई भी कार्य अकस्मात् होता है । उसके लिए किसी कारण विशेष की आवश्यकता नहीं । महर्षि गौतम भी कहते हैं--'अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्णादिदर्शनात्' (न्या० सू० ४.१.२) अर्थात् बिना निमित्त के ही भाव पदार्थ की उत्पत्ति होती है, कण्टक की तीक्ष्णता आदि में यही देखा जाता है । इसका समाधान करते हैं—

हेतुभूतिनिषेधो न स्वानुपाख्यविधिर्न च ।
स्वभाववर्णना नैवमवधेर्नियतत्वतः ॥

(न्या० कु० १.५)

'अकस्मात् भवति' (अकस्मात् कार्य होता है) इसका अर्थ क्या है ? १. क्या 'कस्मात्' इस हेतु के साथ 'नञ्' या अभावरूप 'अ' के अन्वय द्वारा यह अर्थ अभिप्रेत है कि 'अहेतु से होता है', अथवा २. 'भवति' पद के 'भू' धातु के साथ 'नञ्' के अन्वय द्वारा 'हेतु से नहीं होता' यह अर्थ अभीष्ट है । अथवा ३. 'कस्मात्' के 'किम्' शब्द का अर्थ स्व से अतिरिक्त हेतु मानने से यह अर्थ ग्राह्य है कि स्व से अतिरिक्त हेतु नहीं होता ? स्वयं ही होता है ?

किंवा ४. 'नञ्' के साथ सम्बद्ध 'किम्' शब्द अलीक अर्थात् असत् का वाचक मानकर 'अलीक से होता है' यह अर्थ माना जाय ? अथवा ५. 'अकस्मात्' को अखण्ड अव्यय मानते हुए उसका अर्थ स्वभाव मानें तो 'स्वभाव से होता है' यह अर्थ मान्य है ? इस प्रकार 'अकस्मात् भवति' के पाँच विभिन्न अर्थ किये जा सकते हैं ? इन्हीं पाँचों अर्थों को लक्ष्य कर 'अकस्मात् भवति' का 'हेतुभूति-निषेधो न' आदि से खण्डन करते हैं--

'हेतुभूतिनिषेधो न' कारिका के इस आदिम अंश से उपर्युक्त पाँच विकल्पों में प्रथम दो विकल्पों का खण्डन किया गया। 'स्वानुपाख्यविधिर्न च' इस द्वितीय चरण से तृतीय-चतुर्थ विकल्पों का निरास किया गया है। 'स्व' का अर्थ है कार्य, 'अनुपाख्य' का अर्थ है अलीक। 'विधिः' अर्थात् कार्य की उत्पत्ति 'न च' अर्थात् कथमपि नहीं। भाव यह है कि 'स्व' अर्थात् कार्य से कार्य उत्पन्न नहीं होता और अलीक तो तुच्छ होने से कुछ उत्पन्न करने की क्षमता रखता ही नहीं। इसी प्रकार 'स्वभाववर्णना नैव' इत्यादि तृतोय चरण से पञ्चम विकल्प का तथा चतुर्थ चरण से एक साथ पाँचों विकल्पों का निरास किया गया है। 'अवधेर्नियतत्वतः' इसका अर्थ है कि कार्य नियतावधिक हैं, अतः पूर्वोक्त पाँचों विकल्पों में किसी भी विकल्प को मान लेनेपर स्थिति यह उपस्थित हो जायेगी कि कभी कोई कार्य ही उत्पन्न न होगा या सदा कार्य उत्पन्न होता ही रहेगा। किन्तु हमारे मत में तो यह दोष सम्भव ही नहीं, क्योंकि हम तो यह नियम मानते हैं कि कार्य के अव्यवहित पूर्वक्षण में कारणसमूह की उपस्थिति ही किसी कार्य को उत्पन्न करती है।

कोई शंका करे कि यदि आप ईश्वर द्वारा जगत् की सृष्टि करने में, अदृष्ट (धर्माधर्म) को सहकारी कारण मानते हैं तो शास्त्र से विरोध होगा। शास्त्र में जगत्कारण-विचार के संदर्भ में शास्त्रोक्त प्रकृति, माया, अविद्या आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यों सभी शब्द अदृष्ट से अतिरिक्त भगवान् की अघटित-घटना-पटीयसी दिव्यमायाशक्ति का ही बोध कराते हैं, तो इसपर कहते हैं—

इत्येषा सहकारिशक्तिरसमा माया दुरुन्नीतितो
मूलत्वात् प्रकृतिः प्रबोधभयतोऽविद्येति यस्योदिता।
देवोऽसौ विरतप्रपञ्चरचनाकल्लोलकोलाहलः
साक्षात् साक्षितया मनस्यभिरतिं बध्नातु शान्तो मम ॥

(न्या० कु० १.२०)

यस्य=जिस ईश्वर की, सहकारिशक्तिः=सहकारी कारण, एषा=यह, माया ='माया' शब्दका लक्ष्य जो अदृष्ट है, जो मूल अर्थात् कारण होने से प्रकृति है

वही प्रबोधभयतः=तत्त्वज्ञान द्वारा प्रतिबध्य होने से 'अविद्या' नाम से कही गयी है। असौ देवः=ये देव, मेरे मन में साक्षात् अभिरतिम्=स्वविषयक साक्षात्कारी ज्ञान को, बध्नातु=उत्पन्न करें। वे देव कैसे हैं, यह 'विरतप्रपञ्चरचना' इत्यादि से बतलाते हैं। प्रपञ्च का अर्थ है मिथ्याज्ञान, उसका रचनाकल्लोलः=उसकी रचना की परम्परा का कोलाहल अर्थात् किंवदन्ती जिससे विरत हो गयी है। सारांश यह कि मिथ्याज्ञान परम्परा की किंवदन्ती जिससे नष्ट हो गयी है, वे देव साक्षितया निर्णायक होने के कारण साक्षी होकर मन में अभिरति उत्पन्न करें।

भाव यह है कि 'रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम्' (ऋ० ३.५२.८) 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (ऋ० ६.४७.१८) 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' (श्वेताश्व० ४.१०) 'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः' (गीता २.२७) 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वेताश्व० ६.८) 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः' (कठोप० २.७) इत्यादि श्रुति स्मृतियों में जगत् के सहकारी कारण के रूप में प्रयुक्त 'माया' आदि शब्द 'सिंहो माणवकः' इत्यादि के समान गौणीवृत्ति से लाक्षणिक हैं। भगवान की शक्ति 'असमा' अर्थात् विचित्र गुणों से सम्पन्न है अतः उसी साधर्म्य से यह 'शक्ति' शब्द 'अदृष्ट' अर्थ में लाक्षणिक है। इसी प्रकार 'दुरुन्नेयत्व' (कठिनाई से ज्ञेयत्वरूप) साधर्म्य से 'माया' शब्द तथा तत्त्वज्ञान का विरोधी होने के कारण 'अविद्या' शब्द भी 'अदृष्ट' अर्थ में लाक्षणिक समझने चाहिए।

द्वितीय विप्रतिपत्तिका निरास

प्रथम स्तबक में २० कारिकाओं द्वारा अदृष्ट के अधिष्ठाता के रूप में ईश्वर की सिद्धि करके प्रथम विप्रतिपत्ति निरस्त कर दी गयी। अब वेद पौरुषेय होने के कारण ईश्वर द्वारा रचा गया है, यह सिद्ध करके द्वितीय विप्रतिपत्ति के निरास का उपक्रम किया जा रहा है—

प्रमायाः परतन्त्रत्वात् सर्गप्रलयसम्भवात्।
तदन्यस्मिन्नविश्वासान्न विधान्तरसम्भवः॥

(न्या० कु० २.१)

इसका भाव निम्नलिखित है—यहाँ मीमांसक पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हैं कि ईश्वर के बिना भी यागादि का अनुष्ठान किया जा सकता है। कारण, वह वेदों के द्वारा जाना जाता है। वेद का प्रामाण्य नित्य और निर्दोष होने के कारण ही है, उसके ईश्वर प्रणीत होने के कारण नहीं, जिससे वेद के वक्ता के रूप में ईश्वर सिद्ध किया जा सके। इसपर यदि कोई यह कहे कि वेद का स्वरूपतः प्रामाण्य प्रवृत्ति का कारण नहीं है अर्थात् वेद स्वयं प्रमाण होने से प्रवर्तक है,

ऐसा नहीं है। प्रत्युत् महाजन-परिगृहीतत्व होने से महाजनों द्वारा उसके ग्रहण किये जाने से ही उसका प्रामाण्य गृहीत होता है, तो इस पर 'प्रमायाः' इत्यादि के द्वारा समाधान करते हैं—

प्रमायाः=प्रमा के, परतन्त्रत्वात्=पराधीन होने से। यह परतन्त्रता का अर्थ है ज्ञान के लिए आवश्यक साधारण कारणों से अतिरिक्त कारण के अधीन होना। इसी को अनुमान की शैली में कहना हो तो यह कहा जायेगा—'प्रमा ज्ञानसामान्य-कारणातिरिक्तकारणजन्या कार्यत्वे सति ज्ञानविशेष रूपत्वात्, अप्रमावत्'। शब्दप्रमा में ज्ञानसामान्य कारण से अतिरिक्त कारण है वक्तृयथार्थ वाक्यार्थज्ञानरूप गुण अर्थात् वक्ता को कहे जानेवाले वाक्यार्थ का यथार्थ ज्ञान होना ही शाब्दप्रमामे ज्ञानसामान्यकारणातिरिक्त कारण है। वह गुण, गुणत्वधर्म होने से कहीं समवाय सम्बन्ध से समवेत है। जहाँ यह समवेत होगा वहीं भगवान् या ईश्वर है। न्यायमञ्जरीकार जयन्त भट्ट कहते हैं—

वेदस्य पुरुषः कर्ता नहि यादृशतादृशः।
किन्तु त्रैलोक्यनिर्माणनिपुणः परमेश्वरः॥
स देवः परमो ज्ञाता नित्यानन्दः कृपान्वितः।
क्लेश - कर्मविपाकादि - परामर्श - विवर्जितः ॥ इति ॥

वेद का कर्ता पुरुष कोई ऐसा-वैसा नहीं। किन्तु त्रैलोक्य की रचना में निपुण परमेश्वर ही उसका कर्ता है। वह देव परमज्ञाता है, नित्य आनन्दवान् तथा परमकृपालु है। उसमें क्लेश या कर्मविपाकादि का लेशमात्र भी संस्पर्श नहीं होता।

यह जो कहा गया कि महाजनों द्वारा परिगृहीत होने के कारण नित्य निर्दोषिता से सम्पन्न वेद का स्वतःप्रामाण्य ही यागादि प्रवृत्ति का कारण है, वह भी उचित नहीं, यह कहते हैं—'सर्गप्रलयसम्भवात्।'

यहाँ 'सर्ग' शब्द से जन्य भाव पदार्थों का ग्रहण है। सृष्टि में उत्पन्न समस्त जन्य भाव पदार्थों का प्रलय हो जाता है।

भाव यह है कि प्रलय के पश्चात् सभी भाव पदार्थों के नष्ट हो जाने से महाजनों द्वारा किसी का भी परिग्रहण सम्भव न होने के कारण पुनः सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न वेद में प्रामाण्य सम्भव ही नहीं। फलतः यागादि में उससे प्रवृत्ति नहीं होगी तो वैदिक यागादिव्यवहार सर्वथा विलुप्त हो जायगा।

यदि कहें कि पूर्वसर्ग में अभ्यस्त योगजशक्ति के प्रभाव से सर्वज्ञता प्राप्त कपिलादि विद्वानों को ही वेद का कर्ता मान लिया जाय, तदर्थ पृथक ईश्वर की कल्पना क्यों करें? तो कहते हैं—'तदन्यस्मिन्नविश्वासात्।' भाव यह कि जो परमेश्वर में ही विश्वास नहीं रखता, वह ईश्वरातिरिक्त कपिलादि मुनियों में कैसे

विश्वास कर सकेगा ? इसके अतिरिक्त कपिलादि नाना जनों को वेद के कर्ता मानने की अपेक्षा लाघवात् एक ईश्वर मानना ही उचित है। नाना कर्तृ कल्पना तो गौरव से ग्रस्त है।

वक्तव्य का उपसंहार करते हैं—'न विधान्तरसंभवः'। निर्दोष वेद-द्वारकत्व तथा योग ज्ञान से सम्पादित सर्वज्ञ शक्ति सम्पन्न कपिलादिद्वारकत्व संभव नहीं, यह बता ही दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रकार वेद के प्रामाण्य के लिए बताया नहीं जा सकता। अतः विवशतः मीमांसकों के गले में ईश्वर का अस्तित्व पड़ ही गया। वे उससे पिण्ड छुड़ा नहीं सकते। नित्य निर्दोष ईश्वर के द्वारा रचित होने से वेद का प्रामाण्य मानने पर किसी भी प्रकार कभी भी वैदिक यागादि-व्यवहार का लोप नहीं हो सकता। इसके पश्चात्—

'वर्षादिवद् भवोपाधिर्वृत्तिरोधः सुषुप्तिवत्।
उद्भिद् वृश्चिकवद् वर्णा मायावत् समयादयः॥

(न्या० कु० २.२)

अर्थात् वर्षा आदि की सिद्धि में प्रयुक्त 'वर्षादिनपूर्वकत्वात्' इस हेतु में राशि-विशेषावच्छिन्न-रविकालपूर्वकत्व के समान अहोरात्र को अव्यवहित अहोरात्रपूर्वक सिद्ध करने के लिए प्रदत्त 'अहोरात्रत्वात्' हेतु में 'भव' उपाधि है, जिससे वह हेतु सोपाधिक होने से व्यभिचारी है। अतः प्रलयाभाव सिद्ध नहीं हो सकता। इसी तरह सुषुप्ति में अनेक व्यक्तियों के अदृष्ट के समान प्रलयकाल में समस्त प्राणियों के अदृष्ट का एक ही साथ वृत्तिनिरोध सम्भव है। तथैव, उद्भिद्नामक शाक विशेष और बिच्छू अनेक कारणों से उत्पन्न होते हैं। उनके समान व्यवहार अनेक रूपों में हो सकता है। इसी प्रकार जादूगर के संकेतग्रह आदि का उपपादन भी सम्भव है। इसलिए प्रलय के अस्तित्व साधन में जोई बाधक हेतु नहीं है। इस द्वितीय कारिका द्वारा प्रलय के बाधक हेतुओं को निरस्त कर—

जन्मसंस्कारविद्यादेः शक्तेः स्वाध्यायकर्मणोः।
ह्रासदर्शनतो ह्रासः सम्प्रदायस्य मीयताम्॥

(न्या० कु० २.३)

अर्थात् जन्म, संस्कार, विद्या आदि शक्ति, स्वाध्याय, कर्म का ह्रास देखने से इस वेदादि सम्प्रदाय के अत्यन्त ह्रास का अनुमान करना चाहिए। इस तृतीय कारिका द्वारा यह अनुमान कि 'वेदादिसम्प्रदायः अत्यन्तमुच्छिद्यते' ह्रासमानत्वात्, प्रदीपवत्' प्रलय साधक रूप में प्रस्तुत किया गया।

प्रलय का अस्तित्व-नास्तित्व विचार, वेद की पौरुषेयता-अपौरुषेयता-विचार और प्रामाण्य का स्वतत्त्व-परतत्वविचार दर्शनाचार्यों ने भाष्य-ग्रन्थों में विस्तार के साथ किया है। उसे वहीं से जानना चाहिए। विस्तार-भय से यहाँ उसका विवेचन नहीं किया जाता।

द्वितीय स्तबक का उपसंहार करते हुए आचार्य प्रार्थना करते हैं—

कारं कारमलौकिकाद्भुतमयं मायावशात् संहरन्
हारं हारमपीन्द्रजालमिव यः कुर्वञ्जगत् क्रीडति।
तं देवं निरवग्रहस्फुरदभिध्यानानुभावं भवं
विश्वासैकभुवं शिवं प्रति नमन् भूयासमन्तेष्वपि॥

(न्या० कु० २.४)

अर्थात् जो परमात्मा अपनी माया से अलौकिक और अद्भुत पदार्थों से युक्त इस जगत् को इन्द्रजाल के समान बार-बार बनाकर बिगाड़ता और बिगाड़-बिगाड़कर बनाता हुआ क्रीड़ा किया करता है, जिसके अभिध्यान या ईक्षण का प्रभाव अबाध रूप से प्रगट हो रहा है, उस श्रद्धा और विश्वास के भाजन कल्याणकारी और जगत् के उत्पादक परमात्मदेव को अपने जीवन की अन्तिम बेला में नमस्कार करता रहूँ।

तृतीय विप्रतिपत्ति का निरास

सौगत (बौद्ध) शंका करते हैं कि जैसे भूतल में घटाभाव का अनुपलब्धि प्रमाण से ज्ञान होता है, अर्थात् यदि यहाँ घट होता तो उपलब्ध होना चाहिए था, किन्तु यतः वह उपलब्ध नहीं होता, अतः उसके अभाव का ज्ञान होता है, इत्याकारक अनुपलब्धि प्रमाण से भूतल में घटाभाव का ज्ञान होता है, वैसे ही ईश्वराभाव की अनुपलब्धि प्रमाण से सिद्धि हो सकती है। यदि कहें कि धर्माधर्म रूप अदृष्ट का विलय हो जाने के भय से योग्यानुपलब्धि को ही अभाव का ग्राहक प्रमाण मानें और यतः ईश्वर योग्य अर्थात् प्रत्यक्षयोग्य नहीं है, अतः योग्यानुपलब्धि प्रमाण से ईश्वराभाव की सिद्धि संभव नहीं, तो शशशृङ्ग भाव का भी आपके मतानुसार अनुपलब्धि प्रमाण से ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि शशशृङ्ग भी तो प्रत्यक्षयोग्य नहीं है!

सौगत की इस शंका का निरसन करते हुए आचार्य कहते हैं—

योग्याऽदृष्टिः कुतोऽयोग्ये प्रतिबन्धिः कुतस्तराम्।
क्वायोग्यं बाध्यते शृङ्गं क्वाऽनुमानमनाश्रयम्॥

(न्या० कु० ३.१)

इसका अर्थ यह है कि प्रत्यक्ष के अयोग्य ईश्वर में 'योग्याऽदृष्टिः= योग्यानुपलब्धि प्रमाण, कुतः=कैसे संभव होगा ? अर्थात् कथमपि संभव नहीं। और शशश्रृङ्ग तो प्रत्यक्षयोग्य ही है, क्योंकि वह चक्षुरिन्द्रिय से ग्राह्य होता है। अतः उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि यदि शशश्रृङ्ग हो तो उपलब्ध होना चाहिए था। किन्तु यतः वह कहीं उपलब्ध नहीं होता, अतः उसका अभाव अनुपलब्धि प्रमाण से ग्राह्य है, क्योंकि शशश्रृङ्ग का साधक कोई भी प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत ईश्वर के साधक अनेक प्रमाण पञ्चम स्तबक में हम विस्तार से प्रस्तुत करेंगे।

यदि शंका करें कि अनुपलब्धि प्रमाण द्वारा हम ईश्वराभाव सिद्ध कर सकते हैं। उस अनुमान का आकार होगा—'ईश्वरः नः कर्त्ता, शरीर-प्रयोजनार्थ सम्बन्धशून्यत्वात्' अर्थात् ईश्वर कर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि उसके शरीरधारी होने का कोई प्रयोजन दिखायी नहीं पड़ता, तो इसपर कहते हैं—'क्वाऽनुमानमिति।'

समाधानकर्ता इस पर कहते हैं कि आपका यह कहना सर्वथा सत्य है कि कर्तृत्वव्यापक अर्थात् कर्तृत्व के साथ अनिवार्यतः रहनेवाले प्रयोजनाभिसन्धान (किसी प्रकार के प्रयोजन के ज्ञान) का अभाव होने से ईश्वर में कर्तृत्व अनुमान से सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि व्यापक का अभाव होने पर सर्वत्र व्याप्याभाव की अनुमिति देखी जाती है। जैसे धूम के व्यापक वह्नि का अभाव होने पर धूमाभाव का अनुमान किया जाता है। किन्तु हम आपसे पूछते हैं कि कर्तृत्वभाव के अनुमान में पक्षभूत (साध्य का सन्देह स्थल) ईश्वर सिद्ध है या असिद्ध ? यदि वह असिद्ध हो तो आश्रयासिद्धि नामक हेतुदोष से वह अनुमान दुष्ट हो जायेगा और यदि सिद्ध हो तो धर्मिग्राहक मान से क्षित्यादिकर्तृत्वाभाव के साधक अनुमान का बाध हो जायेगा। अतः अनुमान से भी ईश्वर का अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह अनाश्रय, असिद्धपक्षक है, इसलिए उसका अवसर ही कहाँ रहेगा ?

यहाँ धर्मिग्राहक मान से क्षित्यादिकर्तृत्वाभावसाधक अनुमान के बाध का तात्पर्य यह है कि क्षित्यादिकर्तृत्वाभाव जिस धर्मी अर्थात् आश्रय में सिद्ध करेंगे उस धर्मी को तो आपको उपस्थापित करना ही पड़ेगा तभी आपका अभीष्ट साध्य सिद्ध हो सकेगा। इस प्रकार जब धर्मी ईश्वर अनुमानके साधनार्थ सिद्ध हो गया तो फिर उसका खण्डन करने का मूल्य ही क्या रहा ? इस प्रकार आपका क्षित्यादिकर्तृत्वानुमान बाधित ही हो जाता है।

चतुर्थ विप्रतिपत्ति का निरास

दिगम्बर जैन प्रश्न करते हैं कि पहले तो ईश्वर है हीं नहीं, क्योंकि वह किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता, प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के अधीन हुआ करती है—

यह दार्शनिकों का सुनिश्चित सिद्धान्त है। 'प्रमा' पदार्थ है अज्ञात का ज्ञापक ज्ञान। ईश्वर का ज्ञान तो अधिगत अर्थात् ज्ञात विषय का ज्ञापक होने से प्रमा नहीं कहा जा सकता। अतः ईश्वर में न तो प्रमा की करणता है और न उसका कर्तृत्व ही बन पाता है। इसलिए आप ही बतायें कि जो पुरुष अप्रामाणिक है, उसके वचन पर कौन श्रद्धा करेगा ? फलतः आपका यह कथन कुछ भी अर्थ नहीं रखता कि वेद ईश्वरीय वचन है और इसीलिए वह श्रद्धेय है। इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं—

अप्राप्तेरधिकप्राप्तेरलक्षणमपूर्वदृक् ।
यथार्थाऽनुभवो मानमनपेक्षतयेष्यते ॥

(न्या० कु० ४.१)

इसका अर्थ है—अपूर्वदृक्=अगृहीतग्राही ज्ञान, अलक्षणम्=प्रमा का लक्षण नहीं कहा जा सकता, अप्राप्तेः=क्योंकि धारावाहिक ज्ञान में वह लक्षण अव्याप्त हो जाता है। वहाँ द्वितीयादि ज्ञानों में ज्ञात का ही ग्रहण हुआ करता है और उसे सभी प्रमा ही मानते हैं। साथ ही भ्रम में अतिव्याप्ति भी होगी। अधिकप्राप्तेः=अधिकप्राप्ति होने से। भ्रम में आपके इस प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि वहाँ अर्थात् शुक्ति में 'इदं रजतम्' इत्याकारक भ्रमज्ञान में ज्ञाता शुक्तिशकलरूप धर्मी का शुक्तिशकल-रूप में ग्रहण नहीं करता और उसमें अगृहीतरजतत्व का प्रकाररूप से भान करता है। अतएव प्रमा का वास्तविक निर्दुष्टलक्षण होगा—'यथार्थानुभवः' अर्थात् 'यथार्थानुभवो मानं प्रमा' इष्यते=मानी जाती है। स्मृति की तरह वह अन्य की अपेक्षा नहीं रखती। स्मृति का प्रामाण्य तो स्मृतिजनक अनुभव के समानविषयक होने से अनुभव के प्रामाण्याधीन ही माना जाता है। किन्तु अनुभव वैसा नहीं होता।

पञ्चम विप्रतिपत्ति का निरास

पञ्चम विप्रतिपत्ति मुख्यतः सांख्यों की है। उस विषय में अन्य भी दार्शनिक समानधर्मी हैं, क्योंकि सभी ईश्वर को न माननेवाले यही कहा करते हैं कि ईश्वर का कोई भी प्रमाण हमें दिखायी नहीं पड़ता। अतएव सभी का एकसाथ उपेक्षापूर्वक निरास करने के लिए पञ्चम स्तबक में प्रथम कारिका द्वारा आचार्य अनेक अनुमानों को संगृहीत करते हैं—

कार्यायोजन-धृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः ॥

(न्या० कु० ५.१)

कारिका की व्याख्या इस प्रकार है—कार्यम्=कार्यत्व हेतु से सकर्तृकत्व का साधक अनुमान। आयोजनम्=सृष्टि के प्रारम्भ में द्व्यणुक का उत्पादक और दो परमाणुओं का संयोजन करनेवाली क्रिया या कर्म। धृतिः=गुरुत्वशाली पदार्थों का गिरने से बचना। 'आदि' पद से विनाश का संग्रह किया गया है। पदात्=घटादि पदों के प्रयोग से। प्रत्ययतः=प्रामाण्य के कारण, श्रुतेः=वेद से। वाक्यात्=वाक्यत्वहेतु से। संख्याविशेषात्=द्व्यणुक के परिमाण की जनक परमाणुनिष्ठ द्वित्वसंख्या से। विश्वविद्व्ययः साध्यः=विशिष्ट साध्य सिद्ध किया जाय। इससे नित्य, सर्वविषयक ज्ञानवान् सर्वज्ञ परमात्मा की सिद्धि हो जाती है, यह भाव है।

उपर्युक्त कार्य, आयोजन आदि पदों से सूचित आठ अनुमानों के स्वरूप निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

१. जैसे हम लोगों की प्रत्येक शारीरिक क्रियात्व धर्म से युक्त होने से किसी चेतन के प्रयत्न से जन्य है वैसे ही सृष्टि के प्रारम्भ में द्व्यणुक का निर्माण करनेवाली दो परमाणुओं की संयोजनरूप क्रिया भी क्रियात्व धर्मवती होने से किसी चेतन के प्रयत्न से ही जन्य होगी। स्पष्ट है कि उस संयोजन का कर्ता परमेश्वर के सिवाय और कोई हो नहीं सकता।

२. जैसे आकाश में किसी पक्षी द्वारा पकड़कर रखे गये काष्ठ या तिनके में धृतिमत्त्व होने से वह पतन का प्रतिबन्धक प्रयत्न करनेवाले पक्षी से अधिष्ठित माना जाता है, वैसे ही ब्रह्माण्डादि में भी धृतिमत्त्व होने से वह पतन प्रतिबन्धक-प्रयत्नवान् पुरुष से अधिष्ठित सिद्ध होता है। स्पष्ट है कि वह पुरुष ईश्वर ही होगा।

३. जैसे हमारे द्वारा फाड़े जानेवाले किसी कपड़े में विनाशित्व होने से वह हमारे प्रयत्न से फाड़ा गया, नष्ट किया गया, वैसे ही ब्रह्माण्डादि में भी विनाशित्व होने से वह किसी के प्रयत्न से ही विनष्ट होता है। स्पष्ट है कि जिसके प्रयत्न से वह नष्ट होता है, वह ईश्वर ही होगा।

४. जैसे आधुनिक लिपि आदि के व्यवहार में व्यवहारत्व होने से वह किसी स्वतंत्र पुरुष द्वारा चलाया गया माना जाता है, वैसे ही घट-पट आदि सम्प्रदाय-व्यवहार यानी शब्द प्रयोग में भी व्यवहारत्व होने से वह किसी स्वतन्त्र पुरुष द्वारा चलाया गया है। स्पष्ट है कि वह स्वतन्त्र पुरुष ईश्वर ही हो सकता है।

५. जैसे प्रत्यक्षादि प्रमा यानी प्रत्यक्षरूप यथार्थ ज्ञान में प्रमात्व होने से वह कारण यानी कारण के गुण से जन्य होता है, वैसे ही वेदजन्य ज्ञान में भी

प्रमात्व होने से वह भी कारणगुणजन्य है। वह कारण गुण जिसका है, वह ईश्वर ही होगा।

ज्ञातव्य है कि न्यायदर्शन में किसी का ज्ञान का प्रमात्व या प्रामाण्य या अप्रमात्व यानी अप्रमाण्य परतः यानी उस ज्ञान की ग्राहक सामग्री से भिन्न सामग्री से गृहीत होता है। जैसे श्वेत शङ्ख में 'पीतः शङ्खः' यह जो ज्ञान है, उसमें अप्रमात्व इसलिए है कि उसके कारण या करण चक्षुरिन्द्रिय में पित्तदोष हो गया है। इस तरह दोष अप्रमा का जनक है, जब कि गुण प्रमा का जनक होता है। इसलिए वेदजन्य ज्ञान में जो प्रमात्व या प्रामाण्य है वह भी उसके वक्तारूप करण के गुण से जन्य है। इसलिए वेद का वक्ता सर्वज्ञत्वादिगुणविशिष्ट ईश्वर ही हो सकता है।

६. जैसे आयुर्वेद में वेदत्व होने से वह चरक, सुश्रुत आदि आचार्यरूप-पुरुष द्वारा प्रणीत है, वैसे ही वेद में भी वेदत्व होने से वह किसी पुरुष द्वारा रचा गया है। स्पष्ट है कि जिसने उसे रचा, वह सर्वज्ञ ईश्वर ही हो सकता है।

७. हम लोगों के वाक्यों में वाक्यत्व धर्म होने से वे हम पुरुषों द्वारा रचित होते हैं, वैसे ही वेद-वाक्यों में भी वाक्यत्व होने से वे किसी पुरुष द्वारा रचे गये हैं। स्पष्ट है कि वह पुरुष सर्वज्ञ ईश्वर ही हो सकता है।

८. जैसे समान परिणाम के दो कपालों से बने घट के परिमाण से उससे प्रकृष्ट उस प्रकार के तीन कपालों से बने घट के परिमाण में परिमाण के प्रचय अर्थात् शिथिलावयव-संयोग से जन्य न होते हुए उसमें जन्य-परिमाणत्व है, अतः वह संख्याजन्य है, वैसे ही द्व्यणुकादि परिमाण में भी प्रचयाजन्य होते हुए जन्य-परिमाणत्व होने से वह भी संख्याजन्य होगा।

ज्ञातव्य है कि वैशेषिक दर्शन में २४ गुणों के बीच एक परिमाण नामक गुण भी माना जाता है, जो अणु, महत्, दीर्घ, ह्रस्व भेद से चार प्रकार का होता है। उनके मत से समस्त नवविध, द्रव्यों में रहनेवाला यह परिमाण गुण नित्य-द्रव्यों में नित्य होता है तो जन्यद्रव्यों में अनित्य। स्पष्ट है कि उत्पत्ति या विनाश-शीलतारूप अनित्य परिमाण गुण का जनक भी कोई होना चाहिए। वैशेषिकों ने परिमाण के जनक तीन बतलाये हैं—१. परिमाण, २. प्रचय, और ३. संख्या। घट में जो महत् परिमाण उत्पन्न होता है, उसका कारण कपालगत महत् परिमाण है। इस तरह घटगत परिमाण कपालगत परिमाण से जन्य होता है। 'प्रचय' का अर्थ है अवयवों का शिथिल संयोग। रुई के दो गोलों को एक में मिला देने

पर मिश्रित पदार्थ का जो परिमाण बनता है, वह प्रचयजन्य है। दो परमाणुओं से बने द्व्यणुक और तीन द्व्यणुकों से बने त्रसरेणु में जो परिमाण उत्पन्न होता है, वह संख्याजन्य होता है।

इसका भाव यह है कि जब सृष्टि के प्रारम्भ में द्व्यणुक का परिमाण परमाणुगत द्वित्वसंख्या से जन्य है, तो वैशेषिक दर्शनानुसार यह द्वित्व अपेक्षा-बुद्धिजन्य होता है। अपेक्षाबुद्धि का अर्थ है, 'यह एक है और यह एक है' इस प्रकार की बुद्धि। यह परिमाण की जनक और द्वित्वसंख्या की उत्पादक अपेक्षाबुद्धि हमारी सम्भव नहीं, अतः इस अपेक्षाबुद्धि का आश्रय चेतन ईश्वर के सिवाय अन्य कोई नहीं हो सकता। इस प्रकार इस अनुमान से भी ईश्वर सिद्ध होता है।

इस पर कोई शंका उठाये कि द्व्यणुक और त्रसरेणु के परिमाण प्रचयजन्य नहीं होते, यह तो स्पष्ट है, किन्तु उन्हें परिमाणजन्य अर्थात् द्व्यणुक परिमाण परमाणुगत परिमाण से जन्य और त्रसरेणु परिमाण-द्व्यणुकगत परिमाण से जन्य मानने में क्या हानि है, जैसे कि कपालगत परिमाण से घटपरिमाण बनता है। इस प्रकार परिमाण के जनक परिणाम और प्रचय ये दो ही मानने चाहिए। संख्या को परिमाण का जनक मानने की क्या आवश्यकता है? तो वह ठीक नहीं। कारण, वैशेषिक मत में परिमाण के विषय में एक यह भी मान्यता है कि परिमाण जब किसी परिमाण को उत्पन्न करता है तो वह अपनी ही जाति का और अपने से उत्कृष्ट ही बनाता है। जैसे कपालगत महत् परिमाण घटपरिमाण को महत् जात का और महत्तर परिमाणवाला ही बनाता है। इस नियम से यदि परमाणुगत अणुपरिमाण द्व्यणुक के परिमाण का जनक होगा तो द्व्यणुकपरिमाण अणु से उत्कृष्ट अणुतर होने लगेगा। इसी प्रकार द्व्यणुकगत अणुपरिमाण त्रसरेणुपरिमाण का जनक माना जायेगा तो त्रसरेणुपरिमाण अणुतर होने लगेगा। किन्तु यह मान्य नहीं, इस दर्शन में अनवस्थाभयात् अणु से अणुतर कोई माना ही नहीं जाता। फिर त्रसरेणुपरिमाण अणुतर हुआ तो उसका जो प्रत्यक्ष होता है, वही असिद्ध होने लगेगा, क्योंकि प्रत्यक्ष में महत्त्व को कारण माना गया है। यही कारण है कि द्व्यणुक और त्रसरेणु के परिमाणों को परिमाणजन्य न मानकर संख्याजन्य माना जाता है। परमाणुगत द्वित्वसंख्या से द्व्यणुकगत परिमाण और द्व्यणुकगत त्रित्व संख्या से त्रसरेणु परिमाण उत्पन्न होता है। यह वैशेषिकों का हृदय है।

इस प्रकार कुसुमाञ्जलिकार द्वारा प्रस्तुत ईश्वरसाधक अष्टविध अनुमानों का सामान्यतः परिचय कराने के पश्चात् अब यहाँ प्रधानतम कार्यत्वहेतुक प्रथम अनुमान पर ही विशेष विचार प्रस्तुत किया जा रहा है। इस अनुमान का आकार होगा—

क्षित्यादि कार्यं सकर्तृकं कार्यत्वाद् घटादिवत्।' अर्थात् जैसे घट, पट आदि कार्य में कार्यत्व धर्म रहने से वह सकर्तृक यानी कुलालरूप कर्ता से जन्य माना जाता है, वैसे ही पृथिवी, अंकुर आदि कार्यत्व धर्म होने से वे किसी कर्ता द्वारा रचे गये हैं, यह निश्चित होता है। वह कर्ता ईश्वर के सिवाय अन्य कोई नहीं हो सकता। इस प्रकार कार्यत्व हेतुक अनुमान से ईश्वर की सिद्धि की जाती है।

यहाँ विद्वन्मुकुटमणि 'न्यायमञ्जरी' कार जयन्त भट्ट पूर्वपक्ष प्रस्तुत कर समाधान करते हैं। यह पूर्वपक्ष विविध विकल्पजाल से जटिल है, भयंकर कुतर्क समूह रूप विषधर के फूत्कार से भरा है और विशालकाय होकर भावुकजनों के असह्य हार्दिक दुःखाग्नि को प्रखर बनाता है। इसका विरोधी समाधान भी उस भीषणतम पूर्वपक्ष को तत्काल काट डालने की क्षमता रखता है, सत्तर्करूप अमृत को सहस्र धाराएँ बरसाता है, भगवान् के आराधकों का मन हर्षानेवाले संविधान से सम्पन्न है। तो अब उस पूर्वपक्ष और समाधान रूप वाग्युद्ध की एक झाँकी देखिये—

वादी कहता है—जगत्कर्ता के रूप में माना गया आपका ईश्वर शरीर-विहीन है या शरीरधारी ? शरीरधारी हो तो उसका वह शरीर नित्य है या कार्य यानी अनित्य ? कार्य होने पर भी वह कार्यरूप शरीर उसी ईश्वर का कार्य है या उस ईश्वर से भिन्न अन्य किसी ईश्वर का ?

उसे अशरीरी तो माना ही नहीं जा सकता, क्योंकि कहीं भी कोई शरीर-विहीन किसी कार्य का कर्ता नहीं देखा गया। इस प्रकार अशरीरी का कर्तृत्व प्रत्यक्ष-विरुद्ध होने से अशरीरीपक्ष सहज ही कट जाता है।

यदि उसे शरीरधारी मानें तो भी उस शरीर को नित्य नहीं कहा जा सकता। कारण, उसके नित्य होने के विरोध में यह अनुमान प्रस्तुत किया जा सकता है— 'ईश्वरदेहोऽनित्यः देहत्वात्, चैत्रदेहवत्' अर्थात् जैसे चैत्र की देह देहत्वधर्म से युक्त होने के कारण अनित्य है, वैसे ही ईश्वर की देह भी अनित्य ही सिद्ध होती है। ईश्वर को शरीरी मान लेने पर भी उस शरीर का कारण ईश्वर को मानना केवल दुस्साहस है, क्योंकि कोई भी कार्य स्वयं का कारण नहीं हो सकता, कोई परमचतुर भी नट बालक अपने कन्धों पर चढ़ने में समर्थ नहीं होता। यदि ईश्वर के शरीर को ईश्वर से भिन्न किसी अन्य ईश्वर का कार्य मानें तो प्रत्येक शरीर का कर्ता भिन्न-भिन्न ईश्वर को मानना पड़ेगा। फलतः अनन्त ईश्वर मानने पड़ेंगे, जिसे स्वीकार करने में कोई प्रमाण नहीं।

दूसरी बात यह है कि एक ही ईश्वर को सिद्ध करने में आप इतने व्याकुल हो रहे हैं तो अनन्त ईश्वरों की सिद्धि कैसे कर सकेंगे ? पूर्वपक्ष से सम्बद्ध जो

श्लोक यहाँ उद्धृत किये गये हैं उनका भावार्थ क्रमशः इस प्रकार है—

१. देखा जाता है कि बिना शरीर के कोई किसी काम को नहीं कर सकता। यदि (ईश्वर को) देह है तो देहत्वधर्म से युक्त होने के कारण चैत्र की देह के समान वह भी उत्पत्ति विनाशशील होगा।

२. ईश्वर ने अपने शरीर का स्वयं निर्माण कर लिया, यह कहना तो दुस्साहस है। यदि दूसरा कोई उसका कर्ता मानें तो अनन्त ईश्वर मानने पड़ेंगे।

३. कुलाल की तरह व्यापार द्वारा जगत् की सृष्टि करना सैकड़ों युगों में भी कैसे सम्भव है? उसकी इच्छा-मात्र से भी जगत् की सृष्टि नहीं हो सकती, क्योंकि परमाणु जड़ होने के कारण उसकी इच्छा का अनुवर्तन नहीं कर सकते।

४. उन्मत्तादि के अतिरिक्त निष्प्रयोजन कोई भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। सम्पूर्ण आनन्द से युक्त और रागादि से रहित परमात्मा का जगत् की रचना में भला क्या प्रयोजन हो सकता है, समझ में नहीं आता।

५. जगत् की रचना में ईश्वर की अनुकम्पा भी कारण नहीं हो सकती, क्योंकि सृष्टि से पूर्व किसी जीवन को क्लेश छू तक नहीं गया था। उस समय वे दया के पात्र हो ही कैसे सकते हैं? जैसे कि मुक्त आत्मा क्लेशरहित होने के कारण दयनीय नहीं होते।

६. दूसरी बात यह है कि करुणामृत से आर्द्र-हृदय माना जानेवाला वह ऐसे जगत् की ही रचना क्यों करता है, जो अवश्यभोक्तव्य दुःखों के अनादि भार से दारुण है?

७. क्रीड़ा भी जगत् की रचना में हेतु नहीं हो सकती, क्योंकि वह आनन्द-प्राप्ति के लिए होती है। सम्पूर्ण जनसमुदाय को आतंकित करनेवाली यह कैसी क्रीड़ा? अपिच क्रीड़ा में किसी प्रकार का आभास नहीं होता। जगत् की रचना तो अत्यधिक श्रम से सम्पन्न होनेवाला कार्य है। सर्वानन्दमय परमपुरुष भला क्योंकर ऐसे कार्य में प्रवृत्त होगा!

८. यदि संसार की उत्पत्ति और विनाश ईश्वर की इच्छा से होते हैं, ऐसा मानें तो ईश्वर की इच्छा-मात्र ही को संसार की उत्पत्ति और विनाश का कारण मान लिया जाय, ईश्वर को नहीं।

९. इस प्रकार और इसके पश्चात् भी कही जानेवाली युक्तियों से ईश्वर को सिद्ध करने का प्रयास करें, तो भी ऐसा कोई कार्य दिखाई नहीं पड़ता जो उसके बिना न बन सके।

१०. यदि कहें कि शिष्टजनों में प्रसिद्धि है, अतः हम ईश्वर को मानते हैं, तो वह भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रसिद्धि निर्मूल भी हुआ करती है, जैसे कि इस बरगद के पेड़ पर यक्ष रहता है, यह प्रसिद्धि निर्मूल है।

११. इसलिए जगत् का यह दुर्घट उत्पत्ति-विनाश का झमेला देखकर नीति-रहस्य के वेत्ताओं ने कभी भी जगत् का ऐसा अर्थात् नित्य, सर्वज्ञ पुरुष द्वारा रचित नहीं बताया है।

इस प्रकार पूर्वपक्ष उपस्थित हो जाने पर उसका समाधान किया जाता है—

अशरीरी ही कर्ता हो तो हम उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं देखते। कहें कि कहीं ऐसे अशरीरी का कर्तृत्व अब तक नहीं देखा गया? तो कहा जायगा कि अशरीरी आत्मा का अपने शरीर की प्रेरणा का कर्तृत्व हम नित्य देखते आ रहे हैं।

यदि कहें कि ईश्वर में कर्तृत्व मान लें तो उसे विवशतः व्यापारवान् भी मानना पड़ेगा, क्योंकि कहीं भी व्यापारविरहित में कर्तृत्व सम्भव नहीं? तो यह कोई बाध्यता नहीं, क्योंकि व्यापार न करके इच्छा-मात्र से भी कर्तृत्व बन सकता है। हम ज्ञानेच्छाकृतिमान् को ही कर्ता मानते हैं और वैसा कर्तृत्व ईश्वर में रहता ही है।

यदि आप कहें कि कुलालवत् ईश्वर में व्यापार न मानें तो अचेतन परमाणु में उसकी इच्छा की अनुवर्तनशीलता कैसे मानी जायगी? तो हम भी उत्तर में यह श्लोक कह सकते हैं कि जैसे अचेतन काम आत्मा की इच्छा का अनुवर्तन करता है वैसे ही जड़ परमाणु भी ईश्वर की इच्छा का अनुकरण करेंगे।

आप जो प्रयोजन का विकल्प करते हैं कि भगवान् जगत् की रचना क्यों करता है? तो वह विकल्प भी सुन्दर नहीं है। भगवान् का यह स्वभाव ही है कि वह कभी विश्व की सृष्टि करता है तो कभी उसका संहार करता है।

यदि कहें कि ईश्वर का यह स्वभाव नियत कार्यों में कैसे होता है? तो आप पण्डितम्मन्य सूर्य को देखिये कि वह कैसे नियत समय पर उदित होता और नियत समय पर ही अस्त होता है। यदि कहें कि सूर्य का यह रूप प्राणियों के कर्म से सापेक्ष होता है तो यहाँ भी उत्तर यही होगा। कहा भी है—ईश्वर क्रीडा के निमित्त जगत् की रचना करता है, यह मानें तो भी उसकी क्रियार्थता खण्डित नहीं होती। दुःखी जन क्रीड़ा में प्रवृत्त हुआ करते हैं, ऐसा नहीं देखा जाता।

अथवा यह भी कह सकते हैं कि परमेश्वर अनुकम्पावश ही जगत् की रचना करता है।
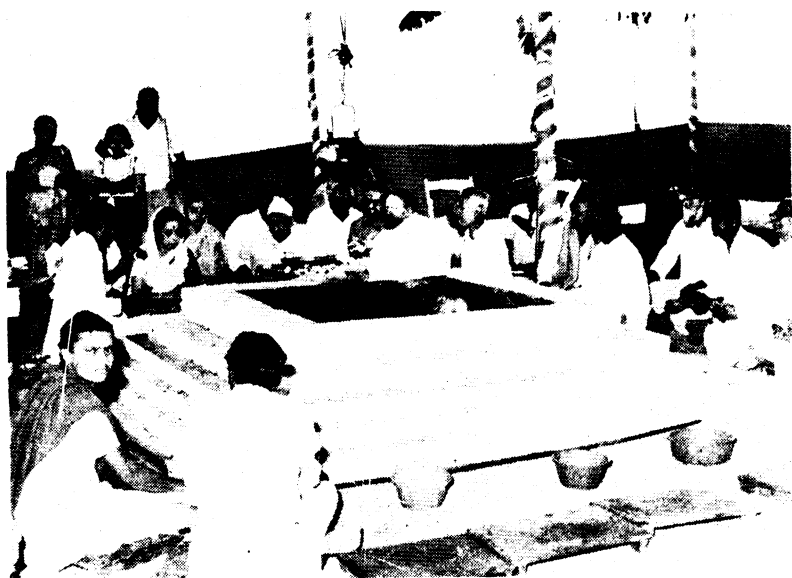
जन्मशताब्दी महोत्सव में आयोजित पंचदेव महायाग का दृश्य
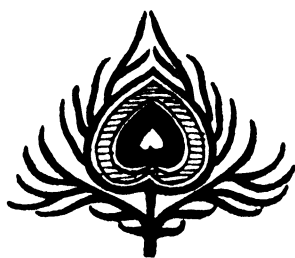
यदि कहें कि—यह कहते आपको लाज नहीं लगती कि परमेश्वर अनुकम्पा-वश जगत् की रचना करता है ? दुःखबहुल सृष्टि की रचना करने में परमेश्वर की करुणा कैसी ? यदि अनुकम्पा ही होती तो वह सभी प्राणियों को सुखी ही उत्पन्न करता। किंवा दुःसह दुःखाग्नि से सन्तप्त मनवाले प्राणियों को देखकर दया से द्रुतचेता परमेश्वर सृष्टि रचना से विरत ही हो जाता ? तो इसका उत्तर दे ही दिया गया है कि वह प्राणियों के कर्मों से सापेक्ष होकर सृष्टि रचता है।

बात यह है कि जीवात्मा शुभाशुभ संस्कारों से अनुविद्ध ही हुआ करते हैं। वे बेचारे धर्माधर्म की श्रृंखलाओं से अत्यन्त जकड़े होने के कारण अपवर्गपुर अर्थात् मोक्षनगर में प्रवेश ही नहीं पाते, तो कैसे दया के पात्र नहीं हैं ? बिना भोगे कर्मों का निःशेष क्षय नहीं होता। दयालु भगवान् सृष्टि के बिना उन कर्मों का फल भोगने के लिए नरकादि की रचना करता है। उपभोग के प्रबन्ध से थके-माँदे जीवों को बीच-बीच में विश्राम देने के लिए वह भुवनों का संहरण भी किया करता है। उसका यह सारा व्यापार कृपा-प्रेरित ही है।

यदि कहें कि एक साथ ही समस्त जगत् का प्रलय कर देना उचित नहीं दीखता, क्योंकि अविनाशी कर्मों के फलोपभोग का किसी प्रकार प्रतिबन्ध नहीं किया जा सकता, यह श्रुतिसम्मत बात है, तो यह भी ठीक नहीं। ईश्वरेच्छा द्वारा प्रतिबद्ध होनेपर कर्म भी अभिभूतशक्ति बन जाते हैं। ईश्वर की इच्छा द्वारा प्रतिबद्ध होनेपर वे फल देने में उदासीन हो जाते हैं। ऐसा क्यों ? यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि अचेतन पदार्थ चेतन का आश्रय लिये बिना अपना कार्य कर नहीं सकते।

इसपर कोई कहे कि उन कर्मों के अधिष्ठाता अनेक चेतन जीवात्मा ही होंगे, जैसा कि कुमारिल भट्ट ने 'श्लोकवार्तिक' (७५) में कहा है कि 'कर्मों के अधिष्ठाता के रूप में ईश्वर को सिद्ध करने का प्रयास करें तो वह सिद्ध-साधन होगा, क्योंकि उन कर्मों के अधिष्ठाता जीव सिद्ध ही हैं।' किन्तु यह कहना भी उचित नहीं। ये अनेकानेक जीव कर्मों के अधिष्ठाता नहीं हो सकते, क्योंकि ये जीव बहुत-से हैं और प्रत्येक का अभिप्राय एक दूसरे के विरुद्ध होता है। देखिये, कोई एक ही स्थावरविशेष या राजादिविशेष करोड़ों प्राणियों के अनेकविध सुख-दुःखों के भोग का कारण माना जाय तो वह बहुविध विरुद्ध अभिप्रायों से कैसे कर्म प्रारम्भ करेगा, क्योंकि उन सब अभिप्रायों का एकत्र समावेश सम्भव ही नहीं होगा। प्राकृत पुरुषों की परिषद का भी सकलजनों के धारणोपयोगी कार्य में क्वचित् ही

ऐकमत्य होता है, सर्वत्र नहीं। महाप्रासाद या किसी विशाल भवन के निर्माण में अनेक बढ़ई, राजगीर आदि कारीगर एक प्रधान शिल्पी का ही अनुवर्तन करते देखे जाते हैं। चींटियों आदि में भी बाँबी के निर्माण में कोई समान उपकार प्रवर्तक होता है या प्रधान शिल्पी की तरह एक अभिप्राय का अनुवर्तन माना जाय। किन्तु यहाँ तो वह स्थावर शरीर किसी के उपकार का कारण होगा तो अन्य अनेक के उपकार का कारण होगा, वे मिलकर कैसे रचना कर सकते हैं? चेतन से अनधिष्ठित अचेतनों को तो किसी कार्य का आरम्भक मानना सर्वथा अयुक्त है। इसलिए उन कर्मों का एक अधिष्ठाता अवश्य मानना पड़ेगा।

यही कारण है कि जिसकी इच्छा के बिना होते हुए भी कर्म फलप्रदान में समर्थ नहीं होते वह ईश्वर एक ही माना जाता है, न तो दो ईश्वर या न अनेक ईश्वर। ईश्वर को अनेक मानने पर तो उन अनेक ईश्वरों के विभिन्न अभिप्राय होने से लोकानुग्रह के कार्य की हानि होने लगेगी। साथ ही उन अनेक ईश्वरों की इच्छाओं में विसंवाद की संभावना रहेगी, फलतः किसी के संकल्पविघात के कारण उस ईश्वर में अनैश्वर्य की भी आपत्ति सिर चढ़ जायेगी। इसलिए एक ही ईश्वर है और उसीकी इच्छा से कर्म अपने फल-जनन में प्रवृत्त होते हैं, यही मानना उचित है। इस प्रकार सर्ग या सृष्टि की सिद्धि हो जाती है और उसकी इच्छा से प्रतिबद्ध होने से स्तिमितशक्ति कर्म अपना फल प्रदान करने से उदासीन हो जाते हैं, अतः प्रलय भी सिद्ध हो जाता है।

इसलिए श्लोकवार्तिक में कुमारिल भट्ट द्वारा सृष्टि, प्रलय-कल्पना की अप्रमाणिकता के निरसनार्थ दैवप्रभाव की कल्पना भी निरर्थक है। वे कहते हैं कि सर्वविध पुरुषार्थ का अभाव होने पर भी सृष्टिकाल में सब कुछ दैववश ही चलता रहता है और प्रलयकाल में पुरुष-प्रयत्न के रहने पर भी दैव का उपरम होने से ही सबका उपराम या नाश हो जाता है। अतः धर्मानुष्ठानार्थ ही प्रयत्न करना चाहिए, इस प्रकार सृष्टिप्रलय की स्थापना का उपसंहार करते हुए भट्टजी कहते हैं कि इसलिए सृष्टि-प्रलय की कल्पना आज की ही तरह सत्य है, समस्त क्षय-जन्मों से वह अप्रामाणिक नहीं सिद्ध होती। कारण, हम तो ईश्वर की इच्छा को कर्मों में फलजनन की सामर्थ्य देने वाली सिद्ध कर चुके हैं। उसकी इच्छा न होने पर, रहते हुए भी कर्म फल प्रदान नहीं करते और प्रलय उपपन्न हो जाता है। इसी प्रकार उसकी इच्छा होते ही सृष्टि होने लगती है।

छोड़ दीजिये सृष्टि-प्रलय की बात! आज भी पूर्वोक्त प्रकार से ईश्वर की इच्छा के बिना प्राणियों के कर्म अपना विपाक या फल प्रदान नहीं कर पाते। अतः

ईश्वर को अवश्य मानना होगा, अन्यथा समस्त व्यवहार का ही विलोप हो जायेगा। महाभारत (वनपर्व ३०-२८) में भी कहा है—

यह अज्ञ जन्तु जीव अपने सुखःदुःखों को भोगने में समर्थ नहीं है। ईश्वर से प्रेरित होता हुआ ही यह स्वर्ग जाता है या गड्ढे में अर्थात् नरक में जाता है।

यदि कहें कि जब ऐसी ही बात है तो ईश्वरेच्छा को सृष्टिकर्त्री और सृष्टि संहर्त्री मानें, तो फिर कर्मों की आवश्यकता ही क्या? तो यह ठीक नहीं, कर्मों के बिना दृश्यमान जगत् का वैचित्र्य ही नहीं बन पायेगा। कर्म की निरपेक्षतापक्ष में तीन दोष स्पष्ट ही हैं—१. ईश्वर की निर्दयता, २. वेदों द्वारा कर्मविधान की निरर्थकता और ३. जीवों का अनिर्मोक्ष प्रसंग। इसलिए कर्मों के नियोजन में ही ईश्वर का स्वातन्त्र्य है, कर्मों से निरपेक्ष होकर नहीं। कहें कि ईश्वर का ऐसा ऐश्वर्य मानने का क्या प्रयोजन है तो वह भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रमाण कभी प्रयोजन का अनुवर्तन करनेवाला नहीं होता। साथ ही ईश्वर को कर्मापेक्षी मानने पर भी भृत्य के कर्मानुसार उसे वेतन, पारितोषिक वितरण करनेवाले राजा की तरह उसका प्रभुत्व कथमपि क्षीण नहीं होता। अन्ततः तरह-तरह के कुतर्क से भरे मुखवाले नास्तिक के प्रलापों का कहाँ तक मर्दन किया जाय? अतः यह विषय यहीं समाप्त करना उचित होगा।

इस विषय में संग्रहश्लोक भी पाये जाते हैं, जिनका भाव निम्नलिखित है—

१. नित्य निजानन्द परमात्मा में द्वेष, दुःख, अधर्म और भावनाख्य संस्कार नहीं रहते।

२. नित्यानित्य निजानन्द परमेश्वर में ज्ञान, इच्छा, कृति, धर्म और आत्यन्तिक सुख रहते हैं।

३. जीवों की असर्वज्ञता ही रागादि मलों का बन्धन उत्पन्न करती है। भगवान् सर्वज्ञ है, इसलिए वह रागादि से तनिक भी संस्पृष्ट नहीं रहता।

४. देहधारी प्राणियों में रागादि इष्टानिष्ट संभोग से ही हुआ करते हैं। नित्यानन्दात्मक शिव में वे कैसे सम्भव हैं?

५. इसलिए कुतार्किकों द्वारा उठाये गये दूषणाभासों का खण्डन हो जाने से त्रैलोक्य के निर्माण में निपुण परमेश्वर सिद्ध हो जाता है।

६. जो मूढजन निरपवाद तथा दृढ़प्रमाण से सिद्ध भी ईश्वर को स्वीकार नहीं करते, उनके साथ की जानेवाली कथा यानी चर्चा निश्चित रूप से पाप की ही प्रयोजक होगी। अतएव ऐसी कथा से विरत हो जाना ही उचित है।

विपक्षियों द्वारा उद्भावित हेत्वाभासों का निरास

अब कुसुमाञ्जलि में ईश्वर साधक अनुमान में विपक्षियों द्वारा उद्भावित हेत्वाभासों के निरास का प्रयास किया जा रहा है। आस्तिक दार्शनिकों के क्रोधभरे वचन समूहों को सुनते हुए भी अपने अन्तःकरण के घनीभूत अज्ञानान्धकार से जिन पर भ्रम का भूत सवार हो गया है, वे प्रतिपक्षी पुनः निम्नलिखित हेत्वाभासों की शंका उठाते हैं—१. बाध, २. सत्प्रतिपक्ष, ३. साध्याप्रसिद्धि, ४. विशेषविरोध ५. व्याप्यत्वासिद्धि और ६. अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचार। कैसे ? तो देखिये—

१. 'क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्, इस ईश्वर साधक अनुमान में घटादि दृष्टान्त को देखते शरीरविशिष्ट ही कर्ता सिद्ध होता है अर्थात् घटादि का कर्ता सशरीर कुलालादि देखा जाता है। किन्तु क्षित्यादि पक्ष में ऐसा सशरीरकर्तृत्व दिखायी नहीं पड़ता। अर्थात् ईश्वर का शरीर न होने से शरीरविशिष्ट कर्तृत्व का अभाव, विशेषण शरीर के अभाव के कारण, स्पष्ट है। इस प्रकार वहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण से ही साध्य का अभाव रूप 'बाध' नामक हेतुदोष आ जाता है।

२. ईश्वर साधक प्रस्तुत अनुमान में सत्प्रतिपक्ष नामक हेतुदोष भी है। आप जिसे सिद्ध करना चाहते हैं, उसके अभाव का साधक दूसरा हेतु उपस्थित करना सत्प्रतिपक्ष का स्वरूप है। तदनुसार हम यह अनुमान प्रस्तुत कर सकते हैं— 'क्षित्यंकुरादिकं कर्तृजन्यं शरीराजन्यत्वात्' अथवा 'ईश्वरः कर्ता न भवति, अशरीरत्वात्।' तात्पर्य यह है कि जो भी कर्ता होता है, उसे शरीर होता ही है। ईश्वर को शरीर न होने से वह कभी कर्ता नहीं हो सकता।

३. कर्तृत्व और शरीरित्व का सर्वत्र सहचार देखा जाता है। इसलिए यह व्याप्ति मानी जा सकती है कि 'जहाँ-जहाँ कर्तृत्व है, वहाँ-वहाँ शारीरित्व रहता है।' तथा च सिद्धान्ती द्वारा सिद्ध किये जानेवाले अशारीरिकर्तृजन्यत्व रूप-साध्य के अप्रसिद्ध होने से साध्याप्रसिद्धि दोष आ जायगा।

४. उपर्युक्त व्याप्ति के बलपर शरीरी कर्ता होता है, यह सिद्ध किया जा सकता है और सिद्धान्ती पक्षधर्मता के बल पर क्षित्यादि पक्ष में अशरीरी कर्ता उपस्थित करते हैं। फलतः व्याप्ति और पक्षधर्मता दोनों द्वारा उपस्थित किये जाने वाले विशेषों अर्थात् शरीरित्व और अशरीरित्व में विरोधरूप दोष स्पष्ट है।

५. कार्यत्व हेतु से क्षित्यादि में कर्तृजन्यत्व साधन करनेवाले सिद्धान्ती के कार्यत्व हेतु में 'शरीरजन्यत्व' यह उपाधि लगायी जा सकती है। यह उपाधिविशिष्ट या सोपाधिक हेतु 'व्याप्यत्वासिद्ध' कहलाता है। इस प्रकार प्रस्तुत अनुमान में व्याप्यत्वासिद्धि नामक पञ्चम दोष भी स्पष्ट है।

६. जो हेतु साध्यव्यापक और साधना की अव्यापक उपाधि से युक्त हो जाता है, उस अनुमान में उपाधि के व्यभिचार से साध्य का भी व्यभिचार प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार अनैकान्तिक या सव्यभिचार भी यहाँ दोष है।

श्री उदयनाचार्य कुसुमाञ्जलि में इन दोषों का निरास निम्नलिखित कारिका से करते हैं—

न बाधोऽस्योपजीव्यत्वात् प्रतिबन्धो न दुर्बलैः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्विरोधो न नासिद्धिरनिबन्धना॥

(न्या० कु० ५.२)

इसका विवरण निम्नलिखित है—अस्य=ईश्वरसाधक अनुमान के, उपजीव्यत्वात्=आश्रय या पक्षरूप ईश्वर का साधक होने से, न बाधः=बाधदोष नहीं दिया जा सकता। भाव यह कि ईश्वररूप धर्मों में शरीर का अभाव होने से कर्तृत्व (शरीरित्वविशिष्ट कर्तृत्व) का बाध अर्थात् अभाव नहीं हो सकता, क्योंकि अभाव ज्ञान के लिए उसके आश्रय का ज्ञान अपेक्षित होता है। जिसमें शरीराभाव सिद्ध करेंगे, उस ईश्वर का ज्ञान तो इसी अनुमान से होता है, अतः यह प्रबल है। यदि इसी को बाधित कहेंगे तो आश्रयज्ञान कैसे होगा? उसके न होने से बाध की कथा भी दूर की बात होगी।

इस अनुमान में सत्प्रतिपक्ष भी नहीं हो सकता, यह कहते हैं—'प्रतिबन्धो न दुर्बलैः।' दुर्बलैः=हीनबलवाले विरोधी हेतुओं से, प्रतिबन्धः=सद्हेतु का प्रतिरोध नहीं हो सकता। भाव यह है कि ईश्वरसाधक उपर्युक्त अनुमान का विरोधी अनुमान (क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं शरीराजन्यत्वात्) प्रस्तुत कर जो पूर्वपक्षी सत्प्रतिपक्ष देता है, उसके उस अनुमान में 'शरीर' पद व्यर्थ है, केवल 'अजन्यत्वात्' हेतु से भी 'कर्तृजन्यत्व' साध्य सिद्ध हो सकता है। इसलिए उसका हेतु व्यर्थ विशेषण (शरीर) से घटित होने से व्याप्यत्वासिद्ध या भागासिद्ध (स्वरूपासिद्ध) है, अतएव दुर्बल है। इस प्रकार सत्प्रतिपक्ष भी नहीं है।

साध्याप्रसिद्धि दोष की इस अनुमान में जो आशङ्का की गयी थी, वह भी ठीक नहीं। उक्त आपत्ति की प्रयोजक आपकी 'यत्र–यत्र कर्तृत्वं, तत्र–तत्र शरिरत्वम्' इस पूर्वोक्त व्याप्ति की अपेक्षा पक्षधर्मता और विपक्ष में बाधक तर्क उपस्थित किये जा सकने से हमारी कार्यत्वव्याप्ति अर्थात् 'यत्र-यत्र कार्यत्वं तत्र-तत्र सकर्तृकत्वम्' यह व्याप्ति प्रबल है। अतः पूर्वपक्षी की उक्त व्याप्ति हमारी व्याप्ति का प्रतिरोध नहीं कर सकती। यही कारण है कि मूलकारिका में 'दुर्लभैः' यह बहुवचन प्रयुक्त है।

अर्थात् बहुत से बाध, सत्प्रतिपक्ष और प्रतिरोधी व्याप्ति तीनों हमारी व्याप्ति की अपेक्षा दुर्बल हैं।

चतुर्थ विशेष विरोध की जो आपत्ति दी गयी थी, वह भी सम्भव नहीं। 'जो शरीरी होता है, वही कर्त्ता होता है' इस व्याप्ति द्वारा उपस्थापित शरीरि-कर्तृत्वरूप विशेष का पक्षधर्मता से उपस्थापित अशारीरिकर्तृत्व से ही आपका विरोध बतलायेंगे। इस सन्दर्भ में हम आपसे पूछते हैं—बतलाइये कि वह विशेष उपस्थित है या अनुपस्थित? यदि उपस्थित है तो शरीर और कर्तृत्व एक साथ उपलब्ध होने से विरोध ही नहीं है, जो साथ-साथ उपलब्ध नहीं होते, उन्हीं में विरोध देखा जाता है। यदि वह विशेष अनुपलब्ध है, तो आप जिस विशेष पदार्थ से विरोध उपस्थित करते हैं, उस विशेष 'ईश्वर' का उपस्थापन न कर पाने से उक्त विरोध का आश्रय ही जब उपस्थित नहीं, तो विरोध कहाँ रहेगा?। इसी अभिप्राय से कारिकाकार कहते हैं—'सिद्ध्यसिद्ध्योर्विरोधो न'। भाव यह कि विशेष की उपस्थिति (सिद्धेः) और अनुपस्थिति (असिद्धेः) दोनों स्थिति में विरोध नहीं है।

पूर्वपक्षीप्रदत्त व्याप्यत्वासिद्धि दोष का भी मूलकारिकाकार निराकरण करते हैं—'नासिद्धिरनिबन्धना' अर्थात् आपने हमारे अनुमान में उपाधि दिखलाकर जो व्याप्य-त्वासिद्धि दोष दिया, वह भी नहीं होगा, क्योंकि शरीरजन्यस्वरूप उपाधि से क्षित्यादि पक्ष में उसका अभाव होने से कर्तृजन्यत्व का अभाव सिद्ध करते समय आपके यहाँ विपक्ष में बाधक तर्क ही नहीं है। अतः 'क्षित्यादिकं न कर्तृजन्यं, शरीराजन्यत्वात्' यह आपका अनुमान अप्रयोजक है, अतः आप हमारे अनुमान में व्याप्यत्वासिद्धि दोष नहीं दे सकते।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है—उपाधि या तो अपने व्यभिचार से हेतु में साध्य के व्यभिचार का या अपने अभाव से साध्याभाव का अनुमान कराती है, क्योंकि जो साध्यकी व्यापक और साधना या हेतु की अव्यापक होती है, उसीको उपाधि कहा जाता है। साध्यकी व्यापक होने के कारण ही उपाधि का व्यभिचार हुआ तो साध्य का व्यभिचरित होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार उपाधि का अभाव होने पर उससे व्यापक साध्य का अभाव भी स्वाभाविक ही माना जायेगा। इस प्रकार अनुमान का आकार निम्नलिखित होगा—'कार्यत्वं सकर्तृकत्वव्यभिचारि तद्व्यापकशरीरजन्यत्वव्यभिचारित्वात्' अथवा क्षित्यङ्कुरादिकं न सकर्तृकं शरीराजन्यत्वात्'। किन्तु ये दोनों ही अनुमान किसी प्रकार कार्यकारी नहीं हो सकते, क्योंकि विपक्ष में बाधक तर्क के न होने से अनुमानों के दोनों हेतु अप्रयोजक हैं। विपक्ष में बाधक तर्क का अर्थ है व्यभिचार शंका का निवर्तक तर्क।

यहाँ ऐसा तर्क सम्भव नहीं है। विपक्ष में बाधक तर्क से शून्य होना ही अप्रयोजकत्व या अप्रयोजकता है। इसलिए असिद्धि या विपक्षबाधक तर्क के न होने से छिन्न-मूल उपाधि द्वारा प्रदत्त व्याप्यत्वासिद्धि की शङ्का नहीं की जा सकती। अतएव कारिकाकार कहते हैं—'नासिद्धिरनिबन्धना'। अनिबन्धना = निबन्धन यानी विपक्ष में बाधक तर्क उससे रहित, असिद्धि = व्याप्यत्वासिद्धिरूप दोष सम्भव नहीं है।

अब कोई यह शङ्का उठाये कि किसान द्वारा बीजवपन, हलकर्षण आदि व्यापार के बिना, बिना जोते ही उत्पन्न तृणादि का कोई कर्त्ता देखा नहीं जाता, इसलिए कार्यत्वहेतु वहाँ व्यभिचारी हो जायेगा, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि वह पक्षसम होने से पक्षकक्षा में ही आ जाता है और पक्ष में व्यभिचार का उद्भावन कभी दोष नहीं माना जाता।

प्रकारान्तर से व्यभिचार की आपत्ति उठाना और उसका निरास करना तथा विशेषविरोध सत्प्रतिपक्ष बाधरूप हेत्वाभासों का भी निरास 'न्यायमञ्जरी' (पृ. १८२) से ही समझना चाहिए।

वहाँ विद्वानों के अन्तर को प्रसन्न करनेवाले जो व्यभिचार के निरासक श्लोक संगृहीत हैं, उनका भाव निम्नलिखित है—

१. इस प्रथम श्लोक के प्रारम्भ में कारण सूचक 'तेन' पद पठित है, जो साकांक्ष है। वह ईश्वरानुमान में प्रतिपक्षी द्वारा उठायी गयी अनुपपत्तियों के द्वारा किये परिहारों की विवक्षा रखता है। तथा च तेन = उपर्युक्त परिहारों के कारण ईश्वर अनुमान से बोध्य है, अतः कर्तुः नास्तिताग्रहः न = उसके अस्तित्व की निषेधक बुद्धि नहीं हो सकती। इस प्रकार अस्तित्व निषेधक बुद्धि के न होने से क्षित्यादि को विपक्ष नहीं कहा जा सकता।

२. वैसे देखें तो धूमहेतु के प्रयोग के पूर्व पर्वत में भी वह्निका संदेह रहता ही है, उसे बचा नहीं सकते। यदि इसी संदेह पर पर्वत को विपक्ष मानें तो धूम भी वह्नि का अनुमापक नहीं हो सकता।

३. यदि क्षित्यादि में कर्त्ता के अदृष्ट होने से कार्यत्वहेतु को लिङ्गाभाव मानने लगेंगे तो धूमहेतु को भी लिङ्गाभाव करना पड़ेगा, क्योंकि वहाँ वह्नि दिखाई नहीं पड़ता।

४. यदि कहें कि पर्वत देश में पहुँचकर हम धूमचिह्न वाले बह्नि को पा जाते हैं, तो हम यही कहेंगे कि हे सज्जन पुरुष! ऐसी ही बुद्धि रखकर सौ वर्षों तक जीते रहो।

५. यदि वह्नि का दर्शन बाद में होता है तो उस धूमहेतु की प्रमाणता ही क्या ? वह्नि की अपेक्षा न होने से या उसके न दीखने पर वह्नि से आप क्या करेंगे।

ईश्वरसिद्धि के उपसंहार में श्रीउदयनाचार्य ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—'इत्येवम्' इत्यादि। इस श्लोक का भाव यह है कि इस प्रकार श्रुति यानी आगम और नीति अर्थात् न्याय, अनुमानादि के साहित्यरूप प्रचुर जलों से धोकर शुद्ध किये हुए जिन नास्तिकों के हृदय में हे भगवन् ! आप प्रतिष्ठित नहीं होते, अर्थात् जिन्हें आपके प्रति श्रद्धा और विश्वास नहीं होता, वे निश्चय ही लोहे या कठिन पाषाणशिला की तरह वज्रहृदय हैं। किन्तु प्रस्तुत अर्थात् ईश्वर के विषय में प्रतिकूल परायण होने पर भी अवसर पड़ने पर, आपत्ति काल में आपका अत्यन्त ध्यान करनेवाले उन पुरुषों को हे करुणामय प्रभो ! आप ही तारें, अर्थात् उन्हें शङ्कारूप कलङ्क से रहित करें।

इसी प्रकार 'अस्माकं तु' इस दूसरे श्लोक से भी आचार्य प्रार्थना करते हैं कि हे निसर्गसुन्दर ! हम ग्रन्थकार का चित्त तो बहुत समय से आप में ही निमग्न है, यह ठीक है, फिर भी यह चञ्चल चित्त अभी तृप्त नहीं हुआ है। इसलिए हे नाथ ! यथासम्भव शीघ्र ऐसी कृपा करें, जिससे इस चित्त के सर्वथा आप में लीन हो जाने पर फिर बार-बार यम-यातना, जन्म-मरण का कष्ट हमें न भुगतना पड़े।

वेदान्तदर्शनानुसार ईश्वर–विचार

इस प्रकार आस्तिक-चक्रचूड़ामणि तार्किकों द्वारा भगवत्प्रेमवश प्रस्तुत विपुल अनुमान प्रयोग का प्रयास पर्याप्त हो गया। अतः वेदान्तदर्शन के अनुसार भगवान् की वेदैकवेद्यता को जो प्रारम्भ में प्रतिज्ञा की गयी है, उसी का उपपादन किया जा रहा है।

त्रलोक्य के अलङ्कारस्वरूप भगवान् वेदव्यास के ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करनेवाले देवस्वरूप विद्वद्वृन्द द्वारा वन्दित–चरण सर्व श्रीशङ्कर भास्कर, रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, रामानन्द, श्रीचन्द्र प्रमुख आचार्य परमेश्वर को एकमात्र शास्त्रगम्य बतलाते हैं। अतएव 'अणुभाष्य' की अपनी 'प्रकाश' व्याख्या (पृ० ७०) में शुद्धाद्वैतमार्तण्ड पण्डितप्रवर श्रीपुरुषोत्तम लिखते हैं कि—'इस प्रकार अपना सिद्धान्त बतलाकर पर-पक्षखण्डन में परमचतुर आचार्य वल्लभप्रभु वैशेषिकादि के अनुयायी किन्हीं लोगों का मत 'केचित्' इत्यादि ग्रन्थ से प्रस्तुत करते हैं—इस संदर्भ में वे आधुनिक और अन्य भाष्यकारों का भी मत इसलिए उद्धृत नहीं करते कि उनको ब्रह्म के

शास्त्रैकवेद्यत्व अंश में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं है। वल्लभाचार्य के उक्त भाष्यांश का भाव इस प्रकार है—

'यहाँ कुछ लोग कहते हैं कि 'जन्माद्यस्य यतः' यह सूत्र लक्षण होने से अनुमान है। दूसरे लोग उसे श्रुति का अनुवादक मानते हैं। सर्वज्ञत्व के लिए श्रुत्यनुसारी अनुमान भी ब्रह्म में प्रमाण है। किन्तु यह कथन 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' (उस उपनिषद्रूप श्रुतिवेद्य पुरुष के विषय में पूछता हूँ) इस श्रुति के अनुसार परमेश्वर के केवल उपनिषद्वेद्य होने से उपेक्ष्य है, क्योंकि प्रमाण अज्ञात पदार्थ का बोधक होता है।'

श्रीवल्लभाचार्य ने उपर्युक्त बात 'शास्त्रयोनित्वात्' इस द्वितीय सूत्र में बतायी है। वे 'जन्माद्यस्य यतः' और 'शास्त्रयोनित्वात्' इन दोनों सूत्रों का ऐक्य मानते हैं। इसे देखने पर उनके मत में परमेश्वर की वेदैकवेद्यता स्पष्ट प्रतीत हो जाती है।

श्रीरामानुजाचार्य 'शास्त्रयोनित्वात्' इस द्वितीय सूत्र में प्रतिज्ञा करते हैं— 'अतः प्रमाणान्तर से अगोचर होने से ब्रह्म मात्र शास्त्रगम्य है। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (जिससे ये सारे प्राणी उत्पन्न होते हैं) आदि वचन पूर्वोक्त लक्षणवाले ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं, यह सिद्ध है।'

भास्कर-मत का मनन

वैशेषिक सर्वप्रथम अनुमान द्वारा संसार को कार्य सिद्ध करते हैं। अनुमान का आकार है—'जगत् कार्यं सावयवत्वात्, महत्त्वे सति क्रियावत्वात्, महत्त्वे सति मूर्तत्वाच्च घटवत्' अर्थात् जैसे घट में सावयवत्व, महत्त्वसहित क्रियावत्त्व और मूर्तत्व होने से कार्यत्व है, वैसे ही जगद्रूप कार्य में भी सावयवत्वादि होने से कार्यत्व है। इस प्रकार जगत में कार्यत्व धर्म सिद्ध करके आगे वे दूसरा अनुमान यह करते हैं—'जगत् बुद्धिमत्कर्तृकं कार्यत्वात्' अर्थात् जगत् में कार्यत्व होने से वह बुद्धिमान् द्वारा रचा गया है। इस प्रकार वे अनुमान द्वारा निखिल जगत् के कर्ता परमेश्वर को सिद्ध करते हैं।

भास्कराचार्य ने इनका यह मत प्रस्तुत कर उक्त कार्यत्वहेतु को हेत्वाभास अर्थात् दुष्ट हेतु बताकर उनका मत निरस्तकर परमेश्वर को एकमात्र शास्त्रैकगम्य सिद्ध किया है।

प्रथम वे कार्यत्व हेतु को साधारण व्यभिचारी सिद्ध करते हैं। 'साधारण व्यभिचारी का लक्षण है, जो हेतु साध्याभाववान् में रहे (साध्याभाववद्वृत्तिहेतुः

साधारणः) । वे इसे निम्नलिखित अनुमान द्वारा बताते हैं—'जगत् न बुद्धिमत्कारण-पूर्वकं (वा सकर्तृकम्) कार्यत्वात् बीजोत्पन्नाङ्कुरवत् ।' अर्थात् जैसे बीज से उत्पन्न अंकुर में कार्यत्व रहता है और वह किसी बुद्धिमान् कारण से नहीं बनता, अन्ततः बीज से अंकुर कौन बनाता है ? कोई नहीं । वैसे ही जगत् में भी कार्यत्व होने से वह भी किसी बुद्धिमान् द्वारा रचा नहीं गया । साथ ही यह हेतु विरुद्ध भी है, क्योंकि जगत् के साथ ईश्वर का सम्बन्ध कहीं दिखायी न पड़ने से साध्य में पक्षधर्मता अर्थात् पक्षवृत्तित्व का अभाव है । जिस किसी बुद्धिमान् द्वारा रचे होने से सिद्धसाधन भी है । इसी प्रकार घटादि दृष्टान्त के बलपर कार्यत्व के साथ-साथ विद्यमान अनीश्वर, असर्वज्ञ और शरीरेन्द्रियसम्पन्न पुरुष का कर्तृत्व सिद्ध हो जाने से विवक्षित ईश्वर की सिद्धि ही नहीं हो पायेगी । इस प्रकार के पुरुष जीव की सिद्धि हो जाने से अर्थान्तर भी होने से आपके अभीष्ट साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती ।

यदि कहें कि घटादि दृष्टान्त से शब्द में कृतकत्व या कार्यत्व हेतु से अनित्यत्व सिद्ध करने जायेंगे तो दृष्टान्तगत पाच्यत्व की भी आपत्ति देने लगेंगे तो वह अनुमान ही उच्छिन्न हो जायेगा । अतः घटादि दृष्टान्त के बलपर अनीश्वर, असर्वज्ञ और शरीरेन्द्रियादि सम्पन्न पुरुषनिर्मितत्व की आपत्ति देना उचित नहीं, तो वह ठीक नहीं, वहाँ हेतु के आश्रय शब्द में प्रमाणान्तरगोचरता होने से पाच्यत्वादि की आपत्ति देना सम्भव न होने से उक्त अनुमान के उच्छेद का भय नहीं रहेगा ।

ब्रह्म को एकमात्र शास्त्रगम्य सिद्ध करते हुए आचार्य भास्कर कहते हैं कि सर्वथा अदृष्ट ब्रह्म में तो अन्वय-व्यतिरेक से परिशुद्ध उन हेतुओं का निवर्तक कोई न होने से तादृश्य धर्म की आपत्ति अनिवार्य हो जायेगी । अतः ब्रह्म एक मात्र शास्त्रगम्य ही है ।

भास्कर मत का निरास

श्रीरामानुजाचार्य ने भास्कर द्वारा प्रस्तुत दूषणों में शैथिल्य दिखाकर अन्य भी अनेक अनुमान प्रस्तुतकर प्रचण्ड तर्कदण्ड से उनका भी निरसन किया है । वे अनुमान हैं—'विवादाध्यासितं भू-भूधरादिकं स्वनिर्माणसमर्थकर्तृपूर्वकं कार्यत्वात् सार्वभौमसदनवत्, धर्माधर्मौ चेतनाधिष्ठितत्वेनैव फलोपधायकौ अचेतनत्वात्' आदि । इस प्रकार सर्वविध अनुमानों को ईश्वर साधन में पंगु बनाकर श्री रामानुजाचार्य ने परमेश्वर को एकमात्र शास्त्रगम्य सिद्ध किया है । यह सारा प्रकार तृतीय सूत्र

ब्रह्मसूत्र—('शास्त्रयोनित्वात्') के श्रीभाष्य से भी जान लेना चाहिए। विस्तारभय से यहाँ वह सारा प्रसंग प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

अधिक क्या ? हेत्वाभास के प्रतिभास रूप राहु के त्रास से छुटकारा पाने के लिए जिसके प्राण छटपटा रहे हों, वह अनुमान प्रमाण कभी ईश्वर को सिद्ध नहीं कर सकता। इस प्रकार परमेश्वर की एक मात्र शास्त्रगम्यता निष्कण्टक सिद्ध हो जाती है। अन्य आचार्यों के एतद्विषयक वचन उपर्युक्त वचनों के ही समानार्थक हैं। अतः निष्प्रयोजन होने से उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

सभी दर्शनों में ईश्वर की मान्यता

न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, कर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसा नाम के छह दर्शन वेदोपजीवीरूप में सुप्रसिद्ध हैं। सप्तम दर्शन है शाण्डिल्य ऋषि प्रणीत भक्ति-दर्शन। उसकी क्रमशः सात भूमिकाएँ हैं—१. ज्ञानदा, २. संन्यासदा, ३. योगदा, ४. लीलोन्मुक्ति, ५. तत्पदा, ६. आनन्दपदा और ७. परात्परा। इनके लक्षणादि गङ्गेश्वर-ग्रन्थमाला' के चतुर्थ पुष्प में 'दर्शन समन्वय' शीर्षक लेख में द्रष्टव्य हैं।

दर्शन-समन्वय समर्थन

यदि कोई 'अतिथि-स्वागत' न्याय से या 'विषयविशेषाध्यापन' न्याय से किसी विषयान्तर का निरूपण नहीं करता तो उससे न तो उसकी सर्वज्ञता की हानि होती है और न यही कहा जा सकता है कि वह उस विषयान्तर को स्वीकार ही नहीं करता।

'अतिथि-स्वागत' न्याय का स्वरूप यह है कि सात मञ्जिल के मकान में विभिन्न द्वारों पर पिता अपने सात पुत्रों को स्वागतार्थ नियुक्त करता है। जिस द्वार पर जो स्थित है, वह उसी अतिथि का स्वागत करता है, अन्यत्र नहीं, यद्यपि वह पुत्र अपने घर के सभी द्वारों को जानता ही है। द्वार विशेष में स्वागत करने मात्र से उनकी द्वारान्तरानभिज्ञता नहीं मानी जाती। कौन ऐसा पुरुष होगा जो अपने घर का वृत्तान्त न जानता हो ?

'विषय—विशेषाध्यापन' न्याय का स्वरूप यह है कि किसी विद्यालय में विभिन्न कक्षाओं में तत्तत् विषय के अध्यापनार्थ नियुक्त किये शिक्षक उसी विषय को पढ़ाते हैं, विषयान्तर को नहीं। एतावता उनकी विषयान्तर में अनभिज्ञता सिद्ध नहीं होती। लोक में देखा ही जाता है कि गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञानादि विषयों में निपुण भी शिक्षक उसी विषय विशेष को पढ़ाता है, जिसके लिए वह नियुक्त है, विषयान्तर को नहीं।

इसी प्रकार हमारे महर्षिगण भी अपने-अपने दर्शन की भूमिका के अनुसार पदार्थ का निरूपण करने में ही संलग्न रहते हैं। अपनी-अपनी भूमिका के अनुपयुक्त पदार्थों का वे निरूपण नहीं करते, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे नहीं जानते या उन पदार्थों को स्वीकार ही नहीं करते। अपनी भूमिका में कोई उपयोग न होना ही किसी पदार्थ का निरूपण न करने का कारण है, उस विषय का अज्ञान नहीं और न उसका अनङ्गीकार ही।

इसी प्रकार सांख्य और मीमांसकों ने भी अपनी-अपनी भूमिका में उपयोगी न होने के कारण ही परमेश्वर का निरूपण नहीं किया। इतने मात्र से यह शंका नहीं की जा सकती कि वे ईश्वर को स्वीकार करते ही नहीं।

सांख्यसूत्रों का गूढ़ तात्पर्य

यदि कहें कि 'सांख्यप्रवचन' नामक सांख्यदर्शन में 'ईश्वरासिद्धेः' इत्यादि सूत्र स्पष्ट ही ईश्वर का निराकरण करते हैं। उन सूत्रों के भाष्यकार विज्ञानभिक्षु महोदय भी उनका इसी प्रकार व्याख्यान करते हैं, तो कहना होगा कि उनके गूढ़ भाव को जाना ही नहीं गया। वे सूत्र गूढ़ार्थ से भरे हैं। निश्चय ही वत्स! अर्वाचीन भाष्यकारों के व्याख्यानों से आप भ्रान्ति में पड़ गये हैं। तनिक ध्यान दें, हम उनका गूढ़ अभिप्राय स्पष्ट कर रहे हैं।

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः। (सा० द० १.९०)

प्रस्तुत सूत्र का चान्द्रभाष्य इस प्रकार है—योगियों को योगबल से लौकिक प्रत्यक्ष से अतिरिक्त अलौकिक प्रत्यक्ष होता है। उसी को 'अबाह्यप्रत्यक्ष' कहते हैं। सांख्यज्ञानभूमि में अनुपयुक्त भी उस प्रत्यक्ष को स्वीकार कर लेने पर कोई दोष नहीं है।

'लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः।' (सा० द० १.९१)

यदि कहें कि निष्प्रयोजन वस्तु का स्वीकार ही अपने में दोष है, तो कहते हैं—'लीनवस्तु' इत्यादि। यहाँ 'लीन' पद अनागत आदि का उपलक्षण है। अतीन्द्रिय योगबल से प्राप्त अलौकिक प्रत्यक्ष विशेष का लीनादि वस्तुओं के साथ सम्बन्ध हो सकता है। वह अतीन्द्रिय, लीनादि समस्त वस्तुओं का अवगाहन या ग्रहण कर सकता है, अतः निष्प्रयोजन का अङ्गीकार रूप दोष नहीं दिया जा सकता। वह सर्वथा निष्प्रयोजन नहीं है। कारण, अतीन्द्रिय परमेश्वरादि की सिद्धि ही उसका प्रयोजन है।

'ईश्वरासिद्धेः ।' (सां० द० १.९२)

यदि कहें कि लौकिक प्रमाणों से ही ईश्वर की सिद्धि हो जाय, तो इस अलौकिक प्रत्यक्ष का क्या उपयोग है ? तो कहते हैं—'ईश्वरासिद्धेः' । भाव यह कि लौकिक प्रमाणों से ईश्वर की सिद्धि नहीं की जा सकती, अतएव वह नहीं है ।

'मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः । (सां० द० १.९३)

जो लौकिक प्रमाणों से ईश्वर सिद्ध करने का अभिमान रखते हैं, उनसे पूछा जाय कि वह ईश्वर मुक्त है या बद्ध ? यदि वह बद्ध हो तो जगत् की रचना ही कैसे कर सकता है ? यदि वह मुक्त हो तो शान्तसंकल्प होने से अभिमान रहित होगा और तब भी जगत् की रचना नहीं करेगा । इस तरह दोनों ही प्रकार से उसमें जगत्-कर्तृत्व नहीं बन पायेगा । इसलिए कार्यत्व हेतु से लौकिक अनुमान-प्रमाण द्वारा जगत्कर्ता के रूप में ईश्वर की सिद्धि नहीं की जा सकती । ईश्वर के रूपादिहीन होने से प्रत्यक्ष प्रमाण तो उसकी सिद्धि करने की क्षमता ही नहीं रखता ।

'उभयथाऽप्यसत्करत्वम् ।' (सां० द० १.९४)

'उभयथापि' अर्थात् ईश्वर के बद्ध या मुक्त मानने में भी उपर्युक्त युक्तियों से सत्रूप से उपलभ्यमान जगत् का कर्तृत्व उसमें बन नहीं पाता । अतः ईश्वर की सिद्धि नहीं की जा सकती ।

'मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्य वा ।' (सां० द० १.९५)

यदि कहें कि प्रमाणसिद्ध न होने से परमेश्वर का अस्तित्व ही नहीं है, तो कहते हैं—'मुक्तात्मनं' इत्यादि । मुक्तात्मनः=वामदेवादि मुक्तजनों के, वा= अथवा, उपासासिद्धस्य=उपासो अर्थात् उपासना, उससे 'सिद्धस्य' प्राप्त अणिमादि ऐश्वर्यसम्पन्न जैगीषव्यादि योगिजनों की, प्रशंसा=ईश्वर की प्रशंसा, प्रमाण है । तात्पर्य यह कि संसार में जिसकी महिमा या माहात्म्य देखा जाता है, उसी की स्तुति की जाती है । हम देखते हैं कि अनेक मुक्त एवं सिद्धों ने उसकी स्तुति की है । इसलिए लौकिक प्रमाणों के न रहने पर भी अलौकिक प्रत्यक्ष के बल पर जगदीश्वर की सिद्धि सम्भव होने से यह सिद्ध होता है कि सांख्यदर्शन भी परम आस्तिक है । एवञ्च उपर्युक्त सूत्रों के गूढतात्पर्य को न जान सकनेवाले कतिपय विज्ञानभिक्षु आदि प्रमुख टीकाकारों द्वारा सांख्यदर्शन पर ईश्वर के अनङ्गीकार का कलङ्कपङ्क का लेपन सर्वथा अज्ञानवश है ।

मीमांसकों में भगवान् के प्रति श्रद्धातिरेक

मीमांसक दर्शन यज्ञप्रधान दर्शन है। उस दर्शन में 'सत्पदा' भूमिका के अनुसार ईश्वर का निरूपण न करने में किसी प्रकार का प्रयोजन न होना ही हेतु है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वह दर्शन ईश्वर का अनङ्गीकार करता है। देखिये—'ब्रह्मदानेऽविशिष्टमिति चेत्' (ब्र० सू० १.३.७०), 'यदि तु ब्रह्मणस्तद्दानं तद्विकारः स्यात्' (१.३.७२), 'ब्रह्मापीऽति चेत्' (१२.१.२६), इन सूत्रों में श्लिष्ट 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग हुआ है। अनेक अर्थों वाले शब्द को रसिकशिरोमणि 'श्लिष्ट' शब्द कहते हैं। उस शब्द का स्वभाव होता है कि वह अभिधावृत्ति से जहाँ प्रकरणसिद्ध या वाच्य अर्थ बोधित करता है वहीं व्यञ्जनावृत्ति से उससे भिन्न अर्थ भी व्यञ्जित किया करता है।

उस प्रकाश में हम यह सहज कल्पना कर सकते हैं कि 'चतुर्वेद' में पारंगत 'ब्रह्मा' नामक ऋत्विक् के बोधनार्थ श्लिष्ट 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग करते हुए महर्षि अपने दर्शन की भूमिका के लिए अनपेक्षित होते हुए भी उस शब्द के प्रयोग द्वारा जगन्नियन्ता, परमाराध्य परमेश्वर को व्यञ्जित करते हैं। इस तरह वे परमेश्वर के अस्तित्व के विषय में अपना दृढ़ मनःप्रत्यय और महती श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं।

अलंकारमुकुटमणि विश्वनाथ के 'वाच्यातिशायिनि व्यङ्ग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्' (सा० द० ४.५४) इस वचनानुसार आलङ्कारिकों के सिद्धान्तानुसार वाच्य की अपेक्षा व्यङ्ग्य अर्थ का स्थान विशिष्ट होता है। शक्ति या अभिधा द्वारा बोधित अर्थ 'वाच्य' कहलाता है, तो व्यञ्जनावृत्ति से बोधित अर्थ व्यङ्ग्य। श्रद्धातिशय होने से जैमिनिमुनि ने परमेश्वर को वाच्यरूप में निर्दिष्ट नहीं किया। अतएव उनका भगवान् में जो विश्वासातिरेक है, वह अन्य दर्शनकारों की अपेक्षा अत्यधिक महान् है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

महर्षि का भक्तिभरित हृदय सम्भवतः इस आशङ्का से काँप उठा कि यदि हम श्रद्धेय और समर्चनीयचरण भगवान् को वाच्यरूप से निर्दिष्ट कर देंगे, तो वे वाच्यार्थभूत यागादि के समकक्ष हो जायेंगे और इस प्रकार उनकी महती अवधीरणा अर्थात् तिरस्कार होगा। अतः हम यह मानते हैं कि अपने दर्शन में परमेश्वर को वाच्यभूत धर्म से भी उच्च सिंहासन पर समासीन करने की भावना से ही महर्षि उन्हें व्यञ्जनावृत्ति से ही निर्दिष्ट करने के लिए विवश हुए। यही कारण है कि प्राचीन और अर्वाचीन छोटे-बड़े मीमांसाचार्य अपने-अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण द्वारा ईश्वर की स्तुति करते पाये जाते हैं। उनमें कुछ उत्तम मङ्गला-

चरण मूलनिबन्ध में उद्धृत हैं। मीमांसापरिभाषा, अर्थसंग्रह, मीमांसान्यायप्रकाश, जैमिनीयसूत्रवृत्ति, जैमिनीयन्यायमाला, शास्त्रदीपिका और श्लोकवार्तिक के इन मङ्गलाचरणों को पढ़ने पर ही साधारण व्यक्ति समझ सकता है कि इनके रचयिता सूर्यनारायण, वासुदेव, गोविन्द, श्रीविष्णु, श्रीशंकर आदि मूर्तियों के रूपों में परमेश्वर का स्पष्ट अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

यही कारण है कि मीमांसकराजहंस और समस्त-दर्शन-कानन-केशरी श्रीखण्ड देव ने 'भाट्टदीपिका' के देवताधिकरण में मीमांसादर्शन की अपनी भूमिका का अनुसरण करते हुए यह कहकर क्षमायाचना की है कि 'देवमूर्ति आदि का खण्डन करने के कारण अन्ततः मेरी वाणी तो दूषित हो ही गयी। अतः अब भगवत्स्मरण ही एकमात्र गति है।'

इतर दर्शनों में ईश्वर का स्पष्ट निर्देश

सप्तम भक्तिदर्शन तो पूरा-का-पूरा भगवन्निरूपण से भरा पड़ा है। अतः भक्तिदर्शन के ईश्वरसाधक कतिपय वाक्यों का उद्धृत करना निष्प्रयोजन ही है। न्याय, वैशेषिक, योग और वेदान्त के कुछ वचन यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

'ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।'

(न्या० द० ४.१.१९)

इस सूत्र का भाष्य करते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि यतः सांसारिक पुरुष चाहते हुए भी अपने इच्छित फल को निश्चितरूप में नहीं प्राप्त करता, अतः अनुमान किया जाता है कि पुरुष को अपने कर्म का फल प्राप्त होना उसके अधीन नहीं है। वह जिसके अधीन है, वह ईश्वर है। इसलिए ईश्वर कारण है।

संज्ञाकर्मत्वस्मद्विशिष्टानाम्। प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मणः।

(वैशे० सू० २.१.१८.१९)

इसकी व्याख्या करते हुए 'उपस्कार' में शंकर मिश्र का कथन है कि 'संज्ञा' का अर्थ है नाम और कर्म है पृथिव्यादि कार्य। ये दोनों हम लोगों से विशिष्ट ईश्वर, महर्षि आदि के अस्तित्व के साधक हैं। घट, पट आदि नाम रखना भी ईश्वरसंकेत के ही अधीन है। अर्थात् जो शब्द जिस अर्थ में संकेतित है, वह वहाँ शुद्ध ही है। इससे यह सिद्ध हो गया कि 'संज्ञा' ईश्वर के अस्तित्व का साधन है। इसी प्रकार 'कर्म' अर्थात् कार्य भी ईश्वर के अस्तित्व का साधक है। अनुमान स्वरूप यह है—'क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्।' अर्थात् जैसे घट में कार्यत्व होने से यह हम समझते हैं कि वह कुलाल के द्वारा बनाया गया है,

वैसे ही पृथिवी आदि भी कार्य होने से किसी कर्ता के प्रयत्न से ही उत्पन्न हैं। वह कर्ता ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई सम्भव नहीं है।

वैशेषिकदर्शन के भाष्यकार श्रीप्रशस्त पादाचार्य ने भी मुक्ति साधन तत्त्वज्ञान का निरूपण करते हुए कहा है कि और वह तत्त्वज्ञान ईश्वर की प्रेरणा से अभिव्यक्त धर्म से ही प्राप्त होता है। वे यह भी मानते हैं कि 'सृष्टि और प्रलय की हेतुभूत परमाणुओं में होनेवाली हलचल त्रिलोको के स्वामी ईश्वर को अलौकिक इच्छा का ही विलास है।'

पतञ्जलि के योगदर्शन का यह सूत्र तो सुप्रसिद्ध हो है—'क्लेश-कर्मविपाकाऽऽशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' (यो० द० १.२४) अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से असंस्पृष्ट विशिष्ट पुरुष ही ईश्वर है।

ब्रह्मसूत्रकार व्यासदेव ने भी कहा है कि—'फलमत उपपत्तेः।' (वे० द० ३.२.३८) अर्थात् जगदीश्वर के माध्यम से ही कर्म फलोत्पादक होता है, क्योंकि कोई भी अचेतन चेतन का आश्रय पाकर हो फलोत्पत्ति में समर्थ होता है। तात्पर्य यह है कि कर्मफल का प्रदाता जगदीश्वर ही है।

ईश्वरसाधक वेदमन्त्र

ईश्वर के एकमात्र वेदवेद्यत्व के साधन के उपक्रम में अभी तक विभिन्न दर्शनों के प्रकाश में वेद से अतिरिक्त किसी भी प्रमाण से उसकी अवेद्यता दिखलाने के पश्चात् अब कतिपय वेदमन्त्रों द्वारा उसकी वेदवेद्यता का निरूपण किया जा रहा है। इस संदर्भ में ऋग्वेद और कृष्ण-शुक्ल जुयर्वेद में पठित मन्त्र इस प्रकार है—

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यासीदत्पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश॥

(ऋ० १०.८१.१; तै० सं० ४.६.२.१; शु० यजु० १७.१७)

इस मन्त्र का सारार्थ यह है—जुह्वत्=प्रलयकाल में संहार करता हुआ, होता=अपनी आत्मा में जगद्रूप आहुति समर्पित करनेवाला, ऋषिः=अतीन्द्रियद्रष्टा, न्यासीदत्=सृष्टि के प्रारम्भ में एकाकी ही स्थित था।

इस मन्त्र का व्याख्यान करते हुए चान्द्रभाष्यकार लिखते हैं—द्रविणम्=धन, उससे उपलक्षित प्रपञ्चगत समस्त भोगों का, कुर्वाणः=जीवों के कर्मफलों के भोगार्थ सर्जन करता हुआ, प्रथमच्छत्=अपने पारमार्थिक स्वरूप को आच्छादित करते हुए, अवरान्=अपने द्वारा सृष्ट विविध प्राणियों के अन्तःकरण प्रदेशों में आविवेश=प्रवेश करता है।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥

(ऋ० १०.८१.२; तै० सं० ४.६.२.४; शु० यजु० १७.१८)

सायणाचार्य इसका भाष्य करते हुए लिखते हैं कि पूर्वमन्त्र में जगत् के प्रलयकाल में सबका संहार कर पश्चात् सृष्टि करने की इच्छा होने पर उसने सब कुछ रचा और उसमें प्रविष्ट हो गया। इस मन्त्र में यह आक्षेप किया जाता है कि उस अद्वितीय तत्त्व का कोई अधिष्ठान और जगत् उत्पन्न करने के उपादान कारणादि सम्भव न होने से सृष्टि की रचना ही अनुपपन्न हो जायेगी। संसार में देखा जाता है कि घट बनाने का इच्छुक कुम्भकार गृहादि किसी स्थान पर बैठकर मृत्तिकारूप घटारम्भक द्रव्य से चक्रादिरूप उपकरणों से घट बनाता है। वैसे ही ईश्वर जब जगत् के आश्रय द्युलोक और भूलोक का निर्माण करेगा तब, किंस्वित् अधिष्ठानम् आसीत्=अधिष्ठान या उस निर्माण का आश्रयस्थान क्या था? उसका नाम क्या था? अर्थात् कुछ भी नहीं था। इसी तरह उन द्युलोक और भूलोक का, आरम्भणं कतमत् स्वित्=मृत्तिकावद् उपादानकारण कौन-सा था? वह भी कोई नहीं। यद्यपि हो सकता है उपादानकारण तो, कथा आसीत्=कैसा, किंरूप था? होगा भी तो सत्रूप होगा या असत्रूप। किन्तु दोनों सम्भव नहीं, क्योंकि वह सत् हो तो अद्वैतता का भंग होने लगेगा। असत् हो तो असत् सद्रूप द्युलोक और भूलोक का उपादानकारण हो ही नहीं सकता। 'नान्यत् किञ्चन मिषत्' ऐसी ऐतरेयश्रुति भी यही बताती है। यतः=जिस अधिष्ठान और उपादानकारण से, विश्वचक्षाः=सर्वद्रष्टा, विश्वकर्मा=परमेश्वर, भूमिं जनयन्=पृथिवी को रचता हुआ देखा जाता है, वैसे ही उसने महिना=अपने स्वयं के महत्त्व से द्याम्=द्युलोक को भी, विऔर्णोत् (व्यौर्णोत्)=विवृत किया, रचा।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

(ऋ० १०.८१.३; अथर्व० १३.२.२६, यजुः० १७. १९; तै० सं० ४.६, २.४; तै० आ० १०.१.३)

इस मन्त्र का व्याख्यान करते हुए चान्द्रभाष्यकार लिखते हैं कि—पूर्वमन्त्र से जगत् के सर्जन के विषय में आक्षेप करके इस मन्त्र द्वारा उसका समाधान करते हैं। विश्वतश्चक्षुः=सर्वत्र व्याप्तलोचन अर्थात् जिसके नेत्र सर्वत्र व्याप्त हैं। विश्वतोमुखः=सर्वत्र व्याप्त मुखवाला; विश्वतोबाहुः=सर्वत्र व्याप्त बाहुवाला और विश्वतस्पात्=सर्वत्र व्याप्त चरणोंवाला, सः=परमेश्वर, बाहुभ्यां सं धमति=अपनी

भुजाओं से सम्यक्रूप से व्याप्त हो जाता है। द्याम्=द्युलोक को। पतत्रैः=गमनशील पादों से व्याप्त करता है। इस प्रकार वह भुजाओं से भूमि को और पादों से द्युलोक को व्याप्त करता है। वह द्यावाभूमी=द्युलोक और भूलोक को, जनयन्=उत्पन्न करता हुआ, देवः = द्योतमान, एकः = अद्वितीय, असहाय अर्थात् किसी भी सहायता का अपेक्षी नहीं है! एक, असहाय ही परमात्मा सृष्टि करता है। इसे बादरायण वेदव्यास भी 'उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि' (ब्र० सू० २.१.२४) और 'देवादिवदपि लोके' (२.१.१५) इन सूत्रों से समर्थित करते हैं, अर्थात् असहाय दूध से दहीं बनता है, इसी तरह शास्त्रों में सुना जाता है कि देवादिकों से बिना किसी साधन के केवल संकल्प द्वारा ही जगत् के विविध पदार्थों की सृष्टि हुई है।

शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता के भाष्यकार श्रीमहीधर अन्य प्रकार से मन्त्रार्थ प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि—बाहुभ्याम्=बाहुस्थानीय धर्म और अधर्म द्वारा, धमति=संयोग को प्राप्त करता है और पतत्रैः=पतनशील अर्थात् अनित्य पञ्चमहाभूतों द्वारा, संयोग प्राप्त करता है, अर्थात् धर्माधर्मरूप बाहुओं द्वारा निर्मित पञ्चमहाभूतरूप उपादानकारणों द्वारा अन्य साधनों से निरपेक्ष हो परमेश्वर सृष्टि-रचना करता है। यहाँ गमनार्थक 'धमति'को णिजन्त मानने पर यह अर्थ निकलता है कि वह परमेश्वर धर्माधर्म और पञ्चमहाभूतों से जीवों को संगत कर देता है।

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥

(ऋ० १०.८१.४, वा० यजु० १७.२०, तै० सं० ४.६.२.५, तै० ब्रा० २.८.९.६)

इस मन्त्र का व्याख्यान करते हुए वाजसनेयी यजुःसंहिता के भाष्यकार श्री उव्वट लिखते हैं कि यह मन्त्र भी प्रश्नरूप है। वह कौन-सा वन है और कौन-सा वह वृक्ष है, जिससे द्यावा-भूमि का तक्षण किया गया? 'निष्टतक्षुः' में बहुवचन आदरार्थक है। जिस वृक्ष या वन से तक्षण कर द्युलोक और भूलोक गढ़ा गया? अर्थात् यदि कोई वृक्ष या वन हो तभी यह पूछा जा सकता है कि किस वृक्ष या वन से तक्षण कर ये गढ़े गये? कोई भी तक्षक या बढ़ई किसी वृक्ष से लकड़ी गढ़कर ही चमसादि पात्र बनाता देखा गया है! किन्तु यहाँ तो आत्मा ही मकड़ी की तरह जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण है। स्पष्ट है कि मकड़ी अपने चैतन्य रूप से स्वयं द्वारा बुने जाने वाले जाल का निमित्त और अपनी लाला (लार) के रूप से उपादानकारण होती है। वही स्थिति यहाँ भी है।

विस्मित ऋषि दूसरा प्रश्न करता है—मनीषिणः=हे मेधावियो! यत्=यदि, अध्यतिष्ठत्=ऊपर की ओर अधिष्ठित है तो क्या, भुवनानि=भूतमात्र को,

धारयन्=द्यावापृथिवी द्वारा धारण करता हुआ अधिष्ठित है ? यह, मनसा=अपने मन से, पृच्छ=पूछिए !

सायणाचार्य तो 'निष्टतक्षुः' के बहुवचन का एक वचन में व्यत्यय मानकर व्याख्या करते हैं कि परमेश्वर द्वारा प्रेरित जगत् के स्रष्टा ने जिस वन से जिस वृक्ष को लेकर द्यावा पृथिवी का निष्पादन किया, वह कौन-सा था ! इसी प्रकार वह कैसा, कितना महान् वृक्ष था ? इत्यादि ।

ऋग्वेद दशममण्डल के इस ८१वें सूक्त में और भी तीन मन्त्र हैं, जो भगवत्परक हैं किन्तु विस्तारभय से उनका यहाँ उल्लेख-विवेचन नहीं किया जा रहा है ।

वेदमाता गायत्री भी परमेश्वर का गौरव–गान करती है, देखिये—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ः
धियो यो नः प्र चोदयात् ॥

(ऋ० ३.६२.१०; यजु० ३.३५; २२.९;३७.२; ३६.३; तै० सं० १.५.६.४; ४.१.११.१; तै० आ० १.११.२; सा० प्र० अर्ध ३; सू० १०, म० १)

श्री सायणाचार्य इसका भाष्य करते हुए लिखते हैं—जो सवितादेव हमारे कर्मों या धर्मादिविषयक बुद्धि का प्रेरित करते हैं, सभी श्रुतियों में प्रसिद्ध उन द्योतमान, सर्वान्तर्यामी होने के कारण प्रेरक, जगत्स्रष्टा परमेश्वर का आत्मभूत, सभी के द्वारा उपास्य, ज्ञेय होने के कारण भलीभाँति सेवनीय और अविद्या तथा उसके कार्य को भून डालने में समर्थ जो यह 'सोऽहम्' भाव है, उसका हम लोग ध्यान करें ।

अथवा—तेजोरूप उस सवितादेव का हम ध्यान करें, जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है। इस पक्ष में 'तत्' भर्ग का विशेषण है और 'यः' पद लिङ्ग-व्यत्ययद्वारा 'यत्' परक है ।

किंवा—जो सविता सूर्यनारायण कर्मों को प्रेरित करता है, उस प्रसविता द्योतमान सूर्य का सभी द्वारा दृश्यमान होने से प्रसिद्ध, सभी के द्वारा भलीभाँति सेवनीय तथा पापों के भर्जक तेजोमण्डल का ध्येयरूप में मन से ध्यान करें ।

अथवा—भर्ग का अर्थ है अन्न। जो सवितादेव बुद्धि प्रेरता है, उसके प्रसाद से अन्नादिरूप फल हम धारण करें उसका आधार बनें ।

पुरुषसूक्त ऋग्वेद (१०.९०) और अथर्ववेद (१९.६) में सोलह ऋचाओं का है, सामवेद (आरण्य काण्ड, ४ खण्ड) पाँच ऋचाओं का है, तो शुक्लयजुर्वेद (३१) में बाईस ऋचाओं का है। 'अस्य वामीय' सूक्त पचास ऋचाओं का है (ऋ० १०.१६४)। 'स जनीय' सूक्त पन्द्रह ऋचाओंवाला है, जिसको प्रत्येक ऋचा के अन्तिम भाग में 'स जनास इन्द्रः' यह वाक्य आता है। (ऋ० २.१२)। नासदीय सूक्त (ऋ० १०.१२९) सात ऋचाओंवाला है। 'महद्देवीय' सूक्त (ऋ० ३.१५) बाईस ऋचाओंवाला है, जिसकी प्रत्येक ऋचा के अन्त में 'महद्देवानामसुरत्वमेकम्' यह चतुर्थ पाद में आता है। अन्य भी कई सूक्त (ऋ० १.१५४–५६; ४.४० १०.८२; १०.१८६) पाये जाते हैं। 'ईश्वर' और 'इन्द्र' शब्द ऐश्वर्यार्थक धातु से निष्पन्न होने से दोनों का समान अर्थ है। अतः इन उपर्युक्त मन्त्रों में पठित 'इन्द्र' शब्द ईश्वरार्थक ही मानना चाहिए।

सामवेदसंहिता के ऐन्द्रपर्व के २, ३, ४ ये तीन अध्याय, अथर्ववेद के १३, १५ और १६ तीनों सम्पूर्ण काण्ड, जो क्रमशः चार, अठारह और नौ सूक्तोंवाले हैं, उनके कुल २१ सूक्त, द्वादश, चतुर्दश, सप्तदश, अष्टादश और विंश काण्ड को छोड़कर शेष अन्य काण्डों के कुल ७१ सूक्त परमेश्वरपरक ही हैं।

यथा—

काण्डम्	सूक्त संख्या	सूक्तयोगः
१.	१३, २०, ३२	३
२.	१, २, ११, १६, ३४	५
३.	१६	१
४.	१, २, ११, १४, १६, २०	६
५.	१, २, ६, ९, १०, ११	६
६.	१, २, ३१, ३३–३६, ८०, १११, १२३	१०
७.	१–५, ९, १४, १५, १७, २१, २२, २४–२६, ४०, ४१, ४४, ६३, ६७, ७१, ८३, ८७, १०४, १०५, १०६	२६
८.	९	१
९.	९, १०	२
१०.	२, ७, ८	३
११.	७, ८	२
१९.	३, ५, ६, ४३, ५१, ७२	६
		योग ७१

किं बहुना, 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋ० १.१६४.४६) 'रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम्' (ऋ० ३, ५३, ८) यो देवानां नामधा एक एव' (ऋ० १०.८२.३), 'यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे' (ऋ० १०.८२.६) 'सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति' (१०.११४.५) इत्यादि मंत्रवर्णों से परमेश्वर ही इन्द्रादि, नाम धारण करता है, वज्रहस्त, पाशहस्त, दण्ड-हस्तादि विविध विग्रह ग्रहण करता है। अतः १६० इन्द्रादि देवों की स्तुति करने-वाले शाकल, माध्यन्दिन, कौथुम और शौनकीय चतुर्वेदीय चार संहिताओं के पुनरुक्तवर्जं १८२५४ मन्त्र एकमात्र उसी जगन्नियन्ता परमेश्वर के प्रतिपादक माने जा सकते हैं, जो सर्वज्ञत्वादि वैशिष्ट्य से सम्पन्न है, जो निरवधिक, अतिशय कल्याणमय गुणगणों का सागर है, जो निखिल हेय वस्तुओं का साक्षात् शत्रु है, श्रुतिनीति संप्लव-जल से प्रक्षालन करने के कारण के जो प्रस्तूयमान समस्त शंकारूपी पंक से रहित है, अतएव सर्वथा निर्मल है।

इसीलिए कठश्रुति कहती है कि 'सभी वेद जिसके परम पद का वर्णन करते हैं।' गीता में भी भगवान् स्वयं कहते हैं—'सभी वेदों द्वारा मैं ही वेद्य हूँ।'

इस प्रकार ईश्वर के साधक समस्त अनुमान निरस्त हो गये और परमेश्वर की एकमात्र वेदवेद्यता सिद्ध हो गयी। वेद यानी श्रुति और अवेद यानी स्मृतियों द्वारा क्रमशः यह परमेश्वर सुना जाता और स्मरण किया जाता है। ईश्वर के साधक अनुमान हेत्वाभास होने से प्रामाणिक नहीं हैं। अतः विद्वानों का कर्तव्य है कि वे प्रभु की एकमात्र वेदवेद्यता अपने मन में स्थिररूप से बैठा लें।

स्वयं भगवान् वेद ही परमेश्वर की प्रामाणिकता एकमात्र वेद से वेद्य है, ऐसा कहते हैं। देखिये—

यस्मात् कोशादुदभराम वेदम्।

(अथर्व० १९.७२.१)

उपसंहार

प्रस्तुत विषय के उपसंहार में निम्नलिखित श्रुतिवचन बड़ा ही मार्मिक सिद्ध होगा—

'तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत् परमं पदम्।'

(ऋ० १.२२.२१)

विष्णोः यत् परमं पदम्=भगवान् विष्णु का जो परमपद मोक्ष है, तत्=उसे, विप्रासः=मेधावी, विपन्यवः=भक्तिमान् स्तोतागण, जागृवांसः=अज्ञाननिद्रा से प्रबुद्ध अर्थात् भगवद्दर्शन से अविद्या-निवृत्तिपूर्वक जो तत्त्वदर्शी हो गये हैं वे, समिन्धते=भलीभाँति दीपित, सुशोभित करते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति और ज्ञान के समुच्चय से ही मुक्तिलाभ होता है, जो उदासीन सम्प्रदाय का प्रमुखतम समन्वय सिद्धान्त है।

नानानिबन्धसिन्धोर्यद् रत्नं रत्नसमाहृतम्।
उपहारीकृतं तेन प्रीयतां भगवन्मुनिः॥

अर्थात् नाना शास्त्र-निबन्धरूप सागर का मन्थन कर प्रयत्नपूर्वक जो यह रत्न प्राप्त किया गया, उसे उपहाररूप में समर्पित किया जा रहा है, इससे मुनिस्वरूप भगवान् प्रसन्न हों।

परिशिष्ट—९

गुरुतत्त्वावबोधिनी व्याख्या*

गुरुं गङ्गेश्वरं नौमि वेदविज्ञानदायकम् ।
वेदज्योतिप्रकाशाय संभूतमपरं रविम् ॥
'अग्निमीळे' सुमंत्रस्य गुरुतत्त्वावबोधिनी ।
व्याख्या विधास्यते चात्र स्वात्मनस्तुष्टिहेतवे ॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ —ऋ० वे० १.१.१

गुरुतत्त्वावबोधिनी—**अग्निं** गुरुवर्यं **ईळे** वन्दे स्तौमि इत्यर्थः । अयमभिप्रायः गुरुरेवाग्निः । अग्निर्यथा काष्ठं प्रविष्टः सर्वं दहति तद्वद् गुरुरपि संसारिणां शिष्याणां निःशेषदुरितानि उपदेशदानेन दहति । अग्निशब्दोऽपि 'गुरुः' इत्येवार्थं व्युत्पत्या दर्शयति । तद् यथा—अग्रे गच्छतीति अग्निः । गुरुरपि सदाग्रे गच्छति । अग्रणीर्वा भवतीति अग्निः । गुरुः सच्छिष्याणामुन्नत्यर्थे सदैवाग्रणी भवति, बद्धपरिकरो भवतीत्यर्थः । यद्वा अग्निः अक्नोपनो भवति इत्यपि व्याख्या । अक्नोपनो भवतीत्यनेन एतदुक्तं भवति यत् अग्निः सर्वं स्नेहमयं हविर्जातं भस्मीकरोति । हविर्घृतमिश्रितत्वात् स्नेहयुक्तम् चिक्कणं इति लोके प्रसिद्धम् । गुरुरपि शिष्याणां सांसारिकेषु विषयेषु प्रवर्तमानां स्नेहवृत्तिं सम्यक् ज्ञानदानेन अग्निरिव भस्मपुञ्जमात्रावशेषं करोति । दाहप्रकाशात्मकोऽग्निरिति अन्या व्युत्पत्तिरग्निशब्दस्य । गुरुः शिष्यस्य संसारबीजं दाहयति ज्ञानप्रकाशप्रदानेन च शिष्यवर्गाणाम् अविद्याजनितमोहमायाममत्वादिभिः निमीलितानि नेत्राणि उन्मीलयति । तथा चोक्तम्—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥ इति ।

तस्मादग्निरेव गुरुरिति प्रतिपादितम् । तं **अग्निं** गुरुवर्यं **ईळे** स्तौमि वन्दे पूजयामीत्यर्थः ।

---

* पू. गुरुदेव की वेदप्रतिपादन की अनूठी शैली का अनुकरण करके उनके पुत्रतुल्य डॉ. गौतम पटेल ने ऋग्वेद के प्रथम सूक्त की संस्कृत में व्याख्या लिखी है और उसमें सद्गुरुदेव के चरित्र का दर्शन करवाया है । आशा है सरल संस्कृत में लिखी यह व्याख्या सबको आनन्दप्रद होगी ।

—लेखिका

कीदृशं तम् ? **पुरोहितम्**। पुरः निहितं स्थापितम्। सच्छिष्याः सदा सर्वदा मनसि गुरुचरणान् स्थापयन्ति। अन्यच्च गुरोः प्रतिकृतिं पूजायां संनिधाय पूजयन्ति। तस्मात् पुरोहितमिति पदं सद्गुरुमेव लक्ष्यीकरोति। पुनः कीदृशम् ? **यज्ञस्य देवम्** ऋग्वेदे पुरुषसूक्ते, 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः' इत्यादि श्लोके गीतायाञ्च अस्य जगतः यज्ञत्वं सुस्पष्टमेव। तस्मात् **यज्ञस्य** इत्यनेन **अस्य** दृश्यमानजगतः संसारस्य विश्वस्य वा इति ज्ञेयम्। **देवम्** दीप्यमानम्। गुरुचरणाः न केवले भारते वर्षे किन्तु भारतेतरेषु भिन्न भिन्न देशेषु अधुनापि दीव्यन्ति प्रकाशन्ते। अनन्तश्रीविभूषिताः वेदविद्यापारंगताः गुरुवर्याः पारावारपरंपरामाकाशयानेन तीर्त्वा विविधेषु देशविदेशेषु 'भगवतोवेदस्य' स्थापनां कृतवन्तः करिष्यन्ति च इति सुविदितं सहृदयानां सज्जनानां सच्छिष्याणाञ्च। तस्मादस्माकं गुरुवर्यं 'यज्ञस्य विश्वस्य देवम्' इति वर्णयति श्रुतिः वेदारम्भे। देवः कस्मात् द्योतनात् दीपनात् वा इति उक्तं यास्काचार्यैः वेदव्याख्या-विशारदैः। गुरुचरणा अपि सदैव दीव्यन्ति प्रकाशन्ते सदैव द्योतनशीलत्वात्।

अन्यद्वा यज्ञ इति धर्मनाम धर्मपरत्वात्। **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्** (मनु० २) तस्मात् यज्ञस्य वेदस्य। देवम् दीव्यति क्रीडति इति देवः। अनया व्युत्पत्त्या गुरुवर्य-मपि **'यज्ञस्य देवम्'** इति प्रस्थापयितुं पारयन्ति मनीषिणः। वेदविद्याव्याख्याने सदैव गुरुचरणानां मतिर्दीव्यति क्रीडति। 'अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी'वत् वेदविद्या-वनितापि विविधार्थभङ्ग्या गुरुवर्यवदने नरीनृत्यति। किं बहुना ? वेदमन्त्राणां नवनवोन्मेषशालिन्या प्रतिभया नित्यनूतनाः चमत्कारपूर्णाः अर्थाः श्रीगुरुमुखात् श्रावं श्रावं तस्माच्च विनिर्गतानां ज्ञानगङ्गाप्रवाहपूर्णां श्रवणपुटपेयां वेदवाणीं च पायं पायं, वेदविद्योत्पत्तेः प्रभवस्थानं आननपंकजं च ध्यायं ध्यायं, कृपापरागप्रसारितानां चरण-सरोजानां च पुरो धावं धावं मोमोत्ति मे मनः मोदन्ते च मनांसि महानुभावानाम्।

ऋत्विजम् ऋतु ऋतुषु यजनशीलत्वात्। वर्षारम्भे गुरुपूर्णिमायां शरदि दीपा-वल्युत्सवे वसन्ते च होलिकामध्ये विविधर्तुषु शिष्यगणाः गुरुचरणान् भक्त्या उपाय-नादिभिः विशेषतः पूजयन्ति इति प्रसिद्धम्। ऋतु ऋतुषु यजन्ति इति अनेन प्रतिदिनं न पूजयन्तीति चेत्, न प्रतिदिनपूजनन्तु नित्यकर्मतापन्नत्वात् भवत्येव। अत्र तु विशेषाभिधित्सया ऋत्विजं सर्वर्तुषु यजनशीलत्वमित्युक्तम्। अनेन प्रतिदिनपूजायाः निषेधो नास्ति, प्रत्युत विशेषोत्सवनिमित्ता या पूजा तस्याः सविशेषतया प्रतिपादन-मेवात्र विवक्षितम्।

होतारम्—आह्वातारम्। यथा मधुराधिपतिः मधुसूदनः मधुरमुरलीनिनादेन गोपिका गोपबालांश्चाह्वयति तद्वत् माधुर्यस्य शिरोमणिभूतस्य मधुसूदनस्य मधुमधुरान् चरितान् वेदमंत्रेषु प्रतिपादयन् मानमहतामग्रेसराः गुरुवर्याः शिष्यषट्पदान् मधुररसा-स्वादनाय सदैवाह्वयन्ति। तस्माद्गुरुमपि होतारमिति कथयति प्रतिपादयति च श्रुतिः।

रत्नधातमम्—रत्नानामतिशयेनधारयितारम्। विशेषतश्च विचारणीयमत्रास्ति विदूषाम्। उक्तं च कैश्चित् विपश्चिद्भिः—

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते॥ इति।

अत्र जलं रत्नं, अन्नं महत्तरं रत्नं जलापेक्षया जीवनाय सविशेषोपयुक्तत्वात्। सुभाषितन्तु महत्तमं रत्नं सर्वेषां मध्ये अतीव गौरववत्त्वात्। पूर्वोक्तौ द्वौ पदार्थौ इह लोके जीवनायातीवावश्यकौ। तृतीयं सुभाषितमयं रत्नं इह लोके सुखेन जीवनाय परस्मिँश्च उत्तमोत्तमगत्युपलब्धयेऽपि उपयुक्तं तस्मात् रत्नतमं मतम्।

ऋग्वेदारम्भे श्री गुरुचरणार्थं **रत्नधातमम्** इति साभिप्रायकथनम्। सुभाषितमयं सर्वोत्तमं रत्नं शिष्यवृन्दहिताय सदैव कण्ठे धारयति अत एव गुरुवर्यमपि 'रत्नधातमम्' इति पदेन संभावयति श्रुति भगवती। तमप् ग्रहणम् किम्? उच्यते, सामान्यास्तु कण्ठें रत्नं धारयित्वा आत्मानमलंकुर्वन्ति। कदाचिदन्येषां मनांसि ईर्ष्याभावेन दूषयन्ति। किन्तु गुरुवर्याः वेदोदधि-विलोडनोत्थानि सुभाषितमयानि रत्नानि न केवलं कण्ठे धारयन्ति परन्तु तेषामुपदेशदानेन सच्छिष्याणां हृदयान्यानन्देन परिपूरयन्ति, तेषां कृते मोक्षमार्गस्य द्वाराण्यपि उद्घाटयन्ति इति गुरुवर्याणां वैशिष्ट्याभिधित्सया महत्त्वं वा प्रतिपादनाय 'रत्नधातमम्' इति पदे तमप् ग्रहणं दरीदृश्यते।

अस्माकं गुरुचरणैः **वेदोपदेशचंद्रिका'**ऽभिधाने ग्रन्थविशेषे श्रुतिसागर-सुमंथन-समुद्भूतानां रत्नानां स-रस-कथा-प्रयोगपूर्विका मञ्जूषा कृता। तेषां पठनमात्रेण कण्ठस्थितेन एकेनापि रत्नविशेषेणास्मिँल्लोके ब्रह्मानन्दसहोदरमानन्दमादायान्ते च ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति गुरुचरणसरोजकृपापरागलीनाः मत्तमनोमिलीन्दाः मादृशाः मतिविभवविहीनाः शिष्याः इति॥१॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति॥२॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी-अग्निः-गुरुः **पूर्वेभिः ऋषिभिः** प्राचीनैः मन्त्रद्रष्टृभिः साक्षात्कृतधर्मिभिः ऋषिभिः **ईड्यः** स्तुत्यः। **उत** उतशब्दो यद्यपि विकल्पार्थे प्रसिद्धस्तथापि निपातत्वेनानेकार्थत्वादौचित्येनात्र समुच्चयार्थो द्रष्टव्यः। तथा **नूतनैः**-इदानींतनैराधुनिकैर्वा ऋषिभिरीड्यः स गुरुवर्यः **देवान्** देवगणान् द्योतमानविद्वद्वर्गान् **इह स्वाध्याययज्ञे आ वक्षति**-अत्र आवहत्वित्यर्थं। 'स्वाध्यायज्ञानयज्ञश्च' इति गीतावचनेन स्वाध्यायोऽपि यज्ञः तत्र स्वाध्याययज्ञे सततमुद्यमशीलाः गुरुवर्याः देवान् द्योतनशीलान् विविधशाखाप्रशाखास्वाध्यायिनः छात्रान् शास्त्रज्ञान् वा पण्डितप्रवरान् सदैव स्वसमीपे आह्वयन्तीति भावः॥२॥

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ॥३॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी—अग्निना गुरुणा **रयिं** धनम् **अश्नवत्** प्राप्नोति। सुशिष्याः गुरुकृपाकटाक्षमात्रेण स्वकर्मोपात्तां निजनिर्धनतां सहसैवावधूय धनान्नादि-वैभवसंपत्त्या संपूर्णा भवन्तीति बहुभिरनुभूतम्। रयिरिति वा ज्ञाननाम। रयिमित्यनेन ज्ञानं ज्ञेयम्। **कथम्**। उच्यते रातेर्दानकर्मणः रयिशब्दोत्पत्तिः, दीयते हि तत् रयिम्। ज्ञानं तु सदैव दानाय संसृष्टं भगवता। एतत्तु—

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ॥

इति सुभाषिते स्फुटमेवोक्तम्। भारत्याः सरस्वत्याः कोशः ज्ञानरूपः। तत्तु अन्यस्मात् सर्वप्रकारकाद्धनाद्वैशिष्ट्यमावहति। कृपापरागप्रसारितगुरुचरणकमलोपासना-मात्रेण तन्मुखविनिर्गतशब्दार्थसमृद्धया वा शिष्या अप्राप्तपूर्वं ज्ञानात्मकं रयिं प्राप्तुं समर्थाः। कीदृशं रयिम्। **पोषम् एव दिवे दिवे**—प्रतिदिनं पुष्यमाणं, वृद्धिमाप्नुवन्तम्। ज्ञानरूपं रयिं तु प्रतिदिनं पोषमेवाप्नोति। पुष्णातीत्यर्थः। सर्वं चान्यद्धनं व्ययेन विनाशं क्षीणतां वा गच्छति किन्तु **'व्यये कृते वर्धत एव नित्यम्'** इत्येतादृशं ज्ञानरूपं धनं तु गुरुमुखादेव संभवति। तत्तु धनं **यशसम्** यशस्करम्। ज्ञानमयं धनं लब्ध्वा शशीपुण्डरीकहिमनिकरनिभां धवलां कीर्तिं प्राप्तुं पुरुषाः समर्थाः भवन्ति। पुनः कीदृशं ज्ञानरूपं धनम्, **वीरवत्तमम्** अतिशयेन शौर्यभावसंपन्नम्। ज्ञानाग्निना ये नित्यप्रदीप्ताः नराः तान् च नमयितुं नान्ये समर्थाः। लेखिनी तु करवालादपि बलवत्तरा दुर्धर्षा चेति सर्वैरपि ज्ञायते। ज्ञानधनेन संयुक्ताः नराः वीर्यशालिनो भवन्तीति भावः ॥३॥

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति ॥४॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी—प्रकारान्तरेण गुरुं स्तौति, हे—**अग्ने** हे गुरो! **यं अध्वरं हिंसारहितं यज्ञम्** स्वाध्याययज्ञमित्यर्थः। अत्र भौतिके यज्ञे हिंसायाः कदाचित् संभवः किन्तु स्वाध्याययज्ञे तु तस्याः स्वप्नेऽपि शंका न संजायते। अतः स्वाध्याय-यज्ञं **अध्वरं** हिंसारहितमिति प्रतिपादयति श्रुतिः। **विश्वतः परिभूरसि** सर्वासु दिक्षु त्वं व्याप्य तिष्ठसि। सः यज्ञः **इत्** निश्चयेन **देवेषु** विदुषां मध्ये **गच्छति** प्राप्नोति। विदुषां प्रियो वा भवति। यत् किञ्चिदपि सोपज्ञज्ञानप्रभावेण गुरुवर्यः स्वाध्याययज्ञे प्रतिपादयति तत्सर्वं शिष्यमुखेभ्योऽन्यत्र वादविवादेन, शास्त्रार्थविचारेणेन उपदेशेन च सर्वासु दिक्षु प्रसरतीत्यर्थः। गुरुणा यत्प्रतिपादितं तदुरसि निधाय सुशिष्याः तमेवार्थं सर्वत्र विद्वद्सभासु प्रसारयन्तीति भावः ॥४॥

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरा गमत् ॥५॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी—पुनरपि गुरुगुणगरिमाणं गायति । **अग्निः** गुरुः **होता** स्वाध्याययज्ञे सदा नवनवोन्मेषशालिन्या प्रतिभया नित्यनूतनान् सात्वतपरार्थान् गुरुवर्यः जुहोति उपदिशति संपादयति वा । अतोऽत्र होता इति सार्थकं विशेषणम् । सः **कविक्रतुः** कविशब्दोऽत्र क्रान्तवचनो न तु मेधाविनामः । क्रतुः प्रज्ञानस्य कर्मणो वा नाम । ततः क्रान्तप्रज्ञः क्रान्तकर्मा वा । अस्माकं गुरुवराः क्रान्तदर्शिनः इति बहुभिरनुभूतं सत्यम् । पुनः कीदृशः **सत्यः** अनृतरहितः । असत्येनास्यास्यं स्वप्नेऽपि न संस्पृश्यते । **चित्रश्रवस्तमः** श्रूयते इति श्रवः कीर्तिः, चित्रः विचित्रः विविधरूपं श्रवः कीर्तिर्यस्य सः, चित्रश्रवः, अतिशयेन चित्रश्रवश्चित्रश्रवस्तमः । तमप्ग्रहणं किम् । अन्यस्मात्सामान्यजन्तुजाताद्गुरुवर्यस्य यशो विशेषेण द्योतत इति प्रख्यापयितुमत्र तमप्ग्रहणं कृतम् । स **देवः** द्योतमानः गुरुवरः अन्यैः तत्सदृशैः **देवेभिः** विद्वद्भिः **आगमत्** आगच्छति । सदैव गुरुवर्याः विद्वद्मण्डलीमालाविभूषिता विश्वस्मिन् प्रचरन्तीति सुप्रसिद्धम् ।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥६॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी—गुरोः शिष्यं प्रति भद्रां सत्यां च करुणां प्रदर्शयति । **अङ्ग** इत्यभिमुखीकरणार्थो निपातः । **अङ्ग अग्ने** हे गुरो ! त्वं **दाशुषे** सेवादिभिर्गुरुं प्रीणयते सुशिष्याय दक्षिणारूपेण धनधान्यादिकं च दत्त्वा गुरुमर्चमानाय गृहस्थशिष्य-वर्गाय **यत् भद्रम्** वित्तगृहप्रजापशुरूपं कल्याणं **त्वं करिष्यसि तत् तव इत्** तवैव । सुखहितुरिति भावः । भद्रशब्दार्थे शाट्यायनिनः समामनन्ति, 'यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद्भद्रं गृहा भद्रं प्रजा भद्रं पशवो भद्रम्' इति । गुरुकृपया शिष्याः वित्तगृह-प्रजापशुरूपं भद्रं प्राप्तुं समर्थाः । हे **अङ्गिर** ! हे अग्नि ! हे गुरो ! **तव एतत्** एतादृशं कृपारूपं कार्यं **सत्यम्** न कदापि विफलतां याति, न चात्र विसंवादस्या-वकाशोऽस्ति ॥६॥

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥७॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी—एतादृशं गुरुं शिष्याः प्रतिदिनं उपगच्छन्तीति दर्शयति । हे **अग्ने** ! हे गुरो ! **वयम्** तव शिष्याः **दिवे दिवे** प्रतिदिनं **दोषावस्तः** रात्रा-वहनि च **धिया** बुद्धया स्तुत्या वा **नमः भरन्तः** नमस्कारं कुर्वन्तः **उप** समीपे **त्वा एमसि** त्वामागच्छामः । सच्छिष्या दिवा वा रात्रौ वा करुणावरुणालयस्य गुरोरनुकम्पामधिगन्तुं तमेव उपगच्छन्तीति भावः ।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।
वर्धमानं स्वे दमे ॥८॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी—पूर्वमन्त्रे त्वामुपैम इति गुरुमुद्दिश्योक्तम् । कीदृशं गुरुमित्यत्र कथयति । **राजन्तम्** शोभमानम् कुत्र **अध्वराणाम्** स्वाध्याययज्ञानां मध्ये इति शेषः । गुरुः स्वाध्याययज्ञे सदैव दीक्षितः सन् ज्ञानाग्निना राजति प्रकाशते । पुनः कीदृशम् । **ऋतस्य गोपाम्** ऋतस्य सत्यस्य रक्षकम् । पूर्वैर्ऋषिभिर्यत्सत्यं प्रतिपादितं तदेवोपदेशदानादिना गुरू रक्षति । पुनः कीदृशम् । **दीदिविम्**—द्योतमानं विशेषेण प्रकाशितम् । **स्वे दमे** आत्मनः गृहे आश्रमे वा **वर्धमानम्** ज्ञानोपार्जनेन वेदादिस्वाध्यायेन सदा वृद्धिमाप्नुवन्तं गुरुं वयं नमस्कारं संपादयन्तः उपगच्छाम इति पूर्वेण मन्त्रेण संबन्धः ।

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥९॥

गुरुतत्त्वावबोधिनी—गुरुं सूक्तान्ते स्वस्तये स्तौति । हे **अग्ने** ! हे गुरो ! **स** यथोक्तः त्वं **नः** अस्मदर्थं **सूपायनः** शोभनं उपायनं यस्य सः, शोभनप्राप्तियुक्तः भव । तथा **नः** अस्माकं **स्वस्तये** कल्याणाय विनाशराहित्यार्थं वा **सचस्व** सभवेतो भव । तत्रोभयत्र दृष्टान्तः—यथा **सूनवे** पुत्रार्थं **पिता** सुप्रापः प्रायेण सभवेतो भवति तद्वत् । पिता पुत्रार्थं सूपायनो भवति स्वस्तये च सचति अर्थात् ऐहिकीं भोगसमृद्धिं दत्त्वा पुत्रं पालयति धर्मज्ञानसंस्कारादिना पारलौकिकीं स्वस्तिमपि पुत्राय प्रयच्छति तद्वत् हे गुरो ! त्वमपि अस्मदर्थे अत्राभ्युदयायामुत्र च निःश्रेयसाधनाय सदा बद्धपरिकरो भवेति उपमायाः ध्वन्यार्थः ।

गुरुकृपाकटाक्षेण गुरुत्वावबोधिनी ।
स्वान्तःसुखाय रचिता मोदन्तां सुधियः सदा ॥ इति शम् ॥

—श्रीवाडीलालात्मजो गौतमः

परिशिष्ट–१०

गुरु गंगेश्वर जन्मशताब्दी महोत्सव

विस्तृत कार्यक्रम

स्थान—जगद्गुरु श्रीचन्द्राचार्य वेदनगर

क्रोस मैदान, होमगार्ड मैदान के पास

धोबी तालाब, **बम्बई**

उद्घाटन समारोह

बृहस्पतिवार दिनाङ्क ८ जनवरी, १९८१

प्रातःकाल ७–०० से १–००

(१) **पूजन एवं आरती**—भगवान् श्री लक्ष्मी नारायण का पूजन, श्री व्यासपीठ पूजन, श्री **भगवान् वेद** का पूजन, यजमानों द्वारा श्री **भगवान् वेद** एवं श्रीमद् भागवत का पूजन, आरती।

(२) **मंगलाचरण**—वैदिक विद्वानों द्वारा वेद मंत्रोच्चार।

(३) **स्वागत**—भक्तवर सेठ श्री गोविन्दराम सेउमल आसवानी।

(४) **परिचय**—सेठ श्री हरिलाल (बचूभाई) ड्रेसवाला, म. मं. स्वामी शंकरानन्दजी महाराज।

(५) **शताब्दी-महोत्सव का उद्घाटन**—परम पूज्या परमानन्द स्वरूपा **श्री श्रीआनन्दमयी माँ**।

(६) **चतुर्वेद पारायण उद्घाटन**—श्री लक्ष्मणकिलाधीश श्रद्धेय श्री सीता-रामशरणजी महाराज।

(७) **श्रीमद् भागवत पारायण उद्घाटन**—परम पूज्य श्री १०८ सीताराम ओंकारनाथजी ठाकुर।

(८) **पञ्चदेव महायज्ञ उद्घाटन**—आदरणीय श्री बाबूराव काले, मंत्रीश्री, बम्बई राज्य।

(९) **प्रासंगिक भाषण**—श्रीमती प्रमिला याज्ञिक, श्रीमती प्रमिला ताई चौहान, महन्त श्रीमद् कामेश्वर नाथजी, मठाधीश्वर पीठाधीश्वर अरविन्दकुल।

(१०) **मुख्य अतिथि विशेष का भाषण**—गुरुमंडल–पीठाधीश्वर म. मं. श्री स्वामी रामस्वरूपजी महाराज, वेदान्ताचार्य, अध्यक्ष, अखिल भारत साधुसमाज।

(११) **अध्यक्षीय प्रवचन**—महामंडलेश्वर परम पूज्य अनन्तश्रीविभूषित **श्री** स्वामी अखंडानन्दजी महाराज, सरस्वती।

(१२) **आशीर्वाद**—परमपूज्य चतुर्वेद भाष्यकार वेद दर्शनाचार्य अनन्त श्री विभूषित म. मं. सद्गुरुदेव **स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी महाराज।**

(१३) **आभार दर्शन**—म. मं. स्वामी **श्री गोविन्दानन्दजी महाराज,** वेदान्ताचार्य।

(१४) **श्रीमद् भागवत-पारायण**—प. पू. **डोंगरेजी महाराज।**

वेद संमेलन

सायंकाल ७–०० से ९–३०

(१) **भजन कीर्तन**—श्रीहरिओमशरणजी, रेडियो सिंगर।

(२) **स्वागत भाषण**—सेठ श्री **हरिभाई** (बचूभाई) ड्रेसवाला।

(३) **उद्घाटन**—म. मं. **श्री** स्वामी पूर्णानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य।

(४) **भाषण**—(१) आदरणीया **श्री वेद**भारतीजी (२) लक्ष्मणकिलाधीश श्रद्धेय **श्री** सीतारामशरणजी महाराज (३) श्रद्धेय मुनि **श्री** हरिमिलापीजी।

(५) **अध्यक्षीय भाषण**—महामंडलेश्वर श्री स्वामी रामस्वरूपजी महाराज, वेदान्ताचार्य।

(६) **आभार दर्शन**—म. मं. स्वामीश्री गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य।

शुक्रवार ९ जनवरी १९८१

प्रातः ७–०० से सायं ६–००

(१) **कीर्तन**—स्वामी श्री चेतन मुनिजी महाराज।

(२) **भाषण**—महामंडलेश्वर स्वामी श्री शंकरानन्दजी महाराज, हरिद्वार।

(३) **भाषण**—राष्ट्रभाषा पतंजलि म. मं. स्वामी **श्री** निगमानन्दजी **महाराज।**

(४) **अध्यक्षीय भाषण**—अनन्त **श्री** विभूषित म. मं. स्वामी श्री **अखंडानन्दजी** महाराज, सरस्वती।

(५) **श्रीमद् भागवत पारायण**—९–०० से १२–०० और ३–०० से ६–०० परम पूज्य श्री डोंगरेजी महाराज (यह क्रम प्रतिदिन चलता रहा)।

(६) **चतुर्वेद-पारायण**— ९–०० से १२–०० और ३–०० से ६०० विविध वेदपाठी विद्वानों द्वारा, (यह क्रम प्रतिदिन चलता रहा)।

भागवत-सम्मेलन

(१) **कीर्तन**—परम पूज्य देवेन्द्रविजयजी।

(२) **स्वागत**—सेठ श्री सदाजीवतलालजी।

(३ **उद्घाटन**—प. पू. श्री कृष्णशंकर शास्त्री, भागवत सम्राट्।

(४) **प्रवचन**—(१) योगीराज मनुवर्यजी महाराज, अहमदाबादवाले, (२) मुनिश्री हरि मिलापीजी महाराज, (३) प. पू. श्री सीतारामशरणजी महाराज, (४) म. मं. स्वामी श्री पूर्णानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य।

(५) **मुख्य अतिथि**—आदरणीय श्री महापात्रजी, जनरल सेक्रेटरी, ए.आई.सी.सी।

(६) **आभार दर्शन**—म. मं. स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य।

शनिवार १० जनवरी १९८१

प्रातः ७–०० से ९–००

(१) **वेदमंत्रोच्चार**—श्री गुरु गंगेश्वर देवकी भोजराज कन्या विद्यालय, वृन्दावन की छात्राओं व अध्यापिकाओं द्वारा सस्वर वेद मंत्रोच्चारण।

(२) **प्रवचन**—महामंडलेश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्री अखण्डानन्दजी महाराज।

(३) **भाषण**—परम पूज्य स्वामी श्री अभिरामदासजी, जूनागढ़, गुजरात राज्य।

(४) **श्रीमद् भागवत पारायण एवं वेद पारायण**—

९–०० से १२–०० तथा सायं ३–०० से ६–००

गीता सम्मेलन

(१) **कीर्तन**—भगवद्भक्तों द्वारा।

(२) **स्वागत-भाषण**—सेठ श्री मुरलीधर आसवानी।

(३) **परिचय**—सेठ श्री गोविन्दराम आसवानी, सेठ श्री होतचन्द अडवानी, सेठ श्री नारो गुरसहानी।

(४) **उद्घाटन**—महामहिम श्री वाय. वी चन्द्रचूड़, प्रधान न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय, दिल्ली।

इस अवसर पर आपके द्वारा सद्‌गुरुदेव अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी महाराज द्वारा लिखित सामवेद समन्वय हिन्दी भाष्य भाग (१) एवं (२) (३) वामन सामवेद (४) शुक्ल यजुर्वेद और उनकी प्रेरणा से निर्मित (५) विश्वतोमुख भगवान् वेद, संपादक स्वामी श्री अर्चिकानन्द उदासीन, (६) वेदामृत—लेखक सनातनधर्म मार्तण्ड पंडित माधवाचार्यजी के पुत्र पं. वीराचार्यजी, (८) शाबर भाष्य–संपादक–युधिष्ठिर मीमांसक आदि ग्रंथों का उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

(५) **प्रवचन**—(१) गीता मर्मज्ञ श्री १०८ स्वामी रामसुखदासजी महाराज, (२) श्री. सी. आर. रामनाथन्, सचिव, शिक्षा विभाग, भारत सरकार, (३) म. मं. स्वामी १०८ श्री हरिहरानन्दजी महाराज।

(६) **अध्यक्षीय भाषण**—म. मं. श्री १००८ स्वामी कृष्णानन्दजी-गोविन्दानन्दजी महाराज, न्याय-वेदान्ताचार्य।

(७) **आभार-वचन**—म. मं. स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य।

रविवार ता. ११ जनवरी १९८१

प्रातः ७-०० से ९-००

(१) **कीर्तन**—भगवद्भक्त-मंडल

(२) **प्रवचन**—निखिलशास्त्रनिष्णात श्री सुब्रह्मण्यम् स्वामी, मीमांसाचार्य।

(३) **भाषण**—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्री अखंडानन्दजी महाराज।

(४) **प्रवचन**—स्वामी श्री महेश्वर देव शास्त्री, अध्यक्ष, अवधूत मंडल, हरद्वार

(५) श्रीमद् भागवत पारायण एवं भगवान वेद पारायण।

रामायण-संमेलन

सायं ७-०० से ९-००

(१) **कीर्तन**—भगवद् भक्त मंडल

(२) **स्वागत**—श्री हरिलाल (बचूभाई) ड्रेसवाला

(३) **सम्मान-पत्र अर्पण**—श्री हरिप्रसाद वेदपाठीजी

(४) **अध्यक्षीयभाषण**—डॉ बद्रीनाथ शुक्ल, कुलपति, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(५) **भाषण**—(१) म. मं. स्वामी अमरमुनिजी, एम. ए.; व्याकरणाचार्य।
(२) परमपूज्य श्री हरिमिलापीजी, अध्यक्ष, हरिमिलापी मिशन, हरद्वार।
(३) परमपूज्य श्री नृत्यगोपालदासजी महंत, छोटी छावनी, अयोध्या,
(४) परमपूज्य शान्तिप्रकाशजी

(६) **आभार वचन**—म. मं. स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महराज, वेदान्ताचार्यजी।

सोमवार, १२ जनवरी, १९८१

प्रातः ७-०० से ९-००

(१) **कीर्तन**—भगवद्भक्त-मंडल

(२) **भाषण**—(१) स्वामी श्री महेश्वरदेवजी शास्त्री, अवधूतमण्डल, हरद्वार
(२) स्वामी श्री हरिप्रसादजी

योग संमेलन

सायं ८-०० से ९-३०

(१) **कीर्तन**—भगवद्भक्त-मंडल

(२) **स्वागत**—श्री १०८ स्वामी श्री श्यामसुन्दरदासजी महाराज।

(३) **उद्घाटन**—अनन्त श्री विभूषित स्वामीश्रीअखण्डानन्दजी महाराज।

परम पूज्य गुरुदेवकी पादुका का दर्शन

गुरुगंगेश्वर औषधालय, वृन्दावन
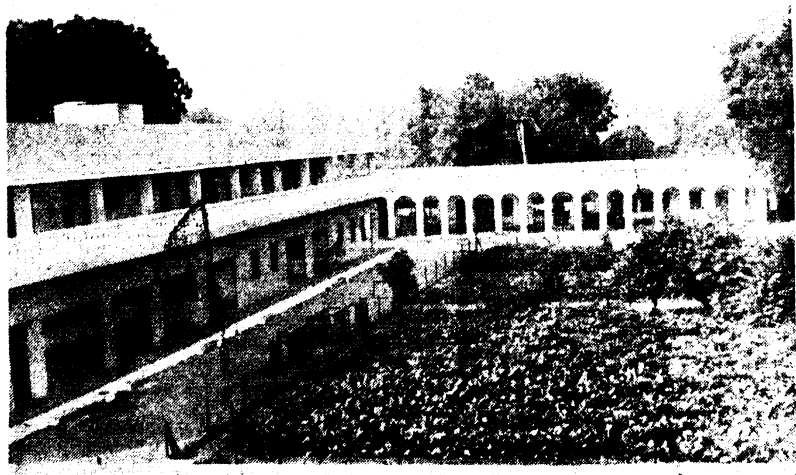
श्रौतमुनि निवास, वृन्दावन

(४) **योगासन-प्रदर्शन**—योगीराज श्री स्वामी नित्यबोधानन्दजी, कुमारी त्रिलोचना और कु० गायत्री तथा उनके पिता योगीराज श्री ईश्वरदासजी महाराज

(५) **मुख्य अतिथि**—महामहिम श्री. डॉ करणसिंहजी सदरे रियासत, जम्मू-कश्मीर

(६) **भाषण**—(१) म. मं. स्वामी श्री मंगलानन्दजी महाराज (२) गुरुमंडल पीठाधीश्वर स्वामी श्री रामस्वरूपानन्दजी (३) म. मं. स्वामी श्री वासुदेवानन्दजी (४) म. मं. स्वामी श्री नित्यबोधानन्दजी

(७) **अतिथि विशेष**—महामहिम श्री सरदार दरबारासिंहजी, मुख्यमंत्री, पंजाब,

(८) **अध्यक्षीय भाषण**—परमपूज्य श्री स्वामी चिदानन्दजी महाराज, अध्यक्ष, डिवाइन लाइफ सोसायटी, ऋषिकेश।

(९) **आशीर्वचन**—अनन्तश्रीविभूषित वेददर्शनाचार्य म. मं. स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी महाराज

(१०) **आभार वचन**—म. मं स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदन्ताचार्य

मंगलवार, १३, जनवरी, १९८१

प्रातः ७-०० से ९-००

(१) **कीर्तन**— भगवद् भक्तमंडल

(२) **प्रवचन**—माननीय श्री सुब्रह्मण्यम् शास्त्री

स्वागत-समारोह

सायं ७-०० से ९-३०

(१) **कीर्तन**—प्रो. श्री राम पंजवानी

(२) **मंगलाचरण**—श्री पंडित विश्वनाथ देव द्वारा वैदिक मंत्रोच्चार

(३) **स्वागत**—श्री मुरलीधर आसवानी, श्री हरिलाल ड्रेसवाला

(४) **स्टेजमंत्री**--श्री गोविन्दभाई आसवानी

(५) **उद्घाटन भाषण**--महामंडलेश्वर श्री स्वामी ब्रह्महरिजी, पुराणभास्कर महंत चेतनदेव कुटिया, कनखल

(६) **माल्यार्पण**—भारत की विविध संस्थाएं

(७) **स्वागत-वचन**--(१) महामहिम श्री बहुगुणाजी, (२) श्री विश्वनाथ सहगल, कश्मीर, (३) म. मं. स्वामी श्री कूटस्थानन्दजी महाराज, (४) म. मं. स्वामी श्री मुकुन्ददासजी महाराज, इन्दौर, (५) म. मं. स्वामी श्री शान्तिप्रकाशजी महाराज, उल्लास नगर, (६) म. मं. स्वामी श्री किशोरदासजी, (७) कोठारीजी श्री कुंभनदासजी पंचायती बड़ा अखाड़ा, उदासीन, इलाहाबाद, (८) म. मं. स्वामी रामस्वरूपदासजी एवं अनेक सन्त, महन्त तथा सज्जन भक्तगण।

(८) **स्वागताध्यक्ष प्रवचन**--श्री बाबूराव काले, मन्त्री, महाराष्ट्र प्रशासन।

(९) **आशीर्वाद**--प. पू. सद्गुरुदेव महाराज
(१०) **आभार-प्रवचन**—म. मं. स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य।
(११) **आरती-प्रसाद वितरण**

बुधवार, १४ जनवरी १९८१

प्रातः ७–०० से ९–००

(१) **कीर्तन**--भगवद्-भक्त-मण्डल
(२) **भाषण**--म. मं. स्वामी चिदानन्दजी, गुजराती में (२) म. मं. स्वामी श्री योगेश्वर विदेहहरिजी, (३) म. मं स्वामी श्री हंसप्रकाशजो, (४) म. मं. स्वामी श्रो शंकरानन्दजी महाराज, हरिद्वार, (५) प. पू. स्वामी श्री दामोदरप्रसादजी, जयपुर (७) म. मं. स्वामी श्री कृष्णानन्दजो महाराज, व्याकरणाचार्य ।

वेदान्त-संमेलन

सायं ७–०० से ९–३०

(१) **मंत्रोच्चार**—श्री ऋषिशंकर अग्निहोत्रीजी के ६ वर्षीय पौत्र विनोद द्वारा चारों वेदों के सस्वर पाठ एवं सामगान ।
(२) **स्वागताध्यक्ष**—म. मं. स्वामी श्री श्यामसुन्दरजी शास्त्री, हरिद्वार।
(३) **स्टेज मंत्री**— (१) श्री गोविन्दराम आसवानी, (२) श्री हरिलाल (बचू भाई) ड्रेसवाला ।
(४) **प्रवचन**—म. मं श्रो स्वामी सोमेश्वरानन्दजी, (२) म. मं. स्वामी श्री प्रीतममुनिजी, हरिद्वार।
(५) **अध्यक्षीय भाषण**—म. मं श्रीस्वामी ब्रह्मानंदजी महारज, विलेपार्ले, बम्बई
(६) **प्रधानमंत्री का संदेश**—भारत के प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं श्री कमलापति त्रिपाठी का संदेश—श्री कोशलकिशोर शर्मा द्वारा।
(७) **आभारवचन**—म. मं. स्वामी श्री गोविन्दानन्दजो महाराज, वेदन्ताचार्य।

गुरुवार, १५ जनवरी, १९८१

प्रातः ७–०० से ९–००

(१) **कीर्तन**—भगवद्-भक्त-मण्डल
(२) **प्रवचन**--प. पू. श्री सुब्रह्मण्यम् स्वामी

संस्कृत सम्मेलन

सायं ७–०० से ९–३०

(१) **मंगलाचरण**—पं. गजानन शास्त्री, पं. नरहरि शास्त्री, पं. लक्ष्मीकान्त बापू दीक्षित।

(२) **स्वागताध्यक्ष**—पं. भाईशंकर पुरोहित, आचार्य, संस्कृत विद्यालय, भारतीय विद्याभवन, बम्बई ।

(३) **उद्‌घाटन**—प. पू. स्वामी श्री सुरजनदासजी महाराज ।

(४) **अभिनंदन भाषण**—(१) म. मं. स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज, (२) पं. नवलकिशोर कांकर, (३) पं. जगन्नाथ वेदालंकार, (४) पं. गोविन्द नरहरि वैजापुरकर, (५) श्रीरामस्वरूपजी, (६) पं. नर्मदाशंकर शास्त्री, (७) पं. पुरुषोत्तम त्रिपाठी, प्रधानाचार्य, उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी । (८) पं. विनायक शास्त्री (९) पं. विष्णु शर्मा ।

(५) **अतिथिविशेष**—कर्मवीर श्री करमसी भाई सोमैयाजी,

(६) **अध्यक्षीय प्रवचन**—म. मं. श्री १०८ स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज ।

(७) **आभार वचन**—म. मं स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य ।

शुक्रवार, दिनांक १६ जनवरी, १९८१

राष्ट्रीय एकता संमेलन

सायं ७-०० से ९-३०

(१) **कीर्तन**—भगवद्‌भक्तमंडल

(२) **स्वागताध्यक्ष**—श्री पं. वीराचार्यजी

(३) **उद्‌घाटन भाषण**—श्री पं. प्रेमाचार्यजी

(४) **प्रवचन**—(१) श्री पं. सुरेशचन्द शर्मा, दिल्ली महामंडलेश्वर, (२) श्री स्वामी सामेश्वरानन्दजी, अध्यक्ष, गीता भवन, नवाशहर, (३) महामंडलेश्वर वीतराग श्री स्वामी अभयानन्दजी, गीता भवन, कोटा, राजस्थान, (४) श्री स्वामी सर्वज्ञमुनिजी, महामंडलेश्वर, गंगेश्वरधाम, दिल्ली, (५) श्री योगेन्द्र मकवाणा, राज्य मन्त्री, केन्द्रशासन, (६) श्री रामराव आदिक, (७) श्री बाबूराव काले, (८) श्री धर्मदास शास्त्री, (९) श्री ज्ञानगिरिजी महाराज ।

(५) **मुख्य अतिथि**—लोकसेविका पूर्णिमाबहन

(६) **अध्यक्षीय भाषण**—आचार्य पं. श्रीकण्ठजी

(७) **आशीर्वाद**—प. पू. सद्‌गुरुदेवजी महाराज

(८) **आभार दर्शन**—श्री स्वामी गोविन्दानन्दजी, वेदान्ताचार्य

शनिवार, १७ जनवरी १९८१

गो सम्मेलन

सायं ७-०० से ९-३०

(१) **कीर्तन**—भगवद् भक्त मंडल ।

(२) **स्वागताध्यक्ष**—महामंडलेश्वर श्री १०८ स्वामी गोपालमुनिजी, हरिद्वार ।

(३) **उद्घाटन**—महामंडलेश्वर श्री १०८ स्वामी माधवाचार्यजी, कनखल, हरिद्वार।

(४) **भाषण**—(१) परम गोभक्त श्री गवानन्दजी (२) ॐ प्रेमदेवी, श्रद्धानन्द आश्रम, हरिद्वार। (३) म मं. स्वामी श्री सच्चिदानन्दजी महाराज, अमृतसर। (४) म. मं. स्वामी श्री श्रीप्रकाश महाराज, ब्रह्मनिवास आश्रम, वृन्दावन। (५) म. मं. स्वामी श्री सुतीक्ष्णमुनिजी। (६) म. मं. श्री अमरमुनिजी। (७) उदासीन बाबा श्री डाकोरदासजी, मुलुण्ड।

(५) **मुख्य अतिथि**—ललिताम्बा, अध्यक्ष, मानव-कल्याण आश्रम, कनखल, हरिद्वार।

(६) **अध्यक्ष**—१०८ स्वामी सर्वज्ञमुनिजी एम. ए., म. मं. गंगेश्वर धाम, दिल्ली।

(७) **साभार वचन**—श्री स्वामी गोविन्दानन्दजी, वेदान्ताचार्य।

रविवार, १८ जनवरी, १९८१

मध्याह्न १२–००

परम श्रद्धेय श्री डोंगरेजी महाराज—श्रीमद् भागवत कथा, श्रीमद् भागवत–पारायण, चतुर्वेद पारायण तथा पञ्चदेव महायाग की पूर्णाहुति एवं परमपूज्य सद्गुरुदेव के आशीर्वाद।

गुरुपादुकार्चा सम्मेलन

(१) **कीर्तन**—श्री राम पंचवानीजी।

(२) **स्वागताध्यक्ष**—श्री मुरलीधर आसवानी।

(३) **स्टेज मंत्री**—श्री हरिलाल ड्रेसवाला।

(४) **प्रवक्ता**—(१) प्रा. श्री मंडनमिश्रजी, (२) श्री सारंगजी, (३) स्वामी श्री कृष्णानन्दजी, (४) स्वामी श्री राष्ट्रानन्दजी, (५) लोक-सेविका श्रीमती गुलाब बहन, दिल्ली, (६) श्री मथुरादासजी चावला, (७) म. मं. स्वामी श्री कृष्णा-नन्दजी–गोविन्दानन्दजी महाराज, (८) श्री महन्त उदासीन बड़ा अखाड़ा, (९) श्री काकूभाई, (१०) श्री सुरेशचन्द्र शर्मा, (११) श्रीमती ललिताम्बा।

(५) **मुख्य अतिथि**—श्रीमती रतनबहन फोजदार।

(६) **अध्यक्ष**—श्री बाबूराव काले, मन्त्री, महाराष्ट्र शासन।

(७) **आशीर्वाद**—परम पूज्य सद्गुरुदेवजी महाराज।

(८) **आभारदर्शन**—म. मं. स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य।

परिशिष्ट–११

जन्म शताब्दी महोत्सव में उपस्थित

अतिथिविशेष संत एवं महंत

अद्वितीय एवं परमानन्दप्रद सद्गुरुदेव के जन्म शताब्दी महोत्सव में भारत के कोने–कोने से अनेक अतिथिविशेष संत एवं महंत पधारे थे। उनमें से कतिपय महानुभावों के नाम हैं—

परमपूज्या अनन्तश्रीविभूषिता माँ श्री आनन्दमयी माँ, अनन्तश्री विभूषित महामंडलेश्वर, निखिलशास्त्रनिष्णात स्वामी अखंडानन्द सरस्वतीजी महाराज, श्री लक्ष्मणकिलाधीश श्रद्धेय श्री सीताराम शरणजी महाराज, श्री १०८ सीताराम ओंकारनाथजी ठाकुर, श्री कामेश्वरनाथजो, महामंडलेश्वर स्वामी श्री रामस्वरूपजी महाराज, अध्यक्ष, अखिल भारत साधु समाज, परम आदरणीया श्री वेदभारतीजी, म. मं. स्वामी श्री हरिमीलापीजी, म मं. स्वामी श्री योगीन्द्रानन्दजी महाराज, म. मं. स्वामी श्री रामस्वरूपजी, राष्ट्रभाषापतंजलि म. मं. श्री निगमानन्दजी महाराज, म. मं. श्री स्वामी कृष्णानन्द—गोविन्दानन्दजी, हरिद्वार, स्वामी हंसदेव मुनिजी हरिद्वार, स्वामी अमरमुनिजी महाराज, रामतीर्थ मिशन, स्वामी प्रीतम मुनिजी, स्वामी कृष्णानन्दजी, हरिद्वार, स्वामी ब्रह्मानन्दजी संन्यास आश्रम, विलेपार्ले, स्वामी ब्रह्मदेवजी, स्वामी शान्तिप्रकाशजो, स्वामी श्यामसुन्दरदासजो हरिद्वार, स्वामी शंकरानन्दजी, हरिद्वार, स्वामी वेदान्तानन्दजी, हरिद्वार, स्वामी कूटस्थानन्दजो, हरिद्वार, स्वामी पूर्णानन्दजी, हरिद्वार, स्वामी महेश्वरानन्दजो, हरिद्वार, स्वामी धर्मदेवजी, स्वामी किशोरदासजी, वाराणसी, स्वामी विद्यानन्दजी, पुष्कर, स्वामी सर्वज्ञ मुनिजी, दिल्ली, स्वामी सुवेद मुनिजी, स्वामी गोपाल मुनिजी, ऋषिकेश, योगीराज श्री मनुवर्यजी महाराज, स्वामी श्री पूर्णानन्दजी महाराज, वेदान्ताचार्य, स्वामी श्री अभिरामदासजी महाराज, जूनागढ़, गुजरात, पं. वीराचार्य, दिल्ली, स्वामी श्री महेश्वरदेवजी, हरिद्वार, स्वामी श्री नृत्यगोपालजी, अयोध्या, प. पू. स्वामी सूरजमुनिजी, योगीराज श्री ईश्वरदासजी महाराज, म. मं. स्वामी श्री मंगलानन्दजी महाराज, म. मं. स्वामी श्री रविमुनिजी महाराज, म. मं. स्वामी श्री वासुदेवानन्दजी महाराज, म. मं. स्वामी श्री नित्यबोधानन्दजी महाराज, प. पू.

लालबहादुर शास्त्री, उप-राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसेन, गुलज़ारीलाल नन्दा आदि प्रमुख नेताओं ने स्वर्गीय पं. नेहरू को श्रद्धांजलियाँ अर्पित की।

स्थानापन्न प्रधानमंत्री श्री गुलज़ारीलाल नन्दा ने अपने भाषण में एक महत्त्वपूर्ण बात कही। आपने कहा, 'आपको पता हो कि पं. नेहरू ने अपनी वसीयत में लिखवाया था कि उनकी अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित की जायें। हम-आप नहीं जानते, मगर गंगा नेहरूजी को पहचानती है और पं. नेहरू गंगा को पहचानते थे।'

पूर्वजन्म के योगी

नैनीताल में रेडियो द्वारा स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी इस भाषण को सुन रहे थे। श्री नन्दा की बात सुनकर, उन्होंने अपने पास बैठे शिष्य संत गोविन्दानन्द, गोपालमुनि आदि से कहा, 'क्यों संतों, आप नन्दाजी के इस कथन का रहस्य समझे ?'

संतों की समझ में कुछ नहीं आया था, इसलिए वे मौन रहे।

"नेहरूजी असाधारण थे," स्वामी गंगेश्वरानन्दजी ने गंभीर स्वर में कहा। 'पूर्वजन्म में वे योगी थे। पूर्वजन्म में वे गरुड-चट्टी के निकट गंगा-तट पर वर्षों तक संत के रूप में योग-साधना में लीन रहे थे। एक दिन पं. मोतीलाल नेहरू अपनी पत्नी श्रीमती स्वरूपरानी के साथ पं. मदनमोहन मालवीयजी की प्रेरणा से इन संत के दर्शन करने गये। पंडित मालवीयजी ने संत से करबद्ध निवेदन किया, 'महाराज, ये मेरे भाई मोतीलाल नेहरू हैं। भगवान की कृपा से इन्हें सब सुख-वैभव प्राप्त हैं, किंतु पुत्र के अभाव में ये दुःखी रहते हैं। आप इन पर कृपा करके इनका मनोरथ पूरा करें।'

संत मुस्करा कर बोले 'मालवीयजी इनके भाग्य में पुत्र का योग नहीं है, इस जन्म में नहीं, आगामी कई जन्मों तक। मैं क्या करूं।"

मालवीयजी इस उत्तर से निराश न हुए। उन्होंने पुनः करबद्ध प्रार्थना की 'हर ओर से निराश होकर ही हम आप की शरण में आये हैं। आप हमें निराश न करें।'

संत ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर तुरन्त देह-त्याग कर दिया, यथा समय, स्वरूपरानी सगर्भा हुई, और जवाहरलाल के रूप में गरुड़-चट्टी के उसी संत ने उनके गर्भ से जन्म लिया। यह समाचार कई वर्ष पूर्व अनेक समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था। तब इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था। किन्तु वह सच था। तिब्बत में तो पं. नेहरू को बुद्ध का अवतार ही मानते हैं।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि पूर्वजन्म में संत और योगी होते हुए पं. नहेरू अपने संत स्वरूप को लोगों पर प्रकट क्यों नहीं करते थे? इसके कुछ गुप्त कारण थे। उन्हीं कारणों से वे अपने संत स्वरूप को छिपाने में इतने सचेष्ट रहते थे कि अपने वक्तव्यों और भाषणों में भूलकर भी भगवान का नाम नहीं लेते थे, यद्यपि वे भगवान के परम भक्त थे। वैसे, अन्त से कुछ दिन पूर्व, ५ मई १९६४ को जब वे कांग्रेस महासमिति के बम्बई अधिवेशन में भाग लेकर दिल्ली लौट रहे थे, तो कुछ बम्बईवासियों ने उनसे पूछा था, 'अब आप के दर्शन कब होंगे?' तो सहसा पहली बार उनके मुँह से निकल पड़ा था, 'जैसी ईश्वर की इच्छा।' यह संतों की भाषा है। यहाँ उनका पूर्वजन्म का संत-स्वभाव बरबस व्यक्त हो गया।

स्वामीजी से अन्तिम भेंट

परिवार गुरु की हैसियत से नहेरू परिवार के सभी सदस्य पं. नहेरू, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीमती इन्दिरा गांधी आदि स्वामी गंगेश्वरानन्दजी का बहुत आदर करते थे, और प्रायः उनके दर्शन करते रहते थे।

पं. नेहरू स्वामीजी के अंतिम दर्शनार्थ २२ नवम्बर १९६३ को गुरु महाराज के आश्रम पर पधारे। इसमें कुछ समय पूर्व कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम मुहंमद ने उनके दर्शन करके कहा था, 'आज गुरु महाराज के दर्शन से मुझे बेहद राहत मिली।' पं. नेहरू के आगमन के एक सप्ताह पूर्व, १५ नवम्बर १९६३ को पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रतापसिंह कैरों स्वामीजी के आश्रम में आये। आपने गुरु महाराज का श्रद्धापूर्वक अभिवादन करके अपने भाषण में कहा, 'मेरा अहोभाग्य है कि आज दीपमालिका के शुभ दिन ऐसे महान संत के दर्शन कर रहा हूँ। मेरे यहाँ आने का एक मात्र उद्देश्य गुरु महाराज के दर्शन करना और उनके आशीर्वाद प्राप्त करना ही है।"

पं. नेहरू २२ नवम्बर को सायंकाल, ७ बजे आश्रम में आकर, पहले तो कमरे में गुरुजी से आध्यात्मिक वार्ता करते रहे, बाद में जनता के अनुरोध से उन्होंने एक छोटा-सा भाषण भी दिया। करीब डेढ़ घंटा आश्रम में रहने के बाद, वे गुरु महाराज से आशीर्वाद लेकर लौटे :

प्रियं मा कृणु देवेषु
प्रियं राजसु नस्कृधि।
प्रियं सर्वस्य पश्यत
उत शूद्रे, उत आर्ये॥

(अथर्ववेद, १९-६२-१)

संसार का कोई भी प्राणी क्यों न हो, हम सभी के प्रेमी बनें। विश्वव्यापी प्रेम की स्थापना हो। हमारा किसी से भी विरोध न हो।

यह हमारे वेदों का उपदेश और आदेश है। कितना सुंदर चित्रण किया गया है, थोड़े से शब्दों में, हमारी संस्कृति का।

इन्दिराजी की सांत्वना

पं. नेहरू के निधन पर, गुरु महाराज ने अपने शिष्यों की उपस्थिति में तीन संकल्प किये थे: १. भारत का नया प्रधानमंत्री निर्विरोध निर्वाचित हो। २. श्रीमती इंदिरा गाँधी की इच्छा न होते हुए भी, उन्हें मंत्रीमंडल में अवश्य लिया जाये। ३. त्रिमूर्ति-भवन पं. नेहरू का राष्ट्रीय स्मारक बने। उनके तीनों संकल्प अंत में पूरे हुए।

३ जुलाई को गुरु महाराज ने त्रिमूर्ति-भवन में श्रीमती इंदिरा गांधी से भेंट की, और उन्हें सांत्वना देते हुए बोले, 'बेटी अपने को अकेला अनुभव न करो। भारत की समस्त जनता तुम्हारा ही परिवार है। तुम्हारे पिताजी एक महान नेता ही नहीं, एक पहुँचे हुए योगी भी थे। नंदाजी ने प्रयाग के त्रिवेणी-तट पर उन्हें श्रद्धांजलि देते समय, इस तथ्य का स्पष्ट निर्देश इन शब्दों में किया था, 'गंगा और नेहरू की आपसी पहचान बहुत पुरानी है। वे एक दूसरे को ठीक ठीक पहचानते हैं, हम नहीं।' संतान का कर्तव्य होता है, पिता के अधूरे कार्यों को पूरा करना शोक-मुक्त हो कर। जैसे पिताजी की उपस्थिति में देश-सेवा करती रहीं, उससे अधिक तल्लीनता से देश-सेवा में जुट जाओ, जिससे तुम्हारे अमर पिता का देश को समृद्ध करने का संकल्प साकार हो सके।'

श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्वामी गंगेश्वरानंदजी का अभिवादन किया, और स्वामीजी उन्हें आशीर्वाद दे वहाँ से आश्रम आ गये।

लेखिका–**भारती शर्मा**

'**नवनीत**' के सौजन्य से

परिशिष्ट-१३

रतन-काव्य-सुषमा

१. कृतज्ञता

मम पर तुम्हरे अनन्त उपकार
गिनूँ गिनाय ना, भुलूँ भुलाय ना
नैनन अश्रू धार —मम पर...१.

भक्त-वत्सल तुम, अनुपम दानी
विश्व विभूति, विरल ज्ञानी
मैं अवगुन आगार —मम पर...२.

स्नेह सुधा सिञ्चन से सारे
पाप ताप अज्ञान निवारे
मम तुम तारणहार —मम पर...३.

मधुर स्मृति-रूप चमकत भारे
पल पल हृदय-पटल पर तारे
धरूँ क्या तुम्हें उपहार —मम पर...४.

तन-मन-प्राण समर्पित पद में
सम्बोधन की मम रगरग में
होत सतत् रणकार —मम पर...५.

परमहंस योगीश उदासीन
हूँ तव प्राचीन दासी सुहागिन
'रतन' रूप-बहार —मम पर...६.

२. गुरु-गिरा-गरिमा

वेद-सुधा-रस वाहिनी
रसना रस-बस बरबस करती
जन-मन-उर-उल्लासिनी —वेद...१.

शब्द-ब्रह्म-मधु संगीत सरिता
कलरव करती गाती गीता
कर्म-भक्ति अरु ज्ञान-त्रिवेणी
जीवन-मुक्ति-प्रदायिनी —वेद...२.

आनन्द-घन-गुरु मुखरित अमृत
वर्षा प्लावित प्रेमी कृत कृत
ब्रह्म-जगत्-ईश्वर एक-तत्त्व
सत्य स्वरूप समदर्शिनी —वेद...३.

ऋषि–मुनि–ज्ञानी जिन रूप ध्यावे
वेद–पुरुष महिमा नहीं पावे
गुरु 'गंगेश्वर', वेद–रत्नाकर
'रतन'–प्रभा रूप–दर्शिनी —वेद...४.

३. गुरुपदपंकज ध्यान

गुरु–पद–पंकज ध्याऊँ पल–पल गुरु–पद–पंकज ध्याऊँ
तन–मन–प्राण प्रफुल्लित करती पद्म–परिमल पाऊँ
पल–पल......
रस–लोलुप मधुप अनुरागी, गुरु–गुण–गरिमा गाऊँ
सहज–समाधि अनंत सुखदायी 'रतन' स्वरूप समाऊँ
पल–पल......

(भ्रमर=अनुगामी=शिष्य=भक्त=सहज–समाधि – प्रेमवश कमल के रस का पान करते करते अन्दर बन्द हो जाना, अपना अस्तित्व खो देना)

४. गुरुगंगेश्वर निराजना

परम पुरुष पुरातन, पुरुषोत्तम ए।
अभिनव ललित लीलामय, जय गुरुदेव हरे ॥१॥
योगि–मुनि–मन–रञ्जन निरञ्जन ए।
वेद–गिरा–गंगाधर जय गुरुदेव हरे ॥२॥
साप–श्रुतिधर सुंदर शुभ कर ए।
अनंत कृपामृत सागर जय गुरुदेव हरे ॥३॥
जीवन–यज्ञ–पुरोहित सुरभित ए।
कल्मष–हव्य–विनाशक जय गुरुदेव हरे ॥४॥
भक्ति–ज्ञान–प्रदायक अधिनायक ए।
वृत्ति विवेक विमोचक, जय गुरुदेव हरे ॥५॥
वेद–वीणा–स्वर मण्डित संगीत ए।
द्वीज–मधुप–मधु गुञ्जन जय गुरुदेव हरे ॥६॥
त्रिभुवन वंदित नटवर नटवर ए।
निहारिका नव लख लख जय गुरुदेव हरे ॥७॥
नित नूतन नटनागर उजागर ए।
गुनिजन गावत गरिमा जय गुरुदेव हरे ॥८॥
वेद–व्यास, शुक, योगेश्वर 'गंगेश्वर' ए।
प्रपन्न 'रतन' रति–रञ्जन जय गुरुदेव हरे ॥९॥

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे मोक्षमवाप्नुयात् ॥

शत शत शरद का अमृतपान

वेदकाल से भारत में यह भावना प्रचलित है कि पुरुष का पूर्ण आयुष्य शतवर्ष का होता है, 'शतायुर्वै पुरुषः।' लेकिन आजकल घोर कलिकाल में असमंजसमय कलुषित वातावरण में शतवर्ष संपन्न मानव का दर्शन तो देवदुर्लभ हो गया है।

पूज्य प्रातःस्मरणीय पूर्णपुरुषोत्तमरूप परमप्रेम स्वरूप परमानन्द-दाता पराविद्याप्रदाता परमेश्वर प्राणत्राता सद्गुरुदेव स्वामी श्री गंगेश्वरानन्दजी महाराजने 'स्थिरैः अङ्गैः' — स्वस्थ अंग-उपांगों एवं इन्द्रियों से शताधिक शरद का — सौ से ज्यादा वर्ष का व्यतीत करके हमें अनुगृहीत किया है और न जाने कबतक मानवमात्र को दर्शन, प्रवचन एवं स्पर्शादिसे पवित्र करते रहेंगे।

ऐसे पूर्ण पुरुषोत्तमस्वरूप सद्गुरुदेवके जीवनचरित्रका यह तृतीय भाग उनके जन्म-शताब्दी महोत्सव का विस्तृत, समृद्ध एवं सुचारु वर्णन प्रस्तुत करता है। आपने आजीवन वेदसुधा रसवाहिनी विमलगिरा द्वारा वेदामृत का वर्णनातीत वाङ्मनसाप्यगोचर पान भक्तवृंद को कराया है। उसको सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती रतनबहन फोजदार ने ग्रंथस्थ करनेका सफल प्रयास किया है।

काव्यकलाकुशल एवं ललितमनोहर रचना में सिद्धहस्त कलाकार श्रीमती रतनबहन फोजदार ने अपनी प्रवाही कल्पनाप्रधान रसमय शैली में इतिहास एवं उपदेश का सामञ्जस्य सिद्ध करके अनेक उदाहरण एवं असंख्य वेदमंत्रों को उद्धृत करके इस ग्रंथ को आबाल-वृद्ध के लिये नितान्त उपयोगी बनाया है।

यदि कोई शत शत शरद का अमृतपान आजीवन करना चाहे, तो उसके लिये यह ग्रंथ सर्वथा उपादेय एवं अनिवार्य है।

—प्रा. सुमन

आवरण • दीपक प्रिन्टरी • अमदावाद-३८०००१